वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों की समस्याएं एवं समाधान

संपादक

सीएच श्रीनिवास राव, अशोक कुमार इंदोरिया, के एल शर्मा
सुशील कुमार यादव, के सम्मी रेड्डी, संतराम यादव, जी प्रभाकर

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान
संतोषनगर, हैदराबाद – 500 059

वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों की समस्याएं एवं समाधान

संपादक

सीएच श्रीनिवास राव, अशोक कुमार इंदोरिया, के एल शर्मा
सुशील कुमार यादव, के सम्मी रेड्डी, संतराम यादव, जी प्रभाकर

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान
संतोषनगर, हैदराबाद – 500 059

संदर्भ

सीएच श्रीनिवास राव, अशोक कुमार इंदोरिया, के एल शर्मा, सुशील कुमार यादव, के सम्मी रेड्डी, संतराम यादव एवं जी प्रभाकर (2017)। वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों की समस्याएं एवं समाधान, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद, पृष्ठः 360

प्रकाशन वर्ष : 2017

प्रतिलिपि अधिकार

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500 059

आई एस बी एन : 978-93-80883-44-1

सर्वप्रथम संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतिलिपि संख्या : 500

इस पुस्तक में प्रस्तुत विचार लेखकों/शोधकर्ताओं के हैं तथा संपादकों का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी जानकारी हेतु उनसे सीधे संपर्क किया जा सकता है।

प्रकाशक

निदेशक

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान

संतोषनगर, हैदराबाद – 500 059

दूरभाष : 040-24530163

फैक्स : 040-24531802

वेबसाइट : www.crida.in

मुद्रण

बालाजी स्कैन प्राईवेट लिमिटेड

11-4-659, भावयास फारूखी सप्लेन्डिड टावर्स

फलैट नं. 202, सिंगरेणी भवन के समीप, लकडी का पुल, हैदराबाद–500 004

दूरभाषः 040-23303424

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 100 001

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH & EDUCATION
AND
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
MINISTRY OF AGRICULTURE AND FARMERS WELFARE
KRISHI BHAVAN, NEW DELHI 100 001
Tel : 23382629; 23386711 Fax: 91-11-23384773
E-mail: dg.icar@nic.in

सत्यमेव जयते

त्रिलोचन महापात्र, पीएच.डी.
एफ एन ए, एफ एन ए एस सी, एफ एन ए ए एस
सचिव एवं महानिदेशक

TRILOCHAN MOHAPATRA, Ph.D.
FNA, FNASc, FNAAS
SECRETARY & DIRECTOR GENERAL

संदेश

देश के सर्वांगीण विकास में कृषि का विशेष योगदान है। जहां एक ओर यह ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों की आजीविका का मुख्य साधन है, वहीं दूसरी ओर कृषि से जुड़ी औद्योगिक इकाइयों के लिए कच्चे माल का भी एक प्रमुख स्रोत है। हालांकि, भारतीय कृषि साल दर साल प्रगति के पथ पर अग्रसर है, फिर भी कृषि के सर्वांगीण विकास के लिए सिंचित एवं वर्षा आधारित दोनों ही क्षेत्रों पर निरंतर ध्यान देने की नितांत आवश्यकता है। यद्यपि सिंचित क्षेत्रों में उपलब्ध संसाधनों के कारण ज्यादा प्रगति देखी गई है, जबकि वर्षा आधारित कृषि में विभिन्न समस्याओं की वजह से आशातीत प्रगति प्राप्त नहीं की जा सकी। हालांकि, भारत सहित विश्व के ज्यादातर देश अपनी खाद्यान्न जरूरत की मांग को पूरा करने के लिए वर्षा आधारित कृषि पर निर्भर हैं। वर्तमान में बदलते हुए जलवायुवीय परिवर्तनों के कारण इन क्षेत्रों के किसान अत्यधिक कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थान इन क्षेत्रों में कृषि के सर्वांगीण विकास के लिए निरंतर कार्य कर रहे हैं।

इस दिशा में भाकृअनुप – केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा किए गए कार्य सराहनीय हैं तथा संस्थान किसानों के बेहतर भविष्य के लिए निरंतर कार्यरत है। इन्हीं प्रयासों के तहत संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा लिखी गई यह पुस्तक वर्षा आधारित क्षेत्रों के सभी पणधारियों के लिए मील का पत्थर साबित होगी। पुस्तक में वर्णित इन क्षेत्रों की कृषि से जुड़ी विभिन्न समस्याओं और उनका समुचित समाधान निश्चित ही इन क्षेत्रों के किसानों के लिए वरदान साबित होगा।

इस पुस्तक में मृदा स्वास्थ्य, वर्षा जल एवं नमी संरक्षण, उन्नत फसल प्रणालियां, प्रभावी कीट एवं रोग प्रबंधन, मशीनीकरण, पशुधन पालन एवं चारा उत्पादन, कृषि वानिकी, कृषि मौसम सलाह सेवाएं, रणनीतियां एवं कार्यक्रम, आर्थिक विश्लेषण, शुष्क बागवानी, फसलों के अजैविक तनाव, कृषि प्रसार तंत्र इत्यादि के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराई गई है। पुस्तक में विशेष तौर पर जिला कृषि आकस्मिक योजनाओं का क्रियान्वयन तथा गांव स्तर पर जलवायु समुत्थान प्रौद्योगिकियों के प्रदर्शन के द्वारा इन क्षेत्रों के किसानों द्वारा अर्जित लाभार्थ के बारे में भी विवरण प्रस्तुत किया गया है। अत: मेरा यह मानना है कि पुस्तक में दिए गए वर्षा आधारित कृषि से जुड़ी विभिन्न समस्याओं के उचित समाधानों को अपनाने से निश्चित रूप से इन क्षेत्रों के किसानों की आजीविका में वृद्धि होगी। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक न केवल इन क्षेत्रों के किसानों के लिए बल्कि वैज्ञानिक समुदाय, कृषि प्रसार समुदाय, रणनीति कारकों, कृषि से जुड़ी सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं, अध्ययनरत छात्रों इत्यादि के लिए भी अति लाभदायक सिद्ध होगी।

इस महत्वपूर्ण प्रस्तुति के लिए सभी संपादकों एवं लेखकों को बधाई देता हूं जिन्होंने इस जटिल कार्य को अपनाकर इस क्षेत्र के सभी पणधारियों के लिए आवश्यक एवं अति महत्वपूर्ण जानकारी का संकलन किया है।

जुलाई, 2017

(त्रिलोचन महापात्र)

क. अलगुसुन्दरम
उप महानिदेशक (अभियांत्रिकी)

K. Alagusundaram
Deputy Director General (Engineering)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन-II,
पूसा, नई दिल्ली 110 012

INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI ANUSANDHAN BHAVAN-II,
PUSA, NEW DELHI-110 012

प्राक्कथन

यह सर्वविदित है कि देश में कृषि योग्य भूमि सीमित है तथा इसका विस्तार करना भी लगभग असंभव है। एक तरफ जहां बढ़ता औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, सड़क निर्माण इत्यादि की वजह से दिन-प्रतिदिन ये भूमि और सीमित होती जा रही है, वहीं दूसरी तरफ देश में बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उत्पादन एक चिंता का विषय बना हुआ है। उपरोक्त परिस्थितियों से निजात पाने के लिए टिकाऊ कृषि पद्धतियां विकसित करना एवं उनका प्रसार करना अतिआवश्यक है। देश का वर्षा आधारित क्षेत्र, कुल कृषि क्षेत्रफल के लगभग 60 प्रतिशत भूभाग में फैला है। निश्चित ही अगर इस भूभाग में फसल उत्पादन बढ़ाया जाए तो भविष्य में देश की खाद्यान्न सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। अत: अब समय आ गया है कि इस क्षेत्र के सर्वांगिण विकास पर ध्यान दिया जाए।

यद्यपि इस क्षेत्र में जारी भौगोलिक परिस्थितियां, असामान्य जलवायुवीय परिस्थितियां एवं निरंतर प्राकृतिक संसाधनों में गिरावट एक गंभीर चिंता का विषय है तथा इनके परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता सिंचित क्षेत्रों के मुकाबले कम पाई जाती है। उपरोक्त समस्याओं के बावजूद अगर वर्षा आधारित क्षेत्रों की कृषि के विभिन्न पहलुओं जैसे समुचित मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, मृदा जल प्रबंधन, फसल प्रणालियां, बागवानी, यांत्रिकीकरण, कृषि वानिकी, पादप कीट एवं रोग प्रबंधन, फसलों की नई किस्में, पशुधन, आकस्मिक योजनाएं, नीतियां एवं कार्यक्रमों को अपनाकर इन क्षेत्रों को देश के सर्वांगिण विकास में भागीदार बना सकते हैं।

हालांकि, इस दिशा में वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों के लिए भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा विकसित की गई तकनीकियां नि:संदेह ही कारगर साबित हो सकती हैं तथा किसानों के जीवनयापन एवं आर्थिक-सामाजिक परिदृश्य को बदल सकती हैं।

मुझे यह जानकर अत्यंत खुशी हो रही है कि भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा 'वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों की समस्याएं एवं समाधान' विषय पर महत्वपूर्ण पुस्तक का प्रकाशन कर रहा है। आशा है कि इस पुस्तक में विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किए गए लेख, इस क्षेत्र से जुड़ी विभिन्न कृषि समस्याओं के समाधान के लिए मील का पत्थर साबित होंगे।

मैं, सभी संपादकों एवं लेखकों को हार्दिक बधाई देता हूं जिन्होंने इस कठिन कार्य को अपनाकर, इस क्षेत्र के कृषि विकास के लिए एक सराहनीय कदम बढ़ाया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये पुस्तक वर्षा आधारित क्षेत्रों से जुड़े किसानों, अनुसंधानकर्ताओं, नीति-निर्धारकों, स्वयं सेवी संस्थाओं, शोधार्थियों, विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के लिए अत्यंत उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध होगी।

जुलाई, 2017

(क. अलगुसुंदरम)

संपादकीय

देश का वर्षा आधारित क्षेत्र विशाल भौगोलिक भू-क्षेत्र में फैला हुआ है। यह क्षेत्र देश के पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक के कोनों में फैला हुआ है। कृषि जलवायु के अनुसार वर्षा आधारित कृषि मुख्यत: शुष्क, अर्ध-शुष्क एवं उप-आर्द्र क्षेत्रों में स्थित है तथा इनमें अनेक प्रकार की मृदाएं एवं विभिन्न फसल प्रणालियां विद्यमान हैं। देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में इन क्षेत्रों का महत्वपूर्ण योगदान है। जहां एक ओर देश के कुल बिजाई क्षेत्रफल का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा इन क्षेत्रों के अंतर्गत आता है, वहीं दूसरी ओर इन क्षेत्रों से लगभग 44 प्रतिशत खाद्यान्न का उत्पादन होता है। वर्तमान में देश के मोटे अनाजों के कुल बिजाई क्षेत्रफल का 95 प्रतिशत, दलहनों का 91 प्रतिशत, तिलहनों का 80 प्रतिशत, कपास का 65 प्रतिशत तथा धान का 53 प्रतिशत क्षेत्रफल वर्षा आधारित क्षेत्रों के अधीन आता है। इन क्षेत्रों में देश की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या तथा लगभग 75 प्रतिशत पशुधन आबादी निवास करती है। यह महसूस किया गया है कि देश में आर्थिक-सामाजिक विकास एवं खाद्यान्न सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए इन क्षेत्रों के समुचित विकास की आवश्यकता है।

वर्तमान में वर्षा आधारित कृषि विभिन्न प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त है, जिनमें प्रमुख रूप से प्राकृतिक संसाधनों की कमी तथा उनका निरंतर क्षरण, किसानों की कमजोर आर्थिक-सामाजिक स्थिति, खेत जोतों का घटता आकार, संस्थागत ढांचापन में कमी, कृषि के नए क्षेत्रों में अनुसंधानों की कमी, कृषि प्रसार तंत्र का मजबूत न होना इत्यादि। इस के साथ ही साथ इन क्षेत्रों में व्याप्त विकट प्राकृतिक जलवायुवीय परिस्थितियां भी पाई जाती हैं।

हालांकि, उपरोक्त समस्याओं के बावजूद भी अगर वर्षा आधारित कृषि के सभी पहलुओं, जैसे कि समुचित मृदा एवं जल प्रबंधन, फसल प्रणालियां, बागवानी, यांत्रिकीकरण, कृषि वानिकी, पादप रोग एवं कीट प्रबंधन, फसलों की नई किस्में, जलवायु परिवर्तन के अनुसार आकस्मिक योजनाएं इत्यादि, को लागू करके इन क्षेत्रों को देश के विकास में भागीदार बनाया जा सकता है। इन क्षेत्रों की मृदाओं में समग्र पोषक तत्व प्रबंधन, समुचित जुताई क्रियाएं, फसलावशेषों एवं जैविक खादों का प्रयोग, बिजाई की उन्नत तकनीकियां, संरक्षित जुताई इत्यादि अपनाकर समुचित मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखा जा सकता है। इसी प्रकार वर्षाजल एवं मृदा नमी संरक्षण के लिए खेत तालाबों का निर्माण तथा भूमि सतह विन्यास में बदलाव करके वर्षाजल का समुचित उपयोग किया जा सकता है। कृषि वानिकी की विभिन्न उन्नत तकनीकियां अपनाकर कृषि आय में बढ़ोत्तरी के साथ ही साथ बदलते जलवायु परिवेश में वर्षा आधारित कृषि को टिकाऊ बनाया जा सकता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में कृषि बागवानी का विशेष महत्व है। इस दिशा में, शुष्क बागवानी की विभिन्न विधियों जैसे मृदा नमी संरक्षण तथा समुचित कीट-रोग प्रबंधन करके नि:संदेह कृषि आय में बढ़ोत्तरी प्राप्त की जा सकती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों के कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में पशुधन पालन को सुदृढ़ करने से जहां एक ओर किसानों की आय में बढ़ोत्तरी होगी, वहीं दूसरी ओर परिवर्तित जलवायु के प्रभावों को कम करने में भी सहायता मिलेगी। इन क्षेत्रों में अधिक तथा उच्च गुणवत्तायुक्त चारा उत्पादन सुनिश्चित करने वाली विभिन्न संभावनाएं तलाशने की आवश्यकता हैं।

प्रायः वर्षा आधारित क्षेत्रों में छोटे एवं सीमांत किसानों की बहुलता पाई जाती है। अतः इसे ध्यान में रखते हुए इन किसानों के लिए विशेष आदर्श कृषि प्रणालियों के प्रतिरूप विकसित किए गए हैं, जो नि:संदेह कृषि उपज बढ़ाने में कारगर साबित होंगे। इसी दिशा में एक कदम आगे बढ़ाते हुए बताया गया है कि इन क्षेत्रों की विभिन्न प्रकार की फसल प्रणालियों में उत्पादकता संबंधित प्रमुख बाधाओं का उचित समाधान किस प्रकार किया जा सकता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों मे बोई जाने वाली विभिन्न फसलें नि:संदेह विभिन्न प्रकार के अजैविक तनावों से गुजरती है। इन अजैविक तनावों से निपटने के लिए विभिन्न तकनीकियों तथा फसलों के आणविक स्तर पर जारी शोधों के परिणामों पर प्रकाश डाला गया है। इसके परिणामस्वरूप इन अजैविक तनावों का प्रभाव कम किया जा सकता है। इन क्षेत्रों में समुचित उपज प्राप्त करने के लिए उचित प्रकार के जुताई एवं बिजाई यंत्र भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा इस पुस्तक में इनके बारे में विस्तार से बताया गया है। इसी प्रकार कृषि विकास मे प्रसार तंत्र का मज़बूत होना अति आवश्यक है क्योंकि यह तंत्र विभिन्न वैज्ञानिक, अनुसंधानों तथा तकनीकियों को किसानों तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण संबंध सूत्र है। इस पुस्तक में इन क्षेत्रों के लिए विशेष प्रकार की संबंधित प्रसार विधियों का वर्णन किया गया है, जिनके परिणामस्वरूप आवश्यक सुझाव एवं सूचनाएं एक समयबद्ध चरण में किसानों तक पहुंच सकती है। पुस्तक में वर्षा आधारित क्षेत्रों की फसल उपज को प्रभावित करने वाले विभिन्न कीट एवं रोगों से बचाव के बारे में भी विस्तार से जानकारी दी गई है।

वर्तमान में बदलते हुए जलवायु परिप्रेक्ष्य में समय पर कृषि मौसम सलाह सेवाओं का विशेष योगदान है। इन सलाहों द्वारा किसान उचित समय पर समुचित प्रबंधन करके जोखिम को कम कर सकते हैं। इसी दिशा में एक कदम आगे बढ़ाते हुए कृषि और इससे संबंधित प्रक्षेत्रों को विपरीत मौसम प्रतिकूलताओं के प्रभावों से बचाने एवं सुचारु प्रबंधन करने के लिए भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद ने जिला स्तर हेतु कृषि आकस्मिकता योजनाएं बनाई हैं। किसान इन योजनाओं में वैकल्पिक तैयार अणुगणक/रणनीतियों को मौसम पूर्व और फसल अवधि के दौरान अपनाकर विपरीत मौसमी प्रभावों के असर को कम कर सकते हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में इन आकस्मिक योजनाओं को अपनाकर किसान विभिन्न मौसमी प्रतिकूलताओं से निपटने में सक्षम हो सकेंगे। इस अवधारणा को बल प्रदान करते हुए गांव स्तर पर विभिन्न जलवायु समुत्थान प्रौद्योगिकियों के सफलतापूर्वक प्रदर्शन के परिणामों के बारे में पुस्तक में विस्तृत जानकारी दी गई है। दूसरे शब्दों में, इस पुस्तक में वर्षा आधारित क्षेत्रों की कृषि एवं इससे संबंधित प्रक्षेत्रों से जुड़ी विभिन्न समस्याएं एवं उनके उचित समाधान के बारे में विस्तृत एवं उपयोगी सूचनाएं प्रदान की गई है। इन जानकारियों का लाभ उठाकर ये क्षेत्र देश के सर्वांगीण विकास में योगदान प्रदान कर सकते हैं। इस पुस्तक के लेखन में किए गए सराहनीय योगदान के लिए संपादकगण, सभी लेखकों द्वारा प्रदान की गई बहुमूल्य जानकारी हेतु उनका आभार व्यक्त करते हैं। साथ ही साथ संपादकगण, निदेशक, भाकृअनुप – केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद का भी विशेष आभार व्यक्त करते हैं जिनके अथक प्रयासों से इस पुस्तक को मूर्त रूप प्रदान किया जा सका है।

सीएच श्रीनिवास राव, अशोक कुमार इंदोरिया, के एल शर्मा
सुशील कुमार यादव, के सम्मी रेड्डी, संतराम यादव, जी प्रभाकर

जुलाई, 2017

आलेख योगदानकर्ता

अध्याय 1 **वर्षा आधारित कृषि की भारतीय अर्थव्यवस्था में भूमिका**

सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030

सी ए रामाराव, प्रधान वैज्ञानिक (कृषि अर्थशास्त्र) एवं अध्यक्ष, रूपांकन एवं विश्लेषण अनुभाग

बी एम के राजू, प्रधान वैज्ञानिक (कृषि सांख्यिकी)

संतराम यादव, सहायक निदेशक (राजभाषा)

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

अध्याय 2 **मृदा उर्वरता संबंधी बाधाएं एवं उनका प्रबंधन**

के एल शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान) एवं भूतपूर्व नेशनल फैलो

मुन्ना लाल, अनुसंधान अध्येता, मृदा रसायन एवं उर्वरता प्रयोगशाला

अशोक कुमार इंदोरिया, वैज्ञानिक (मृदा भौतिकी/मृदा एवं जल संरक्षण)

भाकृअनुप - केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030

के सम्मी रेड्डी, कार्यकारी निदेशक

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

अध्याय 3 **मृदा भौतिक स्वास्थ्य : बाधाएं एवं समाधान**

अशोक कुमार इंदोरिया, वैज्ञानिक (मृदा भौतिकी/मृदा एवं जल संरक्षण)

के एल शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान) एवं भूतपूर्व नेशनल फैलो

भाकृअनुप - केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030

के सम्मी रेड्डी, कार्यकारी निदेशक

के श्रीनिवास, प्रधान वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)

वी विशा कुमारी, वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)

संतराम यादव, सहायक निदेशक (राजभाषा)

के वेंकन्ना, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

जी प्रभाकर, तकनीकी अधिकारी (हिंदी)

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

अध्याय 4 **प्रमुख फसल प्रणालियां : समस्याएं एवं प्रबंधन**

जी प्रतिभा, प्रधान वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)

संजीव कुमार, वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)

भाकृअनुप–भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम, मेरठ-250110

वी वी गभाणे, मुख्य वैज्ञानिक, एक्रीपडा केंद्र, अकोला, डॉ पंजाब राव देशमुख कृषि विद्यापीठ, अकोला-444104

के स्वाति, अनुसंधान अध्येता, कृषि वानिकी प्रयोगशाला

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030

अध्याय 5 **उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रभावी वर्षा जल प्रबंधन**

मनोरंजन कुमार, प्रधान वैज्ञानिक (मृदा एवं जल संरक्षण अभियांत्रिकी)

के एस रेड्डी, प्रधान वैज्ञानिक (मृदा एवं जल संरक्षण अभियांत्रिकी)

के सम्मी रेड्डी, कार्यकारी निदेशक

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030

अध्याय 6 **अजैविक तनाव सहिष्णुता के लिए फसल सुधार**

सुशील कुमार यादव, प्रधान वैज्ञानिक (जैव रसायन)

योगेश कुमार तिवारी, सीनियर रिसर्च फैलो

अरूण कुमार शंकर, प्रधान वैज्ञानिक (पादप कार्यिकी)

बासुदेव सरकार, प्रधान वैज्ञानिक (पादप प्रजनन)

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

अध्याय 7 **वर्षा आधारित टिकाऊ कृषि प्रणालियां**

के ए गोपीनाथ, प्रधान वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)

जी रविंद्रा चारी, परियोजना समन्वयक, एक्रीपडा

प्रभात कुमार पंकज, वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन)

बोइनी नरसिम्लू, वरिष्ठ वैज्ञानिक (मृदा एवं जल संरक्षण अभियांत्रिकी)

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

अध्याय 8 **उच्च चारा उत्पादन सुनिश्चित करने की उन्नत तकनीकियां**

वी मारुति, प्रधान वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
डी सुधीर, विषय विशेषज्ञ (पशु चिकित्सा), कृषि विज्ञान केंद्र, क्रीडा
प्रभात कुमार पंकज, वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

अध्याय 9 **जलवायु परिवर्तन के परिपेक्ष्य में उच्च लचीलापन एवं टिकाऊपन के लिए कृषिवानिकी**

जी राजेश्वर राव, प्रधान वैज्ञानिक (वानिकी)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059
आर पी द्विवेदी, प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)
भाकृअनुप-केंद्रीय कृषिवानिकी अनुसंधान संस्थान, झांसी-284003

अध्याय 10 **छोटे कृषि उपकरण एवं फसल कटाई उपरांत प्रौद्योगिकियां**

रविकांत वी अडके, प्रधान वैज्ञानिक (कृषि यंत्र एवं शक्ति)
आई श्रीनिवास, प्रधान वैज्ञानिक (कृषि यंत्र एवं शक्ति)
बी संजीव रेड्डी, प्रधान वैज्ञानिक (कृषि यंत्र एवं शक्ति)
आशीष एस धिमते, वैज्ञानिक (कृषि यंत्र एवं शक्ति)
एम उदय कुमार, अनुसंधान अध्येता, कृषि यंत्र एवं शक्ति प्रयोगशाला
के सम्मी रेड्डी, कार्यकारी निदेशक
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059
सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030

अध्याय 11 **फसलों के लिए समन्वित कीट प्रबंधन**

एम प्रभाकर, प्रधान वैज्ञानिक (कीट विज्ञान)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059
एस वेन्निला, प्रधान वैज्ञानिक (कीट विज्ञान)
अनिमा लुगुन, अनुसंधान अध्येता, कीट विज्ञान प्रयोगशाला
भाकृअनुप-राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान केंद्र, नई दिल्ली-110012

अध्याय 12 **टिकाऊ जीविकोपार्जन में पशुधन का महत्त्व**

प्रभात कुमार पंकज, वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन)
डी बी वी रमण, प्रधान वैज्ञानिक (पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन)
जी निर्मला, प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार) एवं अध्यक्ष, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण अनुभाग
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059
सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030

अध्याय 13 **कृषि मौसम परामर्श सेवा से प्रक्षेत्र उत्पादकता एवं लाभ पर मौसम विचलन का प्रभाव**

पी विजय कुमार, परियोजना समन्वयक (एक्रीपाम)
ए वी एम सुब्बा राव, वरिष्ठ वैज्ञानिक (कृषि मौसम विज्ञान)
एम ए शरत चंद्रन, वैज्ञानिक (कृषि मौसम विज्ञान)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059
ए पी दुबे, कृषि मौसम वैज्ञानिक, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर-208002
सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030

अध्याय 14 **वर्षा आधारित कृषि प्रौद्योगिकियों का हस्तांतरण**

जी निर्मला, प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार) एवं अध्यक्ष, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण अनुभाग
के रविशंकर, प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)
प्रभात कुमार पंकज, प्रधान वैज्ञानिक (पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन)
के नागश्री, प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)
जागृति रोहित, वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)
अन्षिदा बीवी, वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)
जी प्रभाकर, तकनीकी अधिकारी (हिंदी)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

अध्याय 15 **वर्षा आधारित फसल उत्पादन हेतु एकीकृत रोग प्रबंधन माड्यूल**

सुशीलेंद्र देसाई, प्रधान वैज्ञानिक (पादप रोग विज्ञान)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059
अब्दुल समद, मुख्य वैज्ञानिक
सीएसआईआर-केंद्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान (सीमैप), लखनऊ–226015
सुशील कुमार यादव, प्रधान वैज्ञानिक (जैव रसायन)
संतराम यादव, सहायक निदेशक (राजभाषा)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

अध्याय 16 **वास्तविक समय कृषि सूखा प्रबंधन की आकस्मिक योजनाओं का कार्यान्वयन**

जी रविंद्रा चारी, परियोजना समन्वयक (एक्रीपडा)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद 500059
सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030
के ए गोपीनाथ, प्रधान वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद 500059

एस भास्कर, सहायक महानिदेशक (सस्य विज्ञान, कृषि वानिकी एवं जलवायु परिवर्तन),
प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन प्रभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली-110012
एम पी जैन, मुख्य वैज्ञानिक, एक्रीपड़ा केंद्र, इंदौर-452001
बोइनी नरसिम्लू, वरिष्ठ वैज्ञानिक (मृदा एवं जल संरक्षण अभियांत्रिकी)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059
देवेंद्र पाटिल, सीनियर रिर्सच फैलो, एक्रीपड़ा केंद्र, इंदौर-452001

अध्याय 17 **शुष्क बागवानी**

ए जी के रेड्डी, वैज्ञानिक (बागवानी)
अशोक कुमार इंदोरिया, वैज्ञानिक (मृदा भौतिकी/मृदा एवं जल संरक्षण)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059
वी सुबैय्या, सहायक प्राध्यापक (बागवानी)
डा वाई एस आर रेड्डी, हार्टिकल्चर यूनिवर्सिटी, वी आर गुडम-534101
सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान,
संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी,
राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030
संतराम यादव, सहायक निदेशक (राजभाषा)
जी प्रभाकर, तकनीकी अधिकारी (हिंदी)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

अध्याय 18 **सूखा प्रबंधन के लिए आकस्मिक योजनाएं**

के वी राव, प्रधान वैज्ञानिक (मृदा एवं जल संरक्षण अभियांत्रिकी)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059
सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान,
संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी,
राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030
प्रभात कुमार पंकज, वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन)
भाकृअनुप–केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद–500059

अध्याय 19 **जलवायु समुत्थान प्रौद्योगिकियों का ग्रामीण स्तर पर प्रदर्शन**

जे वी एन एस प्रसाद, प्रधान वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
एम उस्मान, प्रधान वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान) एवं अध्यक्ष, पीएमई कक्ष
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद 500059
सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान,
संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी,
राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030

अशोक कुमार इंदोरिया, वैज्ञानिक (मृदा भौतिकी/मृदा एवं जल संरक्षण)
एस बोरकर, अनुसंधान अध्येता, तकनीकी प्रदर्शन इकाई, निक्रा
संतराम यादव, सहायक निदेशक (राजभाषा)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059
नितिन सोनी, सीनियर रिर्सच फैलों
भाकृअनुप-कृषि प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग संस्थान, जबलपुर-400284

अध्याय 20 **वर्षा आधारित टिकाऊ कृषि हेतु कार्यक्रम एवं नीतियां**
एम उस्मान, प्रधान वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान) एवं अध्यक्ष, पीएमई कक्ष
सी ए रामाराव, प्रधान वैज्ञानिक (सांख्यिकी) एवं अध्यक्ष, रूपांकन एवं विश्लेषण अनुभाग
बी कृष्णा राव, प्रधान वैज्ञानिक (मृदा एवं जल संरक्षण अभियांत्रिकी)
बी एम के राजू, प्रधान वैज्ञानिक (कृषि सांख्यिकी)
जोसले सैम्यूल, वैज्ञानिक (कृषि अर्थशास्त्र)
अशोक कुमार इंदोरिया, वैज्ञानिक (मृदा भौतिकी/मृदा एवं जल संरक्षण)
संतराम यादव, सहायक निदेशक (राजभाषा)
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

अध्याय 21 **भविष्य का दिशा मार्ग**
सीएच श्रीनिवास राव, भूतपूर्व निदेशक, भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद–500059 एवं निदेशक, भाकृअनुप-राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रबंध अकादमी, राजेंद्रनगर, हैदराबाद-500030
अशोक कुमार इंदोरिया, वैज्ञानिक (मृदा भौतिकी/मृदा एवं जल संरक्षण)
के एल शर्मा, प्रधान वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान) एवं भूतपूर्व नेशनल फैलो
भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, संतोषनगर, हैदराबाद-500059

★ ★ ★

विषय सूची

अध्याय सं.	शीर्षक और लेखक	पृष्ठ सं.
01	**वर्षा आधारित कृषि की भारतीय अर्थव्यवस्था में भूमिका** सीएच श्रीनिवास राव, सी ए रामाराव, बी एम के राजू एवं संतराम यादव	1
02	**मृदा उर्वरता संबंधी बाधाएं एवं उनका प्रबंधन** के एल शर्मा, मुन्ना लाल, अशोक कुमार इंदोरिया, सीएच श्रीनिवास राव एवं के सम्मी रेड्डी	23
03	**मृदा भौतिक स्वास्थ्य : बाधाएं एवं समाधान** अशोक कुमार इंदोरिया, के एल शर्मा, सीएच श्रीनिवास राव, के सम्मी रेड्डी, के श्रीनिवास, वी विशा कुमारी, संतराम यादव, के वेंकन्ना एवं जी प्रभाकर	43
04	**प्रमुख फसल प्रणालियां : समस्याएं एवं प्रबंधन** जी प्रतिभा, संजीव कुमार, वी वी गभाणे, के स्वाति एवं सीएच श्रीनिवास राव	65
05	**उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रभावी वर्षा जल प्रबंधन** मनोरंजन कुमार, के एस रेड्डी, के सम्मी रेड्डी एवं सीएच श्रीनिवास राव	87
06	**अजैविक तनाव सहिष्णुता के लिए फसल सुधार** सुशील कुमार यादव, योगेश कुमार तिवारी, अरुण कुमार शंकर एवं बासुदेव सरकार	101
07	**वर्षा आधारित टिकाऊ कृषि प्रणालियां** के ए गोपीनाथ, जी रविंद्रा चारी, प्रभात कुमार पंकज एवं बोइनी नरसिम्लू	121
08	**उच्च चारा उत्पादन सुनिश्चित करने की उन्नत तकनीकियां** वी मारुति, डी सुधीर एवं प्रभात कुमार पंकज	137
09	**जलवायु परिवर्तन के परिपेक्ष्य में उच्च लचीलापन एवं टिकाऊपन के लिए कृषिवानिकी** जी राजेश्वर राव एवं आर पी द्विवेदी	153
10	**छोटे कृषि उपकरण एवं फसल कटाई उपरांत प्रौद्योगिकियां** रविकांत वी आडके, आई श्रीनिवास, बी संजीव रेड्डी, आशीष एस धिमते, एम उदय कुमार, के सम्मी रेड्डी एवं सीएच श्रीनिवास राव	169
11	**फसलों के लिए समन्वित कीट प्रबंधन** एम प्रभाकर, एस वेन्निला एवं अनिमा लुगुन	191
12	**टिकाऊ जीविकोपार्जन में पशुधन का महत्त्व** प्रभात कुमार पंकज, डी बी वी रमण, जी निर्मला एवं सीएच श्रीनिवास राव	195
13	**कृषि मौसम परामर्श सेवा से प्रक्षेत्र उत्पादकता एवं लाभ पर मौसम विचलन का प्रभाव** पी विजय कुमार, ए वी एम सुब्बा राव, एम ए शरत चंद्रन, ए पी दुबे एवं सीएच श्रीनिवास राव	209

अध्याय सं.	शीर्षक और लेखक	पृष्ठ सं.
14	**वर्षा आधारित कृषि प्रौद्योगिकियों का हस्तांतरण** जी निर्मला, के रविशंकर, प्रभात कुमार पंकज, के नागश्री, जागृति रोहित, अन्षिदा बीवी एवं जी प्रभाकर	227
15	**वर्षा आधारित फसल उत्पादन हेतु एकीकृत रोग प्रबंधन माड्यूल** सुशीलेंद्र देसाई, अब्दुल समद, सुशील कुमार यादव एवं संतराम यादव	243
16	**वास्तविक समय कृषि सूखा प्रबंधन की आकस्मिक योजनाओं का कार्यान्वयन** जी रविंद्रा चारी, सीएच श्रीनिवास राव, के ए गोपीनाथ, एस भास्कर, एम पी जैन, बोइनी नरसिम्लू एवं देवेंद्र पाटिल	251
17	**शुष्क बागवानी** ए जी के रेड्डी, अशोक कुमार इंदोरिया, वी सुबैय्या, सीएच श्रीनिवास राव, संतराम यादव एवं जी प्रभाकर	273
18	**सूखा प्रबंधन के लिए आकस्मिक योजनाएं** के वी राव, सीएच श्रीनिवास राव एवं प्रभात कुमार पंकज	281
19	**जलवायु समुत्थान प्रौद्योगिकियों का ग्रामीण स्तर पर प्रदर्शन** जे वी एन एस प्रसाद, एम उस्मान, सीएच श्रीनिवास राव, अशोक कुमार इंदोरिया, एस बोरकर, संतराम यादव एवं नितिन सोनी	299
20	**वर्षा आधारित टिकाऊ कृषि हेतु कार्यक्रम एवं नीतियां** एम उस्मान, सी ए रामाराव, बी कृष्णा राव, बी एम के राजू, जोसले सैम्यूल, अशोक कुमार इंदोरिया एवं संतराम यादव	325
21	**भविष्य का दिशा मार्ग** सीएच श्रीनिवास राव, अशोक कुमार इंदोरिया एवं के एल शर्मा	337

★ ★ ★

1

वर्षा आधारित कृषि की भारतीय अर्थव्यवस्था में भूमिका

- सीएच श्रीनिवास राव, सी ए रामाराव, बी एम के राजू एवं संतराम यादव

परिचय

वर्ष 2013-14 के दौरान भारत में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान (2004-05 मूल्यों के अनुसार) लगभग 14 प्रतिशत था। यद्यपि उद्योग जगत और सेवा क्षेत्र की अपेक्षा में यह योगदान कम है, परंतु यह विकास का आधार स्तंभ है। कुल श्रमिक शक्ति का लगभग 52 प्रतिशत भाग जीविका के लिए फार्म सेक्टर से रोजगार प्राप्त करता है एवं सामान्य भारतीय अपने कुल व्यय का लगभग आधा भाग खाद्यान्न पर खर्च करता है। कृषि संबंधी जनगणना 2010-11 के अनुसार देश में परिचालन जोत कुल 138.35 मिलियन है और परिचालन जोत की औसत आमाप संख्या 1.15 हेक्टेयर है। छोटी एवं सीमांत जोत का योगदान 85.01 प्रतिशत है और वर्ष 2010-11 में परिचालित क्षेत्र 44.58 प्रतिशत था। भारत में कृषि क्षेत्र को अधिक महत्ता प्राप्त है चूंकि निम्न आय एवं कमज़ोर वर्ग के अधिकांश भाग की जीविका के साथ-साथ यह खाद्यान्न सुरक्षा का भी स्रोत है। कृषि में वृद्धि, ग्रामीण गरीबी को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। चुंकि कृषि कई कृषि आधारित उद्योगों एवं कृषि सेवाओं के लिए आधार स्रोत है, अतः इसे केवल खेती के रूप में ही नहीं बल्कि व्यापक मूल्य श्रृंखला के रूप में भी देखा जाना चाहिए जिसमें खेती, थोक व्यापार, भंडारण (लाजिस्टिक्स सहित), प्रसंस्करण एवं खुदरा बिक्री शामिल है। पिछली दो पंचवर्षीय योजनाओं में देखा गया है कि अर्थव्यवस्था में 9 प्रतिशत की दर से विकास करने हेतु कृषि क्षेत्र में कम से कम 4 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि आवश्यक है।

खाद्य उत्पादन एवं सुरक्षा

चीन और अमेरिका के बाद भारत में अधिकतम अनाज का उत्पादन होता है। महत्वपूर्ण अनाजों के क्षेत्र में चावल और गेहूं के उत्पादन में भारत विश्व में दूसरे स्थान पर और दलहनों के उत्पादन में प्रथम स्थान पर है। भारत दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान पर और मूंगफली, सब्जियों, फलों, गन्ना एवं कपास उत्पादन में द्वितीय स्थान पर है। वर्ष 2014-15 के दौरान भारत में कुल खाद्यान्न उत्पादन 252.02 मिलियन टन आंका गया है। सूखा वर्ष होने के बावजूद भी देश ने 250 मिलियन टन का आंकड़ा पार कर लिया है। दलहनों एवं तिलहनों का उत्पादन क्रमशः 17.15 एवं 27.51 मिलियन टन आंका गया है। इन्हीं वर्षों में देश में चावल का उत्पादन 105.48 मिलियन टन था, जो सूखा वर्ष होने के बावजूद पिछले वर्ष की तुलना में केवल 1.17 मिलियन टन कम था। गेहूं का उत्पादन 86.53 मिलियन टन था। मोटे अनाज का उत्पादन

42.86 मिलियन टन था जो कि पिछले वर्ष के उत्पादन के करीब है। इसी प्रकार 2013-14 के उत्पादन की तुलना में वर्ष 2014-15 के दौरान दूध, अंडे और ऊन के उत्पादन में क्रमशः 6.25, 4.95 और 0.42 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

भारत में लगभग 100 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र से खाद्यान्न उत्पादन वर्ष 1950 में 60 मिलियन टन था तथा उत्पादकता बहुत ही कम (500-600 किलोग्राम/हेक्टेयर) थी। देश की आबादी के भरण पोषण हेतु हमें आवश्यक खाद्यान्न के लिए आयात पर निर्भर रहना पड़ता था।

हरित क्रांति से तत्कालीन उत्पादन 80 मिलियन टन होने से लगभग 25 प्रतिशत का उछाल आया और 1970 के दशक के प्रारंभ में अन्न उत्पादकता 800-900 किलोग्राम/हेक्टेयर हुआ। दूसरी ओर भारत की आबादी वर्ष 1951 में 36 करोड़ थी जो कि 1971 में बढ़कर 55 करोड़ हो गई। वर्ष 1970 के बाद खाद्यान्न फसलों के क्षेत्रफल में स्थिरता (120-125 मिलियन हेक्टेयर) आई। परंतु उत्पादन, 1970 के दशक के 100 मिलियन टन से बढ़कर वर्तमान दशक में 250 मिलियन टन हो गया है। प्रौद्योगिकी विकास, सिंचाई क्षमताओं के सृजन, प्रोत्साहन देने वाली सार्वजनिक नीतियों को इस चमत्कारिक वृद्धि का श्रेय दिया जा सकता है। देश का स्तर 'भीख का कटोरा' से हटकर अनेक प्रमुख फसलों के मामलों में उत्पादन और क्षेत्रफल के संदर्भ में विश्व के प्रथम एवं द्वितीय स्थान तक पहुंच गया है और देश ने खाद्यान्न उत्पादन में आत्म निर्भरता प्राप्त कर ली है एवं जनसंख्या की आवश्यकताओं के अनुसार अब देश भरपूर अनाज के स्टॉक का रख-रखाव करता है।

देश की आबादी वर्ष 1951 में 36 करोड़ से बढ़कर वर्ष 2011 में 121 करोड़ हो गई है। खाद्यान्न उत्पादन के साथ-साथ देश की आबादी में आई वृद्धि की तुलना के लिए प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उत्पादन पर विचार किया जाता है। भारत में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उत्पादन वर्ष 1950-51 के 141 किलोग्राम प्रति वर्ष से बढ़कर वर्ष 2010-11 में 202 किलोग्राम प्रति वर्ष हो गया है। भारत में खाद्यान्न उत्पादन अधिकांशतः मानसून पर निर्भर है। हाल के रूझानों से दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के वर्षपात की अस्थिरता में लचीलेपन के संकेत मिलते हैं।

भविष्य में खाद्यान्न की मांग

घरेलू स्तर पर उपभोक्ता पद्धतियों की दीर्घकालिक प्रवृत्तियां यह दर्शाती हैं कि प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपभोग घट रहा है और पशुधन उत्पाद, फल और सब्जियों की खपत लंबे समय से बढ़ रही है। इस बदलाव के बावजूद खाद्यान्न, परिवारों की खाद्य एवं पौषणिक सुरक्षा बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि अनाज एवं दलहन यहां का प्रमुख खाद्यान्न है और निम्न आय वर्ग की मानव आबादी हेतु ऊर्जा और प्रोटीन का सस्ता स्रोत भी है। इसके साथ ही साथ पशु उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण पशुधन खाद्यान्न की आवश्यकता भी बढ़ रही है। इनके उत्पादन के प्रति किसी प्रकार की उदासीनता से कीमतों में वृद्धि और आम जनता की पौषणिकता स्तर में गिरावट हो सकती है।

खाद्यान्नों के उपभोग का स्वरूप, जो पौषणिक अंतर्ग्रहण क्षमता में योगदान देता है, घट रहा हैं; आधार वर्ष 2000 में 64 प्रतिशत था, जो घटकर वर्ष 2025 एवं 2050 के दौरान क्रमशः 57 और 48 प्रतिशत हो जाएगा। गैर-खाद्यान्न फसलों का योगदान वर्ष 2000 में 28 प्रतिशत था जो 2025 और 2050 में बढ़कर क्रमशः 33 और 36 प्रतिशत होने का अनुमान है। अन्य पशु उत्पादों का योगदान वर्ष 2000 के दौरान 8 प्रतिशत था, जिसके 2025 एवं 2050 के दौरान बढ़कर क्रमशः 12 प्रतिशत एवं 16 प्रतिशत होने की संभावना है। इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए वर्ष 2025 में खाद्यान्नों की मांग 291 मिलियन टन और वर्ष 2050 में 377 मिलियन टन आंकी गई है जबकि वर्ष 2025 तक कुल उत्पादन 292 मिलियन टन और वर्ष 2050 तक 385 मिलियन टन आंका गया है जो कि मांग से 2 प्रतिशत अधिक है। अन्य अनाजों और दलहनों में कमी क्रमशः वर्ष 2025 में 33 और 3 प्रतिशत तथा वर्ष 2050 में 43 एवं 7 प्रतिशत आंकी गई है।

एक अन्य अध्ययन में यह देखा गया कि भारत में खाद्य उपभोग का स्तर वर्तमान दर 2400 किलो कैलरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन से बढ़कर वर्ष 2050 में 3000 किलो कैलरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन हो जाएगा। वर्षा आधारित फसलों की उपज बढ़कर वर्ष 2030 में 1.8 टन प्रति हेक्टेयर तथा वर्ष 2050 में 2.0 टन प्रति हेक्टेयर हो जाएगी। इसी अवधि के दौरान सिंचित क्षेत्रों से अनाज की उपज में 3.5 से 4.6 टन प्रति हेक्टेयर की बढ़ोतरी आंकी गई है। भारत में अनाज उत्पादन का आकलन इस प्रकार है कि वर्ष 1999-2000 से वर्ष 2050 के दौरान प्रतिवर्ष 0.9 प्रतिशत की वृद्धि होगी और आशा की जाती है कि आकलित वृद्धि 0.9 प्रतिशत होने के बावजूद वर्ष 2050 तक उत्पादन मांग से अधिक हो जाएगी। विभिन्न अध्ययनों पर आधारित खाद्यान्न मांग के आकलन संबंधी आंकड़े सारणी-1 में दर्शाए गए हैं।

सारणी-1 : देश में खाद्य मांग का आकलन (विभिन्न अध्ययनों के आधार पर)

अध्ययन का स्रोत	वर्ष	कुल (मिलियन टन)				खाद्यान्न (मिलियन टन)
		चावल	गेहूं	अनाज	दलहन	
बंसल (1996)	2020	-	-	-	-	241.4
कुमार (1998)	2020	134	127.3	309	-	-
परोदा एवं कुमार (2000)	2020	111.9	79.9	229	23.8	252.8
राधाकृष्ण एवं रेड्डी (2004)	2020	118.9	92.4	221.1	19.5	240.6
मित्तल (2008)	2021	96.8	64.3	245.1	42.5	287.6
	2026	102.1	65.9	277.2	57.7	334.9
कुमार एवं अन्य (2009)	2021.22	113.3	89.5	233.6	19.5	253.2
अमरसिंघे एवं सिंह (2009)	2025	109	91	273	18	291
	2050	117	102	356	21	377
सिंह (2013)	2020	106.7	85.7	220	23.2	243.2

स्रोत: श्रीनिवास राव एवं अन्य (2016)

वर्षा आधारित कृषि की भूमिका

विश्व की कृषि भूमि के 80 प्रतिशत भाग पर वर्षा आधारित कृषि की जाती है और इस क्षेत्र से विश्व के मुख्य खाद्य पदार्थों का लगभग 70 प्रतिशत उत्पादन होता है जिनमें विकासशील एवं कम इष्ट क्षेत्रों के समुदायों के खाद्यान्न सम्मिलित है। भारतीय कृषि में वर्षा आधारित कृषि की बहुलता है। 50 प्रतिशत से अधिक कृषि क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं है। वर्षा आधारित कृषि इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इन क्षेत्रों में भारत की 40 प्रतिशत आबादी निवास करती है। लगभग 72 प्रतिशत ग्रामीण आबादी में से इस क्षेत्र में 81 प्रतिशत ग्रामीण गरीब जनता बसती है। यह क्षेत्र वर्तमान समय में 40 प्रतिशत खाद्यान्न का उत्पादन करता है और दो तिहाई पशुधन को सहायता देता है। संपूर्ण सुविधाएं प्राप्त कर लेने के पश्चात भी भारत का 40 प्रतिशत बुवाई क्षेत्र वर्षा आधारित क्षेत्र के रूप में रह जाएगा। अर्थव्यवस्था में कृषि के योगदान के लिए वर्षा आधारित कृषि का निष्पादन महत्वपूर्ण है। वास्तव में वर्षा आधारित कृषि का महत्व वृद्धि, समान हिस्सेदारी और निरंतरता के कारण है। भारत क्षेत्रफल (73 मिलियन हेक्टेयर) और उत्पादन के मूल्य के संदर्भ में उन देशों में शीर्ष स्थान पर है जहां वर्षा आधारित कृषि की जाती है। भूमि और श्रमिकों की कम उत्पादकता के कारण वर्षा आधारित क्षेत्र में गरीबी अधिक होती है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों का वर्गीकरण एवं विशेषताएं

वह कृषि भूमि जहां बुवाई सिंचाई के बिना या भूजल सहित बहुत ही कम सिंचाई से की जाती है वह क्षेत्र वर्षा आधारित क्षेत्र कहलाता है। उच्च वर्षपात वाले वर्षा आधारित क्षेत्र (जैसे असम, मेघालय, केरल) में सिंचाई की आवश्यकता बहुत ही कम होती है। दूसरी ओर जहां वर्षपात कम होती है वहां नमी की कमी और उच्च क्षमता वाली वाष्पन-उत्सर्जन की मांग (पीईटी)अधिक होती है। इनके कारण वर्षा आधारित क्षेत्रों को उस क्षेत्र में मौजूद नमी के दबाव के आधार पर दो वर्गों अर्थात् वर्षा आधारित क्षेत्र और वर्षा आधारित आर्द्र क्षेत्र में बांटा गया है। उन क्षेत्रों को जहां अवक्षेपण पीईटी मांग से कम होता हो उन्हें नमी के दबाव वाले क्षेत्र या समानार्थक रूप में वर्षा आधारित क्षेत्र कहा जाता है और इसके विपरित को अतिरिक्त नमी वाला क्षेत्र माना जाता है।

थोंथ्रवेयट और माथेर (1955) द्वारा परिभाषित तथा कृष्णन (1992) द्वारा वार्षिक औसतों के उपयोग से सरलीकृत आर्द्रता सूचकांक (एमआई) के उपयोग से नमी के दबाव का आंकलन किया जा सकता है। नमी सूचकांक, जो वार्षिक अवक्षेपण तथा संभावित वाष्पन-उत्सर्जन के बीच के अंतर को मापते हैं, को सामान्यतः किसी भी प्रदेश की जलवायु के निर्धारण के लिए उपयोग में लाया जाता है। ग्रामीण विकास मंत्रालय (1994) ने नमी सूचकांक और सिंचाई स्तर के आधार पर सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम या मरूभूमि विकास कार्यक्रम के लिए पात्रता हेतु वैज्ञानिक मानदंड सुझाया है। यह मानदंड सारणी-2 में उद्धृत किया गया है।

सारणी-2 : सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम एवं मरूभूमि विकास कार्यक्रम में किसी भी जिले को पात्र बनाने हेतु उपयोग किए जाने वाले मानदंड

नमी सूचकांक	परितंत्र	सिंचित क्षेत्र का प्रतिशत	पात्रता
<-66.7	शुष्क	50 प्रतिशत तक	मरूभूमि विकास कार्यक्रम
- 66.6 से - 33.3	अर्ध-शुष्क	40 प्रतिशत तक	सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम
- 33.2 से 0	सूखा उप-नमी	30 प्रतिशत तक	सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम

जलवायुवीय वर्गीकरण (जलवायुवीय वर्गीकरण पर आधारित जलवायु संबंधी आंकड़े सेट) जिसमें एक जिले को एक युनिट माना गया है, औसत सिंचाई संबंधी आंकड़ों के उपयोग से सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम एवं मरूभूमि विकास कार्यक्रम में पात्रता हेतु जिलों का मूल्यांकन किया गया। उपरोक्त मानदंड़ों को अपनाया गया और सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम या मरूभूमि विकास कार्यक्रम के लिए पात्रता वाले जिलों को वर्षा आधारित जिलों के रूप में रेखांकित किया गया है (चित्र 1, 2 एवं 3)।

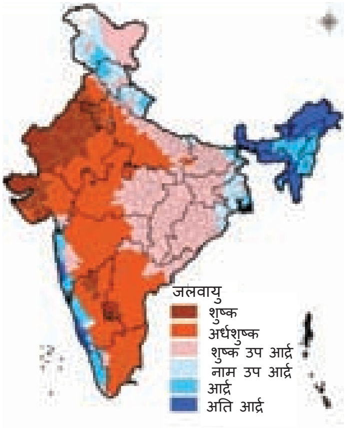

चित्र 1 : जिला स्तर पर जलवायु वर्गीकरण

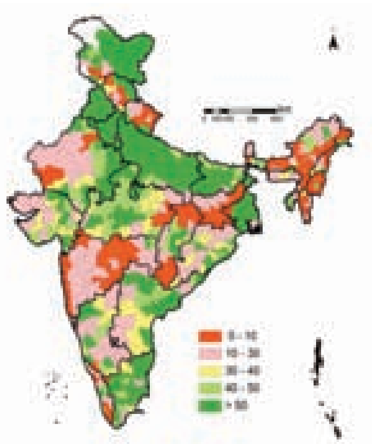

चित्र 2 : शुद्ध सिंचित क्षेत्र से शुद्ध बुवाई क्षेत्र का प्रतिशत

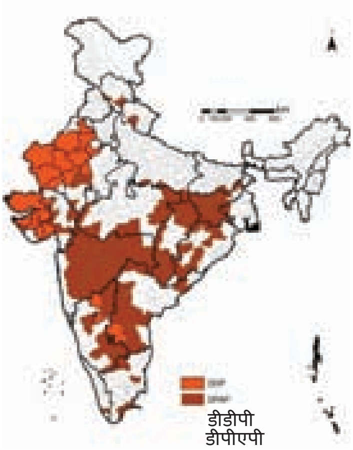

चित्र 3 : वर्षा आधारित कृषि जिले

वर्षा आधारित फसलें

भारत में मुख्य रूप से उगाए जाने वाली वर्षा आधारित फसलों में मोटे अनाज, दलहन, तिलहन एवं कपास सम्मिलित हैं। बोए गए कुल क्षेत्र तथा कुछ प्रमुख वर्षा आधारित फसलों के अंतर्गत वर्षा आधारित क्षेत्र का विवरण 'सारणी 3' में दर्शाया गया है। यद्यपि वर्षा आधारित क्षेत्र में चावल की हिस्सेदारी (42 प्रतिशत), सापेक्ष रूप से मोटे अनाज (84 प्रतिशत), दलहन

(81 प्रतिशत) तथा तिलहन (72 प्रतिशत) से कम है परंतु अन्य फसल समूहों से समग्र रूप से (18 मिलियिन हेक्टेयर) तुलना के योग्य है। सभी फसलों में से सोयाबीन की फसल के अंतर्गत वर्षा आधारित क्षेत्र का अधिकतम भाग है और समग्र रूप से देखा जाए तो चावल के बाद 10.85 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र के साथ दूसरे स्थान पर है। इसके बाद तीसरे स्थान पर 66% हिस्सेदारी के साथ कपास आता है जिसके अंतर्गत 8.49 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र आता है।

सारणी-3 : 2012-13 के दौरान महत्वपूर्ण वर्षा आधारित फसलों के अंतर्गत बोया गया क्षेत्र और वर्षा आधारित क्षेत्र का प्रतिशत

फसल	बोया गया क्षेत्र (मिलियन हेक्टेयर)	वर्षा आधारित क्षेत्र का प्रतिशत
चावल	42.75	42
मोटे अनाज	24.76	84
ज्वार	6.21	90
बाजरा	7.3	91
मक्का	8.67	75
दलहन	23.26	81
अरहर	3.89	96
चना	8.52	64
तिलहन	26.48	72
मूंगफली	4.72	74
सोयाबीन	10.84	99
सूर्यमुखी	0.83	70
कपास	11.98	66

स्रोत: कृषि सहकारिता एवं परिवार कल्याण विभाग, 2016

खाद्य सुरक्षा में वर्षा आधारित फसलों का योगदान

वर्ष 2014-15 के दौरान महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसलों के अंतर्गत बोए गए क्षेत्र, उत्पादन और उत्पादकता को सारणी 4 में दर्शाया गया है। मोटे अनाज और दलहन जिन्हें वर्षा आधारित फसलों के रूप में प्रमुखता से उगाया गया, उनसे 60 मिलियन टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ है। अत: वर्षा आधारित कम उपजाऊ क्षेत्र का पौषणिकता वाले खाद्यान्नों को उपलब्ध कराने में विशेष योगदान है। किसानों के स्तर पर उच्च भू-भाग पर बोये जाने वाले चावल की उपज स्तर 1.2 (लाल मृदाएं) से 1.8 टन (जलोढ़) के बीच है। यदि हम वर्षा आधारित क्षेत्र की चावल उत्पादकता 1.5 टन प्रति हेक्टेयर माने, तो 18 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र से 28 मिलियन टन चावल उत्पादन आंका जा सकता है।

सारणी-4 : वर्ष 2014-15 के दौरान महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसलों के लिए बोया गया क्षेत्र, उत्पादन और उत्पादकता

फसल	बोया गया क्षेत्र (मिलियन हेक्टेयर)	उत्पादन (मिलियन टन)	उत्पादकता (किलोग्राम/हेक्टेयर)
चावल	44	105	2391
मोटे अनाज	25	43	1703
ज्वार	6	5	884
बाजरा	7	9	1255
मक्का	9	24	2632
दलहन	24	17	728
अरहर	4	3	729
चना	8	7	889

वर्षा आधारित बागवानी

भारत में कृषि के सकल घरेलू उत्पाद में 30 प्रतिशत कृषि भूमि में से बागवानी का 13 प्रतिशत का योगदान है। इससे कृषि उत्पादों के कुल निर्यात में लगभग 37 प्रतिशत का योगदान है। हालांकि, बागवानी में मुख्यतः गहन सिंचाई होती है परंतु कुछ फलों के मजबूत पेड़ जैसे आम, सपोटा (चीकू), आमला, शरीफा अधिकांशतः वर्षा आधारित स्थितियों में ही उगाए जाते हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जब वार्षिक फसल नष्ट हो जाती हैं तो बागवानी व अन्य वृक्षों की उपज से किसानों को कुछ आय प्राप्त होती है। ग्रीष्म काल के दौरान खेतों की सीमाओं और खेतों के बंधों पर खेत वानिकी से हरा चारा उगाया जाता है। सूखे के दौरान वर्षा आधारित बागवानी, खेतों से होने वाली कृषकों की आय को स्थिरता प्रदान करती है। सीमांत भूमि पर विभिन्न वैकल्पिक भूमि उपयोग पद्धतियां जैसे कृषि वानिकी-घास वर्षा आधारित बागवानी तथा वृक्षारोपण प्रणालियां विकसित की गई हैं।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में पशुधन

वर्षा आधारित क्षेत्रों में ग्रामीण आजीविका के लिए पशुधन उत्पादन एक मुख्य घटक है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में लगभग 78 प्रतिशत मवेशियों, 64 प्रतिशत भेड़ तथा 75 प्रतिशत बकरियों का शरण स्थल है एवं देश के मांस बाजार के अधिकांश भाग की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। विभिन्न आकलनों से यह पता चलता है कि कृषि सकल घरेलू उत्पादन में पशुधन पालन से प्राप्त होने वाली आय 70 प्रतिशत शुष्क क्षेत्रों से तथा 30 प्रतिशत अर्ध शुष्क क्षेत्रों से होती है। यह कुल पशुधन समष्टि का 55 प्रतिशत तक है तथा वर्ष 2003 के दौरान इसका आकलन 350 मिलियन के रूप में किया गया है। ग्रामीण परिवारों को अपनी 20 प्रतिशत वार्षिक आय पशुधन से ही प्राप्त होती है। इसके साथ ही साथ जिन किसान परिवारों के पास स्वयं की एक हेक्टेयर तक भूमि उपलब्ध है, उनकी आय 30 प्रतिशत तक हो जाती है।

चुनौतियां एवं अवसर

चुनौतियां

वर्षा आधारित कृषि सहज रूप से मानसून पर निर्भर है अर्थात् जहां वर्षा आधारित कृषि मुख्य रूप से अपनाई जाती है वहां निर्धनता तथा विकास कम पाया गया है जिससे वहां के लोग किसी भी बाहरी या पर्यावरणीय झटकों से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। कमजोर मृदाएं और निम्न वर्षपात, फसल उगाए जाने की अवधि तथा फसलों के विकल्पों को सीमित कर देती है। निरंतर सूखा एवं बाढ़, संभावित उपज प्राप्ति और पूंजी लागत हासिल करने पर खतरा बन जाता है। तीव्र जलवायुवीय घटनाएं जैसे शीत एवं ताप लहरें, विशेषकर हाल के दशकों में और रोग एवं कीटों का प्रकोप आदि उत्पादकता को सीमित करने वाले अन्य कारक हैं। भविष्य में प्राकृतिक संसाधनों की बढ़ती कमी, विशेषकर गैर कृषि कार्यों के लिए बढ़ती प्रतिस्पर्धा के कारण जल की कमी, बदलता मौसम सीमित करने वाले कारक प्रमाणित होंगे। वर्षा आधारित कृषि में खेतों के छोटे आमाप के परिणामस्वरूप बेचने योग्य उत्पादों की कमी, वर्षा आधारित फसलों जैसे मोटे अनाज की घटती मांग, अपर्याप्त सार्वजनिक पूंजी निवेश तथा अपर्याप्त नीति एवं संस्थागत सहायता गंभीर समस्याएं हैं। वर्षा आधारित कृषि के निष्पादन में सुधार के लिए इनका समाधान आवश्यक है। इनपुट मूल्य निर्धारण, ऋण एवं खाद्यान्न की सरकारी खरीद एवं वितरण संबंधी नीतियों से भी वर्षा आधारित फसलों की लाभप्रदता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, विशेषकर मोटे अनाजों पर। इन सभी कारकों से एक ऐसी स्थिति बन गई है जहां प्रौद्योगिकी अपनाने में निवेश अनुकूल नहीं रहा है।

जलवायु

वर्षा आधारित कृषि प्रणालियां प्रबल जलवायु विरोधाभास वाले क्षेत्रों में अपनाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, दक्षिणी तमिलनाडु में उष्ण कटिबंधीय तापमान होता है और यहां वर्षपात का मुख्य स्रोत उत्तर-पूर्वी मानसून है, जबकि उत्तर-पश्चिमी भारत के पंजाब और हरियाणा राज्यों में महाद्वीपीय जलवायु, ग्रीष्मकाल के दौरान अत्यधिक तापमान 45 से 50 डिग्री सेंटीग्रेड तक तथा शीतकाल में जमा देने वाली ठंड पड़ती है। उत्तर पश्चिमी भारत में वर्षा आधारित कृषि दक्षिण पश्चिमी मानसून के वर्षपात के अंतर्गत की जाती है। इस प्रकार वर्षा आधारित खेती की जलवायु की श्रेणी शुष्क, अर्धशुष्क से उपार्द्र होती है और औसत वार्षिक वर्षपात 412 से 1378 मिलीमीटर के बीच होती है। उगाए जाने की अवधि शुष्क क्षेत्र में 60 से 90 दिन तथा उप आर्द्र प्रदेश में 180-210 दिन तक होती है। वर्षपात के वितरण के संदर्भ में 15 मिलियन हेक्टेयर में वार्षिक वर्षपात 500 मिलीमीटर से कम, 15 मिलियन हेक्टेयर में 500-750 मिलीमीटर, 42 मिलियन हेक्टेयर में 750-1150 मिलीमीटर तथा 25 मिलियन हेक्टेयर में 1150 मिलीमीटर होती है। भारत के जलवायु परिवर्तन इतिहास में देखा जा सकता है कि 1970 की अवधि के पश्चात औसत तापमान में बढ़ोतरी हो रही है। आगे निकट भविष्य (2021-2050) तथा शताब्दी के अंत तक (2071-2098) अधिकतम और न्यूनतम तापमान में वृद्धि होगी।

भारत में वर्षा आधारित क्षेत्रों में प्रायः सूखा पड़ना आम घटना है। भारत के दीर्घकालिक आंकड़ों से ज्ञात होता है कि वर्षा आधारित क्षेत्र में प्रत्येक दशक में 3-4 सूखे वर्ष होते हैं। इनमें

से, दो से तीन सामान्य होते है जबकि एक या दो बार तीव्र सूखे की स्थिति होती है। सूखे की घटनाएं उपप्रखंडों जैसे पश्चिमी राजस्थान, तमिलनाडु, जम्मू एवं कश्मीर, आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाना क्षेत्र में निरंतर होती हैं। सूखे की तीव्रता या सूखे की अवधि बढ़ने से खाद्य उत्पादन में भारी कमी आती है। सूखे के कारण फसलों की क्षति का पैमाना इसके भौगोलिक प्रकोप, तीव्रता और अवधि पर निर्भर होता है। सूखा न केवल खेत स्तर पर खाद्य उत्पादन को प्रभावित करता है बल्कि यह समग्र खाद्य सुरक्षा एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित करता है। खरीफ ऋतु के दौरान देश का उत्पादन वर्षपात से अत्यधिक प्रभावित एवं जून-सितंबर में (दक्षिणी पश्चिमी मानसून) प्राप्त वर्षपात से सहसंबंधित है।

मृदा

काली मृदाओं को छोड़कर वर्षा आधारित क्षेत्रों की अधिकांश मृदाएं सामान्यतः दानेदार बनावट की होती हैं। अतः जल एवं पोषक तत्वों को रोक रखने की क्षमता इनमें कम होती है और इनमें उगाई गई फसलों में सूखे का दबाव और पोषक तत्वों की कमी होती है। मृदा जैविक पदार्थों की सांद्रणता निम्न स्तर की होने के कारण मृदा कण समुच्चय स्थिरता कम एवं अपरदन की गंभीर समस्या होती है। काली मृदाओं में चिकनी बनावट के कारण तथा लाल मृदाओं में ऊपरी परत बनने के कारण जल प्रवेश की दर कम होती है। कुछ काली मृदाओं, जो लवणों में समृद्ध होती हैं, को छोड़कर वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में निहित उर्वरता सामान्यतः कम होती है।

मृदा अवक्रमण

साठ के दशक की हरित क्रांति के बाद से राष्ट्रीय कृषि नीतियों का झुकाव उच्च उपज देने वाली किस्मों, रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के उपयोग से फसल की उपज को अधिकतम करने की ओर है। प्राकृतिक संसाधनों और वर्षा आधारित कृषि की ओर कम ध्यान दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का आधार, विशेषकर वर्षा आधारित क्षेत्रों में, बुरी तरह प्रभावित हुआ है। कुल अवक्रमित क्षेत्र का आकलन 120.7 मिलियन हेक्टेयर है जिसमें से 104.2 मिलियन हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि और 16.5 मिलियन हेक्टेयर खुली वनीय भूमि है। कुल अवक्रमित क्षेत्र का 73.3 मिलियन हेक्टेयर जल अपक्षरण, 12.4 मिलियन हेक्टेयर वातीय अपक्षरण, 5.4 मिलियन हेक्टेयर लवणीकरण तथा 5.1 मिलियन हेक्टेयर मृदा अम्लीकरण के कारण अवक्रमित हुआ है। उत्तर-पूर्वी पर्वतीय परितंत्रों तथा उत्तरी एवं मध्य भारत के कुछ भागों में तीव्र जल अपक्षरण जबकि उत्तर-पश्चिमी शुष्क प्रदेशों में वातीय अपक्षरण देखा गया है।

मृदा जैविक कार्बन का निम्न स्तर

उष्णकटिबंधीय क्षेत्र की मृदाओं में मृदा जैविक कार्बन की सांद्रणता कम होती है जो मृदा की निम्न उर्वरता और उत्पादकता का प्रमुख कारण है। वर्षा आधारित क्षेत्र में अत्यधिक अवक्रमण हुआ है और इनमें आक्सीकरण की उच्च दर तथा त्वरित अपक्षरण के कारण मृदा जैविक कार्बन की सांद्रणता कम होती है। इसके अतिरिक्त बायोमास इनपुट कम होना और उच्च वर्षपात के कारण सतही मृदा का त्वरित अपक्षरण अन्य कारण हैं जिनसे मृदा जैविक कार्बन की सांद्रणता कम हो जाती है। मृदा कार्बनिक पदार्थों की निम्न सांद्रणता के साथ कम इनपुट निम्न उत्पादन और उपज में बड़े अंतर के मुख्य कारण हैं।

बहुपोषक तत्वों की कमी

प्रायः असंतुलित तरीके से उर्वरकों के बढ़ते उपयोग के कारण मृदा की गुणवत्ता का अवक्रमण हो गया है और गहन वर्षा आधारित उत्पादन प्रणालियों में बहुपोषक तत्वों की कमी में ओर अधिक बढ़ोतरी हुई है। भारत की मृदाओं में न केवल नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटेशियम की कमी होती है बल्कि गौण पोषक तत्वों (सल्फर, कैलशियम, मैग्नीशियम) एवं सूक्ष्मपोषक तत्वों (बोरान, जिंक, कापर, मैंगनीज आदि) की भी कमी होती है।

तीन मौलिक पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाशियम) की कमी के अतिरिक्त अनेक राज्यों में बलुई सूक्ष्म पोषक तत्वों (जिंक और बोरॉन) तथा कुछ राज्यों में लोहा, मैंग्नीज तथा मोलीवडीनम की कमी सस्य उत्पादकता को कम कर देती है। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं मध्य प्रदेश के अनेक जिलों तथा गुजरात के जूनागढ़ जिले के किसानों के खेतों से प्राप्त मृदा विश्लेषण के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि सभी खेतों में मृदा जैविक कार्बन की कमी, उपलब्ध फास्फोरस निम्न से सामान्य स्तर पर परंतु निस्सारण योग्य पोटाशियम सामान्यत: पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। तथापि, सल्फर, बोरॉन और जिंक की व्यापक कमी है। वर्षा आधारित फसल प्रणालियों के अंतर्गत फसलें अपर्याप्त नमी की अपेक्षा पोषक तत्वों की कमी से अधिक प्रभावित हैं क्योंकि इनमें उर्वरकों का उपयोग कम होता है। गहन पालन प्रणाली के अंतर्गत मृदाओं में गौण पोषक तत्वों की कमी में काफी भिन्नता होती है, क्योंकि उर्वरकीकरण अंसतुलित है जिससे न्यूट्रिएंट बजट या न्यूट्रिएंट माइनिंग नकारात्मक होती है। वर्षा आधारित कृषि में सतत फसल प्रणाली के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी, विशेषकर जिंक और बोरान उभरते अवरोध हैं।

निम्न बाहरी निवेश

सिंचित फसलों की तुलना में वर्षा आधारित खेती में उत्पादन निवेशकों (उदाहरण के लिए उर्वरक, पूरक सिंचाई, अच्छी गुणवत्ता के बीज, कीटनाशक एवं शाकनाशक) का उपयोग कम होता है जिससे वर्षा आधारित फसलों की उपज कम होती है। देश के अनेक सुदूर प्रांतों के लगभग 30 प्रतिशत वर्षा आधारित किसान कोई रसायनिक उर्वरक या कीटनाशक का उपयोग नहीं करते हैं। अत: उपयोग किए गए उर्वरक पोषक तत्वों के प्रति फसल प्रतिक्रिया अनुपात तेजी से घट रहा है।

निम्न निवेश क्षमता

भारत में वर्षा आधारित कृषि में छोटे एवं सीमांत किसान अधिक हैं जिनकी गणना वर्ष 2010-11 के दौरान परिचालन योग्य भूखंडों का 85 प्रतिशत की गई है जो वर्ष 1960-61 में 62 प्रतिशत थी। इसी प्रकार छोटे एवं सीमांत किसानों द्वारा परिचालित भूमि क्षेत्र इसी अवधि के दौरान 19 से बढ़कर 45 प्रतिशत हो गया है। निवेश हेतु उप-सीमांत एवं सीमांत किसानों की निर्भरता मुख्यत: साहूकारों पर है।

निम्न स्तरीय विपणन प्रणाली

अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों का चित्रण निर्वाह अर्थव्यवस्था के रूप में है। परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात बचे हुए खेत उत्पादों को ही बेचा जाता है। अलग-अलग उत्पादन एकक

(परिवार) स्वतंत्र रूप से परिचालन करते हैं जिससे उत्पाद को एक साथ मिलाकर कुशल विपणन करने में कठिनाई होती है। अधिकांश गांवों की वर्तमान विपणन प्रणाली में अनेक अवरोध हैं। परंपरागत बाजार असंगठित, अविनियमित तथा अलाभकारी हैं। परंपरागत बाजारों में मध्यस्थों की भरमार है और अविश्वसनीय विपणन चैनलों से भरे हुए हैं।

अवसर

उपज में अंतर

हरित क्रांति के पश्चात पिछले कुछ दशकों से सिंचित प्रदेशों में उत्पादकता घट रही है और कुल उपज के स्तर पर एक ठहराव सा आ गया है। यदि पर्याप्त अनुसंधान एवं नीतिगत सहायता उपलब्ध कराई जाए तो वर्षा आधारित क्षेत्रों में भी उपज वृद्धि की भारी संभावनाएं हैं तथा इन क्षेत्रों में दूसरी हरित क्रांति के अवसर हैं। भारत में कृषि के अंतर्गत कुल भूमि के 50 प्रतिशत से भी अधिक वर्षा आधारित क्षेत्रों को देश की भावी खाद्य आवश्यकताओं में बड़ी हिस्सेदारी में योगदान देने की आवश्यकता है। चूंकि, वर्षा आधारित उत्पादन विभिन्न जलवायुवीय प्रदेशों में फैला हुआ है, अत: विविध फसलों को उगाने की संभावना मौजूद है जिससे वर्षा आधारित स्थितियों में कृषि उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है।

मृदा प्रबंधन

भारत में वर्षा आधारित कृषि में विपरीत जलवायु के विरुद्ध उत्पादकता और लचीलेपन में सुधार के लिए मृदा महत्वपूर्ण है। अत: न केवल फार्म एवं खेत की स्थिति एवं स्थलाकृति से जुड़े अवरोधों पर विचार करने के अलावा उन्नत मृदा प्रबंधन प्रणालियों के साथ उत्पादन उद्देश्य, फसलों का चयन, खेती की पद्धति आदि का संग्रहण स्तर पर भी विचार किया जाना चाहिए।

मृदा गुणवत्ता पुनरूद्धार

सिफारिश की गई प्रबंधन पद्धतियों को अपनाकर मृदा की गुणवत्ता को पुनःस्थापित किया जा सकता है। वर्षा आधारित कृषि में सिफारिश की गई मुख्य प्रबंधन पद्धतियां निम्नलिखित हैं :-

- बड़े ढेले बनने से रोकने तथा मृदा की जुताई में सुधार के लिए अनुकूलतम नमी मात्रा के दौरान जुताई;
- गौण जुताई को कम करना एवं शून्य जुताई या मेड़ जुताई प्रणाली को अपनाना तथा मृदा सतह पर फसल अवशेषों का पलवारीकरण;
- फसल चक्रण को अपनाना जिसमें अनाज तथा फलीदार फसलें सम्मिलित हैं;
- फसल चक्रण में सतह आच्छादित को सम्मिलित करना;
- मृदा जैविक अंश की वृद्धि के लिए जैविक खाद का उपयोग करना; तथा
- बीजांकुर एवं पौध संख्या को बढ़ाने के लिए सतही पपड़ी को तोड़ने हेतु हल्के कृषि यंत्रों का प्रयोग करना।

मृदा के प्रकार तथा अन्य स्थान विशेष कारकों के अनुसार सिफारिश की गई प्रबंधन पद्धतियों के चयन में भिन्नता होती है। वर्षा आधारित स्थितियों के अंतर्गत मृदा गुणवत्ता में सुधार करने की मुख्य रणनीति मृदा जैविक पदार्थों की सांद्रणता को पुनःस्थापित करना है। मृदा के जैविक, रासायनिक एवं भौतिक गुणों तथा संबंधित फसल उत्पादन प्रक्रियाओं में वृद्धि के लिए सामरिक रूप से विभिन्न पद्धतियों के मिश्रण का लक्ष्य है। मृदा गुणवत्ता की पुनःस्थापना हेतु प्रबंधन पद्धतियों में अपक्षरण पर नियंत्रण, पोषक तत्वों की कमी को दूर करना, समस्यायुक्त मृदाओं का पुनरुद्धार करना, भारी उपकरणों के यातायात को कम करके मृदा संघनन घटाना तथा समेकित पोषण प्रबंधन का उपयोग करना इत्यादि शामिल है।

जल संचयन एवं प्रबंधन

शुष्क तथा अर्द्धशुष्क प्रदेशों में वर्षा जल प्रबंधन की रणनीति में मुख्यत: अल्पावधि तथा कम जल आवश्यकता वाली फसलों का चयन करते हुए अधिक से अधिक वर्षा जल संरक्षण करना चाहिए ताकि फसलों के उगने की अवधि के दौरान नमी दबाव से बचा जा सके। स्वस्थानीय संरक्षण के अलावा अधिशेष जल को भंडारण संरचनाओं तक पहुंचाने का प्रयास किया जाना चाहिए जिसे महत्वपूर्ण सिंचाई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एकल स्रोत या भौमजल के साथ उपयोग किया जा सके। विभिन्न पद्धतियों द्वारा जल की उपलब्धता को बढ़ाने के अलावा जल उपयोग से संबंधित क्षति को रोककर तथा संचित जल की प्रत्येक बूंद का प्रभावी उपयोग कर जल उपयोग क्षमता को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

उपलब्ध प्रौद्योगिकियां

वर्षा आधारित फसलों की उत्पादकता तथा लाभप्रदता में वृद्धि के संदर्भ में राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली ने वर्षों से अनेक प्रौद्योगिकियों का विकास किया है जिनके आशाजनक परिणाम निकले हैं। प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन पर ध्यान देने वाली इस प्रकार की प्रौद्योगिकियों की सूचनात्मक सूची सारणी-5 में दर्शाई गई है। अनेक प्रौद्योगिकियों को अपनाने की धीमी गति मुख्यत: निम्न स्तर की विस्तार सेवाएं, समय पर निवेशों की अनुपलब्धता तथा कुछ प्रौद्योगिकियों में अत्यधिक मजदूरों की आवश्यकता आदि मुख्य कारण हैं। 'मनरेगा' के कार्यान्वयन से इस अवरोध को पार कर पाने तथा इन प्रौद्योगिकियों को अपनाने की बड़ी संभावनाएं हैं।

सारणी-5 : वृहत स्तर पर अपनाने योग्य प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन प्रणालियां

प्रौद्योगिकी	लक्षित क्षेत्र	लाभ लागत अनुपात	अपनाए जाने का प्रतिशत
अरहर और चावल की कुंड नाली बिजाई	पूर्वी उत्तर प्रदेश	1.5	25
कंपार्टमेंटल बंडिंग	उत्तर कर्नाटक	2.13	10
काली मृदाओं में बलीराम हल के उपयोग से कुंड नाली बिजाई	महाराष्ट्र का सोलापुर क्षेत्र	1.76	60

प्रौद्योगिकी	लक्षित क्षेत्र	लाभ लागत अनुपात	अपनाए जाने का प्रतिशत
काली मृदाओं में चौड़ी क्यारियां तथा कुंड नाली बिजाई	मध्य प्रदेश का मालवा क्षेत्र	3.25	75
वर्षा आधारित फसलों के रोपण के लिए उन्नत रिड्जर सीडर	हरियाणा का पश्चिमी शुष्क क्षेत्र	बीज, समय की बचत तथा उपज वृद्धि	25
मूंगफली+अरहर की अंत:फसल (7:1)	आंध्र प्रदेश का रायलसीमा क्षेत्र	2500/- रुपए प्रति हेक्टेयर अधिक बचत	70
कपास+ज्वार+अरहर+ज्वार (6:1:2:1)	महाराष्ट्र का विदर्भ क्षेत्र	विभिन्न जरूरतों को पूरा करता है	10
सीढ़ीनुमा फसल प्रणाली	महाराष्ट्र का विदर्भ क्षेत्र	20 प्रतिशत मृदा क्षय को कम करना	निम्न
संचित वर्षा जल से सरसों फसल की पूरक सिंचाई	उत्तर प्रदेश का आगरा क्षेत्र	3.8	10-15
वर्षा जल संचयन के लिए खेतों में तालाब बनाना	तेलंगाना	2000/-रु. प्रति हेक्टे. अधिक आय	निम्न

इसके अतिरिक्त अनेक उन्नत किस्में जिनमें ज्वार (सीएसवी-17, सीएसएच-23, के-11 इत्यादि), सूर्यमुखी (केबीएसएच-42, 44, 53, डीआरएसएच-1, एलएसएफएच-35, पीएफएसएच -118), वर्षा आधारित धान (सीआर धान-40, शुष्क सम्राट, वीरेंद्र, एएयूडीआर-1, सल्मेश्वरी इत्यादि), अरंडी (डीसीएच-177, डीसीएच-519, जीसीएच-7, किरण) उपलब्ध हैं जो बेहतर गुण एवं वर्षा आधारित कृषि के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हैं। कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकियां भी हैं जिन्हें हस्तांतरित किया जा सकता है। इनमें प्रमुख रूप से मृदा उर्वरता प्रबंधन, रोपण कार्य का यंत्रीकरण, अंतरफसलीकरण व अंत:पालन एवं कटाई तथा समेकित कीट प्रबंधन आती हैं जो इनसे संबंधित हैं। इन प्रौद्योगिकियों की क्षमता प्राप्य योग्य उपज के अंतर में स्पष्ट परिलक्षित हुई है।

सरकार के चालू विकास कार्यक्रमों से लाभ उठाना

चालू विकास कार्यक्रमों जैसे मनरेगा, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई), राष्ट्रीय बागवानी मिशन (एनएचएम) आदि से इन प्रौद्योगिकियों का बड़े पैमाने पर विस्तार करने के अवसर उपलब्ध हैं। प्रौद्योगिकियों को विकास करने वाले संस्थानों तथा समुदायों से निकटता रखने वाले संस्थानों के पास विकास की नई पहलों के अभिसरण से प्राप्त सफल गाथाएं भी हैं। उदाहरण के लिए, खेतों के तालाबों में निवेश से बाज़ार उन्मुख फ़सलों के पक्ष में फसल पद्धति में परिवर्तन के साथ-साथ फसल उपज में वृद्धि से अच्छी आय देखी गई है। इसी प्रकार भौमजल के औचित्यपूर्ण एवं कुशल उपयोग की व्यापक संभावनाएं हैं।

फ्रांटियर विज्ञान की क्षमता

वर्षा आधारित कृषि में फ्रांटियर विज्ञान जैसे जैव प्रौद्योगिकी, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, नैनो टेक्नोलॉजी, मॉडलिंग, जियो स्पेशियल टेक्नोलॉजी के अनुप्रयोग की अपार संभावनाएं हैं। उदाहरण के लिए जैव प्रौद्योगिकी में हुई प्रगति से सूखा, गर्मी, कीट आदि के प्रति सहिष्णुता वाली फसल किस्मों के विकास हेतु उपलब्ध जननद्रव्य के प्रभावकारी उपयोग में सहायता मिलेगी। इसी प्रकार सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के विकास से किसानों को फसल प्रबंधन संबंधी सूचनाएं प्राप्त होगी और वे दूर-दराज के बाजारों से संपर्क में आ जाएंगे। नैनो टेक्नोलॉजी आधारित उत्पादों के विकास से मृदा में नमी के रखरखाव और बीजों का सुदृढ़ीकरण किया जा सकता है।

वर्षा आधारित कृषि पर सरकारी पहल का प्रभाव

एकीकृत वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम

निरंतर सूखा झेलने वाले वर्षा आधारित क्षेत्रों की समस्याओं के समाधान के लिए वर्ष 1973-74 में सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम प्रारंभ किया गया था। कार्यक्रम का मौलिक उद्देश्य फसल एवं पशुधन उत्पादन पर सूखे के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने तथा प्राकृतिक संसाधनों, जैसे भूमि एवं जल में सुधार, से सूखा प्रभावित क्षेत्र में सुधार करना था। वर्ष 1977-78 में एक अन्य विशेष कार्यक्रम नामत: मरूभूमि विकास कार्यक्रम देश के शुष्क प्रदेशों में प्रारंभ किया गया था। कार्यक्रम की परिकल्पना के अंतर्गत भूमि, जल, पशुधन एवं मानव संसाधनों के संरक्षण, विकास एवं संपोषण द्वारा पारिस्थितिक संतुलन को पुनःस्थापित करने हेतु दीर्घकालिक उपाय हैं। वर्ष 1989 में राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड के संरक्षण में समेकित वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम आरंभ किया गया था जिसका उद्देश्य वाटरशेड के आधार पर बंजर भूमि का विकास करना है। इन सभी कार्यक्रमों को वर्ष 2008 में एक गहन कार्यक्रम चलाते हुए इंटीग्रेटेड वाटरशेड प्रोग्राम के तहत लाया गया और इसका कार्यान्वयन वाटरशेड डेवलेपमेंट कामन गाइडलाइंस, 2008 के अनुसार किया गया। संशोधित दिशा-निर्देशों के अनुसार इंटीग्रेटेड वाटरशेड प्रोग्राम में प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन तथा वर्षा आधारित फसल उत्पादन में स्थिरता लाने की अपार संभावनाएं हैं। इस योजना के अंतर्गत 5000 हेक्टेयर तक के वाटरशेड क्षेत्र में रिज़-टू-वेली एप्रोच के बेहतर समावेश तथा जल संरक्षण से आगे बढ़कर वाटरशेड क्षेत्र के लोगों को सम्मिलित कर कार्य किया जाएगा।

वर्षा आधारित क्षेत्र विकास कार्यक्रम

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना की उप-योजना वर्षा आधारित क्षेत्र विकास कार्यक्रम को कार्यान्वित किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य उपयुक्त अनुपालन प्रणाली आधारित दृष्टिकोण को अपनाकर वर्षा आधारित क्षेत्रों में सतत रूप से कृषि उत्पादकता को बढ़ाना है (डीएसी, 2011)। जिन जिलों में सिंचाई के अंतर्गत 60 प्रतिशत से कम कृषि जोत भूमि है तथा शुष्क (31), अर्द्धशुष्क (133) तथा उपार्द्र (175) क्षेत्र के कृषि परितंत्रों की पहचान की गई है, उन्हें वर्षा आधारित क्षेत्र विकास कार्यक्रम में प्राथमिकता दी गई है। केरल एवं उत्तर-पूर्वी राज्यों के पिछड़े जिलों (85) में जहां आर्द्र कृषि परितंत्र हैं परंतु सिंचाई के अंतर्गत 30 प्रतिशत से भी कम कृषि

जोत भूमि है वहां भी इस कार्यक्रम को लागू किया गया। वर्षा आधारित किसान इस कार्यक्रम से लाभ उठा सकते हैं।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना

भारत सरकार ने जल संरक्षण और इसके प्रबंधन को उच्च प्राथमिकता दी है। इसके लिए सिंचाई कार्य को विस्तार देने हेतु प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना को सूत्रबद्ध किया गया। मिशन की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए '**हर खेत को पानी**' तथा '**प्रति बूंद अधिक फसल**' का नारा दिया गया। माननीय प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में आर्थिक मामलों की कैबिनेट समिति ने प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना को 01 जुलाई, 2015 को स्वीकृति प्रदान की। जल संसाधन मंत्रालय का सिंचाई का त्वरित लाभ कार्यक्रम तथा गंगा पुनर्त्थान, भूसंसाधन विभाग का समेकित वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम तथा कृषि एवं सहकारिता विभाग का खेत पर जल प्रबंधन (आन फार्म वाटर मैनेजमेंट) को मिलाकर प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना बनाई गई। इस योजना को पूरे देश में लागू करने हेतु 5 वर्षों के लिए 50 हजार करोड़ रुपए का आबंटन किया गया। इस योजना से वर्षा आधारित प्रदेशों को अत्यधिक लाभ होगा।

मनरेगा

मनरेगा के अंतर्गत किए जाने वाले सभी भूमि एवं जल संरक्षण कार्यों से सूखापन कम करने में अप्रत्यक्ष सहायता मिलेगी। इस योजना के अंतर्गत 60 प्रतिशत से अधिक कार्य भूमि एवं जल संरक्षण से संबंधित है। इन कार्यों की योजना को भूमि एवं जल संसाधनों में सुधार करने हेतु बनाया जाना चाहिए जिससे कि वर्षा आधारित कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सके। एक महत्वपूर्ण चुनौती यह है कि ग्रामीण स्तर पर प्रशिक्षित श्रम शक्ति का उपलब्ध होना बहुत जरूरी है जिससे कि संबंधित कार्यों की पहचान करके इस कार्यक्रम को वार्षिक कार्य योजना में सम्मिलित करते हुए संबंधित वैज्ञानिक इसका निष्पादन कर सकें।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना

भारत सरकार ने **'एक राष्ट्र - एक योजना'** के तहत वर्ष 2016 में एक नई फसल बीमा योजना प्रारंभ की। इस योजना में पूर्व की सभी योजनाओं की अच्छी विशेषताओं को सम्मिलित किया गया तथा पूर्व की कमियों को दूर किया गया। इसके अंतर्गत किसानों द्वारा खरीफ फसल के दौरान 2 प्रतिशत तथा रबी फसल के दौरान 1.5 प्रतिशत का समान प्रीमियम अदा करना होगा। वार्षिक वाणिज्यिक एवं बागवानी फसलों के मामलों में किसानों द्वारा केवल 5 प्रतिशत का प्रीमियम अदा करना होगा। किसानों द्वारा भुगतान किया जाने वाला प्रीमियम काफी कम है और शेष प्रीमियम सरकार द्वारा भुगतान किया जाएगा ताकि प्राकृतिक आपदाओं के कारण फसल क्षति होने पर किसान को बीमा की संपूर्ण राशि प्राप्त हो सके। सरकारी अनुदान की कोई अधिकतम सीमा नहीं है। पूर्व में प्रीमियम दर में कैपिंग का प्रावधान था जिसके कारण किसानों को कम दावे दिए जाते थे। यह योजना जोखिम प्रबंधन रणनीति के रूप में किसानों के लिए लाभदायक सिद्ध होगी, विशेषकर वर्षा आधारित किसानों को, जिनमें निवेश क्षमता कम होती है।

राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन

जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना के अंतर्गत 8 मिशनों में से राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन एक है। राष्ट्रीय मिशन में वर्षा आधारित कृषि और जोखिम प्रबंधन प्रमुख है। अत: इस योजना के अंतर्गत नवोन्मेषी एवं अर्थपूर्ण परियोजनाओं के सूत्रण के लिए उपलब्ध संसाधनों को दिशा देना एक चुनौती है।

जलवायु अनुकूल कृषि में राष्ट्रीय नवाचार (निक्रा)

खाद्य एवं जीविका सुरक्षा को सुनिश्चित करने में जलवायु में बढ़ती परिवर्तनशीलता एक वैश्विक चुनौती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने इस चुनौती को स्वीकार करते हुए 11वीं योजना में जलवायु अनुकूल कृषि पर राष्ट्रीय पहल प्रारंभ की। प्रथम चरण के कार्यक्रम का मुख्य ध्येय सामरिक अनुसंधान के लिए मौलिक सुविधाओं का विकास, जलवायु परिवर्तनशीलता से निपटने के लिए किसानों के खेतों में उत्तम पद्धतियों का निरूपण, प्रायोजित एवं प्रतिस्पर्धात्मक अनुदान अनुसंधान तथा क्षमता निर्माण है। 12वीं योजना के अंतर्गत जलवायु अनुकूल कृषि में राष्ट्रीय नवाचार (निक्रा) के रूप में कार्यान्वित किया जा रहा है।

जलवायु परिवर्तनशीलता एवं बदलती जलवायु को अपनाने के लिए प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, फसलों, कीट एवं रोग उत्पादन, पशुधन, मात्स्यिकी एवं ऊर्जा दक्षता के क्षेत्र में दीर्घकालिक सामरिक अनुसंधान अपरिहार्य है। विभिन्न उत्पादों को अपनाने एवं समाधान के लिए निक्रा के अंतर्गत अनेक संकेद्रित कार्यक्रमों को अपनाया गया है। जलवायु परिवर्तन के प्रति भारतीय कृषि की संवेदनशीलता का विस्तृत मूल्यांकन देश के समस्त ग्रामीण जिलों को सम्मिलित कर जिला स्तर पर किया गया। सापेक्ष रूप से अधिक या अत्यधिक संवेदनशील जिलों की पहचान की गई। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के 40 संस्थानों में सामरिक अनुसंधान कार्य किया जा रहा है। सिंचित फसलों, वर्षा आधारित फसलों, बागवानी, पशुधन, मात्स्यिकी एवं ऊर्जा दक्षता पर जलवायु परिवर्तन से संबंधित अनुसंधान, उन्नत मौलिक सुविधाएं एवं अत्याधुनिक उपकरणों की स्थापना की जा रही है। उत्तर-पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र के लिए भाकृअनुप का अनुसंधान परिसर उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के सभी पहलुओं के समाधान पर अनुसंधान कर रहा है।

प्रौद्योगिकी निरूपण घटक के अंतर्गत उपलब्ध प्रौद्योगिकियों के आधार पर जलवायु परिवर्तन को फसल एवं पशुधन उत्पादन प्रणालियों में अपनाने एवं इसकी प्रबलता को कम करने के लिए प्रत्येक चयनित जिले की एक ग्राम पंचायत में प्रमाणित प्रौद्योगिकियों के समेकित पैकेज का निरूपण किया जाएगा। इसे 8 केंद्रों के अंतर्गत 121 कृषि विज्ञान केंद्रों, वर्षा आधारित कृषि के 23 एआईसीआरपी-सह-प्रचालन केंद्रों तथा 7 प्रमुख संस्थानों के 7 प्रौद्योगिकी हस्तांतरण प्रभागों में किसान प्रतिभागिता दृष्टिकोण के माध्यम से कार्यान्वित किया जा रहा है। ये गांव जलवायु अनुकूल गांव सिद्ध हुए हैं और इन्होंने खेत उत्पादकता में स्थिरता तथा तीव्र जलवायुवीय घटनाओं, जैसे सूखा, तूफान, बाढ़, ओलावृष्टि, लू, पाला तथा समुद्री जलमग्नता आदि के कारण जीविका अर्जन में विविधता से घरेलू आय में स्थिरता प्राप्त की है। गांवों को जलवायु अनुकूल बनाने हेतु इसके जोखिमों से उभरने तथा प्रबंधन प्रक्रिया में निर्णय लेने हेतु व्यवस्था एवं समुदायों को सशक्त करने की आवश्यकता है।

जिलों में आकस्मिक कृषि योजनाएं

भारतीय कृषि में जलवायु की महत्वपूर्ण भूमिका है। किसानों को विशेषकर खरीफ ऋतु में सभी घटकों, जैसे निवेश, मजदूर एवं प्रौद्योगिकी के उपयोग से अनुकूलतम फसल उपज प्राप्त होने के लिए समय पर वर्षा होना एवं वर्षा का सही वितरण महत्वपूर्ण है। रबी मौसम में, विशेषकर गेहूं उत्पादन में तापमान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मानसून ऋतु के दौरान वर्षपात न केवल वर्षा आधारित फसलों की सफलता का निर्धारण करता है, बल्कि सिंचित कृषि के लिए जल उपलब्धता को प्रभावित करता है, चूंकि भारत की अधिकांश नदियां वर्षा जल से भरती हैं। सामान्य मानसून में किसी भी प्रकार के विचलन से फसलोत्पादन और पशुओं के लिए चारे की उपलब्धता इत्यादि प्रभावित होते हैं जिससे किसानों को भारी क्षति होती है। जब कभी दक्षिण-पश्चिमी मानसून में विपरीत स्थिति उत्पन्न होती है, जैसे कि वर्ष 2002, 2009, 2012, 2014 में हुई थी, तो खरीफ कृषि उत्पादन में भारी कमी आती है। कृषि पर संसदीय सलाहकार समिति द्वारा की गई सिफारिशों के अनुपालन में भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान तथा कृषि एवं सहकारिता विभाग ने मौसम की विपरीत स्थितियों, जैसे सूखा, असामयिक वर्षा, बाढ़, लू तथा ओलावृष्टि से जूझने तथा उत्पादकता क्षति को कम करने के लिए 623 जिलों के लिए कृषि की आकस्मिक योजनाएं बनाई। जिला स्तर की कृषि आकस्मिक योजनाओं की तैयारी के पश्चात सावधिक रूप से वर्तमान प्रौद्योगिकियों तथा जलवायुवीय स्थितियों के आधार पर इनका पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। ग्रामीण स्तर पर खेत, फसलों, बागवानी, पशुधन, कुक्कुटपालन तथा मात्स्यिकी क्षेत्र में जलवायु की विपरीत स्थिति में इन आकस्मिक योजनाओं का कार्यान्वयन एक बड़ी चुनौती है। सभी पणधारियों, जैसे केंद्रीय एवं राज्य सरकार की मशीनरी के साथ अच्छी तकनीकी सहायता, बीज एवं निवेश आपूर्ति एजेंसियां, ग्रामीण संस्थाओं आदि को वास्तविक स्थितियों के अंतर्गत आकस्मिक योजनाओं के कार्यान्वयन हेतु एकजुट होकर कार्य करना चाहिए ताकि किसानों के खेतों के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर की कृषि उत्पादकता को भी सततता प्राप्त हो सके। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों में सूखा, बाढ़, लू, शीतलहर आदि से निपटने के लिए जिलावार आकस्मिक योजनाएं तैयार की हैं।

रणनीतियां

किसानों द्वारा यदि प्रौद्योगिकियों को नहीं अपनाया जाता है, तो कृषि अनुसंधान में निवेश व्यर्थ हो जाता है, परंतु यदि इन निवेशों को बेहतर आर्थिक संपन्नता एवं कल्याणकारी बनाना है तो प्रौद्योगिकी विकास एवं नीतिगत पर्यावरण को अधिक प्रभावी एवं दायित्वपूर्ण बनाया जाना जरूरी है। निम्नलिखित कुछ ऐसे पहलु हैं जिन पर अनुसंधान प्रबंधन एवं नीति निर्माताओं को ध्यान देना आवश्यक है :-

- फसल की उन्नत किस्मों का प्रजनन (जिनमें उच्च उपज, जल की कमी तथा बाढ़, कीट एवं रोग प्रतिरोधिता हो) परंपरागत एवं आधुनिक प्रजनन तकनीकों की सहायता से पूरा किया जा सकता है। अब समय आ गया है कि जैव प्रौद्योगिकीय उपायों की क्षमता से लाभ उठाया जाए। इसके अलावा हमें फसलों की ऐसी किस्मों की आवश्यकता है जो उगने की लंबी अवधि के दौरान जलवायु के संभावित परिवर्तनों को सह सके।

- वर्षा जल के संचयन एवं उपयोग के क्षेत्र में और अधिक अनुसंधान किया जाए। जलवायु परिवर्तन न होने पर भी वर्षा जल का संचयन एवं उपयोग आवश्यक है। यदि जलवायु परिवर्तन से संभावित प्रभाव पर विचार किया जाए तो मामला और भी जटिल हो जाता है। किसी भी एक ऋतु में सूखे की लंबी अवधि और भारी वर्षपात के लिए तैयार रहना आवश्यक है। इसका अर्थ है हमें जल भंडारण हेतु बड़ी संरचनाओं के साथ-साथ छोटी संरचनाओं की योजना तैयार करनी चाहिए ताकि वर्षा जल को एकत्रित कर बाद में उपयोग किया जा सके।
- वर्षा आधारित कृषि में जल प्रबंधन के लिए नदी बेसिन में जल स्रोत की योजना का वर्तमान ध्येय उचित नहीं है, जो नदी बेसिन के नीचे वाले <5 हेक्टेयर से छोटे जलग्रहण क्षेत्र में बड़े पैमाने पर होते हैं। अत: जल का प्रबंधन जलग्रहण पैमाने (या नदी बेसिन के छोटी उपनदी स्तर पर) पर किया जाना चाहिए।
- वाटरशेड विकास कार्यक्रमों को अधिक प्रभावकारी एवं कुशल बनाने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता है, जिसमें लागत प्रभावी हस्तक्षेप, उचित प्रतिभागिता तथा सतत संसाधन प्रबंधन हो और साथ ही साथ परियोजना पूरी होने के पश्चात सततता सुनिश्चित हो।
- जल उठाने एवं पारगमन के लिए सौर ऊर्जा एवं पवन ऊर्जा पर अनुसंधान : जिस दर से जीवाश्म ईंधन की खपत और पर्यावरण प्रदूषण बढ़ रहा है इससे सौर एवं पवन ऊर्जा को बढ़ाना आवश्यक हो जाता है।
- मध्यम एवं लंबी श्रेणी के मौसम पूर्वानुमान पर अधिक अनुसंधान और इन सूचनाओं का समय पर प्रसार ताकि लघु एवं वृहत स्तर पर आकस्मिक योजनाओं को तैयार किया जा सके।
- हमारे पास ऐसी फसलों के विकास के लिए, जिनकी मांग हो परंतु जिन्हें कठोर स्थितियों और अनिश्चित पर्यावरण में उगाया जाना हो, प्रौद्योगिकियों के विकास हेतु सक्रिय नीतियां होनी चाहिए या कठोर स्थितियों में उगने वाली फसलों के लिए बाजार तैयार करना चाहिए।
- खाद्यान्न, चारा और बीज बैंक सुरक्षा तंत्र के विकास के साथ-साथ मौसम बीमा में निवेश करने संबंधी जोखिम प्रबंधन विकल्प भी उपलब्ध कराए जाने चाहिए।
- फसल प्रणालियों एवं उद्योगों में पशुधन को सम्मिलित कर विविधता लाई जानी चाहिए।
- किसानों को बाजारों से जोड़ने वाली संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण करना चाहिए ताकि छोटे किसान भी समूह के माध्यम से बेहतर मूल्य प्राप्त कर सकें।
- वर्षा आधारित क्षेत्रों में अत्यंत विविधता के कारण स्थान विशेष की प्रौद्योगिकियों एवं रणनीतियों के विकास के लिए और अधिक प्रयासों की आवश्यकता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि किसान प्रतिभागिता फ्रेमवर्क के अंतर्गत प्रौद्योगिकियों को अपनाए जाने तथा परिष्कृत करने को अधिक महत्व दिया जाए। वास्तव में वर्षा आधारित कृषि की व्यापक समस्याओं को लगभग पर्याप्त रूप से समझ लिया गया है, परंतु विभिन्न क्षेत्रों की स्थान विशेष संबंधी संवेदनशील समस्याओं की पहचान करने और इनके समाधान में ज्ञान अपर्याप्त

है। अनुसंधानकर्ताओं, अनुसंधान प्रबंधकों तथा विकास एजेंसियों के लिए यह एक बड़ी चुनौती बन सकती है।

- फसलों पर विपरीत जलवायु के प्रभाव को कम करने हेतु प्रभावकारी त्वरित चेतावनी प्रणाली को स्थापित किया जाना चाहिए। असामान्य मौसमीय घटनाओं के प्रति बेहतर तैयारी के प्रथम चरण में पूर्वानुमान क्षमताओं में सुधार करना महत्वपूर्ण है। इसके लिए जल विज्ञान तथा मौसम विज्ञान संबंधी आंकड़ों को समकालिक एवं समन्वित पद्धति से उत्पन्न करने हेतु निवेश की आवश्यकता है। चूंकि वर्तमान समय में आंकड़े एकत्रित करने का दायित्व विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों में बंटा हुआ है और उपलब्ध आंकड़ों की उपयोगिता भी सीमित है। मौसम/जलवायु पूर्वानुमान के लिए वैज्ञानिक क्षमता को सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए। इसी प्रकार यह भी महत्वपूर्ण है कि पूर्वानुमानों को सभी पणधारियों अर्थात् किसानों, सरकारी विभागों, वित्त एवं बीमा संस्थानों तक अधिक संबंधित, समझने योग्य एवं कार्रवाई योग्य रूप में पहुंचाया जाना चाहिए।

सारांश

देश की अर्थव्यवस्था, खाद्य सुरक्षा और वर्षा आधारित किसानों की जीविका में सुधार हेतु वर्षा आधारित कृषि के योगदान की वृद्धि के लिए प्रौद्योगिकियों, नीतियों तथा संस्थाओं के बीच सामंजस्य आवश्यक है। वर्षा आधारित प्रदेश की विविधता एवं विशालता की दृष्टि से निवेशों के लक्ष्य और प्राथमिकता इस लक्ष्य की ओर पहला कदम है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम एक अवसर के रूप में मौजूद है जिससे कि उन मोटे अनाजों की मांग में वृद्धि की जा सकती है जो अधिकांशत: वर्षा आधारित स्थितियों में उगाया जाता है। यह आवश्यक है कि पात्रता वाले लोगों की खाद्यान्न आवश्यकता पूर्ति में चावल एवं गेहूं के अतिरिक्त मोटे अनाजों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। मोटे अनाजों की लाभदायक खेती के लिए अनुकूलतम मूल्य एवं अधिप्राप्ति पर्यावरण के लिए मार्ग प्रशस्त होगा।

सूखे की तैयारी तथा वास्तविक समय पर खेत स्तर पर आकस्मिक योजनाओं के कार्यान्वयन हेतु किसानों के लिए सशक्त सरकारी नीतियों सहित सुसंगठित संस्थागत सहायता तथा विभिन्न संस्थाओं का अभिसरण आवश्यक है। कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार को सूखे से निपटने के लिए विभिन्न सरकारी योजनाओं, जैसे मनरेगा, आरकेवाईवी, मेगा सीड प्रोजेक्ट, एनएफएसएम, एनएचएम, आईडब्ल्यूएमपी, मृदा स्वास्थ्य योजना के बीच अभिसरण प्रक्रिया को व्यवस्थित करना चाहिए। जलवायु परिवर्तन के लिए प्रधानमंत्री राष्ट्रीय कार्ययोजना के अतंर्गत राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन को आकस्मिक योजनाओं के कार्यान्वयन का नेतृत्व करना चाहिए। इसके लिए राज्य कार्य योजना में इस गतिविधि को नोडल संस्थानों/अधिकारियों तथा बजट प्रावधानों के साथ सम्मिलित करना चाहिए। सरकारी नीतिगत कार्यक्रमों और योजनाओं में लचीलापन होना चाहिए तथा ये जमीनी स्तर पर निष्पादन योग्य होनी चाहिए ताकि प्रौद्योगिकियों को बेहतर रूप से अपनाया जा सके एवं इनका प्रभाव तुरंत देखा जा सके।

संदर्भ

अमरसिंघे यूए, शाह टी, आनंद बीके. (2007). इंडिया वाटर सप्लाई एंड डिमांड फ्राम 2025-2050 : बिजनिस एज यूजअल सिनेरियोज एंड इश्यूज. www.iwmi.cgiar.org/NRLP%20Proceeding-2%20 Paper%202.pdf

सीए (कंप्रेहेन्सिव असेस्मेंट). (2007). वाटर फार फुड, वाटर फार लाइफ : ए कंप्रेहेन्सिव असेस्मेंट आफ वाटर मैनेजमेंट इन एग्रीकल्चर. अर्थस्कैन, लोंडोनंद इंटरनेशनल वाटर मैनेजमेंच इंस्टिट्यूट, कोलंबो, श्रीलंका.

चांद आर. (2009). डिमांड फार फुड ग्रेन्स ड्यूरिंग दा 11 प्लान एंड टूवार्ड्स 2020. पालिसी ब्रिफ नं.28. नेशनल सेंटर फार एग्रीकल्चर इकोनामिक्स एंड पालिसी रिसर्च, नई दिल्ली, पीपी. 1-4.

डीएसी. (2011). गाइडलाइंस फार रेनफेड एरिया डिवलेपमेंट प्रोग्राम (आरएडीपी), डिपार्टमेंट आफ एग्रीकल्चर एंड कोआपरेशन, मिनिस्ट्री आफ एग्रीकल्चर, गवर्नमेंट आफ इंडिया, नई दिल्ली.

डीएसी एंड एफए. (2012). स्टेट आफ इंडियन एग्रीकल्चर 2011-12. डायरेक्टोरेट आफ इकोनोमिक्स एंड स्टेटिक्स, डिपार्टमेंट आफ एग्रीकल्चर, कोआपरेशन एंड फार्मर्स वेलफेयर, मिनिस्ट्री आफ एग्रीकल्चर, गवर्नमेंट आफ इंडिया, नई दिल्ली. पीपी. 273.

डीएसी एंड एफए. (2016). एग्रीकल्चरल स्टेटिक्स एट ए ग्लांस 2015. डायरेक्टोरेट आफ इकोनोमिक्स एंड स्टेटिक्स, डिपार्टमेंट आफ एग्रीकल्चर, कोआपरेशन एंड फार्मर्स वेलफेयर, मिनिस्ट्री आफ एग्रीकल्चर, गवर्नमेंट आफ इंडिया, नई दिल्ली. पीपी. 479.

डीएसी एंड एफए. (2016). फर्स्ट एडवांस एस्टीमेट्स आफ प्रोडक्शन आफ फुड ग्रेंस फार 2016-17. डायरेक्टोरेट आफ इकोनोमिक्स एंड स्टेटिक्स, डिपार्टमेंट आफ एग्रीकल्चर, कोआपरेशन एंड फार्मर्स वेलफेयर, मिनिस्ट्री आफ एग्रीकल्चर, गवर्नमेंट आफ इंडिया, नई दिल्ली. पीपी. 479.

दीक्षित एस, गोपीनाथ के ए, उदय किरण एल, अनुराधा बी. (2013). लिंकेज मार्केट्स फार बैटर इनकम्स. एलईआईएसए इंडिया, 15(2), 9-11.

जीओआई. (2014). एग्रीकल्चरल सेंस 2010-11. आल इंडिया रिपोर्ट आन नंबर एंड एरिया फार आपरेशनल जोत, मिनिस्ट्री आफ एग्रीकल्चर, गवर्नमेंट आफ इंडिया, पीपी. 87. (http://agcensus.nic.in/)

कनवर जेएस. (2000). सोयल एंड वाटर रिसोर्स मैनेजमेंट फार सस्टेनेबल एग्रीकल्चर इंपैरेटिव फार इंडिया. इन : “इंटरनेशनल कानफ्रेंस आन मैनेजिंग नैचुरल रिसोर्सिस फार सस्टेनेबल एग्रीकल्चर प्रोडक्शन इन दा 21 सेंचुरी”, इनवाइटिड पेपर्स. फरवरी 14-18, 2000. वाटर टेक्नोलाजी सेंटर एंड इंडियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टिट्यूट, नई दिल्ली, इंडिया, पीपी. 4-6.

कृष्णा ए. (1992). “क्लाइमेट क्लासिफिकेशन एंड एग्रीकल्चरल ड्राउट्स”, इन : एस वेंकटरमण एंड ए कृष्णा (संपादक), क्राप एंड वेदर (नई दिल्ली : पब्लिकेशंस एंड इनफार्मेशन डिविजन, इंडियन काउंसिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च) पीपी. 458-508.

कुमार पी, मृत्युंजय डी, डे एमएम. (2007). लोंग टर्म चेंजिज इन फुड बास्केट एंड न्यूट्रिशन इन इंडिया. इकोनोमिक्स एंड पालिटिकल वीकली. 42 (385), 3567-3572.

एमओआरडी. (1994). रिपोर्ट आफ दा टेक्निकल कमिटि आन ड्राउट प्रोन एरियाज प्रोग्राम एंड डेजर्ट डिवलपमेंट प्रोग्राम. मिनिस्ट्री आफ रूरल डिवलपमेंट, गवर्नमेंट आफ इंडिया, नई दिल्ली पीपी. 73.

पार्थसारथी जी. (1994). फुड ग्रेन्स प्रोडक्सन, एग्रीकल्चरल ग्रोथ एंड रूरल डेवलपमेंट : पास्ट पैटर्न्स एंड चैलेंजिज फार दी 1990, इन : चैलेंज फेसिंग एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट (एडिटर. टीके वेलायथम) आक्सफोर्ड एंड आईबीएच पब्लिशिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पीपी. 25-42.

प्लानिंग कमिशन. (2011). रिपोर्ट आफ प्लानिंग कमिशन वर्किंग ग्रुप आन हार्टिकल्चर एंड प्लानटेंशन क्राप्स फार 12 प्लान, प्लानिंग कमिशन, गवर्नमेंट आफ इंडिया.

प्लानिंग कमिशन. (2011). रिपोर्ट आफ प्लानिंग कमिशन वर्किंग ग्रुप आन नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट एंड रेनफेड फार्मिंग, प्लानिंग कमिशन, गवर्नमेंट आफ इंडिया.

राजू बीएमके, केवी राव, श्रीनिवासराव सीएच, वेंकटेश्वर्लु बी, एवीएम सुब्बाराव, सीए रामाराव, वीयूएम राव, बी.बापुजी राव, एन रविकुमार, आर धाकड, एन स्वप्ना एंड पी लता. (2013). “रिविज़िटिंग क्लामेटिक क्लासिफिकेशन इन इंडिया : ए डिस्ट्रिक्ट लेवल एनालाइसिस”, करंट साइंस, 104(4) : 492-95.

सीए रामाराव, राजू बीएमके, एवीएम सुब्बाराव, केवी राव, वीयूएम राव, कौशल्या रामचंद्रन, वेंकटेश्वर्लु बी, सिक्का एके. (2013). एटलस आन वुलनेरबिलिटी आफ इंडियन एग्रीकल्चर टू क्लाइमेट चेंज. सेंट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, पीपी. 113.

सीए रामाराव, राजू बीएमके, एवीएम सुब्बाराव, केवी राव, वीयूएम राव, कौशल्या रामचंद्रन, वेंकटेश्वर्लु बी, सिक्का एके, एम श्रीनिवासराव, एम महेश्वरी एंड सीएच श्रीनिवास राव. (2016). ए डिस्ट्रिक्ट लेवल असेस्मेंट आफ वूलनेरबिलिटी आफ इंडियन एग्रीकल्चर टू क्लाइमेट चेंज, करंट साइंस, 110(10) : 1939 - 1946.

राव केपीसी, बनटिलन एमसीएस, सिंह के, सुब्रहमण्यम एस, देशिंगकर पी, राव पी पार्थसारथी एंड शिफेराव बी. (2005). ओवरकमिंग पावर्टी इन रूरल इंडिया : फोकस आन रेनफेड सेमी एरिड ट्रापिक्स. पटानचेरु 502 324, इक्रीसेट. पीपी. 96.

राकस्ट्रोम जे, नुहु हतिबु, थेइब ओवेस इटी एएल. (2007). मैनेजिंग वाटर इन रेनफेड एग्रीकल्चर. इन : मोलडेन डी, (इडी.) वाटर फार फुड, वाटर फार लाइफ : ए कंप्रेहन्सिव असेसमेंट आफ वाटर मैनेजमेंट इन एग्रीकल्चर, अर्थस्कैन, लंदन, यूके एंड इंटरनेशनल वाटर मैनेजमेंट इंस्टिट्यूट (आईडब्ल्यूएमआई) : कोलंबो, श्रीलंका. पीपी. 315-348

शहरावत केएल, वाणी एसपी, पार्थसारथी जी, मूर्ति केवीए. (2010). डायगनोसिस आफ सेकेंडरी एंड साइक्रोन्यूट्रिंट डेफिसियेंसिस एंड देअर मैनेजमेंट इन रेनफेड एग्रो इकोसिस्टम्स : केस स्टडी फ्राम इंडियन सेमी एरिड ट्रापिक्स. कम्यून. सायल साइंस प्लांट एनल. 41, 346-360.

सिंह आरबी. (2009). टूवार्डस ए फुड सिक्योर इंडिया एंड साउथ एशिया. मेकिंग हंगर ए हिस्ट्री. http://www.apaari.org/wp-content/uploads/2009/08/towards-a-food-secure-indiamakinghunger-history.pdf

सिंह आरपी. (2001). वाटरशेड मैनेजमेंट : ए होलिस्टिक अप्रोच फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर. इन : नेशनल वर्कशाप आन वाटरशेड एरिया डेवलपमेंट चैलेंज एंड साल्यूशंस, इंडियन इंस्टीट्यूट आफ मैनेजमेंट, लखनऊ, इंडिया, 28-29 जुलाई.

श्रीनिवास राव सीएच, वेंकटेश्वर्लु बी, सिक्का एके, वाईजी प्रसाद, जीआर चारी, केवी राव, केए गोपीनाथ, एम.उस्मान, डीबीवी रमणा, एम महेश्वरी एंड वीयूएम राव. (2015). डिस्ट्रिक्ट एग्रीकल्चर कंटिजेंसी प्लांस टू एड्रस वेदर अबेराशंस एंड फार सस्टेनेबल फुड सिक्यूरिटी इन इंडिया. आईसीएआर-सेंट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, एनआरएम डिविजन, हैदराबाद 500059, इंडिया. पीपी. 22.

श्रीनिवास राव सीएच, के ए गोपीनाथ. (2016). रिज़ाइलेंट रेनफेड टेक्नोलाजी फार ड्राउट मिटिगेशन एंड सस्टेनेबल फुड सिक्यूरिटी, मौसम, 67, 1, 169-182.

श्रीनिवास राव सीएच, केए गोपीनाथ, जेवीएनएस प्रसाद, प्रसन्ना कुमार एंड एके सिंह. (2016). क्लाइमेट रिज़ाइलेंट विलेज फार सस्टेनेबल फुड सिक्यूरिटी इन ट्रापिकल इंडिया : कानसेप्ट, प्रोसेस, टैकनोलॉजी, इनस्टीट्यूशंस एंड इंपेक्ट, इन : एडवांस इन एग्रोनामी, इतसेवियर इंक, न्यूयार्क, (http://dx.doi.org/10.1016/bs.agron.2016.06.003).

श्रीनिवास राव सीएच, वेंकटेश्वर्लु बी, दिनेश बाबू एम, वाणी एसपी, दीक्षित श्रीनाथ, सहरावत केएल, कुंडु सुमंता. (2011). सायल हेल्थ इम्प्रुवमेंट विध ग्लैरीसीडिया ग्रीन लीफ मैन्यूरिंग इन रेनफेड एग्रीकल्चर. सेंट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, पीपी. 23.

श्रीनिवास राव सीएच, विट्ठल केपीआर. (2007). एमरजिंग न्यूट्रिंट डेफिसियेंसिस इन डिफरेंट सॉयल टाइप्स अंडर रेनफेड प्रोडक्शन सिस्टम्स आफ इंडिया, इंडियन जे.फर्टि. 3, 37-46.

थार्नथवेयाइट सीडब्ल्यू एंड मादेर जेआर. (1955). दा वाटर बैलेंस. इन क्लामैटालॉजी. वोल्यूम. 8(1), ड्रेक्सेल इंस्टिट्यूट आफ टेक्नोलाजी, न्यू जर्सी, यूएसए, पीपी. 104.

वेंकटेश्वर्लु बी, एंड सीए रामाराव. (2011). रेनफेड एग्रीकल्चर - कनसर्न्स, अपोर्चनिटिज एंड स्ट्रेटिजिज, योजना, 55 : 37-40.

वेंकटेश्वर्लु बी, बीएमके राजु, केवी राव एंड सीए रामाराव. (2014). रिविज़िटिंग ड्राउट प्रोन डिस्ट्रिक्ट्स इन इंडिया, इकोनोमिक एंड पाल्टिकल वीकली, वोल्यूम XLIX संख्या 25 : पीपी. 71-75.

वेंकटेश्वर्लु बी. (2008). आर्गनिक फार्मिंग इन रेनफेड एग्रीकल्चर : प्रोस्पेक्टस एंड लिमिटेशंस. इन : वेंकटेश्वर्लु बी, बल्लोली एसएस, रामकृष्णा वाईएस (इडीएस.), आर्गनिक फार्मिंग इन रेनफेड एग्रीकल्चर : अपोर्च्युनिटी एंड कनस्ट्रेंट्स. सेंट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद,इंडिया. पीपी. 7-11.

वेंकटेश्वर्लु बी, प्रसाद जेवीएनएस. (2012). कैरिंग कैपेसिटी आफ इंडियन एग्रीकल्चर : इश्यूज रिलेटिड टू रेनफेड एग्रीकल्चर. करंट साइंस, 102(6), 882-888.

★★★

2

मृदा उर्वरता संबंधी बाधाएं एवं उनका प्रबंधन

- के एल शर्मा, मुन्ना लाल, अशोक कुमार इंदोरिया,
सीएच श्रीनिवास राव एवं के सम्मी रेड्डी

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां संसार के भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 2-4 प्रतिशत और जल संसाधनो का लगभग 4 प्रतिशत भाग उपलब्ध है। देश में भौगोलिक मानव आबादी का 17 प्रतिशत तथा पशु आबादी का 15 प्रतिशत भाग उपलब्ध है। यहां की 50 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या खेती पर ही निर्भर है। देश में कृषि व्यवसाय उद्योगों के लिए कच्चे माल का एक प्रमुख स्रोत है। वर्ष 2011-12 के दौरान सभी प्रयासों के बावजूद देश में खाद्यान्न उत्पादन 25.932 करोड़ टन हुआ जिसमें से 13.127 करोड़ टन खरीफ मौसम के दौरान और 12.805 करोड़ टन रबी मौसम में था।

भारतीय कृषि में हरित क्रांति का प्रभाव काफी हद तक सिंचित क्षेत्रों में मुख्यत: चावल और गेहूं की फसल तक सीमित रहा। हमारे देश में प्रति इकाई क्षेत्रफल उत्पादकता, अन्य देशों की अपेक्षा काफी कम है। इसके अतिरिक्त राज्यों में और राज्यों के विभिन्न जिलों में विभिन्न फसलों की उत्पादकता में काफी भिन्नता पाई गई है। हमारा पड़ोसी देश चीन सभी तीन प्रमुख खाद्यान्न फसलों (गेहूं, चावल और मक्का) उपज के मामले में भारत से काफी आगे हैं। विभिन्न देशों के उर्वरक उपयोग के आकड़ों के अवलोकन से यह ज्ञात हुआ है कि वर्ष 2005 के दौरान उर्वरक उपयोग (नाइट्रोजन+फास्फोरस पेंटाआक्साइड+पोटेशियम आक्साइड किलोग्राम/हेक्टेयर) के मामले में विभिन्न देशों का स्तर इस प्रकार था: नीदरलैंड किलोग्राम प्रति हेक्टेयर (666)> कोरिया गणतंत्र (474) >जापान (373)>आस्ट्रिया (358)>न्यूजीलैंड (309)>चीन (301) >ब्रिटेन (287)>नार्वे (251)>जर्मनी (205)>पाकिस्तान (178), जबकि सभी देशों की औसत 109 किलोग्राम/हेक्टेयर थी। भारत की औसत मात्रा 89.80 किलोग्राम/हेक्टेयर थी। देश में कम और असंतुलित उर्वरकों का उपयोग भी भूमि की कम उर्वरता शक्ति और फसल की पैदावार की दृष्टि से चिंता का विषय है। एक ऊष्णकटिबंधीय देश होने के नाते, भारतीय मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बहुत कम है, जिसके फलस्वरूप मृदा उर्वरता भी बहुत कम है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में पानी की कमी के अतिरिक्त, मृदाओं में पोषक तत्वों की भी बहुत कमी है। जिसके परिणामस्वरूप वर्षा आधारित फसलों की उत्पादकता भी अपेक्षा से काफी कम है।

मृदा की कम उर्वरता क्षमता के कारण

भारत में कृषि फसलों के अंतर्गत 14.2 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल में से लगभग 8.3 करोड़ हेक्टेयर वर्षा पर निर्भर है। यहां फसल की पैदावार काफी कम होती है। एक सुनिश्चित अनुमान के अनुसार देश में कुल 32.9 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल में से लगभग 12.07 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल विभिन्न प्रकार की भूमि विकृत्तिकरण समस्याओं से ग्रस्त है। इस 12.07 करोड़ हेक्टेयर आक्रमित क्षेत्रफल में 7.33 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल जल के कटाव से, 1.24 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल हवा के कटाव से, 0.673 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल लवणता एवं क्षारीयता से और 2.5 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल मृदा अम्लता से प्रभावित है। विभिन्न अनुसंधानों से यह स्पष्ट हो चुका है कि मृदा की गुणवत्ता में कमी आने के मुख्य कारण इस प्रकार है: -

मृदा की उर्वरता को प्रभावित करने वाले कारक

1. जल द्वारा भूमि के कटाव के दौरान मृदा एवं कार्बनिक पदार्थ का जल प्रवाह के साथ बह जाना।
2. भूमि की बार-बार आवश्यकता से अधिक गहरी जुताई करना।
3. कम एवं असंतुलित उर्वरीकरण।
4. कार्बनिक पदार्थों (कंपोस्ट, गोबर की खाद, हरी खाद, जैविक खाद इत्यादि) का कम या न के बराबर उपयोग करना।
5. किसानों द्वारा फसल अवशेषों को खेत में न के बराबर छोड़ना या खेत में ही जला देना।
6. सिर्फ एकल फसल प्रणाली अपनाना और फसल चक्र को न अपनाना।
7. भूमि में जल भराव, लवणता एवं क्षारीयता और मृदा अम्लता का होना।
8. मृदा में कीटनाशी रसायनों एवं विषाक्त पदार्थों का अधिक मात्रा में उपयोग करना।
9. सतही मृदा का ईटें आदि बनाने के लिए दुरुपयोग करना ।
10. वातावरण एवं मृदाओं में उच्च तापमान के कारण कार्बनिक पदार्थों का तीव्र गति से अपघटन होना।

इन सभी उपरोक्त कारणों की वजह से भूमि का विकृत्तिकरण हुआ है और मृदा की गुणवत्ता (भौतिक, रासायनिक, जैविक) में भारी कमी आई है।

मृदा उर्वरता

पौधों की वृद्धि के लिए मृदा की उर्वरता का तात्पर्य उसकी उस क्षमता से है जो फसल उत्पादन हेतु पौधों के लिए पोषक तत्वों को उचित एवं संतुलित मात्रा में प्रदान करें। यह क्षमता मृदा उर्वरता कहलाती है। कुछ लोग पोंधों की अच्छी वृद्धि के लिए मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैव गुणों के योग को भी मृदा उर्वरता कहते है

पोषक तत्व प्रबंधन

मृदा में विद्‌यमान सभी तत्व पौधों के पोषण में भाग नहीं लेते हैं। इसलिए वही तत्व जो पौधों के पोषण में भाग लेते है, पोषक तत्व कहलाते हैं। पौधे इन पोषक तत्वों को जल, वायु एवं मृदा से ग्रहण करते हैं। पौधों की वृद्धि और विकास के लिए 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इन 16 पोषक तत्वों में से किसी भी पोषक तत्व की कमी होने से पौधे अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर सकते। रासायनिक विश्लेषण के आधार पर ज्ञात हो चुका है कि पौधों में कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नत्रजन, फास्फोरस, गंधक, जीवद्रव्य के अवयवी तत्व होते है। इन छः तत्वों के अतिरिक्त अन्य पंद्रह तत्व भी होते हैं जो पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं। वे तत्व हैं - पोटेशियम, मैग्नीशियम, कैल्शियम, मैग्नीज, लोहा, जस्ता, मोलिब्डेनम, बोरोन, तांबा, क्लोरीन, कोबाल्ट, सोडियम, निकिल, सिलिकान और वेनेडियम। इनमें से कुछ पोषक तत्व (सिलिकान, बेनेडियम) कुछ पौधों के लिए ही आवश्यक होते हैं।

पोषक तत्वों का वर्गीकरण

पोषक तत्वों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है:-

1. मुख्य पोषक तत्व : कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नत्रजन, फास्फोरस और पोटेशियम मुख्य पोषक तत्वों के अंतर्गत आते हैं। पौधे, कार्बन, हाइड्रोजन और आक्सीजन की पूर्ति हवा और पानी से कर लेते है परंतु नत्रजन, फास्फोरस और पोटेशियम की पूर्ति मृदा में उपलब्ध तत्वों और खाद एवं उर्वरकों द्‌वारा की जाती है।

2. द्‌वितीयक एवं गौण पोषक तत्व : कैल्शियम, मैग्नीशियम और गंधक द्‌वितीयक एवं गौण पोषक तत्वों की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इन पोषक तत्वों की आवश्यकता मुख्य पोषक तत्वों की अपेक्षा कम होती है।

3. सूक्ष्म पोषक तत्व : पौधों की अच्छी वृद्धि एवं पैदावार के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। यह तत्व लोहा, जस्ता, मैंग्नीज, तांबा, निकिल, मोलिब्डेनम, बोरोन, क्लोरीन आदि हैं।

पौधों की बढ़वार के लिए आवश्यक पौषक तत्वों के कार्य तथा इनकी कमी के लक्षणों को सारणी-1 में दर्शाया गया है:-

सारणी-1 : पोषक तत्वों के कार्य एवं कमी के लक्षण

पोषक तत्व	कार्य	कमी के लक्षण
नत्रजन	नत्रजन पौधों में हरित पर्ण, प्रोटीन, एमिनो अम्ल, न्यूक्लिक, अम्ल विटामिन्स, एल्केलाइड्स, ऐमाइड तथा जीवद्रव्य की संरचना में सक्रिय भूमिका निभाते है।	नत्रजन की कमी की वजह से पौधों की वृद्धि रुक जाती है और पुरानी पत्तियां पीली दिखाई देने लगती हैं। नत्रजन की अधिक कमी होने से पत्तियां भूरी होकर सूख जाती हैं जिससे उपज में भारी कमी हो जाती है।

पोषक तत्व	कार्य	कमी के लक्षण
फास्फोरस	फास्फोरस ऊर्जा के रूपांतरण में, ऊतकों के श्वसन में, फलीदार फसलों की जड़ों में, ग्रंथियों की संख्या तथा जड़ों के फैलाव, कलियां, फूल बनने, बीज एवं फलो के विकास और समय से पकने के लिए आवश्यक है।	इसकी कमी से पौधों की वृद्धि रुक जाती है। जड़ों में फैलाव कम होता है तथा फसल देर से पकती है। इसकी कमी से पौधों के तने व पत्तियो पर लाल या बैंगनी रंग आ जाता है।
पोटेशियम	पोटेशियम पौधों में एंजाइमों की क्रिया, प्रकाश संश्लेषण और जड़, बीज, कंद और फल भंडारण में सहयोग करता है। पत्तियों में शर्करा और स्टार्च के निर्माण में वृद्धि करता है।	पोटेशियम की कमी के लक्षण पहले पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते है। फिर धीरे-धीरे नई पत्तियों की तरफ बढ़ते हैं। जिससे पौधों की बढ़वार मंद गति से होती है और तना कमजोर होकर गिर जाता है। परिणामस्वरूप उत्पादन में कमी आ जाती है।
कैल्शियम	जड़ों के विकास के लिए कैल्शियम का विशेष महत्व है। इसके अलावा, यह पौधों की वृद्धि और प्रोटीन निर्माण में भी मदद करता है।	इसकी कमी से पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है और पत्तियां मुड़कर सिकुड़ने लगती हैं।
मैग्नीशियम	मैग्नीशियम पौधों के हरित पदार्थ (क्लोरोफिल) का एक अवयव है जिसका प्रकाश संश्लेषण में बहुत महत्व है।	मैग्नीशियम की कमी से पत्तियों के बीच का स्थान पीला पड़ जाता है।
गंधक	गंधक पौधों में हरित पदार्थ के निर्माण में तथा प्रोटीन संश्लेषण में आवश्यक होता है। यह तेल की मात्रा को बढ़ाने के लिए आवश्यक पोषक तत्व है।	इसकी कमी से पत्तियों का छोटा होना, पीला पड़ना, नई पत्तियों के आगे के सिरों का झुलसना और तने का छोटा होना, आदि प्रमुख लक्षण हैं।
लोहा	लोहा, नत्रजन के पोषण और प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट के उत्पादन तथा सल्फेट, नाइट्रेट के अपचयन में सहायक होता है। यह दाल वाली फसलों की जड़ ग्रंथियों में पाए जाने वाले हीमोग्लोबिन का मुख्य अवयव है।	इसकी कमी के लक्षण पौधों की नई पत्तियों पर दिखाई देते है। पत्तियों की शिराओं के बीच में पीलापन का आना लोहे की कमी को दर्शाता है।
जस्ता	जस्ता कार्बोहाइड्रेट के रूपांतरण में प्रोटीन के संश्लेषण में और हरित पदार्थ (क्लोरोफिल) के निर्माण में एक उत्प्रेरक का कार्य करता है। इसके अलावा बीज उत्पादन और पकाव की स्थिति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।	जस्ते की कमी से पौधों की पत्तियों पर हल्के पीले धब्बे तथा अत्यधिक कमी होने पर पत्तियों के निचले भाग पर (धान की फसल) भूरे धब्बे बन जाते है और पौधों की वृद्धि रुक जाती है।
मैंगनीज	मैंगनीज हरित पदार्थ (क्लोरोफिल) के निर्माण में सहायक है। मैंगनीज अनेको एंजाइमों की क्रियाशीलता को बढ़ाता है तथा यह नत्रजन उपचयन में भी भाग लेता है।	अनाज की फसलों में इसकी कमी के कारण पत्तियां सफ़ेद तथा पारदर्शी हो जाती है।

पोषक तत्व	कार्य	कमी के लक्षण
तांबा	बीमारियों से लड़ने की शक्ति, पौधों में विटामिन ए बनने में सहयोग करता है और दूसरे पोषक तत्वों की तरह यह भी उत्प्रेरक की क्रियाओं के लिए महत्वपूर्ण है	तांबा की कमी से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया की दर कम हो जाती है। टहनियां व पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। पौधों के विकास में रुकावट आती है तथा हल्के व हरे पत्ते आसानी से सूख जाते हैं।
बोरोन	यह दाल वाली फसलों की जड़ों की ग्रंथियों के विकास में मदद करता है। बोरोन जड़ों के रोगों को कम करता है।	इसकी कमी से नई पत्तियां गुच्छे का रूप ले लेती हैं। तने और फल का फटना, बीज और फल का गिरना इत्यादि प्रमुख लक्षण हैं।
मोलिब्डेनम	मोलिब्डेनम का नत्रजन स्थिरीकरण और प्रोटीन उत्पादन से सीधा संबंध है। यह एजोटोबैक्टर तथा राइजोवियम बैक्टीरिया द्वारा मुक्त नत्रजन के स्थिरीकरण के लिए अति आवश्यक है।	इसकी कमी से पत्तियों के किनारों का झुलस जाना तथा पत्तियों का मुड़कर प्याले जैसे आकार का हो जाना और दलहनी फसलों में इसकी कमी के लक्षण नत्रजन की कमी से मिलते-जुलते होते है।
क्लोरीन	यह परासरण दबाव को बढ़ाती है और प्रकाश संश्लेषण के दौरान आक्सीजन पैदा करती है।	इसकी कमी से नई पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और पौधों में अमीनो अम्ल एकत्र हो जाते हैं जो प्रोटीन संश्लेषण को प्रभावित करते हैं।

मृदा उर्वरता की स्थिति और उत्पादकता से संबंधित बाधाएं

वर्षा आधारित क्षेत्रों में कई प्रकार की मृदाएं पाई जाती हैं। इनमें मुख्यत: एल्फीसोल्स (लाल मृदाएं), वर्टीसोल्स (काली मृदाएं), अरीडीसोल्स (रेतीली मृदाएं), एंटीसोल्स (नवीन जलोढ़ मृदाएं) इत्यादि हैं। इन सब मृदाओं के गुण (मृदा संरचना, कणाकार, जल धारण क्षमता, उर्वरता इत्यादि) भिन्न-भिन्न होते हैं। इन सब मृदाओं में से एल्फीसोल्स (लाल मिट्टी) एवं वर्टीसोल्स (काली मिट्टी) के अंतर्गत काफी क्षेत्रफल वर्षा आधारित है।

सामान्य तौर पर यह देखा गया है कि लाल एवं काली मृदाओं में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा कम है। अनुसंधानों से यह साबित हो चुका है कि कार्बनिक पदार्थ कई पादप पोषक तत्वों जैसे कि नाइट्रोजन, फासफोरस, पोटाश, सल्फर एवं सूक्ष्म तत्वों का भंडार है। जलवायु घटकों एवं अनुपयुक्त मृदा प्रबंधन के कारण, इन मृदाओं में कार्बनिक पदार्थ की काफी कमी पाई जाती है जिसके परिणामस्वरूप मृदाएं उर्वरता की दृष्टि से भी काफी कमजोर हो जाती हैं।

एक सर्वेक्षण के अनुसार यह पाया गया है कि भारत में लगभग 62.5 प्रतिशत जिले नत्रजन उर्वरता में निम्न दर्जे की श्रेणी में आते हैं और लगभग 32.6 प्रतिशत जिले मध्यम श्रेणी में पाए गए हैं। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार क्रमशः 59, 36 एवं 5 प्रतिशत जिले नत्रजन उर्वरता में कम, मध्यम एवं उच्च श्रेणी में आंके गए। सारणी-2 में विभिन्न पोषक तत्वों की मृदा में स्थिति का आकलन दर्शाया गया है।

सारणी-2 : भारत के विभिन्न जिलों में मृदा उर्वरता वर्गों का विवरण (प्रतिशत)

क्र.सं.	पोषक तत्व	कम	मध्यम	उच्च
1.	नाइट्रोजन	59	36	5
2.	फासफोरस	49	45	6
3.	पोटाश	9	39	52

स्रोत: के.एल. शर्मा एवं अन्य - 2002

फासफोरस एक महत्वपूर्ण तत्व है। जिसकी मृदा में व्यापक कमी है। इसकी कमी के कारण वर्षा आधारित फसलों की उत्पादकता में निरंतर गिरावट आ रही है। काली मृदाएं ग्रेनाइट और तलछटीय चट्टानों से विकसित हुई है जो फासफोरस की कमी से ग्रस्त हैं। इन मृदाओं में पोटाश की कोई कमी नहीं है। कुछ मोटे कणाकार वाली मृदाओं को छोड़कर अन्य मृदाओं में पोटेशियम उपलब्धता की कोई गंभीर समस्या नहीं है।

एक अध्ययन के अनुसार यह ज्ञात हुआ है कि भारत के अर्धशुष्क एवं ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में किसानों के खेतों में कई द्वितीयक (गंधक) और सूक्ष्म पोषक तत्वों (बोरान, जस्ता) की कमी है। असिंचित मृदाओं में जहां तिलहन और दलहन की फसलें अधिक उगाई जाती है, वहां गंधक की उपलब्धता में कमी पाई गई है। इसके अतिरिक्त भारत के अर्ध-शुष्क एवं ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों की मृदाओं में पोषक तत्वों, विशेषकर जिंक की काफी कमी अनुभव की गई है। इन क्षेत्रों में कई फसलों जैसे कि मूंगफली एवं चना में लोहे की कमी के कारण हरिद्रोंग (क्लोरोसिस) भी दिखाई दी है।

अखिल भारतीय समन्वित बारानी कृषि अनुसंधान परियोजना (एक्रीपडा) के अंतर्गत किए गए एक अध्ययन में देश के प्रांतों से एकत्रित 2.5 लाख मृदा नमूनों का विश्लेषण किया गया। इस विश्लेषण में 49 प्रतिशत मृदा नमूने जिंक में, 33 प्रतिशत बोरान में, 13 प्रतिशत लोहे में, 7 प्रतिशत मोलिब्डेनम और 4 प्रतिशत मैंगनीज, मृदा उर्वरकता की दृष्टि से निम्न श्रेणी में पाए गए हैं। ये आंकड़े मृदाओं में सूक्ष्म तत्वों की कमी संबंधी समस्याओं की तरफ संकेत करते हैं। सूक्ष्म तत्वों की कमी का स्तर आमतौर पर मृदा के प्रकार, कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्र, फसल एवं फसल प्रणालियों के प्रबंधन और उत्पादकता के अनुसार होता है। अकसर यह देखा गया है कि जिंक की कमी मुख्यत: मृदा के मोटे कणों की वजह से, कैल्शियम की अधिक मात्रा होने से, जैविक कार्बन कम होने से, पी.एच. अधिक होने से और मृदा में अत्यधिक रिसाव इत्यादि से बढ़ती है। उदाहरण के तौर पर जिंक की कमी बिहार की कैल्शियम युक्त मुदाओं में, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु की काली और जलोड़ मृदाओं में, कर्नाटक की लाल मृदाओं, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश की गहरी काली मृदाओं एवं हरियाणा की रेतीली मृदाओं में व्यापक रूप से पाई गई है, जिससे फसलों की पैदावार में कमी आई है। इन मृदाओं में क्षारीयता को ठीक करने के उपायों सहित जिंक उर्वरक की भी सिफारिश की गई है।

मृदा परीक्षण में परखे गए कुल नमूनों में से 26 प्रतिशत हरियाणा में, 18 प्रतिशत तमिलनाडु में, 12 प्रतिशत पंजाब में और 8-9 प्रतिशत गुजरात और उत्तर प्रदेश की कैल्शियम

युक्त मृदाओं में लोहे की मात्रा में कम पाए गए हैं। बोरान के मामले में गुजरात में 2 प्रतिशत से लेकर पश्चिम बंगाल में 68 प्रतिशत तक की कमी पाई गई। आमतौर पर यह देखा गया है कि बोरान की कमी कर्नाटक की लाल और लैटराइटिक मृदाओं में और पश्चिम बंगाल, झारखंड, ओडिशा और महाराष्ट्र की रिसाव युक्त अम्लीय मृदाओं में 56 प्रतिशत थी। बिहार में उच्च कैल्शियम युक्त और पुरानी जलोढ़ मृदाओं में बोरान की 22.4 प्रतिशत कमी पाई गई।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में जैसे कि आंध्र प्रदेश, ओडिशा और पूर्वी मध्य प्रदेश में मृदा उर्वरता और उत्पादकता संबंधी कई अड़चने अनुभव की गई हैं। इनमें से प्रमुख हैं:-

- आंध्र प्रदेश में चावल की फसल में फासफोरस और जस्ते की कमी।
- आंध्र प्रदेश में चावल की फसलों में कीट और रोग महामारी के कारण निरंतर कीट नाशकों और नाइट्रोजन उर्वरकों का अत्यधिक उपयोग।
- ओडिशा और मध्य प्रदेश में कई स्थानों पर उर्वरकों की कम दर का उपयोग करने की वजह से भूमि में उर्वरता की कमी।
- ओडिशा और मध्य प्रदेश की वर्षा आधारित उथली भूमियों में फासफोरस, जस्ता और गंधक की कमी। सूक्ष्म, द्वितीय एवं विषाक्त तत्वों संबंधी अखिल भारतीय समन्वित बारानी कृषि अनुसंधान परियोजना की रिपोर्ट के अनुसार बिलासपुर एवं सरघुघ जिलों में मृदाओं के लगभग 50-75 प्रतिशत नमूनों में जस्ते की कमी पाई गई, जबकि रायपुर जिले में 25-50 प्रतिशत मृदा नमूनों में जस्ते की कमी अनुभव की गई। गंधक, बोरान, मोलिब्डेनम, तांबा और लोहे के मामलों में पूर्वी मध्य प्रदेश के क्रमश: 12-71, 1-2, 10-30, 10 और 30 प्रतिशत मृदा नमूनों में कमी पाई गई। अनुसंधानों से सुनिश्चित हुआ है कि विभिन्न फसलों में जस्ता (जिंक) अनुप्रयोग के प्रति अच्छी अनुक्रिया अनुभव की गई और अच्छी उपज उपलब्ध हुई।
- मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों संबंधी क्रांतिक स्तर सारणी-3 में दिए गए हैं। इनसे मृदा उर्वरता संबंधी श्रेणी का अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी-3 : मृदा उर्वरता मापदंडों के लिए क्रांतिक स्तर (वर्ग)

मृदा पोषक तत्व	क्रांतिक स्तर (वर्ग)		
	न्यूनतम	मध्यम	उच्चतम
कार्बनिक कार्बन (%)	<0.50	0.5-0.75	0.75
उपलब्ध नाइट्रोजन (किलोग्राम/हेक्टेयर)	<280	280-560	>560
उपलब्ध फासफोरस (किलोग्राम/हेक्टेयर)	<11	11-25.0	>25.0
उपलब्ध पोटेशियम (किलोग्राम/हेक्टेयर)	<120	120-280	>280
उपलब्ध सल्फर (किलोग्राम/हेक्टेयर)	<20	20-40	>40

मृदा पोषक तत्व	क्रांतिक स्तर (वर्ग)		
	न्यूनतम	मध्यम	उच्चतम
उपलब्ध लोहा (मिलीग्राम/किलोग्राम मृदा)	<4.5	--	--
उपलब्ध जस्ता (मिलीग्राम/किलोग्राम मृदा)	<<0.6	0.6-1.2	>1.2
उपलब्ध तांबा (मिलीग्राम/किलोग्राम मृदा)	<0.3	--	--
उपलब्ध मैगनीज़ (मिलीग्राम/किलोग्राम मृदा)	<3.0	--	--
उपलब्ध बोरान (मिलीग्राम/किलोग्राम मृदा)	<0.5	--	--

स्रोत: ठक्कर एवं विश्वास, 1999

एक अध्ययन में मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन के तहत आंध्र प्रदेश और तेलंगाना राज्यों के आठ केंद्रों पर 90 गांवों में मृदा उर्वरता समस्याओं का निदान करने के लिए परीक्षण किया गया। इस परीक्षण से यह ज्ञात हुआ है कि आंध्र प्रदेश और तेलंगाना राज्यों के वर्षा आधारित क्षेत्रों में जैविक कार्बन की मात्रा निम्न से मध्य स्तर, नाइट्रोजन की मात्रा निम्न स्तर और सूक्ष्म पोषक तत्वों की मात्रा की भारी कमी है (सारणी-4)।

सारणी-4 : आंध्र प्रदेश और तेलंगाना के 8 जिलों के विभिन्न केंद्रों में पोषक तत्वों की स्थिति

केंद्र	जैविक कार्बन	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश	गंधक	जस्ता	बोरॉन	लोहा	तांबा
आदिलाबाद	नि-म	नि	नि	अ	क-प	क-प	क-प	प	प
नलगोंडा	नि-म	नि	नि-अ	नि-म	क-प	क	क	क-प	प
खम्मम	नि-म	नि	नि-अ	नि-अ	क-प	क	क	प	प
महबूबनगर	नि-म	नि	नि-म	म-अ	क-प	क-प	क-प	प	प
अनंतपुर	नि	नि	म-अ	नि-अ	क	क-प	प-क	प	प
कडपा	नि	नि	नि-म	नि	क	क	क	क-प	क-प
वारंगल	नि-म	नि	म-अ	नि-म	क-प	क	क	प	प
रंगारेड्डी	नि-म	नि	नि-म	नि-अ	क-प	क-प	क-प	प	प

नि=निम्न, म=मध्यम, अ=अधिकतम, क=कमी, प=पर्याप्त

स्रोत: श्रीनिवास राव एवं अन्य, 2015

वर्षा आधारित मृदाओं में जैविक-पदार्थ की स्थिति

वर्षा आधारित मृदाओं में जैविक-पदार्थ की मात्रा बहुत कम है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि वर्षा आधारित क्षेत्रों में भूक्षरण के कारण मृदाओं की ऊपरी सतह, जिसमें जैव-पदार्थ की मात्रा ज्यादा होती है, पानी के साथ बह जाती है। इसके परिणामस्वरूप मृदाओं का

विकृत्तिकरण हो जाता है। शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में जैव-पदार्थ की कमी की मुख्य वजह मृदाओं के अधिक तापमान के कारण भी होती है। अनुसंधान आंकड़ों के विश्लेषण से यह पाया गया कि सामान्यत: जैव-पदार्थ की मात्रा आर्द्र क्षेत्रों में ज्यादा होती है और जैसे-जैसे शुष्क क्षेत्रों की ओर बढ़ते हैं, इसकी मात्रा कम होती जाती है। इन आंकड़ों से इस तथ्य का भी पता चला कि जैव-पदार्थ की मात्रा और मृदा उत्पत्ति के समय के वातावरण में घनिष्ठ संबंध है। शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों की शुष्क और अर्ध-शुष्क मृदाओं में जैव-पदार्थ 2-4 प्रतिशत पाया गया जबकि उष्णकटिबंध क्षेत्रों की अर्ध-शुष्क मृदाओं में इसकी मात्रा एक प्रतिशत से भी कम पाई गई। वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में जैविक कार्बन की कमी का अनुमान सारणी-5 में दर्शाए गए आंकड़ों से लगाया जा सकता है।

सारणी-5 : वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में जैविक कार्बन मात्रा स्थिति

प्रमुख मृदा प्रकार, जलवायु एवं मृदा नमूना की गहराई (सेंटीमीटर)	जैविक कार्बन की मात्रा का प्रतिशत	स्थिति
एल्फीसोल (लाल मृदाएं) शुष्क (5-6 सें.मी.) अर्ध-शुष्क (5-13 सें.मी.)	 0.25-0.30 0.50-0.75	 अनंतपुर हैदराबाद, बेंगलूरू
एरिडीसोल (रेतीली मृदाएं) शुष्क (5-9 सें.मी.) अर्ध-शुष्क (10-15 सें.मी.)	 0.15-0.22 0.25-0.30	 जोधपुर, हिसार दंतीवाड़ा
इन्सैप्टिसोल (जलोढ़ मृदाएं) शुष्क (5-6 सें.मी.) अर्ध-ऊष्ण कटिबंधीय (20-25 सें.मी.)	 0.20-0.38 0.10-0.25	 आगरा, होशियारपुर बनारस, रखधनसार
आक्सीसोल (पर्वतीय मृदाएं) नमीयुक्त उप-आर्द्र (12-24 सें.मी.)	0.30-0.45	भुवनेश्वर, रांची
वर्टिक इन्सैप्टिसोल (काली-जलोढ़ मृदाएं) शुष्क (9-11 सें.मी.) अर्ध-शुष्क (10-22 सें.मी.)	 0.50-0.70 0.40-0.60	राजकोट झांसी, कोविलपट्टी
वर्टीसोल (काली मृदाएं) अर्ध-शुष्क (18-40 सें.मी.) शुष्क उप-आर्द्र (12-15 सें.मी.)	 0.20-0.35 0.10-0.20	 अकोला, सोलापुर, इंदौर बीजापुर, उदयपुर, रीवा

स्रोत: जे.सी. कत्याल और के.पी.आर. विट्ठल, 1995

मृदा में जैविक-पदार्थ का महत्व

जैविक-पदार्थ मृदाओं का जीवन है। अनुसंधान के आंकड़े दर्शाते हैं कि कुल नत्रजन और गंधक का लगभग 95 प्रतिशत भाग जैव-पदार्थ में ही पाया जाता है (सारणी-6)। नत्रजन की मात्रा, जैविक-पदार्थ के घटने या बढ़ने से प्रभावित होती है। इसलिए जिन मृदाओं में जैविक-पदार्थ

अच्छी मात्रा में पाया जाता है, उन मृदाओं में नत्रजन की उपलब्धता भी अच्छी होती है। जैविक पदार्थ मृदाओं में उपस्थित अनेकों सूक्ष्म जीवों के भोजन और ऊर्जा का स्रोत है। अनेक पोषक तत्वों के भंड़ारण के अतिरिक्त, जैविक पदार्थ, मृदा में उपस्थित अनेकों अघुलनशील पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाता है। जब पौधों और पशुओं के जीव अवशेषों का मृदा में विघटन होता है, उस समय कई अम्ल जैसेकि कार्बनिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल, गंधक का अम्ल, फास्फोरस अम्ल, सिट्रिक अम्ल, फारमिक अम्ल, ऐसिटिक एवं बुटारिक अम्ल उत्पन्न होते हैं जो कि अघुलनशील यौगिकों को घुलनशील योगिकों में परिवर्तित करते हैं। इसके अतिरिक्त, जैविक पदार्थ पोषक तत्वों को बांधकर रखने में भी सक्षम हैं, जिससे मृदाओं में प्रतिकूल अवस्था में भी पोषक तत्वों की कम हानि होती है।

पोषक तत्वों की आपूर्ति के साथ-साथ जैविक पदार्थ कई जैवीय नियंत्रक योगिकों, वृद्धि नियंत्रक अवयवों एवं हारमोन्स की आपूर्ति भी करता है। इसके अतिरिक्त जैविक-पदार्थ मृदा की पोषक तत्व निर्धारण क्षमता में भी वृद्धि करने में सहायक सिद्ध होता है।

सारणी-6 : जैव-पदार्थ में पोषक तत्वों की मात्रा

पोषक तत्व	मृदाओं में उपस्थित कुल मात्रा का प्रतिशत (जैविक-पदार्थ से)
नत्रजन	95
फास्फोरस	60-80
सल्फर	95
जिंक	70
तांबा	70

स्रोत: के.एल. शर्मा एवं अन्य, 2002

जैविक पदार्थ मृदा की भौतिक स्थिति में भी दृष्टिगोचर सुधार करता है। कई अध्ययन इस बात के प्रमाण हैं कि जैविक-पदार्थ, मृदा संरचना में सुधार, मृदा आपतन घनत्व में कमी लाने, मृदा जल संचयन क्षमता वृद्धि, मृदा-वायु एवं जल संचालन में मुख्य भूमिका निभाता है। जैविक पदार्थ मृदा के समूहित कणों के आकार में वृद्धि, मृदा में वर्षा की बूंदों के प्रति रोधता में सुधार करके भूक्षरण में कमी करता है। जिन मृदाओं में जैविक पदार्थ की मात्रा अधिक होती है, उनमें सूखे के दौरान जल की उपलब्धता में निमितता एवं आपूर्ति काफी समय तक बनी रहती है।

जैविक पदार्थ एवं पोषक तत्वों के अतिरिक्त मृदा संबंधी समस्याएं

जैविक पदार्थ और पोषक तत्वों की कमी के अतिरिक्त मृदा से संबंधित और भी काफी समस्याएं हैं। जिनमें से प्रमुख हैं:- मृदाओं की कमजोर संरचना एवं गठन, मृदा की परिक्षेदिका की गहराई का कम होना, मृदा में सख्त मोर्रम परत का होना, मृदा में घनत्वता का ज्यादा होना, मृदा की निचली परत कड़ी बनना, मृदा में कैल्शियम के कंकरों की अधिक मात्रा होना, मृदा में लवणता एवं क्षारीयता और अम्लीयता का होना, मृदा में कम नमी होने से ऊपरी सतह पर कठोर पपड़ी बनना, मृदा में उचित जल निकास न होने के कारण जल भराव होना, मृदा में बहुत कम

या अत्यधिक जल चालकता का होना इत्यादि। इन सब समस्याओं की वजह से पर्याप्त पोषक तत्वों के बावजूद भी वर्षा आधारित फसलों से भरपूर उत्पादन प्राप्त नहीं हो पाता। इसलिए यह अति आवश्यक है कि वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में भौतिक, रसायनिक और जैव गुणों को सुधारने के लिए निरंतर प्रयत्न करना चाहिए।

वर्षा आधारित फसलों की उर्वरक पोषक तत्वों के प्रति अनुक्रिया

वर्षा आधारित फसलों की उर्वरक उपयोग के प्रति अनुकियाओं का लेखा-जोखा अखिल भारतीय समन्वित बारानी कृषि अनुसंधान परियोजना (एक्रीपडा) के विभिन्न केंद्रों से प्राप्त हुआ है। एक्रीपडा के इस नेटवर्क के जरिए खरीफ और रबी फसलों में नत्रजन और फास्फोरस प्रयोगों के प्रति अनुक्रियाओं पर व्यापक जानकारियां उपलब्ध की गई हैं। विभिन्न फसलों, वर्षा की मात्रा, मृदाओं के प्रकार तथा विभिन्न स्थानों के आधार पर नत्रजन और फास्फोरस प्रयोग के प्रति अनुक्रियाएं तीन किलोग्राम अनाज प्रति किलोग्राम पोषक तत्व से लेकर 50 किलोग्राम अनाज प्रति किलोग्राम पोषक तत्व तक वृद्धि देखी गई है। पोषक तत्वों में नत्रजन गैर-फली फसलों के उत्पादन के लिए सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। इन फसलों के विकास और संवर्धन के लिए बड़ी मात्रा में नत्रजन की आवश्यकता होती है। अनुसंधान के आधार पर ये पाया गया है कि वर्षा की मात्रा एवं मृदा में नमी की उपलब्धता बहुत महत्वपूर्ण घटक हैं, जो फसलों की नत्रजन अनुप्रयोग के प्रति अनुक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। अनुसंधान के आंकड़ों से पता चला है कि मक्का की फसल में सबसे ज्यादा (67.4 किलोग्राम अनाज प्रति किलोग्राम नत्रजन) अनुक्रिया थी। रबी ज्वार की फसल में नत्रजन उर्वरक के प्रति अनुक्रिया सोलापुर में 19.0 किलोग्राम (वर्षा 722 मिलीमीटर), कोविलपट्टी में 27.7 किलोग्राम (वर्षा 700 मिलीमीटर), बेल्लारी में 6.5 किलोग्राम (वर्षा 500 मिलीमीटर) और बीजापुर में 9.7 किलोग्राम (वर्षा 680 मिलीमीटर) अनाज प्राप्त प्रति किलोग्राम नत्रजन अनुभव की गई । इन आंकड़ों से यह भी ज्ञात हुआ कि अच्छी वर्षा होने से नत्रजन उर्वरक के प्रति फसलों की अनुक्रिया भी अच्छी होती है। कई पोषक तत्वों जैसे कि कैल्शियम, सल्फर और पोटेशियम के प्रति अनुक्रिया मूंगफली की फसल में स्पष्ट रूप से दिखाई दी। इसी तरह चना और मूंगफली की फसल में लोहे का अनुप्रयोग करने से अच्छी अनुक्रिया दिखाई दी।

वर्षा आधारित फसलों में उर्वरक अनुप्रयोग के प्रति वांछित अनुक्रिया हासिल करने के लिए, निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देना अति आवश्यक है:-

- सूखे के प्रति सहनशील अच्छी किस्मों की फसलों का चयन करना है।
- वर्षा जल को मृदा में प्रवेश कराने हेतु और संचयित करने हेतु प्रभावी नमी संरक्षण पद्धत्तियों को अपनाना।
- संतुलित उर्वरीकरण पर विशेष ध्यान देना।
- उर्वरीकरण करने के लिए उचित समय, विधि, स्थान एवं उर्वरक का प्रयोग करना।
- उपयुक्त फसल चक्र अपनाना।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में जैविक पुन:चक्रण और समन्वित पादप पोषक तत्व प्रबंधन का महत्व

मृदा में कार्बनिक पदार्थ सामग्री को बढ़ाने और मृदा में कार्बन पृथक्करण (सीकुस्ट्रेशन) की तत्काल आवश्यकता है। इससे न केवल निम्नीकृत भूमि की मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार होगा, बल्कि पोषक तत्वों की कमी की भरपाई करने में भी मदद मिलेगी। पर्यावरणविदों के दृष्टिकोण से, कार्बनिक पदार्थ को बढ़ाने के लिए किए गए प्रयासों से मिट्टी में अधिक कार्बन पृथक्करण में मदद मिलेगी और बदले में वातावरण में कार्बनडाईआक्साइड (CO_2) की सांद्रता को भी कम किया जा सकता है। किसान वर्ग अधिक रासायनिक उर्वरक की मांग को कम करने और पोषक तत्वों के वैकल्पिक स्रोतों को भुनाने के लिए चिंतित हैं। इस तरह से यह जैविक पुन:चक्रण और एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन की अवधारणा अति आवश्यक है। एकीकृत पादप पोषक तत्व प्रबंधन का तात्पर्य यह है कि फसल की वांछित पैदावार हासिल करने के लिए कार्बनिक, अकार्बनिक एवं जैव खादों का उचित मात्रा में प्रयोग कर मृदा की उर्वरता को बनाए रखा जा सके और वातावरण को भी प्रदूषण से बचाया जा सके।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के लिए समग्र नीति की आवश्यकता है और इसमें रसायनिक उर्वरक, जैव-उर्वरक, जैविक खाद (गोबर की खाद, कंपोस्ट खाद, वर्मीकंपोस्ट, बायोगैस घोल, हरी खाद और फसलों के अवशेष आदि) और फसल प्रणालियों में नत्रजन स्थिरीकरण करने वाली फसलों इत्यादि को शामिल करना अति आवश्यक है। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन पर भारत में काफी शोध किया गया है। एक रिपोर्ट के अनुसार नत्रजन की मात्रा के आधार पर जैविक खाद, खनिज उर्वरकों की तुलना में कम प्रभावशाली हैं। हालांकि इन पोषक तत्वों के स्रोतों का संयुक्त उपयोग, रासायनिक उर्वरक या अकेले जैविक खाद का उपयोग करने से बेहतर है। विभिन्न अनुप्रयोगों से यह स्पष्ट हो चुका है कि एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन, बेहतर मृदा स्वास्थ्य, उच्च उत्पादकता और ग्रामीण गरीबों की खाद्यान्न सुरक्षा बनाए रखने के लिए सबसे महत्वपूर्ण है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के मुख्य उद्देश्य

- रासायनिक उर्वरकों पर निर्भता को कम करना।
- मृदा के भौतिक, रासायनिक, जैविक गुणों में सुधार लाना।
- उर्वरक उपयोग दक्षता में सुधार लाना।
- विभिन्न प्रदूषण फैलाने वाले कार्बनिक व्यर्थ पदार्थों का उपयुक्त इस्तेमाल कर पर्यावरण को प्रदूषण रहित रखना।
- उत्पादकता को बढ़ाना।
- उत्पादों की पौष्टिक गुणता में अपेक्षित सुधार लाना।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के मुख्य घटक

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के मुख्य घटक इस प्रकार हैं:-

- मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित उर्वरीकरण करना।

- नत्रजन स्थिरीकरण करने वाली फसलों को अंतरसस्यन फसलीकरण और फसल-चक्र प्रणालियों में शामिल करना।
- रासायनिक उर्वरकों के साथ-साथ जैविक खादों (हरी खाद, नत्रजन स्थिरीकरण करने वाले वृक्षों की पत्तियों की खाद, केंचुए की खाद, गोबर की खाद, प्रक्षेत्र कंपोस्ट, जैव उर्वरक, उपचारित गटर की खाद) का संतुलित उपयोग करना।
- फसल की कटाई के उपरांत फसलों के अवशेषों (पशुओं के चारे की जरूरत को पूरा करने के बाद) का भूमि में उपयुक्त रूप से पुन:चक्रण करना।
- नैनो उर्वरकों का अनुप्रयोग करना ।
- संरक्षण खेती और कम जुताई पद्धति अपनाना।
- मृदा एवं जल संरक्षण पद्धतियों को अपनाना।

एकीकृत पोषक तत्वों की आपूर्ति प्रणाली के महत्वपूर्ण घटक

एकीकृत पोषक तत्व आपूर्ति प्रणाली

रासायनिक उर्वरक	जैविक खाद	फसल अवशेष	हरी खाद (यथा स्थान)	हरी खाद (पत्ती)	जैव उर्वरक
यूरिया, डीएपी, एमओपी अन्य उर्वरक	गोबर की खाद, भेड़-बकरियों की मेंगनी, कंपोस्ट, उपचारित गटर की खाद, वर्मीकंपोस्ट	ज्वार बाजरा धान गेहूं गन्ना घास-फूस कपास अरहर, अरंडी, सूर्यमुखी फसलों के अवशेष	सनई ढैंचा ग्वार लोबिया मूंग	सफ़ेद बबूल गिरिपुष्पा	राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, फास्फोरस एवं जिंक विलेयीकारक जीवाणु वेसीक्युलर आर्बस्क्युलर माइकोराहिज़ा (VAM)

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन : अब तक सीखे गए सबक

एकीकृत पोषक तत्वों के उपयोग के मूल उद्देश्य, रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को कम करना, मृदाओं में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा को बढ़ाना, पोषक तत्व उपयोग दक्षता को बढ़ाना इत्यादि प्रमुख हैं। यद्यपि केवल जैविक खाद फसल पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा में

आपूर्ति करने के लिए सक्षम नहीं होते फिर भी इनकी भूमिका पूर्वोक्त उद्देश्यों को पूरा करने में महत्वपूर्ण मानी जाती है।

नौ वर्षों के अनुसंधान के उपरांत प्रयोग के परिणामों से पता चला है कि रागी (फिंगर मिल्लेट) की उपज, इष्टतम नत्रजन, फास्फोरस और पोटाश के उपयोग या 50 प्रतिशत नत्रजन, फासफोरस एवं पोटाश (एन पी के) + 10 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद के संयुक्त उपयोग से बेंगलुरू की लाल मृदा (एल्फीसोल्स) में एक समान ही थी। उपज में स्थिरता के दृष्टिकोण से, यह उपचार काफी कारगर साबित हुआ। नौ में से आठ वर्षों के दौरान उपज पर प्रभाव काफी सकारात्मक था (>3 टन अनाज प्रति हेक्टेयर)। हालांकि, सिर्फ उर्वरक के उपयोग से यह प्रभाव नौ में से केवल चार वर्षों तक ही अनुभव किया गया। अर्थात् एकीकृत पौषक तत्व प्रबंधन करके 50 प्रतिशत तक रासायनिक खादों को बचाया जा सकता है। एक अन्य अनुसंधान के द्वारा गोबर की खाद और 15 से 20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से कैलोट्रोपिस प्रोसेरा की टहनियों के उपयोग के लाभदायक प्रभावों से, मृदा के भौतिक गुणों, विशेष रूप से वर्षा आधारित अवस्थाओं के तहत नमी भंडारण में सुधार हुआ है। इससे पोषक तत्वों के खनिजीकरण और मृदा नत्रजन उपस्थिति में भी काफी लाभ हुआ है। हर दूसरे साल गोबर की खाद के 20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग से पांच साल की अवधि में मृदा कार्बनिक पदार्थ में 60 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अनुसंधानों से यह भी स्पष्ट हुआ कि कार्बनिक संशोधन तभी प्रभावशाली होते हैं, जब यह मृदा में 20-25 सेंटीमीटर तक की गहराई में डाले जाएं। अर्ध-शुष्क, उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन पर किए गए अनुप्रयोगों से यह ज्ञात हुआ कि इन पद्धतियों से मृदा में मूंगफली, रागी, शीत कालीन ज्वार, बाजरा, ग्वार, अरंडी, सोयाबीन, कुसुंभ, मसूर और उच्च भूमि चावल के अंतर्गत मृदा में कार्बन की मात्रा में वृद्धि हुई। इससे कार्बन पृथक्करण के अतिरिक्त कृषि उत्पादकता में सुधार लाने और जलवायु परिवर्तन का शमन कम करने में भी मदद मिलेगी (सारणी-7)।

सारणी-7 : वर्षा आधारित क्षेत्रों में विभिन्न स्थानों पर एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का फसल उपज दर पर प्रभाव

स्थान	फसल/फसलों के अनुक्रम की अवधि	विभिन्न फसलों में सर्वश्रेष्ठ पोषक तत्व प्रबंधन पद्धति	औसत उपज (किलोग्राम / हेक्टेयर)
बेंगलुरू	मूंगफली-रागी (13 वर्ष)	मूंगफली- गोबर की खाद @ 10 टन/हेक्टेयर + 100% नत्रजन,फासफोरस एवं पोटाश (एनपीके)	3957
		रागी-गोबर की खाद 10 टन+100% नत्रजन,फासफोरस एवं पोटाश (एनपीके)	3281
हिसार	बाजरा (5 वर्ष)	I. 40 किलो ग्राम नाइट्रोजन/हेक्टेयर	1402
		II. गोबर की खाद 4 टन/हेक्टेयर+एजोटोबैक्टर	1336
		III. परंपरागत पद्धति (नियंत्रण)	751

स्थान	फसल/फसलों के अनुक्रम की अवधि	विभिन्न फसलों में सर्वश्रेष्ठ पोषक तत्व प्रबंधन पद्धति	औसत उपज (किलोग्राम / हेक्टेयर)
इंदौर	सोयाबीन (3 वर्ष)	I. गोबर की खाद 6 टन/हेक्टेयर+शेष मात्रा उर्वरक द्वारा	1952
		II. फसल के अवशेष 6 टन/हेक्टेयर+शेष मात्रा उर्वरक द्वारा	1805
		III. परंपरागत पद्धति (नियंत्रण)	1417
अनंतपुर	मूंगफली (20 वर्ष)	50% सिफारिश की गई उर्वरक की मात्रा + 4 टन गोबर की खाद/हेक्टेयर	1018
वाराणसी चावल 50%	चावल-दलहन (21 वर्ष)	चावल- 50% जैविक (गोबर की खाद) + 50% सिफारिश की गई उर्वरक की मात्रा	1950
		दलहन- 50% जैविक (गोबर की खाद) + 50% सिफारिश की गई उर्वरक मात्रा	1040

पैदावार बढ़ाने के अतिरिक्त, जैविक खाद कई पोषक तत्वों की कमी दूर करने में भी उपयोगी साबित हुई है। यह देखा गया है कि 10 साल की अवधि के लिए गोबर की खाद के प्रयोग से मृदा में जिंक की उपलब्धता में भी वृद्धि हुई।

गोबर की खाद के प्रयोग से न केवल फसल में फास्फोरस की कमी को सुधारा गया बल्कि मृदा में भी इसकी वृद्धि हुई है। केंचुए की खाद फसलोत्पादन में अगर पर्याप्त मात्रा में डाली जाए तो इससे फसलोत्पादन में काफी लाभ होता है। कई अनुसंधानकर्ताओं ने विभिन्न कार्बनिक पदार्थों जैसे कि शहरी कचरा, ग्रामीण कचरा, रसोई का कचरा, उपचारित गटर की खाद और खेत के अवशिष्ट पदार्थों का प्रयोग कर बहुत अच्छी या बेहतर केचुए की खाद तैयार करने के सफल प्रयत्न किए हैं। वर्मीकंपोस्ट का रासायनिक उर्वरक के साथ नाइट्रोजन के आधार पर 1:1 अनुपात में प्रयोग करने से हैदराबाद की लाल मृदाओं में उगाई गई सूरजमुखी की फसल में बहुत अच्छा प्रभाव दिखाई दिया।

मृदा स्वास्थ्य के महत्व को ध्यान में रखते हुए इस परियोजना के अंतर्गत तेलंगाना एवं आंध्र प्रदेश के छ: जिलों में गांव के कुछ समूहों का सर्वेक्षण किया गया। इसमें यह पता लगाया गया कि किस जिले में किस प्रकार के विभिन्न जैविक संसाधन उपलब्ध हैं जो कि पोषक तत्वों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रयोग में लाए जा सकते हैं (सारणी-8)। इन उपलब्ध जैविक संसाधनों पर आधारित एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन रणनीति तैयार की गई और इसे किसानों के खेतों पर लागू किया गया।

सारणी-8 : तेलंगाना एवं आंध्र प्रदेश के छः लक्षित जिलों में गांवों में उपलब्ध जैविक संसाधनों की स्थिति

जिला	समूह	उपलब्ध जैविक संसाधन
आदिलाबाद	सीतागोंदी	गोबर की खाद, गिरीपुष्पा की पत्तियां, कपास अवशेष, अरहर अवशेष और वर्मीकंपोस्ट
रंगा रेड्डी	इब्राहिमपुर	कूड़े की खाद, मक्का अवशेष, अरहर अवशेष, वर्मीकंपोस्ट और गोबर की खाद
वरंगल	ज़ाफरगुडेम	गोबर की खाद, कपास एवं अरहर अवशेष, गिरीपुष्पा की पत्तियां
खम्मम	तुम्मल चेरूवु	कपास एवं अरहर अवशेष और गोबर की खाद
महबूबनगर	जमिस्तापुर	गोबर की खाद, कपास एवं अरहर अवशेष
अनंतपुर	पंपानूर	मूंगफली के छिलके, कुलथी का समावेश और गोबर की खाद

स्रोतः श्रीनिवास राव एवं अन्य 2013

अनुसंधानों से यह स्पष्ट हुआ है कि फसल अवशेषों और रसायनिक उर्वरकों के संयुक्त प्रयोग का प्रदर्शन केवल अवशेषों की तुलना में काफी बेहतर था। नत्रजन की कमी वाली मृदा में (बेंगलुरू) फसल के अवशेषों के उपयोग से उर्वरता की स्थिति और मृदा के भौतिक गुणों में महत्वपूर्ण सुधार देखा गया है। पांच साल तक फसल अवशेषों के सतत उपयोग से मक्का की अनाज उपज में 25 प्रतिशत की वृद्धि हुई। मक्का अवशेषों के न डालने की अपेक्षा प्रति वर्ष 4 टन प्रति हेक्टेयर मक्का अवशेषों के उपयोग से कार्बनिक पदार्थ की मात्रा 0.5 प्रतिशत से बढ़कर 0.9 प्रतिशत तक हो गई। हैदराबाद की लाल मृदाओं में बाजरा और लोबिया में फसल अवशेषों के उपयोग ने न केवल पैदावार को बढ़ाया बल्कि इसने मृदा संरचना, मृदा समुच्चय और मृदा जल संचालकता की स्थिति में भी सराहनीय सुधार किया। अकोला में फसल अवशेषों के प्रयोग से ज्वार+अरहर सह रोपण प्रणाली में ज्वार की अनाज की उपज में 26 प्रतिशत की वृद्धि हुई। रांची में फसल अवशेषों के प्रयोग से उच्च भूमि चावल की पैदावार में आधार उपज (4.4 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) में 41 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वाराणसी केंद्र पर नवीन मृदाओं में मसूर की उपज लगभग दो गुना और तिल की उपज में कई गुना वृद्धि दर्ज की गई। हैदराबाद की लाल मृदाओं में कम अवधि की दलहनी फसलों, जैसे कि मूंग और लोबिया, को व्यापक अंतर से बोई जाने वाली फसलों (अरंड) में उगाने और इन्हें कटाई के उपरांत जुताई कर वापस मृदा में मिला देने से लगभग 30 किलो नत्रजन (उर्वरक नत्रजन समतुल्य) प्रति हेक्टेयर का फायदा हुआ।

भारत में प्रमुख वर्षा आधारित उत्पादन प्रणाली पर दीर्घ कालिक खाद प्रयोगों के आंकड़ों से यह स्पष्ट हो चुका है कि फसल अवशेषों के माध्यम से मृदा में कार्बन की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त यह भी पाया गया है कि नत्रजन स्थिरीकरण करने वाले पेड़ों जैसे ल्यूसिना और गिरीपुष्पा की डालियों (पत्ते+टहनियां) में औसतन रूप से सूखे वजन के आधार पर 3 प्रतिशत तक नत्रजन की मात्रा होती है। इन पेड़ों को पोषक तत्वों की आपूर्ति हेतु बायोमास उत्पन्न करने के लिए या तो खेतों की मेंढ़ों पर या खेत के किसी कोने में उगाया जा सकता है।

इन पेड़ों की डालियों को या तो अकेले या रासायनिक उर्वरकों के साथ संयोजन के रूप में ज्वार और सूरजमुखी जैसी फसलों की पैदावार बढ़ाने में प्रयोग किया जा सकता है। अनुसंधान से यह भी ज्ञात हुआ है कि यूरिया एवं ल्यूसिना और गिरीपुष्पा जैसे कार्बनिक पदार्थों के संयुक्त उपयोग (1:1 नत्रजन समतुल्य) से ज्वार की अनाज की उपज को बढ़ाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से यह सिद्ध हो चुका है कि उर्वरक नत्रजन की 50 प्रतिशत तक की आवश्यकता इन वृक्षों की हरी पत्तियों और टहनियों के प्रयोग के माध्यम से पूरी की जा सकती है।

अकोला की मृदाओं में मृदा गुणता सूचकों पर किए गए अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ कि अकोला की मृदाओं में प्रमुख मृदा गुणता सूचक और उनका मृदा गुणता में योगदान इस प्रकार था जैसे-कार्बनिक कार्बन (28 प्रतिशत)> सूक्ष्म जैव बायोमॉस (25 प्रतिशत)> उपलब्ध पोटाशियम (24 प्रतिशत)> विद्युत चालकता (7 प्रतिशत)> पीएच (6 प्रतिशत)> डीएचए (6 प्रतिशत)> उपलब्ध मैगनीशियम (4 प्रतिशत)। हैदराबाद की लाल मृदा की गुणता में सुधार पर किए गए एक लंबी अवधि के अध्ययन के परिणामों से पता चला कि मृदा में लंबे समय तक 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गिरीपुष्पा की हरी कर्तने डालने से या ज्वार की कड़बी 2 टन प्रति हेक्टेयर (सूखा भार) की दर से अनुप्रयोग से बिना उपचार की अपेक्षा उच्च मृदा गुणता सूचकमान दर्ज किया गया और इसके अतिरिक्त नत्रजन का स्तर बढ़ाने से भी उच्च मृदा गुणता सूचक को बनाए रखने में मदद मिली। कुल 24 उपचारों के आधार पर मृदा गुणता सूचक 0.90 से 1.27 तक दर्ज किए गए। उच्च मृदा गुणता सूचक पारंपरिक जुताई+गिरीपुष्पा कर्तने 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से+90 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर डालने से (1.27) और पारंपरिक जुताई+गिरीपुष्पा कर्तने 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से+60 किलोग्राम नाइट्रोजन से (1.79) प्राप्त किए गए। इसके उपरांत न्यूनतम जुताई+ज्वार की कड़बी 2 टन प्रति हेक्टेयर+90 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर का (1.18) स्तर रहा।

अध्ययन से यह भी पता चला है कि सबसे महत्वपूर्ण सूचक और इनका मृदा गुणता में योगदान क्रमश: उपलब्ध नत्रजन (32 प्रतिशत), जीवाणुविय जैविक कार्बन (31 प्रतिशत), उपलब्ध पोटाश (17 प्रतिशत), जल संचालकता (16 प्रतिशत) और गंधक (4 प्रतिशत) था। पारंपरिक जुताई के साथ-साथ 2 टन प्रति हेक्टेयर गिरीपुष्पा (हरा) + 90 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर डालने से मृदा गुणता के अतिरिक्त अरंड और ज्वार की भरपूर पैदावार दर्ज की गई। हैदराबाद की लाल मृदाओं में एक लंबी अवधि के एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन पर किए गए प्रयोग से, बिना उपचार की तुलना में, क्रमश: 84.62 और 77.7 प्रतिशत तक ज्वार की उपज में वृद्धि दर्ज की गई। मूंग की फसल में 2 टन कंपोस्ट+1 टन गिरीपुष्पा कर्तने और 2 टन कंपोस्ट+10 किलोग्राम नत्रजन के अनुप्रयोग से बिना उपचार की तुलना में 51.6 प्रतिशत और 50.8 प्रतिशत अधिक मूंग की उपज दर्ज की गई। परिणामों से यह स्पष्ट रूप से इंगित है कि ज्वार और मूंग की नत्रजन की मांग का 50 प्रतिशत भाग कृषि आधारित जैविक सामग्री जैसे कि गोबर की खाद या गिरीपुष्पा की कर्तनो के माध्यम से पूरा किया जा सकता है। ज्वार के मामले में विभिन्न उपचारों में सर्वाधिक कृषि दक्षता 2 टन गिरीपुष्पा कर्तने+20 किलोग्राम

नत्रजन प्रति हेक्टेयर (20.32 किलो अनाज प्रति किलो नत्रजन) तत्पश्चात यूरिया के माध्यम से 40 किलोग्राम नत्रजन (18.61 किलो अनाज प्रति किलो नत्रजन) डालने से दर्ज की गई। मूंग की फसल में उच्चतम सस्य दक्षता (13.75 किलो अनाज प्रति किलो नत्रजन) 2 टन गोबर की खाद+1 टन गिरीपुष्पा की कर्तनो के उपचार में पाई गई। तत्पश्चात 2 टन गोबर की खाद + 10 किलोग्राम नत्रजन प्रति हेक्टेयर (13.56 किलो अनाज प्रति किलो नत्रजन) का स्थान था। पारंपरिक जुताई (0.71 प्रतिशत) की तुलना में कम जुताई (0.74 प्रतिशत) द्वारा उच्च जैविक कार्बन की मात्रा दर्ज की गई। जैविक कार्बन की सबसे अधिक मात्रा (0.82 प्रतिशत) 4 टन गोबर की खाद+2 टन गिरीपुष्पा की कर्तनों के उपचार से दर्ज की गई।

इस प्रकार कई अध्ययनों से स्पष्ट हो चुका है कि रासायनिक उर्वरकों और जैविक पदार्थों के एकीकृत प्रयोग से मृदा की गुणता को सुधारने के साथ वर्षा आधारित फसलों की उत्पादकता भी बढ़ाई जा सकती है और वर्षा आधारित कृषि में टिकाऊपन लाया जा सकता है।

मृदा स्वास्थ्य और पोषक तत्व प्रबंधन को सुदृढ़ बनाने के लिए मुख्य सुझाव

वर्षा आधारित क्षेत्रों में मृदा स्वास्थ्य और पोषक तत्व प्रबंधन को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं:-

1. किसानों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड उपलब्ध कराना।
2. जिला मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं का पुनर्विन्यास करना। इसमें योग्य और प्रशिक्षित कर्मचारियों का चयन अति आवश्यक है और समय-समय पर उनको प्रशिक्षण देना अति आवश्यक है।
3. किसानों में मृदा की महत्ता हेतु जागरूकता पैदा करना।
4. किसानों में मृदा उर्वरता और पोषक तत्व प्रबंधन हेतु जागरूकता पैदा करना।
5. एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन पर अधिक ध्यान देना अति आवश्यक है। इसमें जैविक पदार्थों जैसे कि जैविक खाद (कंपोस्ट खाद, गोबर की खाद, वर्मीकंपोस्ट) का अनुप्रयोग, नत्रजन स्थिरीकरण करने वाली फसलों पर आधारित हरी खाद, पेड़ों की पत्तियों पर आधारित हरी खाद, फसल अवशेषों की पुनरावृत्ति, भेड़-बकरियों की मैगनियों का प्रयोग, जैविक खेती, संरक्षण जुताई, फसल चक्र में दलहनी फसलों का समावेश, जैविक उर्वरकों का प्रयोग, बायोचार का प्रयोग इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।
6. जैविक पदार्थों का प्रयोग कर, खेत स्तर पर पोषक तत्व बैंक धारणा पर काम करना।
7. सूक्ष्मजीव विविधता बढ़ाना और जैव उरर्वकों की उपलब्धता को सुनिश्चित करना।
8. स्थान विशेष के लिए पोषक तत्व प्रबंधन पर जोर देना और संतुलित बहु पोषक तत्व उर्वरक और अनुकूलित उर्वरकों (अनुकूलित) की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
9. परिशुद्धता खेती के माध्यम से उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ाना।

10. मृदा की समस्याओं जैसे कि लवणता एवं क्षारीयता और अम्लता को सुधारने के लिए उपयुक्त तकनीक का प्रयोग करना।

11. भूमि आवरण प्रबंधन पर जोर देना जिससे कि उच्च तीव्र बारिश और तापमान के चरम से भूमि व मिट्टी की रक्षा हो सके।

12. वर्षा आधारित क्षेत्रों में उर्वरक उपयोग की कूट योजना बनाना।

13. यथा संभव उपयुक्त मृदा जल संरक्षण की तकनीकियों को अपनाना जिससे वर्षा के जल को प्रभावी रूप से संरक्षित किया जा सके और फसलों की रासायनिक और कार्बनिक उर्वरकों के प्रति अनुक्रिया बढ़ाई जा सके।

14. नैनों उर्वरकों का उपयोग करना इत्यादि ।

सारांश

फसलों की उत्पादकता को बनाए रखने के लिए यह अति आवश्यक है कि उर्वरकों के उपयोग से पोषक तत्वों का अवक्षय रोका जाए। मृदा उर्वरता से संबंधित समस्याओं को सुलझाने के लिए यह जरूरी है कि कम वर्षा वाली स्थूल गठित भूमि में जैविक पदार्थों को मिलाने हेतु प्राथमिकता दी जाए। फसल के अवशेषों का उपयोग, वृक्षों की हरी पत्तियों पर आधारित पोषक तत्व खनन एवं चक्र, हरी पत्तियों की खाद, कंपोस्ट एवं गोबर की खाद का उपयोग पोषक तत्वों के अवक्षय को रोकने के सक्षम मार्ग हैं। सस्यक्रम में फलीदार फसलों की खेती पर भी जोर दिया जाना चाहिए। फलीदार फसलों के पौधों से पकी हुई फलियों को चुन लेने के बाद उन पौधों को मृदा में मिलाने से मृदा में जैविक पदार्थ को बढ़ाने में सहायता मिलेगी। उर्वरकों और प्राकृतिक पोषक तत्वों का संयुक्त उपयोग वर्षा आधारित खेती में बहुत जरूरी है। तुलनात्मक रूप से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों की अपेक्षा, मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में उर्वरकों से अधिक लाभ होने की संभावना है, लेकिन ऐसी स्थिति में भी जैविक और रासायनिक उर्वरकों से पोषक तत्वों की आपूर्ति और प्रबंधन को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

हालांकि, वर्षा आधारित मृदाओं में उर्वरकों का उपयोग आर्थिक दृष्टि से भी लाभदायक है, फिर भी वर्षा आधारित खेती पर निर्भर किसान अधिक लागत और कम पूंजी के कारण उर्वरकों पर अधिक खर्च नहीं कर पाते हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा किए गए आदर्श जल विभाजकों के प्रबंधन से प्राप्त अनुभवों से ज्ञात हुआ कि यदि किसानों को बैंकों से ऋण दिलाने का प्रावधान हो और उन्हें गांव के ही नजदीकी स्थानों पर उर्वरक उपलब्ध कराने की व्यवस्था उपलब्ध कराई जाए तो वर्षा आधारित फसलों में उर्वरक के उपयोग को अधिक लोकप्रिय बनाने में सहायता मिल सकती है। इस विषय पर सरकारी, गैरसरकारी और स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। इलैक्ट्रानिक और प्रिंट मीडिया तथा स्कूली पाठ्यक्रमों के माध्यम से भूमि, जल और मृदा संसाधनों और उनके संरक्षण और रख-रखाव के महत्व के बारे में जन जागरूकता अभियान भी चलाए जाने चाहिए।

संदर्भ

के एल शर्मा (2008)। बिल्डिंग साइल आर्गेनिक मैटर: ए चैलेंज फार आर्गेनिक फार्मिंग इन रेनफेड एरियाज। इन आर्गेनिक फार्मिंग इन रेनफेड एग्रीकल्चर। (एडीटर्स, बी. वेंकटेश्वर्लू, एस एस बल्लोली एवं वाई.एस. रामकृष्णा)। सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, पीपी. 59-73.

किशोरी लाल शर्मा, हरीश प्रताप सिंह, एवं सुशील कुमार यादव (2002)। वर्षा आधारित क्षेत्रो में जैव पदार्थ की कमी एवं पोषक तत्व असुंतलन समस्याएं एवं समाधान। वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रो में भूमि विकृत्तिकरण की समस्याएं एवं समाधान। (संपादक, हरीश प्रताप सिंह, सुशील कुमार यादव, किशोरी लाल शर्मा एवं अरुण कुमार मिश्र)। सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, पीपी. 54-60.

जे सी कत्याल, के एल शर्मा, नारायण रेड्डी एवं के नीलावेणी (1999)। इंटीग्रेटेड न्यूट्रिएंट मैनेजमेंट स्ट्रेटजीस फार ड्राइलैंड फार्मिंग सिस्टम। इन फिफ्टी इयर्स आफ ड्राइलैंड एग्रीकल्चरल रिसर्च इन इंडिया। (एडीटर्स, एच पी सिंह, वाई एस रामकृष्णा, के एल शर्मा एवं बी वेंकटेश्वर्लू)। सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, पीपी. 357-367.

सी एच श्रीनिवास राव, के एल शर्मा, सुमंत कुंडु, के श्रीनिवास एवं वी वी गभाने (2015)। न्यूट्रिएंट मैनेजमेंट स्ट्रेटजीस इन ड्राइलैंड एग्रीकल्चर। इन प्रोसिडिंग आफ द स्टेट लेवल सेमीनार आन साइल एंड वाटर क्वालिटी ए. कन्सर्न, नवंबर 2-3, 2015. अकोला चैप्टर आफ इंडियन सोसाइटी आफ सॉइल साइंस। पीपी. 14-31.

सी एच श्रीनिवास राव, के एल शर्मा, सुमंत कुंडु एवं के. श्रीनिवास (2015)। मेंटेनेंस आफ साइल क्वालिटी लिमिट एंड रिड्यूसिंग क्रोप लॉसेस ड्यू टू क्लाइमेट चेंज इन स्माल फार्म्स। प्रोसिडिंग आफ द एग्रीकल्चरल साइंस काग्रेस फरवरी 03-06। नेशनल डेयरी रिसर्च इंस्टिट्यूट, करनाल हरियाणा। पीपी. 245 -261.

जे सी कत्याल और के पी आर विट्ठल (1995) साइल इनफोरमेशन एंड साइल डिग्रेडेशन-रिलेटेड कंस्ट्रेंट्स इन इंडियन रेनफेड ज़ोन, इन सस्टेनेबुल डेवलापमेंट आफ ड्राइलेण्ड एग्रीकल्चर इन इंडिया (एडिटर्स-आर पी सिंह) साइंटिफिक पब्लिशर, जोधपुर, पीपी. 33-52.

टक्कर पी एन और विश्वास के के (1999) फर्टिलिटी मैनेजमेंट आफ इंडियन साइल्स, फिफ्टी इयर्स आफ नेचुरल रिर्सोस मैनेजमेंट रिसर्च, आईसीएआर, नई दिल्ली, पीपी. 115-144.

★★★

3

मृदा भौतिक स्वास्थ्य : बाधाएं एवं समाधान

- अशोक कुमार इंदोरिया, के एल शर्मा, सीएच श्रीनिवास राव, के सम्मी रेड्डी, के श्रीनिवास, वी विशा कुमारी, संतराम यादव, के वेंकन्ना एवं जी प्रभाकर

परिचय

मृदा एक जटिल एवं सदैव गतिशील रहने वाली अवस्था/प्रणाली/तंत्र है। मृदा में कई प्रकार के खनिज एवं रसायनों के अलावा सुक्ष्म एवं लघु जीवों का आवास होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार एक आदर्श मृदा के पांच घटक होते है: (अ) खनिज पद्धार्थ, जो चट्टानों/पैतृक पद्धार्थो के टूटने एवं अपघटन से बनते है; (ब) जैविक पद्धार्थ, जो पादपों, जानवरों एवं सुक्ष्म जीवाणुओं के गलन से बनते हैं; (स) जल, जो वातावरण से प्राप्त होता है; (द) वायु, जो वातावरण और पादप जड़ों एवं मृदा जीवाणुओं के श्वसन तथा रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप विद्यमान है; तथा (य) सूक्ष्म एवं लघु जीव।

मृदा संगठनात्मक रूप से मुख्यत: चार घटकों से मिलकर बनती है। इनमें मुख्यत: खनिज पद्धार्थ, जैविक पद्धार्थ, मृदा जल एवं मृदा वायु प्रमुख हैं। समझने की दृष्टि से एक आदर्श मृदा में लगभग 45 प्रतिशत खनिज पद्धार्थ, 5 प्रतिशत जैविक पद्धार्थ, 20-30 प्रतिशत मृदा जल एवं 20-30 प्रतिशत मृदा वायु का संगठन होता है। मृदा में जल एवं वायु की प्रतिशतता सीधे तौर पर प्रभावित होती है अर्थात जल की प्रतिशतता बढ़ने पर वायु की प्रतिशतता घट जाती है और यदि वायु की प्रतिशतता बढ़ती है तो जल की प्रतिशतता घट जाती है।

स्थाई खादय सुरक्षा, कृषि जीविकोपार्जन एवं देश के विकास में उपयुक्त मृदा स्वास्थ्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है अर्थात इनके पूर्ण विकास के लिए इसका उच्चतम स्तर पर होना अति आवयश्क है। मृदा का स्वास्थ्य फसलों की आवश्यकतानुसार जल की उपलब्धता, संतुलित पोषक तत्वों की उपलब्धता, उचित वायु संचार, उचित मृदा तापमान, उचित मृदा जीवाणओं का विकास एवं क्रियाकलाप तथा फसलों को खड़े रहने में मजबूती प्रदान करने वाला होना चाहिए। सामान्यतौर पर मृदा स्वास्थ्य को मृदा की गुणता के समतुल्य माना गया है। परिभाषा के तौर पर, “मृदा गुणता को एक महत्वपूर्ण जीवित पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में इसके द्वारा लगातार कार्य करने की क्षमता को दर्शाता है जो पादप, जानवर एवं मनुष्यों के बीच सामंजस्य कायम रखती है।” ये परिभाषा मृदा प्रबंधन की महत्ताओं को दर्शाती है जिससे भविष्य में आने वाली पीढ़ियों को सहारा या सबलता प्रदान की जा सके। फसलोत्पादन के संद्धर्भ में मृदा स्वास्थ्य, मृदा की उस योग्यता को इंगित करता है जिसमें मृदा विशेष की पूर्ण क्षमता का उपयोग करके, जारी

भूमि प्रबंधनों के तहत फसलोत्पादन कर सके। मृदा शब्दावली के अनुसार, मृदा भूमि की सतह पर पाए जाने वाले खनिज एवं जैविक पदार्थो का असपिंडीत मिश्रण है, जो पौधो की बढ़वार के लिए एक प्राकृतिक माध्यम प्रदान करती है। भूमि की सतह पर उपस्थित इस असपिंडीत खनिज एवं जैविक मिश्रण पर इसके पैतृक पदार्थ, वातावरणीय कारक/घटक (तापमान एवं जल), जीव, तलरूप एवं समय इसको प्रभावित करते हैं तथा ये मृदा अपने पैतृक पद्धार्थो से भौतिक, रासायनिक एवं जैव गुणो में विविधता/विशेषताओं में भिन्न होती है।

मृदा भौतिक सूचकांक/गुण

मृदा स्वास्थ्य/मृदा गुणता के मुख्यतः तीन पहलू हैं: (अ) मृदा भौतिक स्वास्थ्य (ब) मृदा रासायनिक स्वास्थ्य एवं (स) मृदा जैव स्वास्थ्य। इस अध्याय में हम मृदा भौतिक स्वास्थ्य/गुणता पर प्रकाश डालते हुए वर्षा आधारित क्षेत्रों में व्याप्त विभिन्न प्रकार की मृदा भौतिक स्वास्थ्य संबंधी बाधाएं एवं सफल/उचित फसलोत्पादन के लिए इनका समुचित समाधान बता रहे हैं। परिभाषा के तौर पर मृदा भौतिक स्वास्थ्य, मृदा विशेष की उस क्षमता को दर्शाता है जो पादप एवं जारी पारिस्थितिकी तंत्र की जल, वायु संचार एवं इनको खड़े रखने के लिए भौतिक सहारे की आवश्यकता को समय के साथ प्रदान करता है। साथ ही साथ उचित मृदा भौतिक स्वास्थ्य मृदा के गुणों (भौतिक, रासायनिक, जैव) में गिरावट को रोकने एवं इनको पुन: स्थापित करने में मदद करता है। दूसरे शब्दों में मृदा भौतिक स्वास्थ्य मृदा के अन्य समरूप गुणों जैसे कि रसायनिक एवं जैव गुणों में भी अपेक्षित सुधार करके मृदा विशेष में उपयुक्त फसलोत्पादन में बढ़ोत्तरी करने में सहायता करता है। मृदा भौतिक स्वास्थ्य मृदा विशेष के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है। सामान्यत: मृदा भौतिक स्वास्थ्य का आकलन/मूल्यांकन मृदा के विभिन्न भौतिक सूचकांकों/गुणों को नापकर किया जाता है। मृदा भौतिक स्वास्थ्य के विभिन्न सूचकांक सारणी-1 में दर्शाए गए हैं।

सारणी-1 : महत्वपूर्ण मृदा भौतिक सूचकांक/गुण

मृदा भौतिक सूचकांक	विवरण
मृदा बनावट	मृदा में विद्यमान मोटे कणों (सैंड), गाद कणों (सिल्ट) एवं चिकने कणों (क्ले) की प्रतिशतता।
मृदा संरचना	मृदा के विभिन्न कणों को आपस में जुड़ने से मृदा कणों का सम्मुच्य बन जाता है तथा ये सम्मुच्य एक विशेष प्रकार की मृदा संरचना को जन्म देता है, जैसे की तस्तरी, पैरामिड, दानेदारनुमा इत्यादि।
मृदा घनत्वकता	मृदा का प्रति आयतन में उपस्थित वजन, मृदा की कठोरता तथा ढीलापन को दर्शाता है।
मृदा जल क्षारण क्षमता	मृदा की जल को पकड़ कर रखने की क्षमता।
मृदा जल संचालकता	मृदा सतह के नीचे मृदा की विभिन्न परतों द्वारा जल का गमन/संचरण।
सतह जल भेदता	मृदा सतह से जल प्रवेश की स्थिति।
मृदा छिद्रता	मृदा के कणों के मध्य उपस्थित छिद्र स्थान। छिद्र स्थानों के आकारों के आयतन के अनुसार इनको मुख्यत: दो श्रेणियों अर्थात् वृहद एवं लघु छिद्र में बांटा गया है।

मृदा भौतिक सूचकांक	विवरण
मृदा तापमान	मृदा की विभिन्न सतहों/परतों में जारी तापमान।
मृदा सतह पर पपड़ी बनना	वर्षा उपरांत मृदा सतह पर बनने वाली कठोर पपड़ी।
उथली मृदा गहराई	मृदा की गहराई कम होना।
मृदा सतह से निचली सतहों में कठोर परत	मृदा में एक निश्चित गहराई पर एक कठोर परत पाई/बन जाती है जो जड़ों के समुचित विकास को प्रभावित करती है।
मृदा सुघटता	मृदा के सूखने पर मृदा का कठोर बन जाना तथा गीली होने पर अत्यधिक लचीलापन होना मृदा सुघटता की स्थिति को दर्शाता है। इसके अलावा विभिन्न प्रकार के कृषि यंत्रों के पहियों द्वारा भी मृदा सुघटता बढ़ती है।
पादप जल उपलब्धता	पौधों की जड़ों के लिए जल की उपलब्धता, मृदा जल धारण पर निर्भर करती है। सामान्यतौर पर 0.33 बार से 15 बार (bar) वायुमंडलीय दबाव के बीच विद्यमान जल ही पौधों की जडें ग्रहण कर सकती हैं।
वर्षा के दौरान मृदा सतह का अवरूद्ध होना	वर्षा के दौरान मृदा के कणों द्वारा मृदा छिद्रों के बंद होने से मृदा सतह अवरूद्ध हो जाती है।
मृदा दरारें	काली मृदाओं में सूखे के दौरान दरारों का निर्माण होना।

वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाएं

वर्तमान में देश के कुल जिलों में से लगभग 220 जिलों में वर्षा आधारित खेती होती है तथा ये जिले पश्चिम, मध्य, उत्तरी-पूर्वी एवं दक्षिण भागों में विद्यमान हैं। ये जिले मुख्यत: राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, छत्तीसगढ़ एवं पश्चिम बंगाल इत्यादि राज्यों में फैले हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में मुख्यत: काली मृदाएं, लाल मृदाएं, रेतीली मृदाएं, नवीन जलोढ़, जलोढ़ के साथ मिश्रित मृदाएं प्रमुखता से पाई जाती हैं। इन मृदाओं का वर्षा आधारित क्षेत्रों में विस्तार नीचे चित्र-1 में दर्शाया गया है।

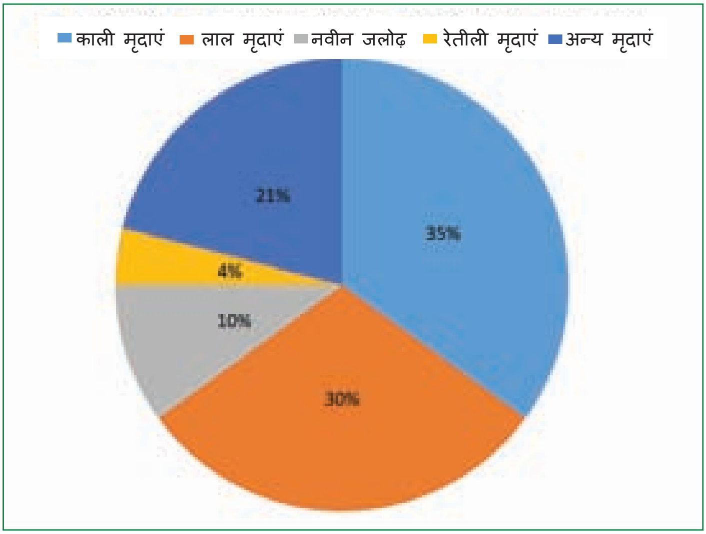

वर्षा आधारित क्षेत्रों में विद्यमान मृदाओं की प्रतिशतता

इन वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में मुख्यत: देश में बोई जाने वाली लगभग सभी फसलों का उत्पादन होता है। इन क्षेत्रों में मुख्य रूप से ज्वार, बाजरा, मक्का, रागी, अरहर, मूंग, मोठ, उड़द, चना, कपास, तिल, चावल, मूंगफली, सोयाबीन, अरंड़ इत्यादि प्रमुख फसलें हैं।

नीचे सारणी-2 में इन क्षेत्रों की प्रमुख फसल प्रणालियां, फसलें, वार्षिक वर्षाजल, फसलों की अवधि, मृदा जल धारण क्षमता तथा फैलाव क्षेत्र दर्शाया गया है।

सारणी-2 : वर्षा आधारित क्षेत्रों की प्रमुख फसल प्रणालियां, फसलें, वार्षिक वर्षाजल उपलब्धता, फसलों की उपज अवधि, मृदा जल धारण क्षमता तथा फैलाव क्षेत्र

फसल प्रणालियां	प्रमुख फसलें	मृदा का प्रकार	वार्षिक वर्षाजल (मि.मी.)	फसल उपज अवधि (दिन)	मृदा जल धारण क्षमता (मि.मी./ मी.)	फैलाव क्षेत्र
मोटे अनाज आधारित	ज्वार, बाजरा, मक्का, अरहर एवं अन्य दालें, कपास तथा मूंगफली	लाल, रेतीली एवं काली मृदाएं	648	50-150	50-200	पश्चिम एवं मध्य क्षेत्र, अर्ध-शुष्क एवं दक्कन पठारी क्षेत्र
मूंगफली आधारित	मूंगफली, धान, कपास एवं दालें	लवणीय एवं क्षारीय काली मृदाएं तथा लाल मृदाएं	684	90-150	50-150	गुजरात, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश
धान आधारित	धान, ज्वार, अरहर और मूंगफली	लाल, जलोढ़, नवीन जलोढ़ तथा लाल मृदाओं से मिलती जुलती मृदाएं	1166	120-210	50-200	उत्तरी मैदान क्षेत्र, छत्तीसगढ़, महानदी के उप-आर्द्र पूर्वी क्षेत्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और ओडिशा
कपास आधारित	कपास, गेहूं, चना तथा ज्वार	काली मृदाएं	795	120-150	100-250	दक्कन के पठारी क्षेत्र तथा गर्म, आर्द्र शुष्क एवं उप आर्द्र क्षेत्र
सोयाबीन आधारित	सोयाबीन, गेहूं, चना तथा ज्वार	काली मृदाएं तथा इनसे मिलती जुलती मृदाएं	1058	120-180	120-250	मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश की मध्य केंद्रीय भूमि, मालवा गुजरात के मैदानी तथा काठियावार प्रायद्वीपीय क्षेत्र

स्रोत: सिंह, 1998

इन क्षेत्रों की मृदाओं में विकृत्तिकरण, टिकाऊ कृषि एवं जीवन यापन हेतु संभावित खतरा है। मृदा गुणता एवं इसकी उत्पादन क्षमता में गिरावट मृदा विकृत्तिकरण की अवस्था को दर्शाता है। हालांकि मृदा भौतिक गुणों में विकृत्तिकरण वर्षा आधारित एवं सिंचित दोनों ही क्षेत्रों में व्याप्त है। एक अनुमान के अनुसार देश में लगभग 90 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल की मृदा एक या अनेक प्रकार के मृदा भौतिक गुणों में विकृत्तिकरण से ग्रसित है। नीचे सारणी-3 में देश के कृषि क्षेत्र में व्याप्त मुख्य मृदा-भौतिक बाधाएं, क्षेत्रफल एवं प्रभावित राज्य दिए गए हैं:-

सारणी-3 : मृदा भौतिक गुणों की बाधाएं, इनका क्षेत्रफल एवं इनसे प्रभावित राज्य

मृदा भौतिक बाधाएं	क्षेत्रफल (हेक्टेयर)	प्रभावित राज्य
उथली गहराई	26.40	आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, केरल, गुजरात
मृदा कठोरता	21.57	आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार
तीव्र जल परिचालकता	13.75	राजस्थान, पश्चिम बंगाल, गुजरात, पंजाब, तमिलनाडु
उप सतह से कठोर परत	11.31	महाराष्ट्र, पंजाब, बिहार, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु
सतह पर पपडी बनना	10.25	हरियाणा, पंजाब, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, गुजरात
अस्थाई जल भराव	6.24	मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, गुजरात, केरल, ओडिशा

स्रोत: पैन्यूली एवं यादव, 1988

मृदा भौतिक बाधाएं

ॅवर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में विभिन्न प्रकार की भौतिक बाधाएं पाई जाती हैं जो उन क्षेत्रों में उचित फसलोत्पादन में गिरावट की प्रमुख वजह बनती है। इन क्षेत्रों में निम्नलिखित प्रमुख भौतिक मृदा बाधाएं हैं:-

मृदा बनावट संबंधी बाधाएं

वर्षा आधारित क्षेत्रों में काली मृदाओं की बहुतायतता पाई गई है तथा ये मृदाएं कुल वर्षा आधारित क्षेत्रों के 35 प्रतिशत हिस्से में पाई जाती है। मृदा बनावट के अनुसार काली मृदाओं में नैसर्गिक रूप से चिकने कणों (क्ले) की प्रतिशतता अधिक होने से ये मृदाएं वर्षा के दौरान अधिक लचीली तथा सूखे के दौरान कठोर हो जाती हैं। इन क्षेत्रों की दूसरी महत्वपूर्ण मृदाओं में लाल मृदाएं हैं। इन मृदाओं को कमजोर बनावट वाली मृदाएं भी कहा जाता है क्योंकि इन मृदाओं की ऊपरी सतह में विद्यमान मृदा के चिकने कण वर्षा जल के साथ बहकर मृदा की निचली सतहों में चले जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप ऊपरी मृदा सतह में मोटे कणों की बहुतायतता बढ़ जाती है जो कमजोर/भुरभुरी मृदा बनावट को जन्म देते हैं। कालांतर में ये भुरभुरी और कमजोर मृदा बनावट फसलोत्पादन में गिरावट का महत्वपूर्ण कारण बनती है। इनके अलावा वर्षा आधारित क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं में भी चिकने कणों की प्रतिशतता कम पाई जाती है जिससे इनकी बनावट भी भुरभुरी और कमजोर होती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की नवीन जलोढ़ मृदाओं

के प्रोफाइल का पूर्ण विकास नही हो पाया है इसलिए बनावट की दृष्टि से ये मृदाएं भी कमजोर श्रेणी में ही आती हैं। अत: वर्षा आधारित क्षेत्रों की विभिन्न प्रकार की मृदाएं बनावट की दृष्टि से कमजोर होती है जो फसलोत्पादन में गिरावट की प्रमख वजह है।

मृदा संरचना संबंधी बाधाएं

एक सुदृढ़, विकसित एवं स्थाई मृदा संरचना, मृदा के विभिन्न भौतिक गुणों के आपसी संबंधों को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मृदा संरचना मृदा के उपयोग एवं इसके प्रबंधन में महत्वपूर्ण भमिका अदा करती है। अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार की मृदा संरचना से जुड़ी बाधाएं व्याप्त है तथा ये बाधाएं मृदा बनावट, तलरूपों एवं वर्षा वितरण से जुड़ी हुई है, जैसे कि कमजोर मृदा संरचना की वजह से इन क्षेत्रों की जलोढ़, नवीन जलोढ़ रेतीली, लाल मृदाओं में सतह पर वर्षा तदोपरांत पपड़ी का निर्माण होता है। इसके अलावा कमजोर मृदा संरचना की वजह से काली मृदाओं की मृदा जल संचालकता दर कम होती है। मृदा संरचना में जलवायुवीय कारक जैसे जल एवं तापमान अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। चूंकि इन शुष्क जलवायुवीय क्षेत्रों में मृदा में रासायनिक क्रियाओं की गति धीमी रहने के कारण मृदा के चिकने कणों के बनने की प्रक्रिया धीमी रहती है। इसके अलावा इन क्षेत्रों में मृदा संरचना में गिरावट की प्रमुख वजह कमजोर जुताई क्रियाएं तथा जैविक कार्बन अंश में हो रही निरंतर गिरावट भी प्रमुख है।

मृदा सतह पर पपड़ी बनना

वर्षा आधारित क्षेत्रों में वर्षा के उपरांत मृदा सतह पर कठोर परत/पपड़ी बनना सफल फसलोत्पादन में गंभीर रुकावट है। ये समस्या वर्षा आधारित क्षेत्रों की कमजोर मृदा बनावट वाली लाल व रेतीली मृदाओं में ज्यादा विकराल रूप धारण कर लेती है। जिसकी मुख्य वजह मृदा की ऊपरी सतह में मृदा के चिकने कणों की प्रतिशतता में कमी तथा कम जैविक कार्बन अंश का होना है। ये कठोर परत विभिन्न फसलों के बीजांकुर के लिए एक तरह से यांत्रिक बाधा उत्पन्न करती है। विशेषकर बीजांकुर के निकलने की अवस्था पर अगर कठोर परत बन गई है तो बीजांकुर मुड़ या टेढ़े हो जाते हैं जिसके कारण इनका विकास अवरूद्ध हो जाता है। इस प्रकार इन क्षेत्रों में बोई जाने वाली फसलें: बाजरा, रागी, ग्वार, मक्का इत्यादि को प्रभावित करती है। ये समस्या वर्षा आधारित क्षेत्रों की उन मृदाओं में अधिक देखी गई है, जिनमें मृदा के चिकने कणों की प्रतिशतता 10 प्रतिशत से कम है तथा बुवाई के 48 घंटो के अंदर वर्षा हो जाती है। कई बार ये समस्या 20-40 प्रतिशत चिकने कणों की प्रतिशतता वाली मृदाओं में भी देखी गई है। ये समस्या आंध्र प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा पश्चिम बंगाल राज्यों में ज्यादा व्याप्त है।

मृदा का अधिक लचीला तथा कठोर होना

वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं में चिकने कणों (क्ले) की प्रतिशतता अधिक होने पर ये मृदाएं थोड़ी सी वर्षा होते ही लचीली हो जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप इन मृदाओं में

विभिन्न कृषि कार्य करना न केवल कठिन ही हो जाता है अपितु ये मृदाएं कृषि उपकरणों के साथ भी चिपक जाती है। अत: इन मृदाओं में वर्षा के दौरान कार्य करना अत्यंत कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप इन मृदाओं में कार्य करने की अवधि सीमित हो जाती है और फसलोत्पादन में गिरावट आती है। इसके विपरीत सूखा आने पर अधिक चिकने कणों की प्रतिशतता के फलस्वरूप मृदा कण एक दूसरे से मजबूती से जुड जाते हैं जिन्हें तोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है तथा जुताई के दौरान ये मृदाएं बडे-बडे ढेलों के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इन मृदाओं में जुताई क्रियाओं के लिए अधिक क्षमता/ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है।

इसी प्रकार वर्षा आधारित क्षेत्रों की लाल मृदाओं में अधिक लोहा-एल्युमिनियम के आक्साइड की अधिकता होने से ये मृदाएं भी जल की उपस्थिति में अधिक लचीली/नरम हो जाती है तथा सूखे के दौरान अधिक कठोर हो जाती है। उपरोक्त दोनों ही परिस्थितियों में कृषि कार्य करना लगभग कठिन हो जाता है। साथ ही साथ इन दोनों प्रकार की मृदाओं (काली एवं लाल) में दोनों ही परिस्थितियों (लचीला और कठोर) में मृदा वायु संचरण में भी गिरावट आती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली एवं लाल मृदाओं का अधिक लचीला एवं कठोर होना फसलोत्पादन में गिरावट का प्रमुख कारण है।

दरारे पड़ना

ये समस्या वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं में व्याप्त है। इन मृदाओं में सूखे के दौरान छोटी-बड़ी दरारें बन जाती है। ये दरारें आकार में 10-15 सें.मी. से अधिक चौड़ी हो सकती है तथा इनकी लंबाई 1-2 मीटर तक हो सकती है। इसके परिणामस्वरूप सूखे के दौरान विभिन्न फसलों की जड़ें दिखाई देने लगती है तथा दरारों से ज्यादा वाष्पीकरण होने से मृदा जल में तीव्र गिरावट आती है। परिणामस्वरूप फसलोत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

मृदा की निचली सतहों में कठोर परत होना

वर्षा आधारित क्षेत्रों की ज्यादातर मृदाओं में नैसर्गिक रूप से भूमि की निचली परतों में कंकर पत्थर तथा विघटित चट्टानों के टुकडों की एक कठोर परत पाई जाती है। इस कठोर परत को आम बोलचाल की भाषा में मोर्रम परत कहा जाता है। इसके अलावा इन मृदाओं में सतह की मृदा में विद्यमान चिकने कण तथा जैविक कार्बन अंश घुलकर/बहकर निचली सतहों में जाकर एकत्र हो जाते हैं तथा एक कठोर परत में परिवर्तित हो जाते हैं। उपरोक्त परिस्थितियों में विभिन्न फसलों की जड़ों का विकास पूर्ण नहीं हो पाता तथा ये जड़ें सीमित मृदा प्रोफाइल में विद्यमान जल एवं पोषक तत्वों को ग्रहण नहीं कर पाती। परिणामस्वरूप फसलोत्पादन में तीव्र गिरावट आती है। इसके अलावा वर्षा आधारित क्षेत्रों में किसानों द्वारा साल दर साल एक ही प्रकार के कृषि उपकरणों का प्रयोग करने से मृदा में एक निश्चित गहराई पर (जहां पर लगातार कृषि उपकरण टकराता है) कठोर परत बन जाती है। ये परत जल को निचली सतहों में जाने से रोकती है। परिणामस्वरूप तीव्र वर्षा के दौरान जल बहाव एवं मृदा कटाव को बढ़ावा मिलता है तथा जड़ों का पूर्ण विकास भी बाधित होता है।

अनुपयुक्त मृदा घनत्वकता

वर्षा आधारित क्षेत्रों की लाल मृदाओं में अकसर अधिक मृदा घनत्वकता होने की वजह से इन क्षेत्रों में बोई जाने वाली विभिन्न फसलों की जड़ों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है जिसके परिणामस्वरूप उपज में तीव्र गिरावट होती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की लाल मृदाओं की मृदा घनत्वकता कई बार 1.8 मेगा ग्राम प्रति घन मीटर से भी अधिक होती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं को छोड़कर अन्य मृदाओं की मृदा घनत्वकता 1.44 से 1.80 मेगा ग्राम प्रति घन मीटर के बीच पाई जाती है। साधारणत: मृदा घनत्वकता 1.40 मेगा ग्राम प्रति घन मीटर से अधिक है तो ये फसलों की जडों के अपेक्षित विकास को अवरूद्ध कर सकती है। ये अत्यधिक मृदा घनत्वकता बृहत मृदा छिद्रता में गिरावट का कारण बनती है। परिणामस्वरूप मृदा जल संचालकता तथा वायु के आदान-प्रदान में रुकावट पैदा करती है।

अनुपयुकत मृदा जल संचालकता

वर्षा आधारित क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं में अधिक मृदा जल संचालकता दर की वजह से वर्षा जल तीव्र गति से मृदा की निचली सतहों में चले जाने से जड़ों की पहुंच से दूर चला जाता है। इसके विपरीत वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं में कम मृदा जल संचालकता की वजह से वर्षा जल धीरे-धीरे मृदा में प्रवेश करता है तथा तीव्र वर्षा के दौरान ये वर्षा जल भूमि की सतह पर लंबे समय तक रुकता है जो जल बहाव एवं मृदा कटाव का कारण बनता है। इसी प्रकार वर्षा आधारित क्षेत्रों की लाल मृदाओं में भी अनुपयुक्त मृदा जल संचालकता एवं सतह के नीचे विद्‌यमान कठोर परत जल बहाव एवं मृदा कटाव का प्रमुख कारण बनती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं में तीव्र मृदा जल संचालकता की वजह से वर्षा समाप्ति उपरांत फसलों की जड़ों के लिए जल उपलब्ध नहीं हो पाता। इसके विपरीत वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं में कम मृदा जल संचालकता की वजह से मृदा सतह पर जल भराव होने से ज्वार, मक्का, बाजरा, ग्वार इत्यादि फसलों के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। इसके साथ ही साथ खेत के निचले हिस्सों में लंबे समय तक जल जमाव धान की फसल के लिए भी घातक सिद्ध होता है।

मृदा जल धारण क्षमता

मृदा विशेष की जल धारण क्षमता मुख्यत: मृदा के चिकने कणों की प्रतिशतता तथा मृदा जैविक कार्बन अंश पर निर्भर करती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं को छोडकर अन्य मृदाओं में उपरोक्त दोनों घटक (मृदा चिकने कण एवं मृदा जैविक कार्बन प्रतिशतता) कम होने से इन मृदाओं की मृदा जल धारण क्षमता कम पाई जाती है। कमजोर मृदा जल धारण क्षमता की वजह से इन क्षेत्रों में वर्षा उपरांत थोड़ा सा सूखा आने पर फसलें सूखने लगती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं में अधिक सोडियम आयन की प्रतिशतता होने से भी पादप जल उपलब्धता में कमी आती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की विभिन्न मृदाओं की जल धारण क्षमता में योगदान देने वाले विभिन्न मृदा कणों के परस्पर सह संबंध को सारणी-4 में दर्शाया गया है।

सारणी-4 : वर्षा आधारित क्षेत्रों की विभिन्न मृदाओं की जल धारण क्षमता में योगदान देने वाले विभिन्न मृदा कणों का परस्पर सह संबंध

मृदा का प्रकार	मृदा गुण	मृदा की जल धारण क्षमता		
		0.33 बार (bar) वायुमंडलीय दबाव पर	15 बार (bar) वायुमंडलीय दबाव पर	पादप जल उपलब्धता
काली मृदाएं और इनसे मिलती-जुलती मृदाएं	रेत के कण	-0.79[सं]	-0.77[सं]	-0.63[सं]
	गाद के कण	0.04[असं]	-0.07[असं]	0.22[असं]
	चिकने कण	0.87[सं]	0.90[सं]	0.60[सं]
लाल मृदाएं/पर्वतीय मृदाएं	रेत के कण	-0.49[सं]	-0.89[सं]	0.25[असं]
	गाद के कण	0.16[असं]	0.36[असं]	-0.16[असं]
	चिकने कण	0.48[सं]	0.82[सं]	-0.20[असं]
जलोढ़/नवीन जलोढ़	रेत के कण	-0.96[सं]	-0.73[सं]	-0.87[सं]
	गाद के कण	0.78[सं]	0.72[सं]	0.62[सं]
	चिकने कण	0.89[सं]	0.61[सं]	0.84[सं]
रेतीली मृदाएं	रेत के कण	-0.99[सं]	-0.96[सं]	-0.98[सं]
	गाद के कण	0.95[सं]	0.94[सं]	0.97[सं]
	चिकने कण	0.99[सं]	0.96[सं]	0.98[सं]

सं = सह संबंधन दर्शाता है तथा असं = असंबंधन दर्शाता है।

स्रोत : सीएच श्रीनिवास राव एवं अन्य, 2009

उपरोक्त सारणी के आंकडे दर्शाते हैं कि मृदा के चिकने कणों की प्रतिशतता मृदा जल धारण क्षमता के साथ घनात्मक सह संबंध रखता है। मृदा में चिकने कणों की प्रतिशतता बढ़ने पर मृदा जल धारण क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है। इसके विपरीत रेत कण तथा मृदा जल धारण क्षमता में ऋणात्मक सह संबंध पाया गया तथा मृदा में रेत कण बढ़ने से मृदा धारण क्षमता में गिरावट आती है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं तथा लाल एवं आक्सीसोल मृदाओं में गाद कणों की मृदा जल धारण क्षमता पर कमजोर सह संबंध पाया गया तथा ये कण उन मृदाओं की जल धारण क्षमता पर कोई प्रभाव नही डालते हैं। इसके विपरीत रेतीली एवं जलोढ़/नवीन जलोढ़ मृदाओं में गाद कणों की प्रतिशतता एवं जल धारण क्षमता में परस्पर धनात्मक सह संबंध पाया गया है, अर्थात इन क्षेत्रों की मृदाओं में कुछ हद तक गाद कण मृदा धारण क्षमता को बढ़ाते हैं। अनुसंधान आंकड़े दर्शाते हैं कि वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं में सबसे ज्यादा (12-13 प्रतिशत) पादप जल उपलब्धता होती है। जलोढ़ एवं नवीन जलोढ़ की पादप जल उपलब्धता लगभग 10-11 प्रतिशत, लाल मृदाओं एवं आक्सीसोल की पादप जल उपलब्धता 6-7 प्रतिशत

तथा रेतीली मृदाओं की पादप जल उपलब्धता 5-6 प्रतिशत तक होती है। सूखा पड़ने पर इन क्षेत्रों में ज्यादा प्रभाव रेतीली, लाल एवं आक्सीसोल, जलोढ़ एवं नवीन जलोढ़ तथा काली मृदाओं पर क्रमश: घटते हुए क्रम में देखा गया है।

जल बहाव एवं मृदा कटाव

भारत के दक्कन के पठारी क्षेत्रों की मृदाओं में सामान्यत: वर्षा के दौरान जल बहाव एवं मृदा कटाव की समस्या देखी गई है, जिसकी मुख्य वजह भूमि की ढ़लान वाली सतह का होना, भूमि की सतह की जल भेदन क्षमता का कम होना तथा भूमि सतह पर किसी भी प्रकार के जैविक आवरण का न होना प्रमुख है। इसकी वजह से इन मृदाओं में 10-12 प्रतिशत जल बहाव गुणक तथा 10-14 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष मिट्टी का बहाव देखा गया है। अनुसंधान परिणाम दर्शाते हैं कि वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं में लगभग 10 प्रतिशत वर्षाजल तथा लाल मृदाओं में लगभग 25 प्रतिशत वर्षाजल व्यर्थ में चला जाता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में ढलानों के ऊपरी भागों से, वर्षा के दौरान वर्षाजल एवं इसमें घुलनशील पोषक तत्व बहकर खेत के निचले ढलान हिस्सों में इकट्ठा हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप ढलानों के ऊपरी हिस्से सूखे के दौरान तीव्रता से प्रभावित होते हैं तथा फसल उपज में गिरावट आती है। इसके विपरीत ढलानों के निचले हिस्सों में जमा अस्थाई जल भराव विभिन्न फसलों के लिए घातक सिद्ध होता है। कई बार ये जल भराव एक मीटर तक देखा गया है, जो धान की फसल के लिए भी नुकसानदेह साबित हो सकता है।

उथली गहराई वाली मृदाएं

ये समस्या वर्षा आधारित क्षेत्रों की लाल मृदाओं में अधिक देखी गई है। कई बार इन मृदाओं की गहराई 10-15 सेंटीमीटर तक ही सीमित होती है, जिसके परिणामस्वरूप फसल की जड़ों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। वहीं दूसरी तरफ किसानों के पास फसल चयन के सीमित विकल्प बचते हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों की नवीन जलोढ़ मृदाओं में भी मृदा प्रोफाइल का समुचित विकास नहीं देखा गया है। इसके परिणामस्वरूप ये मृदाएं सफल फसलोत्पादन में रुकावट पैदा करती है।

अधिक मृदा तापमान

चूंकि वर्षा आधारित क्षेत्रों की ज्यादातर मृदाएं शुष्क एवं अर्ध-शुष्क जलवायुवीय क्षेत्रों में पाई जाती हैं, अत: इन क्षेत्रों में व्याप्त अधिक वायुमंडलीय तापमान, मृदा तापमान बढ़ाने में महत्वपूर्ण भमिका निभाता है। इन ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में अकसर देखा गया है कि जुताई के बाद मृदा की ऊपरी सतह 5 सेंटीमीटर परत में तापमान 40^0 सेंटीग्रेड से भी ज्यादा तथा ऊपर की 1 सेंटीमीटर परत में तो ये 45^0 सेंटीग्रेड से ज्यादा हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि ये अत्यधिक मृदा तापमान बीजांकुर से लेकर फसल बढ़वार के साथ ही साथ मृदा जीवाणुओं के क्रियाकलापों पर विपरीत प्रभाव डालता है। इसके अलावा इन क्षेत्रों में अनावश्यक व असमय जुताई क्रियाएं मृदा सतह को बार-बार खोल देती है, जिसके परिणामस्वरूप तीव्र वाष्पीकरण की वजह से मृदा जल में गिरावट आती है और मृदा तापमान बढ़ने लगता है। दूसरे शब्दों में

वर्षा आधारित क्षेत्रों में व्याप्त अत्यधिक मृदा तापमान समुचित फसल उत्पादन में रुकावट पैदा करता है।

असंतुलित मृदा छिद्रता

सफल फसलोत्पादन में मृदा छिद्रता की अहम भूमिका होती है क्योंकि मृदा छिद्रों द्वारा ही जल, वायु एवं पोषक तत्वो का संचार मृदा में होता है। मुख्यत: मृदा छिद्रों को आकार के अनुसार मोटे तौर पर दो भागों में बांटा गया है। वृहद छिद्र (आकार 0.06 मिलीमीटर से अधिक) तथा लघु छिद्र (आकार 0.06 मिलीमीटर से कम)। फसलोत्पादन में इन दोनों प्रकार के छिद्रों का संतुलित समावेश होना चाहिए। मृदा में व्याप्त वृहद छिद्र मृदा जल संचालकता में अहम भूमिका निभाते हैं। इसके विपरीत लघु छिद्र मृदाजल को पकड़ कर रखने में सहायता करते हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं में वृहद छिद्रता अधिक होने से वर्षाजल शीघ्रता से मृदा की निचली सतहों में चला जाता है और फसलों की जड़ों से दूर हो जाता है। इस प्रकार वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं में इस छिद्रता की कमी से वर्षाजल लंबे समय तक भूमि की सतह पर रुकता है जो बाद में जल बहाव एवं मृदा कटाव को बढ़ाता है। इन क्षेत्रों की मृदाओं में मृदा छिद्रता का उपयुक्त न होना फसलोत्पादन में गिरावट का कारण बनता है।

मृदा भौतिक बाधाओं का समाधान

जैसा कि सर्वविदित है कि मृदा भौतिक बाधाओं की वजह से फसलोत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अत: नीचे सुझाए गए समाधान अपनाकर इन बाधाओं से छुटकारा पाया जा सकता है:-

मृदा संरचना सुधारने हेतु समाधान

कमजोर मृदा संरचना की वजह से इन क्षेत्रों की मृदाओं में वर्षा उपरांत सतह पर कठोर परत/पपड़ी बन जाती है जो विभिन्न फसलों के बीजांकुर तथा फसल वृद्धि को प्रभावित करती है। इस समस्या के समाधान के लिए अनुसंधान दर्शाते हैं कि बीज कतारों में गोबर की खाद डालने से मृदा सतह पर पपडीपन में गिरावट आती है। हिसार, (हरियाणा) के वर्षा आधारित क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं पर किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि 4 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद बीज कतारों में डालने से बाजरा एवं कपास के बीजांकुर की दर में अपेक्षित बढ़ोत्तरी देखी गई। एक अन्य अनुसंधान के अनुसार इन्हीं क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं में 1 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद बीज कतारों में तथा 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गेहूं का भूसा खेत में बिखेरने से बाजरा के बीजांकुर में क्रमश: 30 तथा 33 प्रतिशत तक बढ़ोत्तरी देखी गई। इसी अनुसंधान में आगे बताया गया है कि 2 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गेहूं का भूसा खेत में डालने से बाजरा एवं कपास की बीजांकुर दर में बढ़ोत्तरी (2-3 गुणा) देखी गई। वर्षा आधारित क्षेत्रों की लाल चिलका मृदाओं में धीमी गति से गलने वाले फसलावशेष जैसे धान का भूसा, नारियल की जटा, गेहूं का भूसा इत्यादि डालने से सतह पर बनने वाली पपडी में गिरावट आती है। इन क्षेत्रों में किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि सतह पपड़ीकरण को कम करने में गोबर की खाद (10 टन/हेक्टेयर) > नारियल जटा (20 टन/हेक्टेयर) > मूंगफली छिलका का पाउडर (5 टन/हेक्टेयर) >

काली मृदाओं में जिप्सम (4 टन/हेक्टेयर) > धान का भूसा (5 टन/हेक्टेयर) कारगर सिद्ध हुए हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों की लाल मृदाओं में अकसर ऊबड़-खाबड़/ढलानी सतह होने से परंपरागत बिजाई मशीनों द्वारा बीज निश्चित गहराई पर नहीं गिरता है। इसके साथ ही साथ बिजाई के दौरान मृदा सतह के खुल जाने से इन क्षेत्रों में जारी अधिक तापमान एवं तेज हवाओं की वजह से मृदा नमी में शीघ्रता से गिरावट आती है। परिणामस्वरूप जो बीज मृदा में गहराई पर गिर गए हैं, वे सतह पर पपड़ी बनने की वजह से नहीं निकल पाते तथा जो बीज ऊपरी सतह के पास गिर गए हैं वे मृदा में तीव्र नमी गिरावट की वजह से अंकुरित नहीं हो पाते हैं।

अत: उपरोक्त दोनों विपरीत परिस्थितियों से निजात दिलाने के लिए भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (क्रीडा), हैदराबाद के अनुसंधान दर्शाते हैं कि परंपरागत बिजाई मशीन के बजाए "प्रिसिजन प्लांटर" से बिजाई करने से अरहर, अरंडी तथा मक्का के बीजांकुर दर में 10-11 प्रतिशत तक की वृद्धि देखी गई। इन क्षेत्रों में जहां टीला एवं कूंड पद्धत्ति में फसल ली जाती है वहां पर हमेंशा बीजाई टीले के खड्डों/ढाल पर करनी चाहिए क्योंकि वर्षा के साथ मृदा के बारीक कण बहकर कुंड में जमकर पपड़ी बनाते हैं। इसके अलावा अगर संभव हो तो हल्के कृषि यंत्रों द्वारा भी सतह पर बनी पपड़ी को तोड़ना चाहिए जिससे बीज अंकुरण दर में वृद्धि हो सके।

मृदा-जल संबंधित गुणों में सुधार हेतु समाधान

मृदा में जल से संबंधित गुणों में सुधार लाने के लिए सर्वप्रथम यह ध्यान रखना है कि जहां तक संभव हो सके, ज्यादा से ज्यादा वर्षा जल भूमि सतह से मृदा में प्रवेश करे तथा प्रवेश किया हुआ जल लंबे समय तक मृदा द्वारा धारण किया जा सके जिससे पौधों की जड़ों के लिए लंबे समय तक जल उपलब्ध हो सके। मृदा जल संबंधित गुणों में मुख्यत: मृदा सतह जल प्रवेश दर, मृदा जल धारण क्षमता एवं मृदा जल संचालकता दर प्रमुख हैं। उपरोक्त मृदा जल गुणों में सुधार लाने के लिए इन क्षेत्रों की मृदाओं में निरंतर जैविक खादों का प्रयोग अधिक से अधिक करना चाहिए। इसके प्रयोग से मृदा संरचना में सुधार होने से वर्षा के दौरान वर्षा बूंदों के द्वारा मृदा कणों के बिखराव में कमी के कारण मृदा सतह में अवरुद्धतापन नहीं होने से वर्षा जल शीघ्र रूप से मृदा में प्रवेश करेगा। इसके परिणामस्वरूप सतह से जल बहाव एवं मृदा कटाव में भी गिरावट आएगी। मृदा सतह से वर्षा जल प्रवेश बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार की बिजाई क्रियाएं जैसे कि कूंड़ एवं नाली, उत्थित क्यारियां, लंबी क्यारियां, चौकोर क्यारियां इत्यादि अपनानी चाहिए।

वर्षा आधारित क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं में मृदा जल गुणों को बढ़ाने के लिए सतह पर बिजाई पूर्व वजनी रोलर (500 किलोग्राम से 2000 किलोग्राम) घुमाने से मृदा घनत्वकता बढ़ने तथा मृदा छिद्रों में गिरावट आने से मृदा जल संचालकता दर में गिरावट आती है और मृदा जल धीरे-धीरे नीचे की सतहों में चला जाता है तथा लंबे समय तक पौधों की जड़ों के लिए उपलब्ध रहता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं पर किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि 500 किलोग्राम वजनी रोलर को दो बार घुमाने से मृदा की विभिन्न सतहों (0-15 सेंटीमीटर तथा 15-30 सेंटीमीटर) में बिना रोलर घुमाई गई मृदाओं की अपेक्षा लगभग 15-33 प्रतिशत मृदा में ज्यादा नमी पाई गई (सारणी-5)।

सारणी-5 : लोबिया की फसल में सतह पर दो बार रोलर घुमाने से मृदा जल नमी प्रतिशतता (कोष्ठक के बाहर दी गई संख्याएं) तथा मृदा जल संचालकता (सेंटीमीटर प्रति घंटा) (कोष्ठक के अंदर दी गई संख्याएं) पर प्रभाव

मृदा गहराई (सेंटीमीटर)	रोलर घुमाने के तुरंत बाद		फूल बनने की अवस्था पर		कटाई के समय	
	बिना रोलर	500 कि.ग्रा. वजनी रोलर को दो बार घुमाने पर	बिना रोलर	500 कि.ग्रा. वजनी रोलर को दो बार घुमाने पर	बिना रोलर	500 कि.ग्रा. वजनी रोलर को दो बार घुमाने पर
0-15	9.4(10.4)	11.6(8.9)	10.0(10.6)	12.6(9.1)	7.2(10.7)	9.1(9.3)
15-30	9.9(9.6)	12.1(7.7)	10.6(9.7)	12.9(7.4)	7.7(9.9)	9.9(7.5)
30-45	10.8(8.7)	12.0(7.4)	11.0(8.8)	12.7(7.6)	7.8(8.9)	9.5(7.7)

स्रोत: इंदोरिया एवं अन्य, 2006

इस तकनीक से लोबिया के बीज एवं भूसा उत्पादन में क्रमश: 23 प्रतिशत तथा 10 प्रतिशत तक अधिक उपज प्राप्त हुई। अन्य अनुसंधानकर्ताओं ने भी विभिन्न फसलों जैसे कि जौ, ग्वार, कपास, सरसों, बाजरा तथा गेहूं की उपज में क्रमश: 34, 25, 7, 13, 31 तथा 32 प्रतिशत तक वृद्धि देखी गई। अनुसंधान दर्शाते हैं कि मृदा सतह पर रोलर घुमाने से मृदा घनत्वकता में वृद्धि होने से और मृदा जल संचालकता में गिरावट आने से मृदा नमी में बढ़ोत्तरी होती है जो फसलोत्पादन में वृद्धि करती है। ये तकनीक उन मृदाओं के लिए अत्यंत उपयोगी है जिनकी मृदा जल संचालकता दर अधिक है। हालांकि इस तकनीक का असर काली मृदाओं में कम देखा गया है। इसी दिशा में आगे के अनुसंधान दर्शाते हैं कि रेतीली मृदाओं में 2 प्रतिशत की दर से चिकनी मिट्टी मिलाने के बाद अगर वजनी रोलर घुमाए जाएं तो विभिन्न फसलों की उपज में अपेक्षित बढ़वार होती है। इस प्रक्रिया में जहां मृदा भौतिक गुणों (मृदा घनत्वकता तथा मृदा जल संचालकता) में सुधार होने के साथ ही साथ मृदा जल धारण क्षमता में भी अपेक्षित वृद्धि होती है। इस तकनीकी का विभिन्न किसानों के खेतों पर सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया जा चुका है।

इसके अलावा मृदा में जल धारण क्षमता बढ़ाने के लिए तालाब की गाद भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की लाल एवं रेतीली मृदाओं पर किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि इन मृदाओं में 2 प्रतिशत की दर से तालाब की गाद मिलाने से विभिन्न फसलों की उपज में 10 गुणा तक वृद्धि हो सकती है तथा 60 टन प्रति हेक्टेयर की दर से तालाब की गाद मिलाने से लगभग 2 प्रतिशत मृदा नमी में वृद्धि देखी गई है। ये बढ़ी हुई नमी कई बार सूखे के दौरान फसलों को बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। विगत कुछ वर्षों के अनुसंधान दर्शाते हैं कि मृदा की जल धारण क्षमता को 'हाइड्रोजल' के प्रयोग से भी बढ़ाया जा सकता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि इन मृदाओं में 'हाइड्रोजल' का

प्रयोग करने से मृदा के विभिन्न भौतिक गुणों (मृदा घनत्वकता, मृदा संरचना, सतही पपड़ीपन, मृदा संचालकता) में अपेक्षित सुधार कर मृदा की जल धारण क्षमता में आशातीत बढ़ोत्तरी करता है। इन 'हाइड्रोजल' के प्रयोग से 40-70 प्रतिशत तक जल की बचत की जा सकती है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि 'हाइड्रोजेल' के प्रयोग से फसलों के सूखा सहन करने की अवधि को 3-5 दिनों तक बढ़ाया जा सकता है। कई बार ये 3-5 दिन की अवधि फसल को सूखे से बचाने के लिए वरदान साबित हो सकती है। इस दिशा में भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (क्रीडा), हैदराबाद द्वारा किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि इन हाइड्रोजेल के प्रयोग से मक्का एवं टमाटर की फसल में अपेक्षित बढोत्तरी देखी गई है। अत: इन क्षेत्रों में 'हाइड़ोजेल' का प्रयोग एक वरदान के रूप में साबित हो सकती है। मृदा जल धारण क्षमता बढ़ाने में जैविक खादों का एक बड़ा योगदान होता है क्योंकि ये खादें मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैव गुणों में अपेक्षित सुधार करते हैं। अनुसंधान दर्शाते हैं कि जैविक खादों से मृदा जल संचालकता, मृदा सतह जल भेदता, मृदा संरचना, मृदा घनत्वकता इत्यादि गुणों में सुधार होता है।

भूमि की निचली सतहों में विद्यमान कठोर परत का समाधान

वर्षा आधारित क्षेत्रों की लाल मृदाओं में नैसर्गिक रूप से भूमि की निचली सतहों पर कठोर परत विद्यमान है। ये कठोर परत जहां वर्षा जल को भूमि की निचली सतहों में जाने से रोकती है वहीं दूसरी तरफ जड़ों के समुचित विकास में भी बाधा उत्पन्न करती है। इसके अलावा वर्षा आधारित क्षेत्रों की अन्य मृदाओं में भी भूमि की निचली सतह में एक कठोर परत बन जाती है जिसकी मुख्य वजह किसानों द्वारा साल दर साल एक ही प्रकार के कृषि उपकरणों द्वारा लगातार एक निश्चित गहराई पर जुताई क्रियाएं करना है। मृदा की निचली सतह पर जहां हल/अन्य कृषि उपकरणों का निचला हिस्सा टकराता है, वे परत कठोर परत में बदल जाती हैं। इस कठोर परत को तोडते रहना चाहिए। उस दिशा में 'चिजल हल' तथा 'प्लाऊ' से गहरी जुताई तीन से चार साल के अंतराल पर एक बार करनी चाहिए। वर्षा आधारित क्षेत्रों में किए गए अनेक अनुसंधान दर्शाते हैं कि 'चिजल हल' से जुताई करने के बाद विभिन्न फसलों जैसे कि मक्का, ज्वार, मूंगफली, टमाटर, चना इत्यादि की उपज में 20 से 50 प्रतिशत तक की वृद्धि देखी गई है। निजामाबाद (तेलंगाना राज्य) की काली मृदाओं में 'चिजल हल' जुताई में लगभग 12 प्रतिशत तक उपज में वृद्धि पाई गई। इन्हीं क्षेत्रों की काली मृदाओं में 'चिजल हल' से जुताई के साथ 5 टन प्रति हेक्टेयर की दर से जिप्सम या 25 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद मिलाने से गन्ना की उपज में 25.4 प्रतिशत तक की वृद्धि देखी गई है।

इसी प्रकार वर्षा आधारित क्षेत्र की रेतीली मृदाओं (हिसार, हरियाणा) में 'चिजल हल' से जुताई करने से गेहूं, कपास तथा राया सरसों की उपज में क्रमश: 14, 17 तथा 41 प्रतिशत तक वृद्धि देखी गई है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं (भोपाल, मध्य प्रदेश) में किए गए अनुसंधान भी दर्शाते हैं कि मृदा की गहरी जुताई करने से सोयाबीन की उपज में अपेक्षित बढ़वार (20 प्रतिशत अधिक) देखी गई है। उपरोक्त अनुसंधानों से पता चलता है कि मृदा की गहरी जुताई करने से मृदा की निचली सतहों में बनी कठोर परत को तोडने से मृदा जल संचालकता में

बढ़ोत्तरी होती है। परिणामस्वरूप मृदा प्रोफाइल में पादप जल उपलब्धता में बढ़ोत्तरी होती है। इसके अलावा गहरी जुताई करने से मृदा सतह कठोरता में भी गिरावट आती है। नीचे सारणी-6 में दिखाया गया है कि वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में गहरी जुताई करने से विभिन्न फसलों की उपज में अपेक्षित बढ़वार हुई है।

सारणी-6 : वर्षा आधारित क्षेत्रों की विभिन्न मृदाओं में गहरी जुताई का विभिन्न फसलों की उपज पर प्रभाव

मृदा प्रकार	फसल	उपज (टन प्रति हेक्टेयर)	
		परंपरागत जुताई	गहरी जुताई
जलोढ मृदाएं	मक्का	2.22	2.65
	बाजरा	2.24	2.56
	गेहूं	2.38	2.81
लाल मृदाएं	अरंडी	4.00	6.00
	मूंगफली	1.80	2.40
	अरहर	5.90	7.60
काली मृदाएं	अरंड	4.20	6.00
रेतीली मृदाएं	बाजरा	1.34	1.58
	मूंग	0.47	0.58

स्रोत : ओसवाल, 2001

वर्षाजल एवं मृदा नमी संरक्षण विधियां

भारत के दक्कन के पठारी क्षेत्रों की मृदाओं में सामान्य वर्षा के दौरान भी जल बहाव एवं मृदा कटाव की समस्या देखी गई है जिसकी मुख्य वजह ढलान वाली सतह का होना तथा मृदा सतह जल भेदन क्षमता का कम होना है। इन सबको रोकने के लिए सर्वप्रथम इन मृदाओं को किसी जैविक आवरण द्वारा ढक कर रखा जाना चाहिए या ऐसी विधियां अपनानी चाहिए जिससे वर्षाजल/मृदा नमी का संरक्षण हो सके। इस दिशा में बाजरे की कडबी, कुल्थी फसल तथा अरहर की फसल मृदा सतह को ढकने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है तथा वर्षाजल बहाव एवं मृदा कटाव में अपेक्षित कमी लाती है। इस दिशा में गहरी जुताई क्रियाएं, मृदा सतह आच्छादन तथा सतह पर व्याप्त पपड़ीपन को तोडकर अपेक्षित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों की काली मृदाओं में जहां सतह की ढलान 1.5 प्रतिशत से ज्यादा है उन मृदाओं में समोच्य मेंढ़ (कंटूर बंड) से बिजाई करने से उपज में आशातीत सफलता पाई जा सकती है। इन मृदाओं में घासों द्वारा बनाई गई मेंढ़ भी काफी प्रभावी होती है तथा जल बहाव एवं मृदा कटाव को आसानी से रोक सकती है। इसके अलावा जिन मृदाओं में भूमि की ढलान कम है उनमें टिला एवं नाली, लाइनों में बीजाई, चौकोर खाने बनाकर बिजाई करने से भी जल बहाव एवं मृदा कटाव में कमी आती है। अर्थात जुताई के विभिन्न तरीके अपनाकर इन क्षेत्र की

मृदाओं में वर्षाजल एवं मृदा नमी को संरक्षित किया जा सकता है। साथ ही साथ जल बहाव, जल भराव तथा मृदा कटाव को कम किया जा सकता है। इन क्षेत्रों की मृदाओं में किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि परभणी (महाराष्ट्र) में ज्वार की उपज में परंपरागत बिजाई की तुलना में 17.3 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी टिला एवं नाली पद्धत्ति में पाई गई। इसी प्रकार एक अनुसंधान के अनुसार जबलपुर (मध्य प्रदेश) की मृदाओं में टीला एवं नाली बिजाई द्वारा ज्वार की 17.4 प्रतिशत अधिक उपज में प्राप्त की गई। इसी प्रकार परभणी (महाराष्ट्र) की मृदाओं में भी उत्थित क्यारियों तथा धंसी क्यारियों में बिजाई करने से विभिन्न फसलों (अरहर, धान, सोयाबीन, चना, तिल) की उपज में परंपरागत बिजाई की तुलना में 5.2 से 55.2 प्रतिशत तक की वृद्धि देखी गई। संभवत: इन संरक्षित बिजाई विधियों में अधिक पादप जल उपलब्धता की वजह से अधिक उपज प्राप्त की गई। इसी दिशा में गुजरात के अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि जल संरक्षण की विभिन्न विधियों : कूंड बिजाई, बिना जुताई बिजाई तथा खड़ी फसलों के अवशेषों में बिजाई करने से क्रमश: 69.4, 16.2 तथा 59.6 प्रतिशत तक जल बहाव में गिरावट देखी गई है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि बिना जुताई बिजाई करने से लगभग 32.7 प्रतिशत कम मृदा कटाव परंपरागत बिजाई के मुकाबले देखा गया। इसी अनुसंधान में यह भी पाया गया है कि फसलों के खड़े अवशेषों में बिजाई करने से विभिन्न फसलों (बाजरा, लोबिया, सरसों, अरहर और अरंड) की उपज में बढोत्तरी देखी गई।

अधिक मृदा तापमान का समाधान

इन मृदाओं को अधिक तापमान से बचाने के लिए जहां तक संभव हो सके वहां इन मृदाओं को किसी भी प्रकार के फसलावशेषों से ढक कर रखना चाहिए। खासकर फसल अवधि के दौरान इन मृदाओं को किसी भी प्रकार के जैविक अवशेषों (फसलों एंव खरपतवारों) द्वारा ढक कर रखा जाना चाहिए। इसके अलावा जहां तक संभव हो कम से कम जुताई करनी चाहिए क्योंकि परंपरागत जुताई क्रियाओं द्वारा मृदा सतह का बार-बार खुलना वाष्पीकरण को बढ़ाता है तथा मृदा तापमान भी बढ़ता है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि जो मृदाएं फसलावशेषों द्वारा ढकी होती है तथा जिनमें शून्य जुताई की जाती है, उनमें गर्मियों के मौसम में भी 1-3^0 सेंटीग्रेड तक कम मृदा तापमान देखा गया है जो आगे जाकर फसल उपज को बढ़ाता है। इसके अलावा जैविक अवशेषों से ढकी मृदाओं में यह भी देखा गया है कि इन मृदाओं की तापमान में शीघ्र बढ़ोत्तरी तथा शीघ्र गिरावट नहीं होने से मृदा सूक्ष्म जीवाणुओं पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि गेहूं का भूसा मृदा सतह पर फैलाने से मृदा तापमान में 0.74, 0.66, 0.58 डिग्री सेंटीग्रेड की गिरावट क्रमश: 5, 15 तथा 30 सेंटीमीटर मृदा गहराई पर देखी गई है। इन क्षेत्रों में व्याप्त मृदा तापमान में थोडी सी गिरावट भी मृदा जैव क्रियाओं को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भमिका अदा करती है। वर्षा आधारित क्षेत्र की मृदाओं(कालीमृदा) में दरारों की बाधाओं, मृदा कठोरता तथा लचीलापन एवं मृदा छिद्रता, उपयुक्त करने में जैविक खाद तथा फसलावशेषों का प्रयोग कारगर साबित होता है। अतः इनका उचित समाधान अपनाकर फसल उपज को बढ़ाया जा सकता है।

मृदा के भौतिक गुणों में सुधार के अन्य समाधान

मृदा सतह आच्छादन

यह सर्वविदित है कि अगर मृदा सतह को जैविक आवरण द्वारा आच्छादित रखा जाए तो ये मृदा में सतह से जल प्रवेश दर को बढ़ाते हैं। ये जैविक अवशेष मृदा सतह को खुरदरापन प्रदान करते हैं तथा वर्षा के दौरान मृदा सतह अवरोधतापन में गिरावट लाते हैं। इस दिशा में भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (क्रीडा), हैदराबाद द्वारा किए गए अनुसंधान साफ दर्शाते हैं कि मृदा सतह को विभिन्न फसलावेशेषों द्वारा ढक कर रखने से विभिन्न फसलों की उपज में अपेक्षित बढ़वार देखी गई। गिरीपुष्पा की कतरने डालने से मृदा जल धारण क्षमता में वृद्धि तथा मृदा जल बहाव एवं मृदा कटाव में अपेक्षित गिरावट आती है। अनुसंधान आगे दर्शाते हैं कि मृदा सतह आच्छादन के परिणामस्वरूप वाष्पीकरण दर कम होने से मृदा जल में कम गिरावट आती है तथा फसलों के लिए लंबे समय तक जल उपलब्ध होता है। मृदा सतह आच्छादन से जहां एक ओर वर्षा की बूंदों का मृदा के कणों पर पडने वाला विपरीत प्रभाव कम होता है वहीं दूसरी ओर यह मृदा जैव क्रिया-कलापों को बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके साथ ही साथ ये फसलावशेष समय के साथ सड़-गल कर मृदा उर्वरता शक्ति को भी बढ़ाते हैं।

संरक्षित जुताई

वर्षा आधारित क्षेत्रों में संरक्षित जुताई भी मृदा के विभिन्न भौतिक गुणों में सुधार करने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। लेकिन इन मृदाओं में समुचित फसलावशेषों को डाले बिना केवल कम जुताई करना उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। वर्षा आधारित क्षेत्रों की लाल मृदाओं में किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि ज्वार फसलावशेषों को कटाई के बाद मृदा सतह पर छोडने पर तथा कम जुताई करने से इन मृदाओं की सतह जल भेदता दर तथा मृदा जल मात्रा में बढ़ोत्तरी देखी गई है। इसी प्रकार पालमपुर की मृदाओं में गेहूं पर किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि इन क्षेत्रों में मक्का की कटाई के बाद गेहूं की फसल में खरपतवारों (लेंटेनाकिमरा तथा यूपोतोरिपम) को 10 टन प्रति हेक्टेयर (सूखे वज़न आधार पर) की दर से डालने पर मृदा में नमी संरक्षण करने में मदद मिलती है तथा परंपरागत बिजाई के मुकाबले अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। फसलावशेष/खरपतवार डालने के साथ कम जुताई करने से मृदा के भौतिक गुणों में सुधार होता है।

मृदा कंडीशनरों का प्रयोग

यह सर्वविदित है कि मृदा की संरचना सुधारने से मृदा के अनेक भौतिक गुणों में सुधार आता है। इस प्रकार विभिन्न रसायनों का प्रयोग करके मृदा संरचना, मृदा जल संचालकता, मृदा छिद्रता, मृदा जल भेदता दर तथा मृदा नमी में अपेक्षित सुधार आता है। इस दिशा में पूर्व में किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि 'क्रिलियम' मृदा कंडीशनर का प्रयोग पत्ता गोभी की फसल के दौरान करने से मृदा संरचना में सुधार, मृदा जल नमी में बढोत्तरी के साथ ही साथ उपज में आशातीत वृद्धि दर्ज की गई। इसके विपरीत 'एग्रोसील' नामक मृदा कंडीशनर के प्रयोग से मृदा

जल संचालकता दर में गिरावट आती है, परिणामस्वरूप वर्षा आधारित क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं में जल अधिक समय तक फसलों की जड़ों के लिए उपलब्ध हो पाता है तथा ये 'एग्रोसील' मृदा संरचना को बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसी दिशा में वर्षा आधारित क्षेत्रों की रेतीली मृदाओं में जहां वर्षाजल तुरंत वर्षा तदोपरांत भूमि की गहरी परतों में चला जाता है तथा फसलों की जड़ों से दूर हो जाता है। इस प्रकार की मृदाओं में 'बेन्टोनाइट' क्ले, 'जान्टा इमूल्सन' तथा 'एसफाल्ट इमूल्सन' का प्रयोग करके भी मृदा में कुछ हद तक नमी को संरक्षित किया जा सकता है जो फसलोत्पादन में बढ़ोत्तरी करती है।

हालांकि उपरोक्त रसायनिक पदार्थ मृदा भौतिक गुणों में सुधार के साथ ही साथ फसल उपज बढ़ाने में कारगर साबित हो रहे हैं, लेकिन इनकी प्रायोगिकता बढ़ाने की जरूरत है तथा ये कम लागत पर उपलब्ध हो सके, इस बात को भी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। इसके अलावा इनके प्रयोग से पर्यावरण पहलू तथा मृदा जीवाणुओं पर पड़ने वाले असर की भी गहराई से अध्ययन करने की जरूरत है। इसके अलावा अनेक वैज्ञानिकों ने मृदा संरचना सुधारने के लिए प्राकृतिक रूप से उपलब्ध 'पोलीसक्राइड' तथा 'पोलीयूरोनिक' अम्ल का प्रयोग भी उपयोगी बताया है, लेकिन इन पदार्थों की तीव्र अपघटन क्षमता की वजह से यह ज्यादा कारगर साबित नहीं हो सके।

फसलों का चयन

मृदा के भौतिक गुणों को सुधारने में विभिन्न प्रकार की फसलों की जड़ों का अति महत्वपूर्ण योगदान होता है तथा ये जड़े मृदा संरचना तथा इसके अन्य भौतिक गुणों (मृदा जल व्यापकता, मृदा जल धारण क्षमता तथा मृदा छिद्रता) पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से पता चलता है कि घासों की जड़े मृदा संरचना सुधारने में अति कारगर साबित हुई हैं क्योंकि घासों की जड़े रेशेदार होती हैं जो मृदा संरचना को सुधारती है तथा घासों की जड़ों की मृदा संरचना सुधार क्षमता अनाज तथा अन्य फसलों के मुकाबले अधिक प्रभावी पाई गई हैं। इसी प्रकार विभिन्न फसलों की जड़ों द्वारा निकलने वाले जड़ रस पदार्थ भी मृदा के कणों को आपस में बांधकर मृदा संरचना तथा मृदा छिद्रता में बढ़ोत्तरी करते हैं। अकसर ऐसा देखा गया है कि उचित फसल चक्रण अपनाने से मृदा भौतिक गुणों में सुधार होता है।

समग्र पोषक तत्व प्रबंधन

एक शोध के अनुसार बताया गया है कि केवल रासायनिक खाद तथा केवल जैविक खादों के प्रयोग से मन वांछित उपज प्राप्त नहीं की जा सकती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में समग्र पोषक तत्व प्रबंधन करने से उपज में अपेक्षित परिणामों के साथ ही साथ मृदा भौतिक गुणों में भी बढ़ोत्तरी देखी गई है। भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (क्रीडा), हैदराबाद, स्थित अखिल भारतीय समन्वित बारानी कृषि अनुसंधान परियोजना (एक्रीपडा) द्वारा किए गए लंबे अनुसंधान परिणाम दर्शाते हैं कि इन क्षेत्रों की मृदाओं में समग्र पोषक तत्व प्रबंधन करने से मृदा संरचना, मृदा घनत्वकता तथा फसल उपज में अपेक्षित परिणाम प्राप्त हुए। अन्य अनुसंधानकर्ताओं द्वारा भी समग्र पोषक तत्व प्रबंधन के कारण मृदा भौतिक गुणों तथा विभिन्न

फसलों की उपज में आशातीत बढ़ोत्तरी देखी गई है। भोपाल (मध्य प्रदेश) की काली मृदाओं में किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि फसल पोषक तत्वों की मांग को दोनों जैविक खादों तथा अजैविक खादों द्वारा पूरा करने से जल उपयोग दक्षता तथा सोयाबीन की उपज में आशातीत बढ़ोत्तरी देखी गई। जिसकी मुख्य वजह यह है कि पोषक तत्व प्रबंधन करने से मृदा संरचना, मृदा जल संचालकता दर, मृदा घनत्वकता में सुधार होने से जड़ों का पूर्ण विकास होता है जिससे उपज में वृद्धि होती है।

सारणी-7 : सोयाबीन की उपज एवं जल उपयोग दक्षता पर समग्र पोषक तत्व प्रबंधन का प्रभाव

क्रियाएं	सोयाबीन उपज				जल उपयोग दक्षता (कि.ग्रा. प्रति हे. प्रति सें.मी.)			
	1998	1999	2000	औसत	1998	1999	2000	औसत
बिना खाद	848[स]	935 [स]	915 [स]	899	20.4[ब]	21.4[स]	23.8[स]	21.9
नत्रजन, फासफोरस एवं पोटाश की सिफारिश मात्रा	1593[ब]	1552[ब]	1584[ब]	1576	37.1[अ]	34.5[ब]	33.1[ब]	34.9
नत्रजन, फासफोरस एवं पोटाश की सिफारिश मात्रा + 10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद	1723[अ]	1853[अ]	1905[अ]	1827	38.6[अ]	39.3[अ]	37.5[अ]	38.5
समान शब्द एक दूसरे से सांख्किीय पैमाने पर अंतर नहीं रखते है तथा असमान शब्द सांख्किीय पैमाने पर अंतर रखते है								

स्रोत : हाती एवं अन्य, 2006

उपरोक्त सारणी-7 में दर्शाया गया है कि सोयाबीन की फसल में नत्रजन, फासफोरस एवं पोटाश की सिफारिश दर से गोबर की खाद देने से न केवल उपज में वृद्धि हुई बल्कि जल उपयोग दक्षता में भी अत्प्रत्याशित वृद्धि हुई। अत: वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में लगातार सिफारिश की गई दरों के अनुसार अकार्बनिक खादों के साथ ही साथ अगर जैविक खादों का प्रयोग किया जाए तो इन क्षेत्रों की मृदाओं के भौतिक गुणों में सुधार होने के परिणामस्वरूप उपज में आशातीत बढ़ोत्तरी हो सकती हैं ।

सारांश

देश का वर्षा आधारित क्षेत्र विस्तृत भू-भाग में फैला हुआ है। इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की मृदाएं एवं कृषि जलवायुवीय परिस्थितियां विद्यमान हैं। इस क्षेत्र की मृदाओं में व्याप्त भिन्न भौतिक बाधाएं सफल फसलोत्पादन में रुकावट की एक महत्वपूर्ण वजह है। आंकड़े दर्शाते हैं कि देश की लगभग 90 लाख हेक्टेयर भूमि एक या अनेक प्रकार की मृदा भौतिक बाधाओं से ग्रसित है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में व्याप्त जलवायुवीय परिस्थितियां, मृदा का नैसर्गिक रूप से कमजोर होना, उपलब्ध संसाधनों की कमी इत्यादि इस समस्या को ओर विकराल बनाते हैं।

इन समस्याओं में प्रमुख रूप से मृदा सतह पर कठोर परत; कमजोर मृदा संरचना; अनुपयुक्त मृदा जल गुण; मृदा छिद्रता; मृदा तापमान; भूमि की निचली सतह में व्याप्त कठोर परत; भूमि सतहों का ढलानी होना इत्यादि है। ये संदेह से परे है कि उचित मृदा भौतिक स्वास्थ्य फसलों की बढ़वार तथा अधिक उपज के लिए सौहार्दपूर्ण/उपयुक्त मृदा वातावरण पैदा करता है। साथ ही साथ फसलों की उच्चतम उपज तभी प्राप्त की जा सकती है, जब मृदा की रासायनिक और जैव स्वास्थ्य के साथ इसका भौतिक स्वास्थ्य भी इसके उच्चतम स्तर पर हो, क्योंकि काफी हद तक मृदा का रसायनिक स्वास्थ्य और जैव स्वास्थ्य, मृदा के भौतिक स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। अर्थात मृदा का भौतिक स्वास्थ्य ठीक होगा तभी पौधे की आवश्यकतानुसार जल, पोषक तत्व तथा पौधों को खड़े रहने की शक्ति मिल पाएगी।

अनुसंधानों द्वारा यह साबित किया जा चुका है कि इन क्षेत्रों में व्याप्त विभिन्न भौतिक बाधाओं का समाधान करके समुचित फसलोत्पादन किया जा सकता है, जैसे कि वर्षा आधारित क्षेत्रों की अधिक मृदा संचालकता दर वाली मृदाओं के लिए सतह पर वजनी रोलर तथा इनमें चिकनी मिट्टी मिलाने के बाद वजनी रोलर घुमाकर उपज को बढ़ाया जा सकता है। ये प्रक्रिया साधारणत: मृदा जल उपलब्धता बढ़ाने के साथ, पादप पौषक तत्वों की उपलब्धता भी बढ़ाती है। इसी प्रकार मृदा सतह पर बनने वाली पपड़ी के समाधान के रूप में गोबर की खाद तथा फसलावशेषों को मृदा सतह पर डालना भी उपयोगी साबित होता है। इसी प्रकार गहरी जुताई करके भूमि के नीचे बनी कठोर परत को भी तोड़ा जा सकता है। इसके अलावा उचित फसलों का चयन, संरक्षित जुताई, समग्र पोषक तत्व प्रबंधन, वर्षाजल एवं मृदा नमी संरक्षण करके भी इन क्षेत्रों में व्याप्त विभिन्न प्रकार की मृदा भौतिक बाधाओं से छुटकारा पाकर उपज में आशातीत वृद्धि की जा सकती है।

संदर्भ

श्रीनिवास राव सीएच एवं अन्य। वाटर रिटेंशन करक्टरिस्टिक्स आफ़ वेरियस साइल टाइप्स अंडर डाइवर्स रेनफेड प्रोडक्शन सिस्टम्स आफ़ इंडिया। इंडियन जर्नल आफ़ ड्राइलैंड एग्रीकल्चरल रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 2009, 24:1-7.

फोगाट वी के एंड दहिया, एस एस। अलेविएटिंग साइल फिजिकल कंस्ट्रेंट्स फार सस्टेनेबल क्राप प्रोडक्शन थ्रू टीलेज, साइल अमेडमेंट एंड क्राप रेसिडुए मैनेजमेंट। इन 12^{थ} इंटरनेशनल साइल कान्जेर्वेशन आर्गेनाइजेशन कांफ्रेंस, बीजिंग, 2002.

ओसवाल एम सी। करेक्टेरीज़िंग फिजिकल एनवायरनमेंट आफ़ रेनफेड लैंड्स एंड देयर मैनेजमेंट फार सस्टेनेबल प्रोडक्शन। जर्नल आफ़ एग्रीकल्चरल फिजिक्स, 2001, 1, 71-75.

पैन्यूली डी के एंड यादव, आर पी। टिलेज रिक्वायरमेंट्स आफ़ इंडियन साइल्स। इन 50 इयर्स आफ़ नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट रिसर्च (एडिटेड: सिंह, जी बी एंड शर्मा, बी आर), इंडियन काउंसिल आफ़ एग्रीकल्चरल रिसर्च, नई दिल्ली, 1988, पीपी. 245 - 262.

कोरवार जी आर एवं अन्य। मेंकेनाइज्ड सोविंग आफ़ मेंजर रेनफेड क्राप्स यूसिंग प्रेसीजन प्लांटर कम हेर्बिसाइड एप्लीकेटर : ए केस स्टडी। इन प्रोसीडिंग्स आफ़ एग्रो-इन्फार्मेटिक्स एंड प्रेसिजन एग्रीकल्चर, इंडिया, 2012.

अग्रवाल, आर पी। मैनेजिंग साइल फिजिकल कंडीशन फार सस्टेनेबल प्रोडक्शन। इन साइल फिजिकल कंडीशन्स फार क्राप ग्रोथ। जिओ - एनवायरनमेंट एकेडेमिया, जोधपुर, 1988, पीपी. 28.

इंदोरिया, ए के एवं अन्य। इफ़ेक्ट आफ़ कंपकशन, नाइट्रोजन एंड फास्फोरस आन द परफारमेंस आफ़ कावपी इन टीपीक यूस्टिप्समेंट्स. फोरेज रिसर्च, 2005, 31, 112-114.

श्रीनिवास राव, सीएच एवं अन्य। मैनेजमेंट आफ़ इंटरमिटेंट ड्रोउघटस थ्रू आनफ़ार्म जनरेशन आफ़ आर्गेनिक मैटर: पार्टिसिपेटरी एक्सपेरिएन्सेस फ्राम रेनफेड ट्राइबल डिस्ट्रिक्स आफ़ आंध्र प्रदेश। जर्नल आफ़ एग्रोमेंट्रोलोजी, 2013, 15, पीपी. 140-145.

आचार्य, सी एल एवं अन्य पृष्ठ। इफ़ेक्ट आफ़ लांगटर्म एप्लीकेशन आफ़ फेर्टिलिज़ेर्स एंड आर्गेनिक अमेडमेंटस अंडर कंटीन्यूअस क्रापिंग आन साइल फिजिकल एंड केमिकल प्रापर्टीज इन एन अल्फिसल। इंडियन जर्नल आफ़ एग्रीकल्चरल साइंसेज, 1988, 58, पीपी. 509-516.

शर्मा, के एल एवं अन्य। इम्प्रूवमेंट एंड असेसमेंट आफ़ साइल क्वालिटी अंडर लांगटर्म कांजेर्वेशन एग्रीकल्चरल प्रैक्टिसेज इन हाट एरिड ट्रॉपिकल अरीढीसोल। कम्युनिकेशन्स इन साइल साइंस एंड प्लांट एनालिसिस, 2013, 44, पीपी. 1033-1055.

हाती, के एम एवं अन्य। इफ़ेक्ट आफ़ इनऑर्गेनिक फ़र्टिलाइज़र एंड फार्मयार्ड मनूर आन साइल फिजिकल प्रॉपर्टीज, रुट डिस्ट्रीब्यूशन एंड वाटरयूज़ एफिशिएंसी आफ़ सोयाबीन इन वेर्टिसोलस आफ़ सेंट्रल इंडिया। बायोरिसोर्स टेक्नोलाजी, 2006, 97, पीपी. 2182-2188.

सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर-एनुअल रिपोर्ट 2011-12, सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, 2012, पीपी. 162.

शर्मा, पी के एंड आचार्य, सी एल। कैर्री-ओवर आफ़ रेसिड्यूअल साइल मोइस्चर विथ मल्चिंग एंड कांसेर्वेशन टिलेज प्रैक्टिसेज फार सोविंग आफ रेनफेड व्हीट (ट्रिटिकम एस्टीवम एल) इन नार्थ-वेस्ट इंडिया। साइल एंड टिलेज रिसर्च, 2000, 57, पीपी. 43-52.

कुरोथे, आर एस एवं अन्य। इफ़ेक्ट आफ़ टिलेज एंड क्रापिंग सिस्टम्स आन रनआफ, साइल लोस्स एंड क्राप यील्ड्स अंडर सेमिएरिड रेनफेड एग्रीकल्चर इन इंडिया। साइल एंड टिलेज रिसर्च, 2014, 140, पीपी. 126-134.

सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर-पर्सपेक्टिव प्लान, विज़न 2025. सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, 2007.

शर्मा, डी पी एंड आर पी अग्रवाल। सीडलिंग एमेंर्जेस बिहेवियर आफ़ बाजरा, काटन एंड गुआर एज अफ्फेक्टेड बाई सरफेस क्रस्ट स्ट्रेंथ। मैसूर जर्नल आफ़ एग्रीकल्चरल साइंसेज, 1979, 13, पीपी. 400-404.

सिंह, एच बी. मैनेजमेंट आफ दी रेनफेड एरियाज। इन 50 इयर्स आफ नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट रिसर्च (एडिटर्स सिंह, जी बी एंड शर्मा, बी आर), डिवीज़न आफ़ नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट, इंडियन कौंसिल आफ़ एग्रीकल्चरल रिसर्च, कृषि भवन, नई दिल्ली,1998, पीपी. 537-578.

गौतम, आर सी एंड राव, जे वी। इंटीग्रेटेड वाटर मैनेजमेंट-कान्सेप्ट्स आफ़ रेनफेड एग्रीकल्चर। 2007; http://nsdl.nic.icar.res.in

★★★

4

प्रमुख फसल प्रणालियां : समस्याएं एवं प्रबंधन

- जी प्रतिभा, संजीव कुमार, वी वी गभाने, के स्वाति एवं सीएच श्रीनिवास राव

परिचय

भारत में वर्षा आधारित क्षेत्र मोटे अनाज (87 प्रतिशत), दलहन (90 प्रतिशत) और तिलहन (80 प्रतिशत) उत्पादन में काफी योगदान देते हैं तथा 40 प्रतिशत मानव और 60 प्रतिशत पशुओं की आबादी की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में कृषि एक जुए के समान होती है क्योंकि किसानों को अनेक अनिश्चितताओं और जोखिमों का सामना करना पड़ता है। पर्यावरण सीमाओं जैसे कम और अनियमित वर्षा (200-800 मिमी प्रति वर्ष), लगातार सूखा, उच्च तापमान, हवा की उच्च गति और उच्च वाष्पण-उत्सर्जन मांग के कारण अनिश्चितताएं और जोखिम अधिक हैं। इसके अलावा, कम तथा अनिश्चित रूप से होने वाली वर्षा अपवाह के रूप में खो जाती है। एक अनुमान के अनुसार बरसात के मौसम के दौरान वर्षा से काली मिट्टी का लगभग 10 प्रतिशत और लाल मिट्टी का लगभग 25 प्रतिशत भाग अपवाह के द्वारा बह जाता है।

फसल प्रणाली विभिन्न कृषि संसाधनों और कृषि उद्यमों के साथ तालमेल करने वाले जमीन के एक टुकड़े पर फसल स्वरूप है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसल प्रणाली अनाज और चारे की आवश्यकताओं के साथ-साथ उससे जुड़े जोखिमों पर आधारित है। वर्षा आधारित क्षेत्र के किसान गरीब तथा जोखिम सहन करने में अक्षम होते हैं। इसलिए इन क्षेत्रों में नई प्रौद्योगिकियों को लागू करना कठिन होता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में स्थिरता, उत्पादकता की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। प्रमुख वर्षा आधारित फसल मूंगफली, अरहर, मक्का, रागी, बाजरा, अरंडी और कपास आदि हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में बहुत से किसान कृषि के अलावा वैकल्पिक आय के स्रोत के लिए पशुओं पर निर्भर रहते हैं। शुष्क भूमि फसल उत्पादन प्रणालियों में विभिन्न फसलें मिश्रित करके लगाई जाती हैं जो प्रतिकूल मौसम कारकों (जैसे वर्षा) के खिलाफ एक संभव व्यापक आधार तैयार करती हैं।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसलोत्पादन की समस्याएं

जैव-भौतिक बाधाएं

भारतीय कृषि उच्च सुधार रणनीतियों के माध्यम से सिंचित और वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसलों की उत्पादकता में प्रति वर्ष क्रमशः पांच प्रतिशत और एक प्रतिशत बढ़ोत्तरी करने

में सफल रही है और इस उत्पादन वृद्धि ने आत्मनिर्भरता हासिल करने में मदद की है। वर्षा आधारित फसलों की उत्पादन क्षमता चार टन प्रति हेक्टेयर है जबकि उत्पादकता एक से दो टन प्रति हेक्टेयर है। दुनिया के कई क्षेत्रों में वर्षा आधारित कृषि में वास्तविक और प्राप्त पैदावार के बीच बड़ा अंतराल दिखलाई पड़ता है। यही कारण है कि इस क्षेत्र में अभी तक वांछित उपज प्राप्त नहीं की जा सकी है। इस कम पैदावार के लिए प्रमुख कारक, संसाधनों मे गिरावट और वर्षा की अनिश्चितता है। प्राकृतिक संसाधनों के घटने से उत्पादन में स्थिरता एक गंभीर समस्या है, क्योंकि यह आगे की आबादी, जो 2050 तक दोगुनी होने की संभावना है, के लिए वैश्विक खाद्य मांग को पूरा करने की एक बड़ी चुनौती है। इसके अलावा, वर्षा आधारित कृषि से संबंधित समस्या विविध प्रकार की हैं। कम और अनियमित वर्षा, मानसून में देरी एवं जल्दी समाप्ति, सूखा, फसलों के विकास के महत्वपूर्ण चरणों में दो से तीन सप्ताह के लिए सूखा, फसल पैदावार के उतार-चढ़ाव में सबसे महत्वपूर्ण है। भूमि विकृतिकरण और किसानों के गरीब आर्थिक हालत के कारण ग्रामीणों की जोखिम वहन क्षमता बहुत कम है, जिसकी वजह से आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा फसल गहनता का अभिग्रहण कम हुआ है। इसके अलावा, संसाधनों में कमी के कारण पुरानी रणनीतियां काफी हद तक अप्रभावी हैं। जल एवं हवा कटाव भूमि विकृतिकरण के प्रमुख कारण है जोकि वर्षा आधारित क्षेत्रों में अधिक स्पष्ट है। वर्षा आधारित मृदा उच्च ढलान (1 से 10 प्रतिशत) वाली है व वर्षा के पानी को सोखने की क्षमता बहुत कम होती है। इन क्षेत्रों में तीव्र वर्षा के कारण जल अपवाह होता है जिससे पोषक तत्वों के साथ-साथ उपजाऊ मिट्टी की ऊपरी परत का कटाव होता है। भविष्य में यह कटाव दोषपूर्ण कृषि पद्धतियों के कारण बढ़ सकता है। अनुमान के अनुसार विश्व में प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर 60-70 टन तथा भारत में 5-35 प्रतिशत मृदा का बहाव होता है। इसके अलावा औसत दर्जे की मृदा तथा खड़ी ढलान वाली मृदा में क्रमश: 2-3 टन प्रति हेक्टेयर और 10 टन प्रति हेक्टेयर से अधिक उपजाऊ मिट्टी का बहाव होता है। औसतन, एक वर्ष में बह कर 61 प्रतिशत मृदा दूसरे स्थानों पर, 10 प्रतिशत जलाशयों में और 29 प्रतिशत महासागरों में जमा होती है।

कटाव से प्राकृतिक संसाधनो में गिरावट के अलावा, वनों की कटाई, सीमांत भूमि पर कृषि की अनदेखी, बढ़ती हुई जनसंख्या, दोषपूर्ण कृषि पद्धतियां, तापमान और कार्बनडाईआक्साइड के स्तर में वृद्धि फसलोत्पादन में प्रमुख रुकावटे हैं। पिछले 100 वर्षों में वातावरण के तापमान में 0.5^0 सेंटीग्रेड की वृद्धि हुई है और भविष्य में वर्ष 2080 तक, तापमान में 3.5^0 सेंटीग्रेड से - 5.5^0 सेंटीग्रेड वृद्धि होने की संभावना है। एक अनुमान के अनुसार, तापमान में हर 1^0 सेंटीग्रेड वृद्धि से फसल की पैदावार में 3-7 प्रतिशत की कमी आती है और आगे प्रत्येक 10 वर्ष में 3 से 4 वर्ष में सूखा पड़ने लगता है। इसके अलावा मौसम में अस्थिरता जैसे बेमौसम बारिश, बाढ़ और सूखे की स्थिति पैदा होती है। वर्षा आधारित फसलों पर इन पर्यावरणीय परिवर्तनों का प्रभाव अधिक होता है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में मृदा कम गहराई तथा हल्की बनावट वाली होती है। इस प्रकार की मृदाओं में सिर्फ पानी की कमी नहीं होती बल्कि वे पोषक तत्व हीन भी होते हैं। इन सबके अतिरिक्त रोग और कीट तथा खरपतवार भी एक महत्वपूर्ण जैविक बाधा है।

तकनीकी बाधाएं

- मौसम संबंधी (मध्यम तथा लंबे समय की) जानकारी, विपणन जानकारी और प्रबंधन सूचना पर सक्रिय सलाह का अभाव।
- वर्षा आधारित क्षेत्रों में स्थाई उत्पादकता को बनाए रखने के लिए मृदा और जल संरक्षण के उपाय, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन, कीट प्रबंधन, मृदा प्रबंधन, खरपतवार प्रबंधन और फसल प्रबंधन की सुधार कृषि पद्धतियों पर अमल न करना।
- सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के प्रबंधन के लिए सुधारात्मक उपायों का अभाव।
- वैज्ञानिक प्रकार से भूमि उपयोग, हरी खाद या हरी पत्ती खाद और मिट्टी संशोधन के उपयोग का अभाव।
- बेहतर कृषि उपकरणों जैसे बैलों द्वारा खींचे जाने वाले कृषि यंत्रों का अभाव।

सामाजिक-आर्थिक बाधाएं

- उन्नत फसल किस्मों एवं साधनों की अनुपलब्धता, बेहतर फसल प्रणाली, उचित उत्पादन एवं संरक्षण तकनीकियों की जानकारी का अभाव।
- बेहतर कृषि पद्धति या तकनीक अपनाने के लिए सीमांत और छोटे किसानों के बाहुल्य वाले क्षेत्रों में संसाधनों और साक्षरता स्तर की कमी।
- उपज के मूल्य की तुलना में कृषि पर लगने वाली लागत की अधिकता ।
- ट्रैक्टर/पावर टिलर, सीड ड्रिल, बीज व उर्वरक ड्रिल आदि आधुनिक कृषि उपकरणों की कमी।

प्रशासनिक/संस्थागत बाधाएं

- कर्ज़, साधनों एवं प्रौद्योगिकियों की प्राप्ति में देरी के कारण सटीक समय पर कृषि कार्य आरंभ न कर पाना।
- बाजार मूल्य या थोक बाजार मूल्य यह संकेत देते हैं कि किसानों को उनकी उपज का वास्तविक मूल्य नहीं मिल पा रहा है। किसानों को मिलने वाला न्यूनतम समर्थन मूल्य वास्तव में जितना उन्हें मिलना चाहिए उससे बहुत कम मिलता है।
- विभिन्न संस्थाओं जैसे शोध-प्रसार-किसान-बाज़ार के बीच कमजोर संपर्क तथा उत्पादन संरक्षण तकनीकियों की कमी एवं क्षेत्रीय प्रदर्शनों का अभाव।
- अपर्याप्त प्रसार साहित्य, ग्रामीण विस्तार कर्मचारियों की शिथिलता।
- फसल बीमा योजना का अनुचित कार्यान्वयन।

बजटीय समर्थन

- सिंचित कृषि की तुलना में वर्षा आधारित कृषि में मानव संसाधन विकास के लिए कम बजटीय समर्थन।
- छोटे पैमाने पर ग्राम पंचायत स्तर पर प्रसंस्करण मिलों की स्थापना और मूल्य वर्धित उत्पादों के उत्पादन के लिए प्रोत्साहन का अभाव।
- वर्षा आधारित क्षेत्रों की उत्पादकता में सुधार हेतु नैदानिक अनुसंधानों के लिए बजट का कम प्रावधान।

प्रमुख फसल प्रणालियां

वर्षा आधारित क्षेत्रों में मिश्रित फसल प्रणाली, अनिश्चित मौसम के विरुद्ध फसल बीमा के रूप में कार्य करती है। शुष्क भूमि फसलें तथा फसल प्रणाली, उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं (सारणी-1)।

सारणी-1 : वर्षा आधारित क्षेत्रों के अंतर्गत विभिन्न फसलों का क्षेत्रफल

क्र.सं.	फसल	प्रतिशत
1	गेहूं	14
2	कपास	67
3	मूंग	93
4	उड़द	94
5	चना	78
6	अरहर	96
7	अरंड	96
8	अलसी	97
9	तिल	96
10	कुसुम	99
11	सूरजमुखी	76
12	सरसों राई	36
13	सोयाबीन	97
14	मूंगफली	80
15	धान	46
16	मक्का	76
17	रागी	90
18	बाजरा	94
19	ज्वार	91

फसल विशेष और क्षेत्र विशेष की समस्याओं तथा उत्पादन प्रणाली की क्षमता का विश्लेषण करने के लिए वर्षा आधारित फसल प्रणाली को पांच प्रमुख उत्पादन प्रणालियों में विभाजित किया गया है। इनका आधार अनाज में उपलब्ध पोषक तत्व है। इनमें प्रमुख रूप से मोटे अनाज, मूंगफली, वर्षा आधारित धान, कपास और सोयाबीन है (सारणी-2)। विभिन्न क्षेत्रों की उत्पादन प्रणालियां, वर्षा क्षेत्र, मिट्टी के प्रकार और फसल बढ़ोतरी अवधि की लंबाई पर निर्भर करती हैं।

सारणी-2 : भारत में वर्षा आधारित मुख्य फसल प्रणालियां

क्र. सं.	उत्पादन प्रणाली	क्षेत्र	वर्षा (मि.मी.)	फसल बढ़ोतरी अवधि की लंबाई (दिन)	फसल	प्रमुख मृदा
1	पौष्टिक अनाज आधारित	देश के पश्चिमी और मध्य भाग, दक्षिणी पठार के गर्म अर्ध शुष्क पर्वतीय भू भाग।	648	60-150	ज्वार बाजरा, मक्का, अरहर और अन्य दालें।	लाल, काली और रेतीली
2	मूंगफली आधारित	पश्चिमी मैदान, मध्य के पर्वतीय भू भाग, गुजरात, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश राज्यों के अर्ध शुष्क केंद्रीय पठार और पूर्वी घाट।	684	90-150	मूंगफली	लवणीय और क्षारीय, काली और लाल
3	धान आधारित	उत्तरी मैदान, छत्तीसगढ़, महानदी घाटी और उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और ओडिशा राज्यों में उप-आर्द्र पूर्वी पठार।	1166	120-210	धान, गेहूं, मूंगफली और गन्ना	लाल, जलोढ़, नवीन जलोढ़ लाल मृदा एवं इससे संबंधित मृदाएं।
4	कपास आधारित	दक्षिणी के पठार और गर्म अर्ध शुष्क प्रायद्वीपीय भाग।	795	120-150	ज्वार, अरहर और मूंगफली	काली
5	सोयाबीन आधारित	मध्य प्रदेश, गुजरात और उत्तर प्रदेश	900-1100	120-180	गेहूं, चना और ज्वार	काली

कुशल फसल प्रणाली

एक फसल प्रणाली की दक्षता इकाई क्षेत्र से इकाई समय में प्राप्त शुद्ध लाभ के द्वारा मापी जा सकती है। लेकिन एक किसान को निश्चित समयावधि में, कम जोखिम के साथ अधिक आर्थिक लाभ, अधिक पैदावार और स्थिरता के एक संतुलित मिश्रण की आवश्यकता होती है। इसके अलावा साधनों तथा संसाधनो के गिरावट से बचाव की आवश्यकता होती है। इन जरूरतों के लिए उचित फसल प्रणालियां, फसल गहनता या विविधीकरण का प्रयोग एक कुशल उपाय हो सकता है।

वर्षा आधारित फसल उत्पादन प्रणाली में फसल विविधीकरण के अवसर

वर्षा आधारित धान

धान भारत की सबसे प्रमुख खाद्यान्न फसल है। किसान परंपरागत रूप से, इस फसल को उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों में उगाते हैं। विशेषकर ओडिशा, पश्चिम बंगाल, असम, झारखंड, छत्तीसगढ़ और पूर्वी उत्तर प्रदेश के राज्यों में यह फसल वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगाई जाती है। फसल बढ़ोतरी के मौसम के दौरान दक्षिण-पश्चिम मानसून में बदलाव, शुष्क चरण और नमी घटाव की वजह से वार्षिक फसल प्रभावित हो सकती है। रकबा सिंचित क्षेत्रों में दोहरी और तिहरी फसल को उगाने के अलावा, धान की फसल के क्षेत्र को बढ़ाने की बहुत कम गुंजाइश है, लेकिन प्रति एकड़ उपज बढ़ाने के लिए बड़ी संभावनाएं है। हालांकि चावल को दो या तीन बार उगाया जा सकता है, किंतु उसकी सिंचाई के जल का कुशल उपयोग कर दूसरी फसल भी लगाई जा सकती है, क्योंकि धान की फसल पानी का अधिक उपयोग करती है। हमारी मौजूदा रणनीति के तहत सक्षम क्षेत्रों से पानी की हरेक बूंद प्रति भूमि इकाई से अधिक धान पैदा करना है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की पैदावार कम तथा अस्थिर होती है जिसका प्रमुख कारण मिट्टी की हल्की बनावट, कम जल धारण क्षमता और पोषक तत्वों की कमी, मिट्टी की अम्लीय प्रतिक्रिया और उच्च मात्रा में फास्फोरस स्थिरीकरण हैं। ऐसी स्थिति में फसलोत्पादन प्राप्त करने के लिए, फसल सुनिश्चित और शुद्ध सकारात्मक आर्थिक लाभ के लिए वर्षा आधारित क्षेत्र के किसान को फसल विविधता (धान के आंशिक और पूर्ण विकल्प के साथ) अपनानी चाहिए। मक्का, उडद, मूंग, मूंगफली, अरहर, अरंडी ऐसी फसलें हैं जो कम लागत के साथ फसल विविधता के लिए किसानों के हाथों में सबसे अच्छा विकल्प है और सूखे की स्थिति में भी उत्पादकता में वृद्धि कर सकती है।

ज्वार

ज्वार के लिए अनुकूल अधिकांश क्षेत्र प्रायद्वीपीय या मध्य और दक्षिण भारत के राज्यों में है। साधारणतया इन क्षेत्रों में ज्वार के साथ बारी-बारी से कपास, मूंगफली, अरहर व अन्य दलहनी फसलें उगाई जाती है। इन क्षेत्रों में फसल गहनता कम होती है। धान की फसल ज्वार की फसल वाले क्षेत्रों में भी उगाई जा रही है। मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में ज्वार को मूंगफली के साथ बदल कर लगाने की आवश्यकता है। तमिलनाडु के कपास उत्पादक क्षेत्रों में संकर बाजरा और उसकी पेड़ी फसल आसानी से कपास के साथ अदल-बदल कर बोई जा सकती है। ज्वार निकट भविष्य में दोहरे उद्देश्य के लिए और लंबे समय में अधिक मात्रा में पत्ती चारे के रूप में प्रयोग की जा सकती है।

बाजरा

यह फसल कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उगाई जा रही है। वे क्षेत्र जो जलवायु नमी घटाव क्षेत्र दो में आते है तथा जिनकी आपेक्षिक आर्द्रता 60-80 प्रतिशत है, वहां बाजरा फसल बहुत कुशलता से बढ़ती है। संकर बाजरा के आने से कई नई संभावनाएं उत्पन्न हुई है तथा स्थानीय किस्मों को संकर बाजरा किस्म से बदलाव करने की जरूरत है। बाजरा की पैदावार अत्यंत शुष्क पट्टी

एक और दो के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में नमी की कमी के कारण कम होती हैं। वर्तमान में किसी अन्य फसल से इस फसल को बदलना मुश्किल है।

मूंगफली

इस फसल के अधिक उत्पादन वाले क्षेत्रों में आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के हिस्से आते हैं। वास्तव में, मूंगफली तथा ज्वार समान जलवायु पट्टी तथा आपेक्षिक आर्द्रता (0-40 प्रतिशत) में कुशलता से उगाई जाती हैं। लेकिन लाल मृदा मूंगफली के लिए और काली मृदा ज्वार फसल के लिए अधिक उपयुक्त होती है क्योंकि काली मिट्टी में नमी बनाए रखने की क्षमता अधिक होती है। गहन फसल चक्र में मूंगफली के समावेश के लिए कम अवधि की किस्मों की बहुत आवश्यकता है। इसके अलावा अन्य राज्यों के सिंचित क्षेत्रों में भी इस फसल को लगाने के लिए गंभीरता से विचार किया जा सकता है।

मक्का

मक्का उत्तरी भारत के पहाड़ी और उप-पर्वतीय इलाकों, राजस्थान और बिहार के कुछ हिस्सों में कुशलतापूर्वक उगाई जा रही है। इस फसल का भविष्य जलवायु पट्टी 5 और 6 के अंतर्गत दक्षिण भारत के सूखे क्षेत्रों में उज्ज्वल है।

सोयाबीन

भारत जैसे शाकाहारी देश के लिए सोयाबीन एक प्रमुख फसल है क्योंकि यह वसा और प्रोटीन दोनों प्रदान करती है। इसे गरीब आदमी का मांस भी कहा जाता है। इसे खरीफ में कम उत्पादन देने वाली फसल के बदले में उगाया जा सकता है।

दलहन फसलें

यह महसूस किया गया है कि फसल स्वरूप में बड़ा परिवर्तन दलहनी फसलों में अनुसंधान के साथ आएगा। इन फसलों पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। वास्तव में दलहनी फसलों की किस्मों को मृदा की अवशिष्ट नमी पर सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। फसल गहनता में वृद्धि के लिए दलहनी फसलों को पूर्वी उत्तर प्रदेश, झारखंड और बिहार में मुख्य रूप से एकल फसल क्षेत्रों की कृषि प्रणाली में समायोजित करने की जरूरत है।

वैकल्पिक कृषि प्रणाली

वैकल्पिक कृषि प्रणाली जिला स्तर पर भूमि के समुचित उपयोग की दिशा में विविधीकरण की सिफारिश करती है। वर्षा आधारित कृषि में पशु घटक एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसके लिए चारा उपलब्ध कराना एक प्रमुख समस्या है तथा इस पर ध्यान देने की नितांत आवश्यकता है। देश में चारे की 25-40 प्रतिशत आवश्यकता की आपूर्ति के लिए रणनीतियां विकसित किए जाने की जरूरत है। प्रति इकाई पानी के उपयोग से अधिक जैव भार पैदा करने वाली शीर्ष चारा प्रजातियां, झाड़ियां, वार्षिक तृण प्रजाति को वर्षा आधारित सीमांत भूमि में वैकल्पिक फसलों के

रूप में विकसित किया जा सकता है। वैकल्पिक कृषि प्रणाली स्थान विशेष पर उगाए जाने वाले हरे चारे, जैव भार, फलों के पेड़, औषधीय और सुगंधित पौधों, सब्जियों, कृषि वानिकी प्रणाली और पशु घटक इत्यादि से मिल कर बनी है।

अनुक्रमिक फसल प्रणाली

एक वर्ष में दो या दो से अधिक फसल एक ही क्षेत्र में क्रमवार लगाना अनुक्रमिक फसल प्रणाली कहलाता है। यह प्रणाली उन क्षेत्रों में प्रचलित है जहां काली मृदा की जल धारण करने की क्षमता 200 मिलीमीटर प्रति मीटर मृदा तथा वर्ष भर होने वाली वर्षा की मात्रा 750 मिलीमीटर से अधिक है। जिन क्षेत्रों में फसल बढ़ोतरी की अवधि कम होती है, वहां यह प्रणाली सफल नहीं होती है। कीट, बीमारियों और खरपतवार जैसी समस्याओं के लिए जमीन को खाली छोड़ने की अपेक्षा अनुक्रमिक फसल प्रणाली को अपना कर कम किया जा सकता है। इसके अलावा, अनुक्रमिक फसल प्रणाली को अपना कर मृदा की उर्वरक क्षमता में भी सुधार किया जा सकता है। अनुक्रमिक फसल प्रणाली की सफलता, फसल का बुआई समय, उपयुक्त फसलों और किस्मों के चयन पर निर्भर करती है। अनुक्रमिक फसल प्रणाली में एक फसल कम अवधि (60-70 दिन) और दूसरी फसल लंबी अवधि (110-120 दिन) की हो सकती है(सारणी-3)। देश में लोकप्रिय अनुक्रमिक फसल प्रणालियां मूंग/उडद/लोबिया-ज्वार, सोयाबीन-चना, सोयाबीन-गेहूं, धान-मसूर/चना/मक्का हैं, जिन्हें सारणी-4 में दर्शाया गया है।

सारणी-3 : भारत में वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए कुशल अनुक्रमिक फसल प्रणालियां

क्र. सं.	उत्पादन प्रणाली	वार्षिक वर्षा (मि.मी.)	मिट्टी के प्रकार	प्रमुख और लाभदायक अनुक्रमिक फसल प्रणालियां
1	धान आधारित	1070-1370	पर्वतीय मिट्टी, जलोढ़ मिट्टी	धान-कुलथी, धान-टमाटर, धान-मिर्च, धान -अलसी, धान-चना, ऊंची जगह पर लगने वाला धान-चना/मसूर, धान-गेहूं,
2	मक्का आधारित	862-1100	काली मिट्टी, जलोढ़	मक्का-गेहूं/सरसों, मक्का-गेहूं+चना, मक्का-तोरिया+गेहूं, मक्का-गेहूं/सरसों, मक्का-कुलथी,
3	तिलहन आधारित	592-1048	काली मिट्टी, लाल मिट्टी	सोयाबीन-गेहूं, सोयाबीन-कुसुम/चना, सोयाबीन-सरसों, धान-चना/सरसों, चना तिल-/मसूर, मूंग-जौ/सरसों
4	कपास आधारित	780-825	काली मिट्टी	कपास-मूंग, कपास-सोयाबीन
5	पौष्टिक अनाज आधारित	561-936	काली मिट्टी, लाल मिट्टी, जलोढ़ मिट्टी, रेतीली मिट्टी, चिकनी मिट्टी, दोमट मिट्टी	सन-रबी ज्वार, खरीफ ज्वार-लोबिया-जौ+चना (1:1), बाजरा-चना/जौ, मूंग-सरसों

सारणी-4 : भारत में वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण फसल अनुक्रम

क्र.सं.	मिट्टी के प्रकार	वर्षा (मि.मी.)	फसल अनुक्रम
1	काली मृदा और इससे संबंधित मिट्टी	780-1100	मूंग-कुसुम, ज्वार-कुसुम, सोयाबीन-कुसुम/चना, मक्का-चना/कुसुम, धान-चना/मसूर
2	लाल मृदा और संबंधित मिट्टी	561-936	लोबिया-रागी, सोयाबीन-रागी, धान-कुलथी, रागी-कुलथी, लोबिया-मक्का, धान-चना, धान-अलसी, रागी-चना
3	जलोढ़ मिट्टी क्षेत्र	860-1100	मक्का-चना, सोयाबीन-गेहूं, मक्का-गेहूं + सरसों, मक्का-गेहूं+चना
4	नवीन जलोढ़ मिट्टी क्षेत्र	1070-1370	मूंग-सरसों, बाजरा-चना/जौ, धान-चना/मसूर, धान-गेहूं, उडद-सरसों

आमतौर पर, दोहरी फसल प्रणाली की सिफारिश ओडिशा, बिहार, मध्य प्रदेश और पूर्वी उत्तर प्रदेश के वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए की जाती है।

अंतर फसल प्रणाली

वर्षा आधारित फसलों का वर्षा की प्रतिकूल स्थितियों में विफल होना बहुत आम बात है। जिन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा औसत 600-800 मिलीमीटर तथा मृदा की जल धारण क्षमता 190 मिलीमीटर से अधिक होती है, उन क्षेत्रों में अनाज के साथ दलहनी और तिलहनी फसलों को अंतर फसलीकरण करने की सिफारिश की जाती है, क्योंकि यह फसल प्रणाली मानसून की असफलता की स्थिति में फसल बीमा के रूप में कार्य करती है। इस प्रणाली में आधार फसल की दो पंक्तियों के अंतर को प्रभावी ढंग से इस्तेमाल करके अंतर फसल को समायोजित किया जा सकता है। खराब मौसम की स्थिति के कारण यदि एक फसल विफल रहती है, तो अन्य फसल से कुछ उपज प्राप्त की जा सकती है। उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों में दोनों फसलों से अधिक आय प्राप्त की जा सकती है। कई अध्ययनों से पता चला है कि अंतर फसल प्रणाली रबी मौसम की तुलना में खरीफ के मौसम में अधिक सफल रहती है। इसके अलावा, अंतर फसल प्रणाली छोटे किसानों के बीच लोकप्रिय होती हैं। इसके द्वारा कुछ हद तक खरपतवार नियंत्रित किया जा सकता है। अंतर फसल प्रणाली किसी एक फसल उगाने की तुलना में अधिक लाभदायक है, जो आधार फसल के साथ अंतर फसल के साथ तालमेल पर निर्भर है, इसीलिए अंतर फसल प्रणाली में फसलों और पंक्ति अनुपातों का चयन बहुत महत्वपूर्ण होता है।

अंतर फसल प्रणाली में घटक फसलों का चयन फसल की उत्पादकता तथा उसकी खपत पर निर्भर करता है। आधार और अंतर फसलों में प्रतियोगिता कम करने और अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए पंक्ति अनुपात का मानकीकरण किया गया है। एक अच्छा पंक्ति अनुपात वह होता है जिसमें आधार फसलों की आबादी और क्षेत्र क्रियाकलापों में समझौता किए बिना आसानी से मध्य फसल प्राप्त की जा सके। व्यापक रूप से दूर-दूर लगाई जाने वाली फसलों जैसे अरहर और अरंडी में 2:1 पंक्ति अनुपात बेहतर पाया गया है। प्राय किसानों के खेतों में 2:1 या

1:1 पंक्ति अनुपात असुविधाजनक होता है और इसीलिए कई फसल प्रणालियों में इस अनुपात को 4:1 में संशोधित कर दिया गया है। अलग-अलग अंतर फसल प्रणालियों में पंक्ति अनुपात फसल वर्षा और मृदा के प्रकार पर निर्भर करता है (सारणी-5)।

सारणी-5 : वर्षा आधारित कृषि के लिए कुशल अंतर फसल प्रणालियां और पंक्ति अनुपात

क्र.सं.	उत्पादन प्रणाली	वार्षिक वर्षा (मिमी)	मिट्टी के प्रकार	प्रमुख और लाभदायक अंतर-फसल प्रणाली
1	धान आधारित	1070-1370	पर्वतीय, जलोढ़	धान+अरहर (4:1), धान+मूली (4:2), धान+भिंडी (4:2), धान+उडद (1:2), अरंडी+कंद फसलों (1:1), मक्का+अरहर (2:1), अरहर+मूली (2:1), धान+ तिल (1:1), धान+मक्का (1:2), अरहर+भिंडी (1:2), मसूर+टमाटर (1:1), मसूर+सरसों (4:1), जौ+सरसों (6:1), मक्का+उडद (1:1), अरहर+ उडद (1:1), सरसों+चना (1:4), अरहर+मूंगफली (1:5)
2	मक्का आधारित	862-1100	काली, जलोढ़	मक्का+भिंडी/गोल लौकी (1:1), गोभी सरसों+जई (1:1), गेहूं+सरसों (4:1), जौ+चना (2:2), चना+सरसों (4:1), मक्का+उडद (2:2), मक्का+अरहर (1:1), मूंगफली+तिल (6:2), अरंडी+मूंग (1:2), चना+कुसुम (4:1)
3	तिलहन आधारित	592-1048	काली, लाल	मक्का+सोयाबीन (2:2), सोयाबीन+अरहर (2:2), ज्वार + अरहर (2:1), सोयाबीन+अरहर (4:2), मूंगफली+अरंडी (3:1), मूंगफली+अरहर (2/4:1), बाजरा+अरंडी (2/4:1), मूंगफली + अरहर (लोबिया, मूंग, चना और फील्ड बीन) (7 जैसे अन्य दालों के साथ मिश्रित: 1)
4	कपास आधारित	780-825	काली	ज्वार+मूंग (2:1), ज्वार+अरहर(2:1), कपास+मूंग (1:1), कपास+अरहर (2:1), अरहर+मूंग (1:1), ज्वार+उडद (2:1), ज्वार+लोबिया (2:1), कपास+उडद (2:2)
5	पौष्टिक अनाज आधारित I) ज्वार आधारित	561-936	काली लाल पर्वतीय रेतीली	रबी ज्वार+चना+कुसुम, ज्वार+अरहर (2:1), बाजरा+राजमा/कुलथी (2:1), सूरजमुखी+अरहर (2:1), चना+कुसुम (3:1), बाजरा+अरहर (2:1), बाजरा+मोठ बीन (2/3:1), ज्वार+अरहर (1:1), अरहर+बाजरा (1:3), चना+कुसुम (3:1), चना +ज्वार (1:2), अरहर+मूंगफली (1:3), अरहर+मूंग (1:1), चना+सरसों (4:1), जौ+चना (3:2), बाजरा+मूंग (3:1), बाजरा+क्लस्टर बीन (2:1), रागी + अरहर (10:1), सोयाबीन+रागी (1:1), मूंगफली +अरहर (8:2)
	II) चारा आधारित	600-902	लाल चिकनी दोमट	ज्वार+लोबिया (2:2), गिनी+सिरात्रों

अंतर फसल प्रणाली में फसल की किस्म तथा पौधों की संख्या भी बहुत महत्वपूर्ण है। अंतर फसल प्रणाली में केवल उपलब्ध किस्मों का ही उपयोग किया जाता है। उच्च पैदावार और लाभ प्राप्ति के लिए फसलों की किस्में एवं उनकी अवधि बहुत महत्वपूर्ण होती है। उचित औज़ार और किस्मों की कमी अंतर फसल प्रणाली अपनाने के रास्ते में बड़ी बाधा है।

फसल चक्र

उपयुक्त फसल चक्र मिट्टी की उर्वरता में सुधार, पर्यावरण संरक्षण, अधिक आर्थिक लाभ, खरपतवार एवं रोग नियंत्रण और जैव विविधता को बढ़ाने में सहायक होता है। जैव खाद, आवरण फसल तथा छोटे चराई चक्रों का फसल चक्र में समायोजन फसल चक्र प्रणाली को अत्यधिक लाभकारी बना देता है। भारत के अधिकांश शुष्क क्षेत्रों हेतु अलग-अलग वर्षा स्थितियों के लिए उपयुक्त फसलों की पहचान की गई है। वाराणसी की कृषि जलवायु परिस्थितियों में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि सामान्य मानसून की स्थिति में जरूरत पड़ने पर कम अवधि वाली फसलें जैसे मक्का, बाजरा, उडद, मूंग, तिल, अरहर तथा उच्च भूभाग पर लगाए जाने वाली धान भी लगाई जा सकती है तथा इन फसलों के बाद सर्दियों के मौसम में अवशिष्ट नमी पर चना, मसूर, जौ, सरसों, कुसुम, अलसी आदि फसलें लगाई जानी चाहिए। फसल नियोजन वर्षा की मात्रा एवं उसके वितरण तथा मृदा के प्रकार के आधार पर बनाया जाता है। मृदा में नमी को अवशोषित करने की क्षमता के आधार पर रबी मौसम में मसूर, सरसों, अलसी और जौ इत्यादि फसलें उगाई जा सकती हैं।

आवरण फसल

आवरण फसल, फल प्रदान करने वाले वृक्षों और कॉफी के पौधों या अन्य अनाज की फसलों जैसे मक्का की पंक्तियों के मध्य जमीन की सतह को ढक कर रखने का कार्य करती है। अरहर व अन्य शक्तिशाली जड़ें तथा लंबी अवधि वाली फसलें मक्का और सेम की तुलना में अच्छा मिश्रण बनाती हैं जिसका प्रयोग अर्ध-शुष्क क्षेत्रों की जमीन की सख्त निचली सतह को तोड़ने में इस्तेमाल किया जा सकता है। आवरण फसल से मुख्य फसल की प्रतियोगिता कम से कम होनी चाहिए। आवरण फसल को मुख्य फसल की बुआई के साथ एक ही समय या प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए मुख्य फसल की स्थापना के बाद लगाया जाना चाहिए। यदि ऐसा करना संभव न हो तो उस परिस्थिति में आवरण फसल को एक व्यावहारिक आर्थिक वैकल्पिक हरी खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। आवरण फसल लेने से किसानों को बिना किसी अतिरिक्त लागत के अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। आवरण फसल यथा-स्थान (जमीन के ऊपर और नीचे) अवशेषों को निर्मित करती है, जिससे मृदा की भौतिक व रासायनिक अवस्था में सुधार होता है और मृदा का कटाव एवं अपवाह से संरक्षण प्राप्त होता है। बीजापुर में किए गए अनुसंधानों से पता चलता है कि ककड़ी की फसल को आवरण फसल के रूप में लगाने से मृदा के अपवाह वेग और कटाव में कमी आई। मूंग, उडद और अन्य दलहनी फसलें आवरण फसल के रूप में इस्तेमाल की जा सकती है।

वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली

वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली फसलों में विविधता लाने और कटाव के प्रति भूमि संरक्षण हेतु एक संभावित कृषि कार्यप्रणाली है। वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली के अंतर्गत कृषि-वानिकी कार्यक्रम लागू करके कृषि में वृक्षों का संयोजन किया गया। इस कार्यक्रम ने जैव विविधता, भूमि की उत्पादकता और मृदा की गुणता बढ़ाने तथा भूमि कटाव को कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कृषि वानिकी को भूमि उपयोग की छठी एवं सातवीं श्रेणी में प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा करने से न केवल अकृष्य भूमि उपयोग, उसके सुधार, संसाधन संरक्षण में मदद मिलती है बल्कि भूमि कटाव को भी कम किया जा सकता है। इसके अलावा, कृषि वानिकी अल्पीकरण और रूपांतरण रणनीतियों के माध्यम से कार्बन ज़ब्त कर जीएचजी गैसों के उत्सर्जन को कम करने में मदद करती है। वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली का उपयोग करने से प्राकृतिक वनों पर ईंधन के लिए पड़ने वाला दबाव कम होता है और पशुओं के लिए चारा भी प्राप्त होता है। शुष्क भूमि में, कृषि वानिकी (फल फसलों के मध्य दलहनी फसलों को उपजाना) से न केवल फल फसलों की पैदावार में सुधार होता है अपितु मिट्टी की उर्वरता भी बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, कुलथी, लोबिया और मूंगफली आदि फसलों को आम के बाग में वृक्षों के मध्य लगाने से शुद्ध आय में बढ़ोतरी तथा मृदा की उर्वरता में सुधार होता है। वृक्षों की जड़ों द्वारा मिट्टी को स्थाई रखने से जल अपवाह से होने वाले भूमि कटाव से बचाव होता है तथा वृक्षों से गिरने वाली पत्तियों से पौधों के लिए पोषक तत्व की प्राप्ति होती है। खेत की मेड़ पर उगाए गए वृक्षों के अवशेषों को भी हरी खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। भूमि वर्गों की छठी और सातवीं श्रेणी में सूरजमुखी और ज्वार फसलों को लगाने की बजाय औषधीय पौधे जैसे अश्वगंधा, कथरनथस, सेन्ना तथा सुगंधित पौधे जैसे नींबू घास, पामरोजा और रंग प्रदान करने वाले पौधे मेहंदी इत्यादि की कृषि की जा सकती है। ये फसलें परंपरागत कृषि फसलों की तुलना में अधिक लाभदायक होती हैं।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसलों की उत्पादकता में सुधार करने के लिए रणनीतियां

अनुसंधानकर्ताओं ने संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों के माध्यम से पर्यावरण पर कम से कम प्रभाव डालते हुए विभिन्न फसल प्रणालियों की उत्पादकता में वृद्धि की है। इन प्रौद्योगिकियों में भूमि की क्षमता के आधार पर फसलों का चयन, फसलों का विविधीकरण, कृषि के लिए उन्नत किस्मों का उपयोग, अंतर फसल प्रणाली, दोहरी फसल प्रणाली, पलवार, आवरण फसल, भूरी खाद, स्व-स्थाने एवं बहि-स्थाने नमी संरक्षण, संतुलित पोषक तत्व उपयोग, भूमि के कार्बनिक पदार्थ को बढ़ाने हेतु जैविक पोषक तत्व प्रबंधन, मिट्टी की संरचना में सुधार (तालाब की मिट्टी के उपयोग करके), पोषक तत्व प्रबंधन, कुशल औजारों का उपयोग आदि शामिल हैं। इन प्रौद्योगिकियों का प्रकार स्थान विशेष की वर्षा, मृदा के प्रकार और ढलान पर निर्भर करता है।

उपयुक्त फसलों एवं फसल प्रणालियों का चयन

आमतौर पर वर्षा आधारित क्षेत्रों के अधिकांश क्षेत्रों में प्रचलित पारंपरिक फसल प्रणालियां जीविकोपार्जन और आवश्यकता आधारित तथा संसाधनों के उपयोग में असफल होती हैं। मिश्रित फसल प्रणाली फसल बीमा के रूप में एक आम व्यवस्था है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में शुष्क भूमि

तकनीकों के विकास से पूर्व केवल एक ही फसल उगाई जाती थी। उदाहरण के लिए रबी मौसम में गहरी काली मृदाओं में कुसुम और चने की फसल अकेली अथवा अंतर फसल प्रणाली के रूप में, जबकि लाल मृदा में केवल वर्षा ऋतु में ही फसलें उगाई जाती थी।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में कम फसल उत्पादकता का प्रमुख कारण अनुपयुक्त फसलों का चयन या कम आनुवंशिक क्षमता वाली फसल किस्मों को उगाना है। इसलिए फसलों की उत्पादकता साकार करने के लिए फसलों और किस्मों का चयन बहुत महत्वपूर्ण है। भारत जैसे देश में जहां एक तरफ विविध जलवायु, मृदा कारक, जैवीय कारक और सामाजिक आर्थिक परिस्थितियां पाई जाती हैं तथा खाद्यान्नों की मांग बढ़ रही है, ऐसी परिस्थितियों में फसलों एवं किस्मों के चयन के लिए महत्वपूर्ण मापदंड भूमि की उपयोग क्षमता, मृदा में नमी की उपलब्धता, मृदा की गहराई और वर्षा का वितरण करना जरूरी है।

भूमि उपयोग की योजना का लक्ष्य निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु मौजूदा पर्यावरण और सामाजिक अवसरों और बाधाओं के तहत देश को विभिन्न क्षेत्रों में आबंटित करना है। किसान अनाज, चारा, ईंधन इत्यादि के लिए कृषि करते हैं। बढ़ती जनसंख्या और पशुधन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मध्यम भूमि का भी उपयोग कृषि कार्यों हेतु किया जाने लगा है जो कि फसलों की कम उपज तथा मृदा क्षरण करने के लिए उत्तरदाई है। भूमि की क्षमता के आधार पर उसे आठ श्रेणियों में बांटा गया है। इनमें से पहले चार वर्ग कृषि फसल उत्पादन के योग्य हैं जबकि, पांचवीं से आठवीं तक की श्रेणियां वानिकी, घास और जंगली जानवरों के लिए उपयुक्त है। मृदा के प्रकार, उसकी क्षमता तथा प्रभावी संसाधन संरक्षण रणनीतियों के आधार पर फसलों का चुनाव एवं कृषि, फसल की पैदावार बढ़ाने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं (चित्र-1)।

चित्र-I : वर्षा आधारित क्षेत्रों की फसल प्रणाली के लिए अनुशंसित भूमि उपयोग

वर्षा (मिलीमीटर)							
		100	250	500	750	1000	1250
	II	पशु आधारित कृषि प्रणाली		तिलहन और दलहन		विविध भूमि उपयोग	
	III			(अनुक्रम फसल/उच्च मूल्य सदाबहार फसलें)			
	IV	वृक्षीय कृषि		बाजरा आधारित कृषि प्रणाली		अनाज / दलहनी फसलों का अंतर-फसलीकरण	
भूमि क्षमता श्रेणी	V	वानिकी-चरागाह (इनमें ईंधन, रंग, तेल, दवाओं, कीटनाशकों के लिए उपयोगी पेड़ तथा झाड़ियां शामिल है।)				बागवानी-चरागाह	
	VI						
	VII	वृक्षीय कृषि					
	VIII	जंगली जीवन/मन बहलाव के लिए					
		100	250	500	750	1000	1250

स्रोत: क्रीडा, 1997

भूमि के उपयोग के वर्गीकरण के अलावा, मृदा की सीमित नमी अवस्था के अनुकूल अधिक उत्पादन देने वाली फसलों या किस्मों का चुनाव सबसे वांछित मापदंड है। लेकिन शुष्क भूमि में कृषि योजना निर्धारण फसल की लंबी अवधि एवं मृदा में नमी की उपलब्धता के आधार पर करना, कुल वार्षिक वर्षा की तुलना में, एक बेहतर सूचकांक है। लंबी अवधि की फसलों के विकास के लिए उपयुक्त नमी और क्षेत्र विशेष के तापमान के रूप में परिभाषित किया जाता है। लंबी अवधि की गणना ऐसे दिनों की संख्या को जोड़कर की जाती है जिनमें वर्षा की मात्रा 0.5 वाष्पन-उत्सर्जन से अधिक तथा समय अवधि जिसमें मृदा में संग्रहित नमी (सुनिश्चित मात्रा 100 मिलीमीटर) का उपयोग करने के उपरांत वर्षा की मात्रा वाष्पोत्सर्जन से कम हो जाती है। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र के 'नागपुर' और 'रत्नागिरी' में औसतन वार्षिक वर्षा क्रमशः 1120 मिलीमीटर और 2500 मिलीमीटर है, परंतु दोनों स्थानों पर गहरी काली मृदा में लंबी अवधि 210 दिनों की ही है। इसीलिए दोनों ही स्थान लंबी अवधि वाली एक फसल अथवा छोटी अवधि की पहली फसल के बाद रबी के मौसम में एक अन्य फसल उगाने के लिए उपयुक्त है। वास्तविक वर्षा अवधि के भीतर परिपक्व होने वाली उपयुक्त फसलों एवं किस्मों का चयन न केवल उस फसल के उत्पादन को बढ़ाने में, बल्कि फसल गहनता में भी वृद्धि करता है (सारणी 6)।

सारणी-6 : भिन्न वर्षा और मृदा के प्रकार के आधार पर संभावित फसल प्रणालियां

वर्षा (मि.मी.)	मिट्टी के प्रकार	सप्ताह में प्रभावी बढ़ोतरी समय	सुझाई गई फसल प्रणाली
350-600	लाल, उथली और काली	20	एकल वर्षाकालीन फसल
350-600	गहरी रेतीली और नवीन जलोढ़	20	खरीफ/रबी में एकल फसल
350-600	गहरी काली	20	वर्षाकालीन समाप्ति के पश्चात एकल फसल
600-750	लाल, काली और नवीन जलोढ़	20-30	अंतर फसल
750-900	नवीन जलोढ़, गहरी काली, लाल और जलोढ़	30	निरंतर निगरानी के साथ दोहरी फसल
>900	नवीन जलोढ़, गहरी काली, काली और जलोढ़	30 से अधिक	निश्चित दोहरी फसल प्रणाली

स्रोत: एक्रीपड़ा रिपोर्ट

उपयुक्त फसल के अलावा, फसल की अच्छी किस्में भी फसल की पैदावार बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कुछ सूखा प्रतिरोधी फसलें जैसे ज्वार, मक्का, कुसुम, सूरजमुखी, अरंडी, अरहर, सोयाबीन, आदि शुष्क भूमि में उगाई जा सकती हैं। फसल का चयन मृदा की गहराई तथा जल धारण क्षमता पर निर्भर करता है। आमतौर पर वर्षाजल से सिंचित क्षेत्र में

लगाई जाने वाली पारंपरिक फसलों की किस्में लंबी अवधि की होती है जो बढ़ोतरी अवधि से मेल नहीं खाती जिससे पैदावार कम हो जाती है। कृषि में सूखा सहिष्णु फसलों के माध्यम से फसल की पैदावार में 15-20 प्रतिशत सुधार किया जा सकता है।

शुष्क क्षेत्रों के लिए फसल किस्में कम अवधि वाली, सूखा प्रतिरोधी या सहिष्णु, वर्षा कालावधि में पकने तथा अधिक उपज देने वाली, वर्षा कालावधि के बीतने के बाद उगाई जाने वाली अगली फसल के लिए मृदा की तह में पर्याप्त अवशिष्ट नमी छोड़ने वाली होनी चाहिए। कुछ सूखा प्रतिरोधी फसलें, जैसे-ज्वार, मक्का, कुसुम, सूरजमुखी, अरंडी, अरहर, सोयाबीन, आदि शुष्क भूमि में उगाई जा सकती हैं। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद में सूरजमुखी पर किए गए क्षेत्रीय परीक्षण से पता चला है कि केबीएसएच-1 उथले प्रकार की मृदा में तथा एमएसएच-17 का प्रदर्शन गहरी मृदा में बेहतर था। समान रूप से अरंडी फसल की किस्म डीसीएच-32 की पैदावार क्रांति किस्म की तुलना में 18.2 प्रतिशत अधिक दर्ज की गई। जबकि, मूंगफली की दो किस्मों जी-5 और जी-20 ने मूंगफली की अन्य किस्म जम्मू-11 की तुलना में क्रमश: 13 और 19 प्रतिशत पैदावार अधिक दर्ज की।

बाजरा तथा रागी जैसी फसलें, अंत में पड़ने वाले सूखे के लिए तथा दलहनी फसलें, प्रारंभ में पड़ने वाले सूखे के मौसम के लिए बेहतर होती हैं। इन फसलों ने विभिन्न क्षेत्रों में अधिक वर्षा जल उपयोग क्षमता दर्ज की है। आमतौर पर वर्षा की मात्रा एवं वितरण क्षेत्र विशेष में फसलों की अवधि तथा फसल प्रणाली का निर्धारण करती है (सारणी-7)।

सारणी-7 : मिट्टी की नमी के आधार पर शुष्क भूमि में फसलों का चयन

मृदा की गहराई	नमी की उपलब्धता (से.मी.)	नमी की उपलब्धता (दिन)	फसल
उथली	10	90	ज्वार/मक्का/सोयाबीन
मध्यम गहराई	15	150	सोयाबीन/ज्वार/अरहर
गहरी	20	180	मक्का, कुसुम, सोयाबीन, चना, तथा मक्का- चना की फसल प्रणाली

स्रोत: एक्रीपड़ा रिपोर्ट

ऐसे क्षेत्र जहां फसलों की अवधि 20 सप्ताह तथा वर्षा 350 से 600 मिलीमीटर होती है, वहां केवल एकल फसल प्रणाली और जहां वर्षा 750 मिलीमीटर से अधिक प्राप्त होती है तथा इन क्षेत्रों में दोहरी फसल प्रणाली भी संभव है। एकल फसल प्रणाली के जोखिम को कम करने के लिए अंतर फसल प्रणाली को अपनाया जा सकता है। इनका वर्णन सारणी-8 और सारणी-9 में दिया गया है।

सारणी-8 : वर्षा और मृदा के प्रकार के आधार पर शुष्क भूमि में फसल प्रणाली का चुनाव

वर्षा (मिलीमीटर)	मृदा	फसल अवधि (सप्ताह)	फसल प्रणाली
350-600	लाल मिट्टी, काली उथली मिट्टी	20	एकल फसल प्रणाली
600-700	लाल और काली मिट्टी	20-30	अंतर फसल प्रणाली
750-900	बहुत गहरी काली मिट्टी, लाल मिट्टी	30	दोहरी फसल प्रणाली
>900	गहरी काली मिट्टी, लाल मिट्टी	>30	दोहरी फसल प्रणाली

स्रोत: एक्रीपड़ा रिपोर्ट

सारणी-9 : मृदा के प्रकार के अनुसार किस्मों का चयन

मृदा के प्रकार	उपयुक्त फसल अवधि (दिन)
लैटरिटिक मृदा	80-90
रेतीली दोमट मृदा	90-110
चिकनी दोमट मृदा	110-130
चिकनी मृदा	130-140
अर्ध जलमगन	140-150

स्रोत: एक्रीपड़ा रिपोर्ट

वर्षा जल प्रबंधन

भविष्य में बढ़ती जनसंख्या के कारण घरेलू, ऊर्जा और औद्योगिक उपयोग के लिए पानी की मांग बढ़ेगी जिससे कृषि को वर्तमान में मिलने वाला पानी का हिस्सा भी प्राप्त नही होगा तथा वर्षा का जल ही कृषि के लिए एकमात्र मुख्य स्रोत रह जाएगा। आमतौर पर भारत में वर्षा का 75 प्रतिशत दक्षिणी-पश्चिमी बरसाती पवन से चार महीने की अवधि (जून से सितंबर) के भीतर प्राप्त होता है। इन चार महीनों में भी, वर्षा केवल कुछ ही दिनों में हो जाती है अर्थात सारी वर्षा लगभग चार दिनों में ही हो जाती है। इसके अलावा, वर्षा की मात्रा कम, अनियमित, अनिश्चित तथा असमान वितरण होता है। कम और अनिश्चित वर्षा के कारण शुष्क चरण पैदा होते है, जो फसलों की उत्पादकता में गिरावट का कारण बनते हैं। इसलिए फसलों की उत्पादकता में सुधार करने के लिए मृदा में नमी संरक्षण एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। विविध मृदा और जल संरक्षण के उपायों द्वारा उपज में सुधार 12 से 20 प्रतिशत के बीच होता है, जो किसानों के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए वांछित फसल उत्पादन प्राप्त करने के लिए उच्च और निम्न वर्षा स्थितियों में उचित जल और भूमि का प्रबंधन आवश्यक है। कुशल वर्षा जल संरक्षण तकनीकों के माध्यम से वर्षा जल का समयोचित उपयोग कृषि में किया जा सकता है।

किसी भी जलसंग्रहण आधारित संसाधन प्रबंधन रणनीति में, वर्षा जल का संरक्षण स्व-स्थान अथवा प्राकृतिक या मानव निर्मित संरचनाओं में किया जा सकता है। संरक्षित किया हुआ जल मोटे तौर पर दो उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है, जिनमें गर्मियों में खड़ी फसल में पूरक सिंचाई प्रदान करके फसल का शुष्क चरण (मध्य एवं अंतिम समय का सूखा) से बचाव या अगली सर्दियों (रबी) की फसल की बुवाई के लिए सुविधा शामिल है। शुष्क चरण अवधि के दौरान सूक्ष्म सिंचाई का प्रावधान अलग-अलग फसलों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह पैदावार में 29 से 114 प्रतिशत तक सुधार करने की क्षमता रखता है। राष्ट्रीय वर्षाजल सिंचित क्षेत्र प्राधिकरण के अनुसार 27.5 मिलियन हेक्टेयर वर्षा आधारित क्षेत्र में 100 मिलीमीटर गहराई की एक पूरक सिंचाई के माध्यम से वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन में 9.3 मिलियन टन की वृद्धि की जा सकती है। पूरक सिंचाई के माध्यम से कपास, तिल, मूंगफली, सोयाबीन और चना की फसलों के उत्पादन में महत्वपूर्ण सुधार किया जा सकता है।

स्व-स्थान जल संरक्षण विधि में पानी को उसके गिरने के स्थान पर ही अवशोषित होने दिया जाता है ताकि मिट्टी की नमी में सुधार आए और अवशोषित जल फसल से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए उपयोगी हो। यह विधि किसानों द्वारा बाहरी (प्राकृतिक या मानव निर्मित संरचनाओं) वर्षा जल संरक्षण की तुलना में आसान है। स्व-स्थान वर्षा जल संरक्षण विधि वर्षा आधारित क्षेत्रों में न केवल अपवाह और मिट्टी के कटाव को कम करता है बल्कि उपलब्ध फसल किस्मों की संभावित उत्पादकता और मौजूदा फसल की पैदावार के बीच की खाई को पाटने के लिए भी एक रास्ता तैयार करता है। स्व-स्थान वर्षा जल संरक्षण विधि में गहरी जुताई तथा भूमि विन्यास तरीके, जैसे चौड़ी क्यारी और कूंड, वर्गीकृत सीमा पट्टी शामिल हैं, जो ऊर्जा कुशल औजारों के साथ और कम लागत में कुशल तरीके से तैयार किए जा सकते हैं तथा अच्छी संभावना जगाते हैं। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि यदि हल के साथ गहरी जुताई करने के बाद छेनी का उपयोग किया जाए तो ज्वार फसल की उपज में वृद्धि होती है। इसके अलावा कम वर्षा के दौरान बेमौसमी जुताई के लाभदायक प्रभाव हल्के सूखे वर्ष (उपज में वृद्धि 31 प्रतिशत), नजदीकी सामान्य वर्षा वर्ष (उपज में वृद्धि 24 प्रतिशत) की तुलना में अधिक स्पष्ट होते हैं।

स्व-स्थान वर्षा जल संरक्षण विधि के महत्वपूर्ण उपायों में खाई कृषि, परिरेखा कृषि, संरक्षित कूंड, मेड़ तथा कूंड, चौड़ी क्यारी तथा कूंड, परिरेखा मेड़, वनस्पति बाधाएं, पलवार इत्यादि शामिल हैं। राष्ट्रीय कृषि तकनीकी परियोजना (एनएटीपी) के तहत किए गए मृदा-जल संरक्षण के उपायों से सूरजमुखी, अरंडी और मूंगफली की फसलों की पैदावार में क्रमश: 20, 30 और 11 प्रतिशत वृद्धि हुई है। प्रयोगों से यह पता चला है कि मेड़ तथा कूंड तकनीक, जो कि मृदा-जल संरक्षण के अंतर्गत आती है, से फसल की उपज में 25 प्रतिशत वृद्धि होती है। चौड़ी क्यारी तथा कूंड तकनीक साधारणतया काली मृदा तथा क्षेत्र विशेष, जिनमें वर्षा की मात्रा 700-1500 मिलीमीटर होती है, में अपनाई जाती है। इसमें क्यारी की लंबाई 120 सेंटीमीटर चौड़ाई 55 सेंटीमीटर तथा गहराई 15 सेंटीमीटर होती है। इस तकनीक से अपवाह वेग में 40 प्रतिशत की कमी आती है जिससे भूमि में जल रिसाव गति बढ़ती है और भूमि की नमी में 24-30 प्रतिशत वृद्धि होती हैं। इससे सोयाबीन फसल की उपज में 27 प्रतिशत और शुद्ध लाभ में 26.1 प्रतिशत की वृद्धि होती

है। एक अन्य मिट्टी-जल संरक्षण प्रयोग वेटिवर घास का उपयोग वनस्पति रोध के रूप में, भूमि अपवाह और भूमि कटाव से होने वाले नुकसान को क्रमश 18 प्रतिशत तथा 78 प्रतिशत तक कम कर सकता है। लाल मृदा में पलवार करने से 80 प्रतिशत तक उपज में वृद्धि दर्ज़ की गई है जबकि, काली मृदा में मक्का की उपज में वृद्धि 45 प्रतिशत तथा अपवाह में 25 मिलीमीटर की कमी देखी गई है। केंद्रीय बारानी वर्षा आधारित कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा तालाब गाद प्रयोग पर किए गए अध्ययनों से पता चला है कि तालाब गाद प्रयोग से उपज में 10-20 प्रतिशत वृद्धि तथा मिट्टी की नमी 30-40 प्रतिशत बढ़ जाती है।

उर्वरक प्रबंधन

वर्षा आधारित मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी होती है। भूमि में कम पोषक तत्व होने का प्रमुख कारण अनिश्चित मौसम के कारण असंतुलित पोषक तत्वों का अनुप्रयोग है। शुष्क भूमि में नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी बहुत आम है। स्थान विशेष उर्वरक प्रबंधन के आधार पर उर्वरकों का उपयोग किए जाने से कृषि की लागत को कम तथा फसल की पैदावार एवं शुद्ध आर्थिक लाभ में बढ़ोतरी की जा सकती है। संशोधित उर्वरको के प्रयोग से नत्रजन उपयोग दक्षता को बढ़ाया जा सकता है। एक प्रयोग से साबित हुआ है कि केवल उर्वरक का प्रयोग करने से ही वर्षा सिंचित क्षेत्र में पैदावार में 50 प्रतिशत वृद्धि होती है और शेष 50 प्रतिशत अन्य प्रबंधन के तरीकों पर निर्भर करती है। अंतर फसल प्रणाली या अनुक्रमिक फसल प्रणाली में दलहनी फसलों के समावेश से मृदा की उर्वरता बढ़ती है और खाद की आवश्यकता कम हो जाती है।

फसल अवशेष प्रबंधन

मृदा में फसलों के अवशेषों का अनुप्रयोग मृदा की जैविक कार्बन मात्रा में सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण रणनीति है, हालांकि, इसमें कई सामाजिक-आर्थिक बाधाएं हैं। पशुओं के लिए चारा और ईंधन के लिए लकड़ी की जरूरत बड़ी प्रतिस्पर्धा है, जिसका अकसर कोई विकल्प उपलब्ध नहीं होता है।

शुष्क और अर्ध-शुष्क वर्षा आधारित क्षेत्रों में अवशेषों की कमी को देखते हुए, अवशेष उत्पादन के लिए कई वैकल्पिक रणनीतियां विकसित की गई हैं। उनमें, कुछ फसलों को आवरण और हरी खाद के रूप में उगाया जाना है तथा मेड़ों पर लगे बारहमासी वृक्षों की कटाई एवं गिरने वाली हरी पत्तियों से भूमि में खाद सह पलवार करना है। लेकिन ये प्रणालियां आमतौर पर किसानों द्वारा नहीं अपनाई जाती क्योंकि इसमें फसलों को लगाने तथा जैव भार के अनुप्रयोग में बहुत अधिक श्रम लगता है। इन पद्धतियों के साथ अन्य समस्या यह है कि इनमें लगने वाली फसलें भूमि और उपलब्ध पानी के लिए खाद्य फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा करती हैं। इसलिए अलग दृष्टिकोण से अलग-अलग ऊंचाई पर फसल की कटाई, व्यापक दूरी पर लगने वाली फसलों के बीच में अंतर फसल, मक्का और ज्वार की तरह की कम अवधि की फसल के बाद अवशिष्ट नमी पर कुलथी की तरह कम अवधि वाली फसल लगाई जा सकती हैं।

कृषि उपकरण

वर्षा आधारित क्षेत्र में खराब मौसम और सीमित नमी की वजह से उचित समय पर बुवाई, मध्य कृषि क्रिया-कलाप एवं उर्वरक अनुप्रयोग बहुत महत्वपूर्ण होते हैं, जो आमतौर पर कृषि यंत्रीकरण के माध्यम से हासिल होती है। इस दिशा में बहुत लंबे समय से प्रयास किए गए हैं, जिनमें एक क्रमिक बदलाव पशु शक्ति से यंत्रीकरण की ओर किया गया है। कृषि यंत्रीकरण का सबसे बड़ा लाभ कृषि मशीन द्वारा समय सीमा में उचित गहराई पर बीज एवं उर्वरक के नियोजन के अलावा बीज, उर्वरक तथा समय का बचाव है। उन्नत सीड ड्रिल दोनों कार्य (बीज एवं उर्वरक नियोजन) एक साथ करने में मदद करती है। कृषि में यंत्रीकरण के बढ़ने के प्रमुख कारण पशु शक्ति और मानव श्रम की लागत में बढ़ोतरी है। इसके अलावा पशुधन के लिए चारा उपलब्धता भी एक बड़ी बाधा है। शुष्क भूमि में किसान पारंपरिक और पुराने कृषि उपकरण का उपयोग करते हैं जिनका प्रदर्शन न केवल खराब है अपितु उन पर काफी ऊर्जा और समय भी खर्च होता है। कृषि उपकरण ज्यादा से ज्यादा वर्षा के पानी का यथा-स्थान जल संरक्षण करने में सहायता कर सकते हैं।

ऊर्जा स्रोतों के अनुसार, उचित आकार और प्रकार की जुताई की मशीन का ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए। स्थान विशेष शुष्क भूमि की जरूरत के अनुसार बीज बोने की मशीने विकसित की गई हैं, जिन्होंने भविष्य के लिए अच्छी संभावनाए जगाई हैं। इन मशीनों की एक विशेषता यह है कि ये बीज और उर्वरक का नियोजन नमी क्षेत्र में करती हैं जिसके परिणामस्वरूप मृदा में बीज के अंकुरण का प्रतिशत उच्च और फसल ताक़तवर होती है। शुष्क भूमि क्षेत्रों में, जहां किसान आमतौर पर गरीब हैं, कृषि यंत्रीकरण का निर्णय लेते समय उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।

शुष्क भूमि फसल प्रणालियों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए रणनीतियां

- भूमि की देखभाल और विभिन्न संरक्षण कृषि पद्धतियां, संतुलित उर्वरक प्रयोग, जैव उर्वरक और सूक्ष्मजीवों के सामर्थ्य का दोहन और कार्बन ज़ब्ती के माध्यम से मृदा की गुणता में सुधार।
- उन्नत फसलों, फसल प्रणालियों तथा सबसे उपयुक्त किस्मों का चयन।
- जलोत्सारण क्षेत्र के आधार पर जमीन और पानी का प्रबंधन।
- विविधीकरण द्वारा उच्च आय मापदंड रखते हुए कृषि-प्रणाली पद्धति को अपनाना।
- समय पर कृषि क्रियाओं के लिए सटीक यंत्रीकरण।
- कटाई उपरांत शीतगार, मूल्य संवर्धन तकनीकों का इस्तेमाल करना।
- सुनिश्चित रोजगार और मजदूरी प्रणाली।
- जैविक कृषि।

- वर्षा आधारित बंजर भूमि का पुनर्वास।
- नीति में परिवर्तन और अन्य समर्थन मूल्य प्रणाली, मानव संसाधन विकास, प्रशिक्षण और सलाह सेवाएं।

उपरोक्त रणनीतियों को अपनाया जाना वर्षा की स्थिति पर निर्भर करता है। इसलिए विभिन्न वर्षा स्थितियों के लिए संभावित वैकल्पिक क्षेत्रों का विस्तृत वर्णन आगे दिया जा रहा है।

औसतन वार्षिक वर्षा 500 मिलीमीटर से कम वाले क्षेत्रों हेतु रणनीतियां (15 मिलियन हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि)

- कृषि को पशुपालन के साथ जोड़ना।
- कृषि योग्य क्षेत्रों, जिनमें कृषि केवल बाजरा अथवा दलहनी फसलों तक सीमित है, में कृषि वानिकी, वानिकी - चरागाह और बागवानी-चरागाह प्रणाली को अपनाना।
- सूखा सहिष्णु बारहमासी प्रजातियां उगाना जिनसे ईंधन, चारा और अनाज प्राप्त हो सके।
- कृषि आय को बढ़ाने के लिए शुष्क-बागवानी को अपनाना।
- उच्च उत्पादन के लिए सिंचाई के पानी के प्रबंधन के लिए आधुनिक तकनीकों को अपनाना।
- चारागाह के कुशल प्रबंधन पर बल देते हुए और आम चारागाहों में घास की उत्तम किस्मों एवं बीज को लगाने की तकनीक को अपनाना तथा चारा बैंकों को विकसित करना।

औसतन वार्षिक वर्षा 500-750 मिलीमीटर वाले क्षेत्रों हेतु रणनीतियां (15 मिलियन हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि)

- तिलहन और दलहन आधारित अंतर फसल प्रणाली पर ज़ोर देना।
- उच्च मूल्य वाली फसलें (जामुन, औषधीय, सुगंधित, रंग, कीटनाशक फसलें) और अत्याधुनिक कृषि तकनीकियों (ड्रिप सिंचाई, प्रसंस्करण, निकालने, मूल्य वर्धित उत्पादों) को अपनाना ।
- जलोत्सारण क्षेत्र को प्रोत्साहित करते हुए स्व-स्थाने नमी संरक्षण, वर्षा जल संचयन, पुनर्चक्रण तथा बेमौसमी जुताई पर जोर देना।
- वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणालियों के माध्यम से कृषि-वन-चराई में सीमांत और उथले प्रकार की भूमि का कुशलतापूर्वक उपयोग करना।
- तेजी से विकृतिकरण की ओर बढ़ रही भूमि में वन रोपण करना।
- बीज बैंक सिद्धांत को अपनाते हुए गांव को बीज किस्मों की उपलब्धता में आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रोत्साहित करना।

औसतन वार्षिक वर्षा 750-1150 मिलीमीटर वाले क्षेत्रों हेतु रणनीतियां (42 मिलियन हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि)

- धान की दोहरी फसल वाले क्षेत्रों में तर्काधार पर उच्च वर्षा में जलीय कृषि को विकसित करना।
- मक्का, सोयाबीन, मूंगफली की बेहतर किस्मों, अंतर फसल प्रणाली तथा गहरी मिट्टी में दोहरी फसल प्रणाली को अपनाना।
- ज्वार, अरहर और कपास की बेहतर क़िस्मों को अपनाना।
- भूजल पुनर्भरण सहित वर्षा जल संचयन/संरक्षण पर जोर देना।
- गंगा के मैदानी इलाकों में धान-गेहूं की फसल प्रणाली की स्थिरता में सुधार।
- विकृत भूमि को बारहमासी वनस्पति द्वारा पुनर्वासित करना।

सारांश

भारत में 53 प्रतिशत हिस्सा वर्षा आधारित है जिनमें प्रमुख फसल प्रणालियां धान, मक्का, तिलहन, कपास एवं पौष्टिक अनाज आधारित हैं। इन क्षेत्रों की प्रमुख समस्याएं कम और अनियमित वर्षा, मानसून में देरी, मानसून की जल्दी समाप्ति, सूखा, फसलों के विकास के महत्वपूर्ण चरणों में 2 से 3 सप्ताह के लिए सूखा, फसल पैदावार के उतार व चढ़ाव में सबसे महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा उन्नत किस्मों के बीज, मृदा में पोषक तत्वों की कमी, भूमि का जल एवं वायु द्वारा कटाव कुछ अन्य प्रमुख चुनौतियां हैं। विभिन्न वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए रणनीतियां क्षेत्र की वर्षा औसत तथा सतह की ढलान के प्रतिशत के आधार पर विकसित की जानी चाहिए। वर्षा आधारित क्षेत्रों के समुचित उत्थान एवं उपयोग के लिए उचित फसल प्रणाली का चुनाव बहुत महत्वपूर्ण होता है। फसल प्रणाली एकल अथवा दोहरी फसल वाली हो सकती है। फसल प्रणाली में अंतर फसल, अनुक्रमिक फसल, आवरण फसल, फसल चक्र, वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली वर्षा आधारित क्षेत्रों से भूमि कटाव एवं अपवाह को रोकती हैं। इसके अलावा उचित फसल किस्मों एवं फसल प्रणालियों का चुनाव, फसल अवशेष, उर्वरक, संरक्षित कृषि तथा वर्षा जल प्रबंधन भूमि की उर्वरता में बढ़ोत्तरी तथा समय पर जलापूर्ति द्वारा फसलों की पैदावार में बढ़ोत्तरी करते हैं।

संदर्भ

अलड़कट्टी वाई आर, हल्लीकेरी एस एस, नंदगावी आर ए, हुगर ए वाई एंड एन ई नवीन 2011. इफैक्ट आफ इंटरक्रोप्पिंग आफ ओइलसीड क्राप्स आन ग्रोथ, यील्ड एंड इक्नोमिक्स आफ काटन (गोसस्यपियम हिर्सुटम) अंडर रैनफेड कंडिशन्स। कर्नाटक जर्नल आफ एग्रीकल्चरल साइंसेस, 24(3):280-282.

लिंगाराजू बी एस मारेर एस बी एंड एस एस चंद्राशेखर 2008. स्टडीस आन इंटरक्रोप्पिंग आफ मेज़ एंड पीजियनपी अंडर रैनफेड कंडिशन्स इन नार्थन ट्रांसिटीओनल ज़ोन। कर्नाटक जर्नल आफ एग्रीकल्चरल साइंसेस, 21(1):1-3.

शर्मा बी आर, राव के वी, विट्ठल के पी आर, रामकृष्णा वाई एस एंड यू अमरसिंघे 2010. एस्टिमेटिंग दा पोटैन्श्यल आफ रैनफेड एग्रीकल्चर इन इंडिया: प्रोस्पेक्ट्स फार वॉटर प्रोडेक्टिविटी इम्प्रूवेमेंट्स। एग्रीकल्चर वॉटर मैनेजमेंट, 97(1):23-30.

स्प्रात्त ई डी एंड एस एल चौधरी 1978. इंप्रूवड़ क्रापिंग सिस्टम्स फार रैनफेड एग्रीकल्चर इन इंडिया। फील्ड क्राप रिसर्च, 1: 103-126.

रोक्क्स्तोर्म जे, कार्लबर्ग एल, वाणी एस पी, बरौन जी, हातिबू नु, ओवैस थेब, बृग्गेमान ए, फ़रहनी ज एंड झु कियांग 2010. मैनिजिंग वाटर इन ड्राइलैंड एग्रीकल्चर - द नीड़ फार ए परदीग्म शिफ्ट। एग्रीकल्चर वॉटर मैनेजमेंट, 97 (1):543-550.

सुरजीत सिंह 2010. रेनफेड एग्रीकल्चर इन इंडिया - प्रास्पेक्टिवस एंड चैलेंजेस।

वेंकटेश्वरलु बी, मिश्रा पी के, चारी जी आर, मूर्ति शंकर जी आर, एंड जी सुब्बा रेड्डी 2012. रेनफेड फ़ार्मिंग- ऐ कोंपन्दिउम आफ इम्प्रूवड टेक्नोलोजिस, क्रीडा, हैदराबाद।

रेड्डी जी सुब्बा, रामाकृष्णा वाई एस, चारी जी आर एंड जी आर मारुति शंकर 2008. क्राप एंड कं. कंटिनजेंसी प्लानिंग फार रेनफेड रीजन्स इन इंडिया - ऐ कोंपन्डिउम, एआईसीआरपीडीए, हैदराबाद।

★★★

5

उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रभावी वर्षा जल प्रबंधन

- मनोरंजन कुमार, के एस रेड्डी, के सम्मी रेड्डी एवं सीएच श्रीनिवास राव

परिचय

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख क्षेत्रों में से एक है। यह भारतीय आबादी के विशाल भाग को आजीविका प्रदान करती है। वर्षा आधारित कृषि को प्राकृतिक वर्षा पर निर्भर खेती के रूप में परिभाषित किया जाता है। भारतीय कृषि का एक प्रमुख घटक वर्षा आधारित कृषि है जो 55 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में फैला है। भारत में वर्षा आधारित कृषि का योगदान राष्ट्रीय खाद्यान्न उत्पादन में 40 प्रतिशत का है तथा यह 40 प्रतिशत आबादी को सहारा देता है और इसका योगदान 80 प्रतिशत बागवानी एवं 60 प्रतिशत पशु आधारित कृषि उत्पादन में है। दलहन, तिलहन, अन्य खाद्यान्न फसलें और कपास उत्पादन का प्रमुख हिस्सा वर्षा आधारित क्षेत्र के अंतर्गत हो रहा है। फसल उत्पादन और पशुओं के मामले में वर्षा आधारित कृषि को खाद्य सुरक्षा हासिल करने के लिए और समग्र कृषि विकास को ऊपर उठाने में एक विशाल क्षमता के रूप में देखा जाता है। ऐसा माना जाता है कि देश के भविष्य के खाद्यान्न उत्पादन की जरूरत वर्षा आधारित प्रणाली से ही प्राप्त होगी क्योंकि सिंचित क्षेत्र की कृषि उत्पादकता में एक ठहराव आ गया है। वर्षा आधारित कृषि का फैलाव कई कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्रों में है और इनमें ज्यादातर की विशेषता कम उत्पादक और गैर लाभकारी कृषि के रूप में है। अन्य सामाजिक-आर्थिक बाधाओं में छोटी और खंडित भूमि जोत, कठिन इलाके और सीमित दायरे में गहन कृषि इत्यादि है।

वर्षा आधारित कृषि में प्राकृतिक संसाधन

कृषि पारिस्थितिकी प्रणाली

वर्षा आधारित खेती की उत्पादकता विभिन्न कारकों अर्थात जल, मृदा का प्रकार और जलवायु पर निर्भर करता है। वर्षा के आधार पर वर्षा आधारित कृषि को 4 प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:-

1) अधिक बारिश वाले नमी क्षेत्र जहां 1500 मिलीमीटर से ज्यादा वार्षिक वर्षा होती है (पश्चिमी घाट, पश्चिम बंगाल, उत्तर-पूर्व क्षेत्र);

2) उप-आर्द्र क्षेत्र जहां 750-1500 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा प्राप्त होती है (ओडिशा, छत्तीसगढ़, बिहार और उत्तर प्रदेश का हिस्सा);

3) अर्द्ध शुष्क क्षेत्र जहां 350-750 मिलीमीटर की सीमा में वार्षिक वर्षा होती है (आंतरिक कर्नाटक, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश के कुछ हिस्से); और

4) शुष्क क्षेत्र जहां वार्षिक वर्षा 350 मिलीमीटर तक ही होती है (पश्चिमी राजस्थान और गुजरात)।

भूउपयोग का वर्गीकरण चित्र-1 में प्रस्तुत है। कुल वर्षा फसल विकास और खाद्यान्न उत्पादन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। खरीफ फसल उत्पादन में अस्थिरता का कारण दक्षिण-पश्चिम मानसून के दौरान वर्षा में भिन्नता (विशेष रूप से खरीफ के मौसम में) का होना माना जाता है।

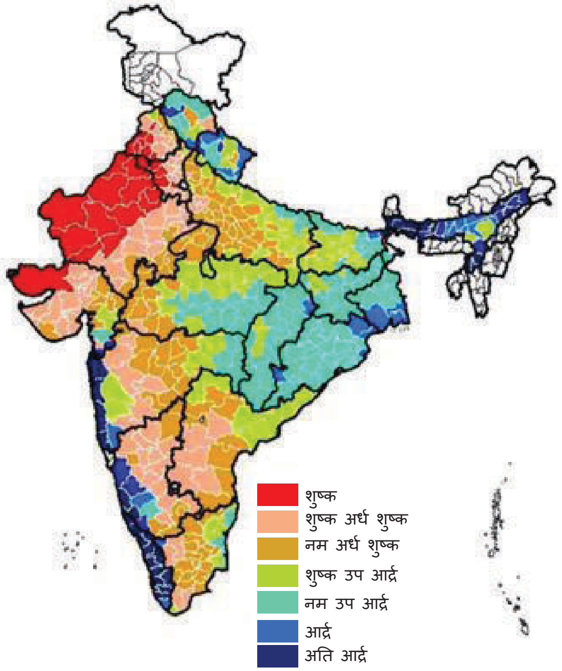

चित्र-1 : वर्षा के आधार पर कृषि पारिस्थितिकी तंत्र का वर्गीकरण

मृदा

जलोढ़ मृदा, लाल मृदा और काली मृदा क्रमशः 43 प्रतिशत, 18.5 प्रतिशत और 15 प्रतिशत क्षेत्रों में फैला है। हालांकि, वर्षा आधारित क्षेत्रों में लाल मृदा और काली मृदा की अधिकता पाई जाती है जो क्रमशः 30 और 35 प्रतिशत है। लाल मृदा की बनावट रेतीली और दोमट के बीच होती है तथा झरझरापन ज्यादा होता है, इसलिए इसकी नमी धारण क्षमता कम होती है। इस मृदा में नाइट्रोजन और पोटाश की भी कमी होती है। काली मृदा में उच्च नमी धारण करने की क्षमता होती है क्योंकि इसमें चिकनी मिटटी की मात्रा ज्यादा होती है।

जलवायु जोखिम

जलवायु परिवर्तन और जलवायु जोखिम तेजी से भारतीय कृषि, विशेष रूप से वर्षा आधारित कृषि को प्रभावित कर रहा है। जलवायु परिवर्तन का मतलब है कि जलवायु और/या उसके गुणों की परिवर्तनशीलता जो कि समय की एक विस्तारित अवधि के लिए बनी रहती है। जैविक प्रक्रियाओं, सौर विकीरण में बदलाव, ज्वालामुखी विस्फोट, कार्बनडाईआक्साइड और जड़ क्षेत्र के भीतर तापमान, वर्षा, फसल वाष्पन तथा प्रस्वेदन और पौध जल की जलवायु के मानकों को प्रभावित करने वाले और अन्य विभिन्न कृषि उत्पादन प्रणालियों में ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारण है। भारत में भौगोलिक क्षेत्र के दो तिहाई हिस्से में विभिन्न स्तर के सूखे का खतरा है। इनमें से आधे क्षेत्र में 750-1125 मिलीमीटर और बाकि आधे क्षेत्र में 750 मिलीमीटर तक बारिश होती है। इन्हें क्रमशः सूखा उन्मुख और दीर्घ कालिक सूखा उन्मुख में विभाजित किया गया है भारत में जलवायु परिवर्तन के कारण बाढ़ और सूखे की चरम घटनाओं पर वृद्धि की आवृत्ति से करीब 20 प्रतिशत फसल से संबंधित राजस्व का नुकसान होता है।

क्रीडा (2013) ने इन जलवायु परिवर्तन से होने वाले प्रभाव को लेकर जोखिम सूचकांक विकसित किया। इस सूचकांक का विकास क्षेत्रीय जलवायु, मृदा, फसल और सामाजिक-आर्थिक इत्यादि व्यापक संकेतकों के आधार पर किया गया। इस तरह के जिलेवार जोखिम सूचकांक को चित्र-2 में प्रस्तुत किया गया है।

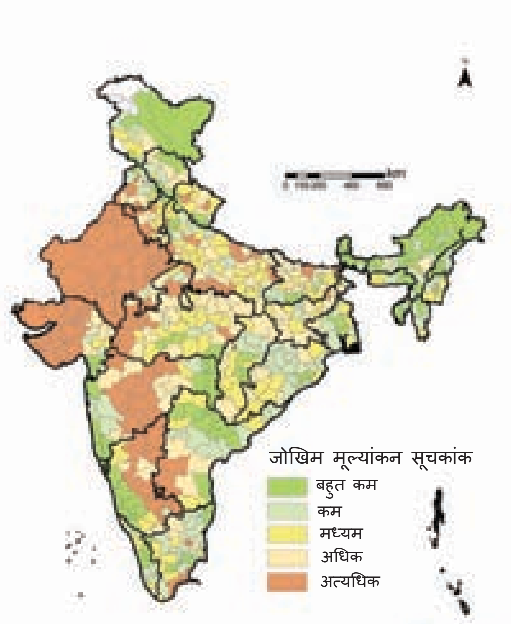

स्रोतः आईसीएआर, निक्रा, क्रीडा

चित्र-2 : जिलेवार जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि क्षेत्र में असुरक्षा/जोखिम

वर्षा आधारित क्षेत्र में फसल प्रणाली

भारत में वर्षा आधारित क्षेत्रों की प्राथमिकता हेतु क्रीडा द्वारा वर्षा आधारित कृषि पारिस्थितिकी तंत्र पर अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन में कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को 5 उत्पादन प्रणालियों अर्थात वर्षा सिंचित चावल, मोटे अनाज, तिलहन, दलहन और कपास आधारित उत्पादन प्रणालियों में विभाजित किया गया है। धान आधारित उत्पादन प्रणाली देश के पूर्वी और उत्तर-पूर्वी हिस्सों में प्रचलित है। जबकि मोटे अनाज देश के पश्चिमी और मध्य भाग और दक्कन के पठार के लोगों के लिए भोजन और चारे का प्रमुख स्रोत हैं। तिलहन आधारित फसल प्रणाली में, मूंगफली और सोयाबीन प्रमुख घटक है। चना और अरहर, दाल आधारित उत्पादन प्रणाली में प्रमुख फसलें हैं। कपास उत्पादन आधारित प्रणाली, वर्षा आधारित, ज्यादातर दक्कन के पठार और भारत के गर्म अर्ध शुष्क प्रायद्वीपीय हिस्से के तहत फसल क्षेत्र का 60 प्रतिशत है।

संभावित और वास्तविक उपज में अंतर

एक फसल की संभावित उपज वह उपज है जो फसल उत्पादन के सीमित कारकों के बिना प्राप्त की जा सकती है। वर्षा आधारित कृषि में जल (जलवायु परिस्थितियों के कारण) आमतौर पर सीमित कारक माना जाता है और इसलिए उपज क्षमता वर्षा आधारित कृषि में काफी कम है। हालांकि, कई अन्य सीमित कारक भी हैं जो कि कम उपज के कारण हैं। संस्थान ने लाल मृदा और काली मृदा में प्रमुख वर्षा आधारित फसलों की संभावित उपज और उपज के अंतर का अनुमान लगाया और पाया की फसल के मध्य में सूखा तथा मौसम में उतार-चढाव विशाल उपज अंतर के प्रमुख कारण है। प्रमुख फसलों में उपज के अंतर को सारणी-1 में दर्शाया गया है।

सारणी-1 : भारत के वर्षा आधारित कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में उपज अंतर

फसल	वर्षा आधारित पर्यावरणीय क्षेत्र	संभावित उपज (टन/हेक्टेयर)	किसानों की उपज (टन/हेक्टेयर)	उपज अंतर (टन/हेक्टेयर)
लाल मृदा				
उपराऊं धान	अर्ध शुष्क/उप आर्द्र	2.9	1.2	1.7
ज्वार	अर्ध शुष्क	3.9	0.6	3.3
रागी	अर्ध शुष्क	4.8	2.9	1.9
मूंगफली	अर्ध शुष्क/शुष्क	2.8	0.7	2.1
सूर्यमुखी	अर्ध शुष्क	3.0	0.6	2.4
मक्का	अर्ध शुष्क	7.0	2.0	5.0
अरंडी	अर्ध शुष्क	1.3	0.4	0.9
काली मृदा				
ज्वार	अर्ध शुष्क	7.8	0.7	7.1
रागी	अर्ध शुष्क	4.3	2.4	1.9

फसल	वर्षा आधारित पर्यावरणीय क्षेत्र	संभावित उपज (टन/हेक्टेयर)	किसानों की उपज (टन/हेक्टेयर)	उपज अंतर (टन/हेक्टेयर)
मक्का	अर्ध शुष्क	8.0	1.7	6.3
अरहर	अर्ध शुष्क	2.4	0.7	1.7
सोयाबीन	अर्ध शुष्क	2.1	1.3	1.8
कुसुंब	अर्ध शुष्क	3.1	1.3	1.8
चना	अर्ध शुष्क	2.2	0.9	1.3
मूंगफली	अर्ध शुष्क	3.9	1.6	2.3
कपास	अर्ध शुष्क	2.3	0.4	1.9

प्रभावी जल प्रबंधन के माध्यम से उपज अंतर का न्यूनीकरण

जल उत्पादकता को प्रत्येक इकाई जल से हुए कृषि उत्पादन को मापने के लिए पैमाने के रूप में उपयोग किया जाता है। कृषि क्षेत्र कुल जल संसाधनों के 83 प्रतिशत का उपयोग करता है। विभिन्न कारणों से कृषि के लिए जल की कम उपलब्धता के संदर्भ में, जल उपयोग का अनुकूलन पूर्ण कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक है। प्रचलित दृष्टिकोण के अनुसार जल का सिंचाई में उपयोग उपलब्धता आधारित है, जिसके कारण जल उपयोग दक्षता कम है। कृषि में जल की घटती उपलब्धता को देखते हुए यह आवश्यक है कि जल उपयोग दक्षता को बढ़ाया जाए। अतः मांग आधारित दृष्टिकोण से ही जल का उपयोग करना होगा। मांग आधारित दृष्टिकोण में जल का उपयोग इस आधार पर लागू किया जाता है कि इसका कब और कितना उपयोग करना है। यह दृष्टिकोण जल उत्पादकता में काफी वृद्धि कर सकता है। फसल प्रणाली में विभिन्न फसलों की "जल की आवश्यकता" जल उत्पादकता बढ़ाने हेतु जल संसाधनों के अनुकूलन में एक महत्वपूर्ण पहलू है। हालांकि, कुल उत्पादन और उत्पादकता के बीच एक समन्वयन की आवश्यकता है, जैसे फसल प्रणाली जिसमें वर्षा आधारित फसलें शामिल हों, जल उत्पादकता की दृष्टि से ओर अधिक प्रभावी हो सकती है। इसके अलावा संबंधित क्षेत्र में प्रचलित सामाजिक-आर्थिक हालत भी फसल और फसल प्रणाली के चयन को प्रभावित करते हैं।

भारत के जल संसाधन

भारत में 4000 घन किलोमीटर की बर्फबारी सहित वार्षिक वर्षा होती है। इसमें से मानसून वर्षा 3000 घन किलोमीटर की है। भारत में वर्षा मुख्यतः दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पूर्वी मानसून, चक्रवाती न्यूनता तथा स्थानीय तूफान पर निर्भर है। दक्षिण-पश्चिम मानसून तमिलनाडु को छोड़कर, जून से सितंबर के बीच प्रभावी रहता है। तमिलनाडु में वर्षा अक्टूबर और नवंबर के माह में उत्तर पूर्वी मानसून के प्रभाव में होती है। भारत में कई सहायक नदियों के साथ 20 से अधिक प्रमुख नदियों की एक नदी प्रणाली है। इन नदियों में कई बारहमासी हैं और इनमें से कुछ मौसमी। हिमालय से निकलने वाली गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्र नदियों में साल भर जल रहता है। हिमालय की बर्फ पिघलन और आधार प्रवाह गर्मी के मौसम के दौरान प्रवाह में योगदान करते हैं। औसतन हिमालयी नदियों की प्रति इकाई क्षेत्र जल उत्पादकता दक्षिण प्रायद्वीपीय नदी

प्रणाली से लगभग दोगुना है। विभिन्न नदियों में जल की उपलब्धता के अलावा भूजल भी जल का महत्वपूर्ण स्रोत है जो पेयजल, सिंचाई और औद्योगिक जल आवश्कता की पूर्ति करने में अति सहायक है। घरेलू जल की आवश्यकता को 80 प्रतिशत और सिंचाई के 45 प्रतिशत भाग की आपूर्ति के लिए भूजल एक महत्वपूर्ण स्रोत है। अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों के अनुसार, प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता कम से कम 1700 घनमीटर प्रति वर्ष होनी चाहिए।

वर्षा और वितरण

भारत में वर्षा आधारित क्षेत्र अत्यधिक विविध रहे हैं, विशेषकर संसाधन समृद्ध क्षेत्रों से कम संसाधन संपन्न क्षेत्रों की प्रौद्योगिकी को काफी हद तक अपनाया गया है और इन क्षेत्रों में उत्पादकता स्तर भी काफी अच्छा है। हालांकि, अधिकांश क्षेत्र कम संसाधन और शुष्क क्षेत्रों वाले हैं। वर्षा आधारित फसलों के जल तनाव के कारण फसलों के विकास के अवरुद्ध होने का खतरा रहता है। यह जल फसल प्रबंधन के व्यवहार और मृदा के प्रकार की परिवर्तनशीलता, वर्षा की परिवर्तनशीलता, बुवाई में देरी और विविधता के कारण हो सकता है। लंबे समय तक विकास अवरुद्ध फसलों का परिणाम आंशिक अथवा पूर्ण विफलता में हो सकता हैं। वर्षा आधारित कृषि कार्य 400 मिलीमीटर से 1600 मिलीमीटर प्रतिवर्ष तक मृदा के प्रकार, कृषि जलवायु और वर्षा की स्थिति की एक विस्तृत विविधता के तहत प्रचलित है। प्रमुख फसलों के साथ भारत के वर्षा आधारित जिलों को चित्र-3 में प्रस्तुत किया गया है। वे जिले जहां सिंचाई 30 प्रतिशत से कम क्षेत्र में है, उन्हें वर्षा आधारित जिलों के रूप में चिह्नित किया गया है।

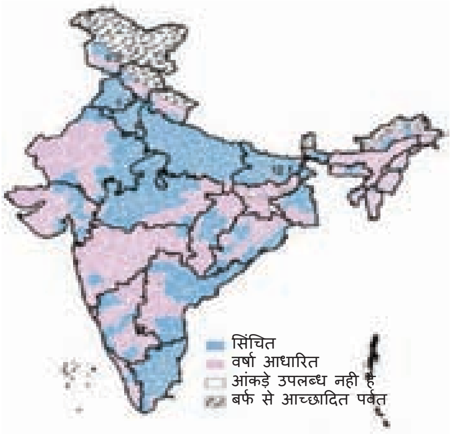

स्रोतः संख्यिकीय एवं कृषि विभाग (भारत सरकार 2001-2007)

चित्र-3 : भारत में सिंचित और वर्षा आधारित जिले

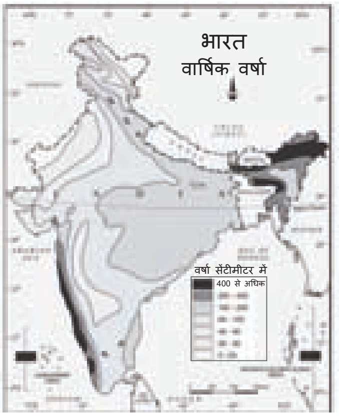

चित्र-4 : वार्षिक वर्षा का स्थानिक वितरण

क्षेत्र विशेष में वर्षा की मात्रा और समान रूप से वितरण महत्वपूर्ण है। अगर वितरण अच्छा है, तो कम बारिश के साथ भी बेहतर फसल स्थिति और उच्च उत्पादकता प्राप्त की जा सकती है। बारिश में स्थानिक विभिन्नता संबंधी आंकड़े चित्र-4 में प्रस्तुत किए गए हैं।

अपवाह संभाव्यता

जलग्रहण क्षेत्रों में वर्षा के कारण उत्पन्न जल प्रवाह को अपवाह कहते हैं। अपवाह दो भागों अर्थात् प्रत्यक्ष अपवाह (सतही अपवाह) और आधार प्रवाह से मिलकर बनता है। प्रत्यक्ष अपवाह वर्षा के तुरंत बाद धारा में प्रवेश करता है। अपवाह के इस भाग को कृषि कुंड और अन्य जल भंडारण संरचनाओं के माध्यम से संग्रहित किया जा सकता है। आधार प्रवाह नदी प्रणाली के लिए योगदान देता है और कुछ हद तक भूजल पुनर्भरण के लिए भी। सतही अपवाह संभाव्यता स्थान विशेष में जल संचयन की गुंजाइश की ओर इंगित करता है। क्षेत्र विशेष में सतही संभाव्यता की क्षमता दिखाते मानचित्र को चित्र-5 में प्रस्तुत किया गया है।

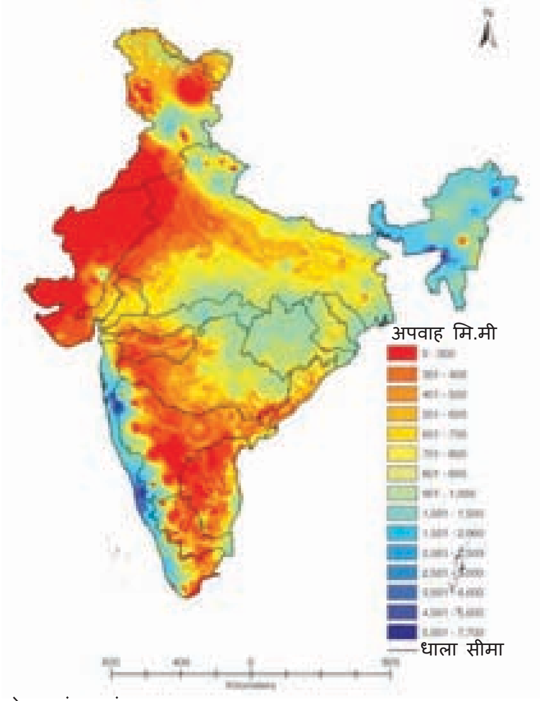

स्रोत: करंट साइंस

चित्र-5 : अनुमानित संभावित अपवाह

स्व-स्थाने नमी संरक्षण

शुष्क और अर्धशुष्क क्षेत्रों में, जहां शुष्क मौसम के दौरान वर्षा कम होती है। यहां विशेष रूप से कृषि उपयोग के लिए मौसम के दौरान वर्षा जल को अधिक से अधिक इकट्ठा करने की आवश्यकता है। वर्षा जल संचयन के कई तरीकों में से एक यथा स्व-स्थाने वर्षा जल का भंडारण है। कृषि फसलों के लिए नमी की उपलब्धता बढ़ाने हेतु, बड़े पैमाने पर मृदा व नमी संरक्षण और जल संग्रहण संरचनाओं के अलावा यथा स्थाने अपनाना आवश्यक है। विभिन्न यथा स्थाने नमी संरक्षण तकनीकों की सिफारिश के पीछे सिद्धांत है कि अपवाह की दर को कम किया जाए। अस्थाई रूप से मृदा की सतह पर जल संग्रहण के द्वारा अंतःस्पंदन अवसर बढ़ाने के लिए समय

बढ़ाना और जल संचयन के लिए भूमि विन्यास को संशोधित करना आवश्यक है। यथास्थाने नमी संरक्षण तकनीक फसल के प्रकार और क्षेत्र की स्थिति पर भी निर्भर करता है। इनमें से कंटूर खेती, व्यापक आधार कुंड, खूंटी पलवार, कंटूर मेडबंदी, वर्गीकृत मेडबंदी, कंटूर ट्रेंचिंग और जल अवशोषण खाई शामिल है।

सतही आच्छादन

पलवार या मल्चिंग, कृषि योग्य मिट्टी की सतह के माध्यम से जल के वाष्पन क्षय को कम करने के लिए सबसे प्रभावी संरक्षण विधि है। मल्चिंग से तात्पर्य है जुताई द्वारा पौध अवशेष मिट्टी की सतह पर छोड़ना अथवा किसी कृत्रिम सामग्री द्वारा मिट्टी के सतही आच्छादन से है। मल्च कोई भी सामग्री हो सकता है जो एक मिट्टी की सतह पर रखा गया हो और जिसका उद्देश्य वाष्पन क्षय को कम करना तथा नमी को बनाए रखना; मिट्टी के कटाव को कम करना, खरपतवार की वृद्धि को कम करना और पौधों के लिए पोषक तत्व उपलब्ध कराना है। ये मिट्टी की नमी को कम करने वाले कारको के लिए, अवरोधक के रूप में काम करते हैं। मल्च कार्बनिक पदार्थ (उदाहरण के लिए पुआल, लकड़ी के चिप्स, पीट) या मानव निर्मित अकार्बनिक पदार्थ (जैसे पारदर्शी या अपारदर्शी प्लास्टिक) हो सकते हैं। ये मिट्टी में नमी रखने के अलावा, मिट्टी तापमान में वृद्धि करने; मिट्टी जनित रोगों के प्रसार को कम करने; घास की वृद्धि को कम करने; मिट्टी के कटाव को कम करने और पोषक तत्वों को उपलब्ध कराने में सहायक हैं। इसके अलावा, मल्च, अपवाह में वृद्धि करके प्रभावी सिंचाई में सहायक होता है तथा वर्षा की बूंदों के प्रभाव से मिट्टी की सतह की रक्षा करता है।

कृषि कुंड तकनीक

कृषि कुंड निश्चित आकार के कृषि क्षेत्र से बहने वाले सतही अपवाह जल को उचित प्रवेशिका और निकास संरचनाओं के माध्यम से संचय करने हेतु एक संरचना है। यह सबसे महत्वपूर्ण वर्षा जल संचयन संरचनाओं में से एक है जिसका निर्माण कृषि क्षेत्र के सबसे निचले हिस्से पर किया जाता है। संग्रहित जल का इस्तेमाल सिंचाई के लिए ही किया जाना चाहिए। हालांकि कुछ लोग कृषि कुंड तकनीक का उपयोग भूजल पुनर्भरण के लिए करते हैं जो परिभाषा के अनुसार सही नहीं है। भूजल रिचार्जिंग के लिए, उच्च क्षमता वाली संरचनाओं की आवश्यकता होती है जिसका आमतौर पर उच्च अंतःस्पंदन दरों वाले स्थान पर निर्माण किया जाता है। इसे परकोलेशन टैंक कहा जाता है। अंतःस्रवण (परकोलेशन) टैंक केवल पुनर्भरण प्रयोजन के लिए होता है और सिंचाई के लिए उपयुक्त नहीं होता है। ऐसी दोनों संरचनाएं जल विज्ञान और भौतिक स्थान की धारणात्मक दृष्टि से अलग-अलग होती है। कृषि कुंड एक खेत में स्थित होना चाहिए जो अधिकतम संभावित अपवाह को समाहित कर सके। एक परकोलेशन टैंक किसी भी क्षेत्र में, जहां भूमि कृषि के लिए उपयोग नहीं की जाती हो, में बनाया जा सकता है।

कृषि कुंड वर्षा आधारित क्षेत्रों में, जहां की वार्षिक वर्षा 500 मिलीमीटर के बराबर या अधिक हो, एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि औसतन वार्षिक वर्षा (एएआर) 500 मिलीमीटर से 750 मिलीमीटर के बीच है तो 250 से 500 घनमीटर क्षमता (प्रति हैक्टयर अपवाह क्षेत्र) के

कृषि कुंड का निर्माण किया जा सकता है। अगर औसतन वार्षिक वर्षा 750 मिलीमीटर से अधिक है, तो 500 घनमीटर से अधिक क्षमता वाले कृषि कुंड विशेष रूप से काली मृदा वाले क्षेत्रों में अस्तर के बिना बनाई जा सकती है। व्यावहारिक अनुभव से पता चला है कि अगर वर्तमान वर्षा पैटर्न में परिवर्तन के कारण कम से कम दो से तीन वर्षा की घटनाओं से पर्याप्त अपवाह उत्पन्न हो, तो कृषि कुंड एक आकर्षक प्रस्ताव साबित हो सकता है। उच्च वर्षा अर्ध शुष्क क्षेत्रों में, इन संरचनाओं का उपयोग सुरक्षात्मक/पूरक सिंचाई, मछली पालन या बतख तथा मुर्गी पालन के साथ साथ कई तरह के एकीकृत उद्यमों में लाभप्रद रूप से किया जा सकता है। ये संरचनाएं फसल उत्पादकता और जलवायु विशेष लचीली कृषि पद्धति के द्वारा स्थानीय स्तर पर जल और खाद्य सुरक्षा प्रदान करते हैं। इसके अलावा, कृषि कुंड प्राकृतिक संसाधनों और पोषक तत्वों के संरक्षण और वाटरशेड क्षेत्र में अधिक प्रवाह को कम करते हुए बाढ़ नियंत्रण संरचना के रूप में भी कार्य करता है। जल के स्रोत और उनके स्थान पर निर्भर करता है।

वाटरशेड प्रबंधन

सैद्धांतिक रूप से वाटरशेड एक जल-मापक(हाइड्रोलाजिकल) इकाई है जिसमें क्षेत्र विशेष से जल अपवाह एक निकास बिंदु पर सांद्रित होता है। वाटरशेड अवधारणा का विकास मुख्य रूप से कृषि विकास के लिए ही किया गया है। वाटरशेड प्रबंधन का तात्पर्य अपने संसाधनों के सतत वितरण हेतु योजनाओं, कार्यक्रमों और परियोजनाओं को लागू करना है। वाटरशेड परियोजना में पौधे, पशु और मानव समुदायों को प्रभावित करने वाले कारकों में सुधार प्रक्रिया के उद्देश्य से प्रासंगिक विशेषताओं का अध्ययन भी किया जाता है। अनेक संस्थाएं विभिन्न कृषि संबंधित वाटरशेड विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए प्रबंधन क्रियावली तैयार करती है जिसमें जल की आपूर्ति, जल गुणवत्ता, जल निकासी, तूफानी जल अपवाह, जल के अधिकार और समग्र योजना शामिल हैं। वाटरशेड एक उपयुक्त इकाई के रूप में मृदा संरक्षण और जल संसाधन, कृषि उत्पादन के लिए निवेश इत्यादि के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी देता है। मृदा एवं जल संसाधन विकास और जल संरक्षण एवं प्रबंधन किसी भी वाटरशेड विकास कार्यक्रम के लिए बुनियादी गतिविधियों में से एक है। वाटरशेड प्रबंधन उत्पादकता और समग्र सामाजिक उत्थान को बढ़ाने के लिए संसाधनों, विनियमन तथा भूमि और जल संसाधनों के विकास एवं एकीकृत उपयोग के लिए परिचालन ढांचा स्थापित करता है। वाटरशेड प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य प्राथमिकताओं और स्थानीय आबादी की जरूरतों पर निर्भर करता है। हालांकि, इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:-

- क्षतिकारक अपवाह और प्राकृतिक संसाधनों के निम्नीकरण को मृदा और जल के संरक्षण द्वारा नियंत्रित करने के लिए।
- जल अपवाह का प्रबंधन और उपयोगी प्रयोजन के लिए उपयोग।
- संरक्षण और अधिक दक्षता के साथ निरंतर उत्पादन के लिए वाटरशेड की भूमि में सुधार करना।
- वाटरशेड में उत्पन्न होने वाले संसाधनों को संरक्षित और संवर्धित करने के लिए।
- मृदा कटाव की जांच करने और तलछट के प्रभाव को कम करने के लिए।

- बिगड़ती भूमि के पुनर्वास के लिए।
- वर्षा जल का मृदा में अंतःस्पंदन बढ़ाने के लिए।
- चारा, वन और वन्य जीवन संसाधन के उत्पादन में सुधार और वृद्धि करने के लिए।
- भूजल पुनर्भरण बढ़ाने के लिए।

फसल नियोजन और पारंपरिक तथा प्रचलित फसल

देश के कई हिस्सों में पर्याप्त वर्षा होती है जो कि सफल कृषि के लिए समृद्ध प्राकृतिक संसाधन आधार है, लेकिन इन संसाधनों और भूमि उपयोग की अपर्याप्ता प्रबंधन योजना के कारण कृषि और आजीविका अस्थिर हो जाती है। इन स्थितियों में, फसल विविधीकरण जिसमें कम जल आवश्यकता वाली उच्च मूल्य की फसलें शामिल है, वर्षा आधारित कृषि में उत्पादकता में वृद्धि के लिए सबसे अच्छा विकल्प हो सकता है। फसल नियोजन का प्रमुख उद्देश्य भूमि के समुचित उपयोग को सुनिश्चित करते हुए संसाधनों की उपयोग दक्षता को बढ़ाना है। फसल नियोजन गतिशील होना चाहिए जिसे अस्थाई रूप से बदला जा सके। फसल नियोजन में सामाजिक-आर्थिक बाधाओं और संभावनाओं के साथ मिलकर कृषि पारिस्थितिक विशेषताओं के विश्लेषण के आधार पर फसलों और फसल प्रणाली का चयन शामिल है। वर्षा, शुष्क आर्द्र अवधि विश्लेषण, शुरुआती और प्रभावी मानसून और जलवायु आधारित जल संतुलन की संभावना विश्लेषण प्रमुख कारक हैं, जो विशिष्ट क्षेत्र में फसल नियोजन को प्रभावित करते हैं। फसल नियोजन का उद्देश्य कृषि को स्थाई बनाने के लिए फसल विविधीकरण द्वारा अवसर का पता लगाना भी है। उदाहरण के लिए, वर्षा आधारित क्षेत्रों में चावल की फसल का विविधीकरण, उत्पादकता वृद्धि और वर्षा जल प्रबंधन की जल दक्षता बढ़ाने में उपयोगी हो सकता है जो सूखे के प्रभाव को कम कर सकता है।

फसलों और किस्मों का चुनाव

जलवायु परिवर्तन, वर्षा जल की मात्रा और वितरण में उच्च परिवर्तनशीलता, नदियों (जैसे कृष्णा-गोदावरी) में घटते जल प्रवाह और गिरते भूजल स्तर के परिदृश्य में पारंपरिक प्रतिरोपित धान आधारित कृषि प्रणाली अस्थाई बन गए हैं। उपयुक्त वैकल्पिक फसलों और सहिष्णु किस्मों पर सिफारिशें विभिन्न कृषि पारिस्थितिकी उप क्षेत्रों में विकसित की गई हैं। इस दिशा में महत्वपूर्ण सिफारिशें निम्नलिखित हैं:-

- कम जल लेने वाली दलहन और तिलहन फसलों के साथ धान क्षेत्र में विविधता लाना।
- पारंपरिक धान क्षेत्रों में कम जल उपयोग वाली धान की किस्मों का चयन।
- एकल फसलों के स्थान पर अंतर फसलों को प्रोत्साहन।
- पारंपरिक फसलों में कपास और मक्का जैसी उभरती फसलों का संयोजन।
- तनाव सहिष्णु फसल की किस्मों का अनुप्रयोग आदि।

उच्च जल उपयोग दक्षता के लिए बेहतर सस्य क्रियाएं

मृदा और जल संरक्षण कार्यक्रमों में, सस्य क्रियाएं यांत्रिक उपाय (जिसका नियोजन मृदा के कटाव को तुरंत रोकने के लिए किया जाता है) के पूरक क्रिया कलाप के लिए जाना जाता है। इन क्रियाओं की भूमिका, अधिक किफायती और लंबे समय में स्थाई और प्रभावी होती है। इन उपायों की भूमिका भूमि सतहों का सस्य आच्छादित करना, और कटाव को नियंत्रित करने के लिए हल्की ढलान पर वनस्पति जुटाने के तरीकों में है। इस तरह से यह अंतःस्पंदन की दर और अपवाह वेग को नियंत्रित करते हुए मृदा के कणों की परिमार्जन दर को कम करता है जिससे जलाशयों की भरण क्षमता कम प्रभावित होती है। मृदा संरक्षण के लिए कई कृषि पद्धतियां हैं, जिसे क्षेत्रीय कृषि पारिस्थितिकी विशेषताओं के आधार पर अपनाया जा सकता है।

मृदा संशोधन

मृदा संशोधन मृदा एकत्रीकरण, मृदा सरंध्रता और पारगम्यता में सुधार लाने तथा मृदा में वायु संचारण, जल निकासी और जड़ गहराई क्षमता को बढ़ाने के लिए आवश्यक है। यह जल और पोषक तत्वों की धारण क्षमता में सुधार करता है जो प्रति जल इकाई अधिक फसल के उद्देश्य को पूरा करने में सहायक होता है। मृदा संशोधन से आशय बाह्य सामग्री को मृदा के भौतिक गुणों में सुधार करने के लिए अच्छी तरह से मृदा में मिलाया जाना है। मृदा का गोबर की खाद या हरी खाद अथवा चूने के रूप में अकार्बनिक सामग्री का उपयोग या राख की खाद के रूप में उपयोग कर संशोधन किया जा सकता है।

तालाब-गाद अनुप्रयोग

सिल्ट अथवा गाद बहते जल में बारीक कण निलंबन के रूप में विद्यमान रहते हैं। यह ठीक तलछट के रूप में स्थिर जल निकायों के तल पर बैठती है जिसे तालाब-गाद कहते हैं। पारंपरिक भारतीय कृषि विधियों में, जलग्रहण क्षेत्र के ख़राब प्रबंधन के तरीकों के कारण गाद उत्पन्न होती है। इस गाद के कारण जल निकायों की भंडारण क्षमता और भूजल पुनर्भरण भी नकारात्मक रूप से प्रभावित होते हैं। सिल्ट के कारण जैविक कार्बन का अपघटन होता है। इसका उच्च स्तरीय निर्गमन जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। फसलों द्वारा मृदा से पोषक तत्वों के निरंतर उद्ग्रहण तथा जैविक खादों के अपेक्षाकृत कम उपयोग के कारण मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी हो रही है। तालाब गाद का पुनर्चक्रण मृदा के स्वास्थ्य और तालाब के नवीकरण, दोनों के लिए लाभप्रद स्थिति प्रदान करता है। गांव के तालाबों और झीलों में एकत्र हुई गाद, खेत की उर्वरता में सुधार करने के लिए उपयोगी है। इसे बुवाई से पहले खेत पर समान रूप से फैला देते हैं। आमतौर पर तालाब-गाद का प्रयोग 20-25 ट्रैक्टर भार भूमि की प्रति एकड़ दर से किया जाता है। तालाब-गाद का आसंजक (Adhesive) गुण पहली मानसून की बारिश के दौरान ही मृदा के साथ मिश्रित होने में सहायक होता है। तालाब गाद संरचना, क्षेत्र विशेष के लिए भिन्न-भिन्न होती है अतः इसका उपयोग करने से पहले इसकी गुणवत्ता का परीक्षण करना आवश्यक है। तालाब गाद का उपयोग, मृदा की स्थिति में सुधार के लिए, तीन साल में एक बार किया जा सकता है। इसके उपयोग से मृदा की उर्वरता शक्ति, भूजल संवर्धन

एवं मृदा की नमी में वृद्धि होती है। यह फसल की पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि करने में सहायक होती है। तालाब गाद का अनुप्रयोग चित्र-6 में प्रस्तुत किया गया है।

चित्र-6 : क्षेत्र में तालाब गाद का अनुप्रयोग

प्रति जल इकाई अधिक उत्पादन

मृदा और जल संसाधन सीमित हैं और इनके कुप्रबंधन का सतह और भूमिगत जल की गुणवत्ता और उपलब्धता सहित कृषि उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसीलिए प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन प्रथाओं की न केवल मृदा और जल संसाधन हेतु अपितु सतत उत्पादकता सुनिश्चित करते हुए "प्रति जल इकाई अधिक उत्पादन" को प्राप्त करने की जरूरत है। नाजुक पारिस्थितिक तंत्र वाले क्षेत्र जैसे अर्ध शुष्क और शुष्क क्षेत्र जहां खांखर मृदा की बहुतायत रहती है, में गहन कृषि उत्पादन पद्धति का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

एक उत्कृष्ट उदाहरण विकेंद्रीकृत, बड़े पैमाने पर, गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में बांध वर्षा जल संचयन आंदोलन है। छोटी वर्षा जल संचयन संरचनाओं जैसे कि चेक डैम, गैबियन इत्यादि के द्वारा सूखा या एक सीमित सूखा स्थिति में बहुत प्रभावी ढंग से उपलब्ध जल वितरित कर सकते हैं। वर्षा जल संचयन संरचनाएं खासकर उन अर्ध शुष्क और शुष्क, उप-आर्द्र क्षेत्रों के लिए बहुत उपयोगी हो सकती है जहां जल की कमी वर्षा राशि के विचलन के कारण ज्यादा होती है। इस तरह की स्थिति जहां, उच्च वर्षा तीव्रता, कम वर्षापात, वर्षा के स्थानिक और कालिक वितरण (भले ही कुल वर्षा पर्याप्त हो), जल का अधिक क्षय होता हो, जल की कमी से बुरी तरह प्रभावित होते है। जलवायु परिवर्तन के कारण सूखे की आवृति और शुष्क-अवधि में वृद्धि अपेक्षित है। इस दृष्टि से वर्षाजल संवर्धन जलवायु परिवर्तन के कृषि पर दुष्प्रभाव को कम करने और उत्पादन बढ़ाने में सहायक होंगे। वर्षाजल संचयन और भूजल उपयोग के द्वारा लगभग 50 से 200 मिलीमीटर पूरक सिंचाई के माध्यम से उप-आर्द्र क्षेत्रों में सूखे की समस्या को संबोधित करते हुए पैदावार स्थिर करने के महत्वपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। तालाब स्थानीय स्तर पर पर्याप्त वर्षा जल संचयन के लिए महत्वपूर्ण है। इससे संबंधित समुचित वितरण प्रणाली, किसानों की बड़ी संख्या को ओर बड़े क्षेत्रों में जल की उपलब्धता सुनिश्चित करती है। वर्षा जल

के रिसाव का एक महत्वपूर्ण लाभ क्षेत्र में भूजल पुनर्भरण और जल सतह में वृद्धि है। जल संचयन संरचनाओं से किसानों की फसल पैटर्न और फसल की पैदावार पर काफी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

सारांश

भारतीय कृषि, अतीत में खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि को प्राप्त करने में सफल रही है। लेकिन, यह उपलब्धि संसाधन गिरावट की व्यापक समस्या के साथ प्राप्त हुई है, जो अब खाद्य उत्पादन को बनाए रखने के लिए एक गंभीर चुनौती बन गई है। भारतीय कृषि में अब एक अनुवेधन बिंदु पहुंच गया है जहां से आगे बढ़ने के लिए नई दिशाओं, रणनीतियों, नीतियों और कार्यों को अपनाया जाना चाहिए क्योंकि पिछली रणनीति, जो सिंचित कृषि के लिए थी, ने संतृप्ति प्राप्त कर ली है। खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने के लिए पिछली रणनीतियों में प्राकृतिक संसाधनों का बड़े स्तर पर दोहन हुआ है जो अस्थाई विकास का कारण बना। भविष्य में इस को बदलने की जरूरत है। इसके कारण वर्षा आधारित कृषि के विशाल क्षेत्रों की उपेक्षा हुई, जहां उत्पादकता निरंतर रूप से कम रहती है। इसके अलावा, सूखा, चक्रवात, ओलावृष्टि, ठंढ आदि की वृद्धि की आवृत्ति के संदर्भ में जलवायु परिवर्तन खाद्य उत्पादन और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा बनाए रखने के लिए एक गंभीर चुनौती बन गया है। इन क्षेत्रों में देश में गरीब अधिक संख्या में रहते हैं। गरीबी को कम करने के लिए इन क्षेत्रों में कृषि में सुधार लाने के उद्देश्य से भरसक प्रयत्न करने की आवश्यकता है। पिछली रणनीतियों की वजह से प्राकृतिक संसाधन के संदर्भ में व्याप्त समस्याएं, जैसे अपवाह, मृदा अवकर्षण एवं मृदा अपरदन, ने साबित कर दिया है कि यह काफी हद तक अप्रभावी रणनीति है। भविष्य की रणनीति, मजबूत तकनीकी के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए बनाई जानी चाहिए। जल, वर्षा आधारित कृषि के क्षेत्र में एक केंद्रीय बिंदु रहा है। जल बचत या वर्षा जल का बेहतर उपयोग भारत में वर्षा आधारित कृषि में लचीलेपन के लिए योगदान देता रहेगा।

संदर्भ

सी ए रामाराव, बी एम के राजू, ए वी एम सुब्बा राव, के वी राव, वी यू एम राव, कौशल्या रामचंद्रन, बी वेंकटेश्वर्लु एंड ए के सिक्का. (2013). एटलस आन वल्नेरेबिलिटी आफ इंडियन एग्रीकल्चर टू क्लाइमेट चेंज, क्रीड़ा, हैदराबाद - 500 059.

सीएच श्रीनिवास राव, जी रविंद्रा चारी, पी के मिश्रा, जी सुब्बा रेड्डी, जी आर मारुति शंकर, बी वेंकटेश्वर्लु, ए के सिक्का. (2014). रेनफेड फार्मिंग-ए कांपेडियम आफ डुएबल टेक्नोलाजीज, क्रीड़ा, हैदराबाद-500 059.

सीएच श्रीनिवास राव, रतन लाल, जे वी एन एस प्रसाद, कोडिगाल ए गोपीनाथ, राजबीर सिंह, विजय एस जक्कूला, के एल सहरावत, बी वेंकटेश्वर्लु, आलोक कुमार सिक्का एंड सुरिंद्र एम वीरमाणी. (2015). पोटेंशियल एंड चैलेंजेज आफ रेनफेड फार्मिंग इन इंडिया, एडवांसेज इन एग्रोनोमी, 133, 113-181.

एन आर ए ए. (2012). प्रिआरिटिज़ेशन आफ रेनफेड एरियाज इन इंडिया, स्टडी रिपोर्ट 4, एन आर ए ए, नई दिल्ली, पीपी.100.

★★★

6

अजैविक तनाव सहिष्णुता के लिए फसल सुधार

- सुशील कुमार यादव, योगेश कुमार तिवारी, अरुण कुमार शंकर एवं बासुदेव सरकार

परिचय

अजैविक तनाव के रूप में सूखा, लवणता, उच्च तापमान और शीत, पौधों के विकास एवं कृषि उत्पादकता को बहुत प्रभावित करते हैं और हर साल दुनिया भर में प्रमुख फसलों की उत्पादकता में 50 प्रतिशत से भी अधिक नुकसान का कारण बनते हैं। विकासशील देशों में, अजैविक तनाव जैसे सूखा और मृदा की कम उर्वरता प्रमुख तनाव हैं, जो फसलों की पैदावार को काफी प्रभावित कर रहे हैं। विश्व जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है और इसके वर्ष 2050 के अंत तक लगभग 9 अरब तक पहुंचने का अनुमान है। दूसरी ओर, कृषि उत्पादकता, दुनिया की बढ़ती हुई आबादी की खाद्य मांगों की आपूर्ति बनाए रखने के लिए आवश्यक दर से नहीं बढ़ रही है। इसलिए, दुनियाभर के सभी राष्ट्रों के लिए, बढ़ती हुई खाद्य जरूरतों की आपूर्ति का सामना करने के लिए इन नुकसानों को कम करना चिंता का एक प्रमुख विषय है।

कोई भी पर्यावरण घटक, जो पौधों में एक संभावित हानिकारक बलाघात उत्पन्न कर सकते हैं, को तनाव के रूप में परिभाषित किया गया है। इष्टतम विकास की स्थितियों की परिकल्पना जीव विज्ञान का एक मौलिक सिद्धांत है। चूंकि जीव पर्यावरण की स्थितियों को नियंत्रित नहीं कर सकते हैं, इसलिए उन्होंने प्रतिकूल पर्यावरणीय स्थितियों में जीवित बने रहने के लिए तनाव वर्जन और तनाव सहिष्णुता नामक दो प्रमुख रणनीतियां विकसित कर ली हैं। वर्जन तंत्र, गर्म खून वाले जानवरों में सबसे स्पष्ट है जो तनावपूर्ण उत्तेजनाओं के दौरान उस क्षेत्र से दूर अन्यत्र स्थानों पर विचरण हेतु चले जाते हैं। पौधों में इस प्रतिक्रिया तंत्र, जो कि गतिशीलता है, की कमी है; इसलिए उनमें तनाव से बचने के लिए जटिल जैव रासायनिक, आणविक और आनुवंशिक तंत्रों का विकास हुआ है। उदाहरण के लिए, वे अपने जीवन चक्र में कुछ इस तरह के परिवर्तन कर लेते हैं कि विकास की एक तनाव संवेदनशील अवधि या तो तनावपूर्ण पर्यावरणीय हालातों के आगमन से पहले या बाद में हों। दूसरी ओर, सहिष्णुता प्रक्रियाओं में मुख्य रूप से जैव रासायनिक और चयापचय प्रतिक्रियाएं सम्मिलित हैं जो जीन्स के द्वारा विनियमित किए जाते हैं।

सभी अजैविक तनावों का पारिस्थितिक और कृषि प्रणालियों पर गहरा प्रभाव है। जल संकट सभी अजैविक तनावों, जो फसलों के उत्पादन में भारी नुकसान का कारण हैं, में सबसे प्रभावी एवं ज्यादा नुकसान पहुंचाने वाला तनाव है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जल-तनाव आमतौर पर

लवणता, उच्च तापमान और पोषक तत्वों की कमी जैसे अन्य तनावों के साथ में होता है। इसके अलावा, 'फसल उत्पादन पर वैश्विक जलवायु परिवर्तन का प्रभाव' पिछले एक दशक के दौरान एक प्रमुख अनुसंधान प्राथमिकता के रूप में उभरा है।

जलवायु परिवर्तन का फसलों पर प्रभाव

कई पूर्वानुमान आने वाले दशकों में वायुमंडलीय कार्बनडाइऑक्साइड और तापमान में वृद्धि, वर्षा में परिवर्तन के कारण बारंबार पड़ने वाला सूखा और बाढ़, बड़े पैमाने पर जल अपवाह के कारण मिट्टी के पोषक तत्वों का पानी के साथ घुलकर बह जाना और ताजे पानी की उपलब्धता में कमी की कल्पना करते हैं। बदलते हुए जलवायु परिवर्तनों का विभिन्न फसलों पर प्रभाव सारणी-1 मे दर्शाया गया है।

सारणी-1 : जलवायु परिवर्तन का फसल उत्पादन पर संभावित प्रभाव

फसल/क्षेत्र	संभावित प्रभाव
उत्तरी भारत एवं तटीय क्षेत्रों में चावल एवं गेहूं के उत्पादन पर प्रभाव	तापमान में 2 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि से चावल के उच्च उत्पादन क्षेत्रों में 0.75 टन प्रति हेक्टेयर तथा कम उपज वाले तटीय क्षेत्रों में 0.06 टन प्रति हेक्टेयर की गिरावट। उत्तर भारत के उच्च उत्पादक राज्यों में शीतकालीन तापमान में 0.5 डिग्री सेंटीग्रेड वृद्धि से गेहूं फसल की अवधि में सात दिन की कमी एवं उत्पादन में 0.45 टन प्रति हेक्टेयर कमी सहित गेहूं के उत्पादन में लगभग 10 प्रतिशत की कमी।
मध्य भारत - उच्च अक्षांश, निम्न अक्षांश, उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र	तापमान में 2 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि से अधिकांश क्षमतायुक्त क्षेत्रों की उपज में कमी। कम परिमाण वाले क्षेत्रों की क्षमतायुक्त उत्पादकता में कमी। उष्णकटिबंधीय स्थानों की उपज में 17 से 18 प्रतिशत की कमी, वहीं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में इस गिरावट का स्तर 1.5 से 5.8 प्रतिशत हो सकता है। उच्च अक्षांश वाले क्षेत्रों में मामूली बढ़ोत्तरी तथा निम्न अक्षांश वाले क्षेत्रों में अधिक गिरावट देखी गई। उत्तरी भारत में जलवायु परिवर्तन को महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं, वहीं मध्य भारत के उपज में 10 से 15 प्रतिशत की गिरावट।
ज्वार बिजाई क्षेत्र (हैदराबाद, अकोला एवं सोलापुर)	हैदराबाद एवं अकोला में, बरसात के मौसम में ज्वार की उपज में गिरावट। वर्षा उपरांत सोलापुर में मृदा में संग्रहित पानी से फसल उपज में मामूली बढ़ोत्तरी। कार्बनडाईआक्साइड के सकारात्मक प्रभाव पर बढ़ते तापमान के प्रतिकूल प्रभाव से फसल अवधि में कमी देखी गई।
चावल	वैश्विक परिसंचारण मॉडल(जीसीएम) परिदृश्य के अंतर्गत चावल उत्पादन में वृद्धि का अनुमान। मुख्य फसल की उपज में बढ़ोत्तरी, बढ़ी हुई कार्बनडाईआक्साइड से उर्वरीकरण तथा तापमान के हानिकारक प्रभाव कम होने की संभावना। लेकिन उच्च तापमान के कारण अगले मौसम की फसलों की उपज घटने की संभावना। चावल के उत्पादन पर इसका प्रभाव काफी कम होने की संभावना है, क्योंकि इस मौसम में चावल का रोपण काफी कम होता है।
सरसों	सरसों फसल के उत्पादन में वृद्धि होने की संभावना है। इस फसल को सूखे क्षेत्रों में भी अपनाए जाने की प्रबल संभावनाएं हैं।

फसल/क्षेत्र	संभावित प्रभाव
पंजाब में गेहूं, चावल, मक्का एवं मूंगफली की पैदावार	फसल सिमुलेशन मॉडल द्वारा की गई गणना दर्शाती है कि फसलों में 1, 2 एवं 3 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान में वृद्धि से उपज दर में गिरावट की संभावना है। गेहूं में यह गिरावट क्रमश : 8.1, 18.7 एवं 25.7 प्रतिशत, चावल की उपज में 5.4, 7.4 एवं 25.1 प्रतिशत, मक्का की उपज में क्रमश: 10.4, 14.6 एवं 21.4 प्रतिशत एवं मूंगफली की उपज में क्रमश: 8.7, 23.2 एवं 36.2 प्रतिशत तक की हो सकती है।
ज्वार	1-2 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान में वृद्धि से ज्वार उत्पादन में 7-12 प्रतिशत की कमी तथा ओर अधिक तापमान बढ़ने पर यह कमी 18-24 प्रतिशत तक हो सकती है। वार्षिक जलवायु बदलाव और तापमान वृद्धि में कोई सीधा सहभागिता प्रभाव नहीं देखा गया तथा पैदावार में गिरावट सीधे तापमान वृद्धि से प्रभावित देखी गई। 50 पीपीएम कार्बनडाईआक्साइड की वृद्धि से उपज में 0.5 प्रतिशत तक बढ़ोत्तरी देखी गई, लेकिन यह बढ़ोत्तरी तापमान में सिर्फ 0.08 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि से निरस्त देखी गई। 700 पीपीएम कार्बनडाईआक्साइड का लाभकारी प्रभाव केवल 0.9 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान की वृद्धि द्वारा निरस्त देखा गया।
चना/अरहर	तापमान में 2 डिग्री सेंटीग्रेड तक की वृद्धि से संभावित चना उत्पादन पर कोई असर नहीं। लेकिन 2 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान से परागकण स्फोटकता तथा कुल फसल अवधि में 10-12 दिनों की कमी देखी गई। तापमान में 2 डिग्री सेंटीग्रेड तक की वृद्धि से सिंचित उपज में बढ़ोत्तरी और फसल की अवधि में केवल चार दिनों की कमी देखी गई। वर्षा आधारित फसल उपज में काफी कमी देखी गई, परंतु बढ़ते तापमान के असर से फसल विकास प्रक्रियाओं एवं उपज पर तापमान का प्रभाव सिंचित परिस्थितियों के समान था। कार्बनडाइआक्साइड में बढ़ोत्तरी वृद्धि से संभावित वर्षा आधारित तथा सिंचित परिस्थितियों में उपज में बढ़ोत्तरी। अरहर मे 1 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान में वृद्धि से इसके उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव।
मध्य भारत में सोयाबीन	कार्बनडाईआक्साइड के दुगुना होने से मध्य भारत में सोयाबीन की उपज में 50 प्रति-शत तक की बढ़ोत्तरी तथा केवल 3 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान वृद्धि से सकारात्मक असर निरस्त। बढ़ी हुई कार्बनडाईआक्साइड द्वारा जल्दी फूलों का आना तथा दाना भरने की अवधि में कमी के साथ फसल अवधि में कमी। दैनिक वर्षा की मात्रा में 10 प्रतिशत की गिरावट से अनाज उपज में 32 प्रतिशत तक की कमी। इसलिए भविष्य में, बढ़ी हुई कार्बनडाईआक्साइड के बावजूद सूखे की अवधि के दौरान पानी की उपलब्धता में तीव्र कमी भी सोयाबीन की उत्पादकता में एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है।
सिंचित एवं वर्षा आधारित मक्का	दोनों सिंचित एवं वर्षा आधारित स्थिति में मक्का की उपज में तापमान वृद्धि के साथ गिरावट। कार्बनडाईआक्साइड के वर्तमान स्तर पर तापमान में 4 डिग्री सेंटीग्रेड तक की बढ़ोत्तरी से उपज में 30 प्रतिशत तक की कमी। कार्बनडाईआक्साइड के 700 पीपीएम स्तर पर उपज में 9 प्रतिशत तक की बढ़ोत्तरी। लेकिन तापमान में वृद्धि से इसमें गिरावट। 1 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान वृद्धि से लगभग 8 प्रतिशत तक उपज में कमी। गेहूं, सरसों तथा चने की तुलना में मक्का पर प्रभाव कम। 700 पीपीएम कार्बनडाईआक्साइड के स्तर के लाभकारी प्रभावों को केवल 0.6 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान की वृद्धि से निरस्त देखा गया। आईपीसीसी परिदृश्य के अनुसार वर्ष 2030 तक तापमान में 1.8 डिग्री सेंटीग्रेड तथा कार्बनडाईआक्साइड का स्तर 425 पीपीएम होने पर मक्का की संभावति उपज में 18 प्रतिशत तक की गिरावट।

फसल/क्षेत्र	संभावित प्रभाव
खेत स्तर पर शुद्ध राजस्व	तापमान में 2 डिग्री सेंटीग्रेड की बढ़ोत्तरी तथा वर्षण में 7 प्रतिशत की वृद्धि का नकारात्मक प्रभाव तथा भारतवर्ष में खेत स्तर पर लगभग 8.4 प्रतिशत कुल शुद्ध राजस्व पर असर। उत्तरी राज्यों जैसे हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के साथ-साथ तमिलनाडु के तटीय जिलों में जहां गेहूं सर्दियों की एक प्रमुख फसल है पर नकारात्मक प्रभाव। हालांकि, पश्चिम बंगाल के पूर्वी जिलों और बिहार के कुछ हिस्से में इस परिवर्तन से भविष्य में लाभ प्राप्त करने की संभावनाएं प्रबल हैं।
मध्य, दक्षिण और उत्तर पश्चिम भारत में चावल	मध्य और दक्षिण भारत में इक्कीसवीं सदी के मध्य में चावल उत्पादन में बढ़ोत्तरी। जलवायु परिवर्तन के अंतर्गत, उत्तर पश्चिमी भारत में चावल उत्पादन में मानसून के मौसम के दौरान वर्षा में कमी के परिणामस्वरूप सिंचाई स्थितियों में बदलाव से उत्पादन में महत्वपूर्ण कमी। वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों में बढ़ोत्तरी से भारत में तकरीबन सभी स्थानों पर तापमान वृद्धि द्वारा फसल अवधि में कमी।
उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी एवं पूर्वी भारत में चावल उत्पादन पर प्रभाव	तापमान में 1-2 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि तथा कार्बनडाईआक्साइड के स्तर में बिना किसी बदलाव से विभिन्न क्षेत्रों में चावल उत्पादन में 3-17 प्रतिशत तक की कमी। तापमान बढ़ोत्तरी द्वारा चावल उत्पादन पर असर की सीमा : पूर्वी एवं पश्चिमी क्षेत्र : कम प्रभावित; उत्तरी क्षेत्र : मध्यम प्रभावित; दक्षिणी क्षेत्र : अति प्रभावित। कार्बनडाईआक्साइड के स्तर में वृद्धि के साथ सभी क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ेगा। कार्बनडाई-आक्साइड के दुगुना होने की स्थिति में विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन में 12-21 प्रतिशत की वृद्धि की संभावना। दक्षिणी और पश्चिमी क्षेत्रः तापमान में 1-4 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि तथा कार्बनडाई-आक्साइड के स्तर में कोई बदलाव न होने से विभिन्न क्षेत्रों की अनाज की उपज में 5-30 प्रतिशत तक की कमी। कार्बनडाईआक्साइड के दुगना होने से चावल की उपज में 28-35 प्रतिशत तक की वृद्धि। उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में तापमान में 1.2-1.7 डिग्री सेंटीग्रेड तथा दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्रों में 0.9-1 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान में बढ़ोत्तरी से कार्बनडा-ईआक्साइड के 450 पीपीएम स्तर द्वारा होने वाले लाभकारी प्रभाव निरस्त देखे गए।

स्रोत : सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन संस्थान, बेंगलुरू

प्रत्येक अजैविक तनाव को अकेले अथवा संयोजन की स्थिति में एक विशिष्ट संग्रहित दशानुकूलन की आवश्यकता होती है और दो या दो से अधिक अलग-अलग तनावों के संयोजन में भी एक ऐसी विशिष्ट प्रतिक्रिया, जो स्थिति विशेष के अनुकूलन की हो, की आवश्यकता होती है। प्रयोगात्मक सबूत इस ओर इंगित करते हैं कि प्रत्येक तनाव स्थिति को अलग-अलग अध्ययन करने की अपेक्षा तनाव संयोजन के माध्यम से अजैविक तनावों की स्थिति में पौधों द्वारा अपनाई गई एक नई रक्षा अथवा दशानुकूलन प्रतिक्रिया को पहचानने की आवश्यकता है। सूखे के कारण उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में लगभग 200 लाख टन से भी अधिक अनाज उत्पादन में कमी आई है जो पूर्ण रूप से सिंचित अवस्था में उत्पादन का लगभग 17 प्रतिशत है। वैश्विक जलवायु के दुष्प्रभाव के कारण सूखा आज पूरे विश्व की एक विकराल समस्या बन गई है। इसलिए, इस जलवायु परिवर्तन परिदृश्य में उत्पादन को स्थिर बनाए रखने के लिए फसल किस्मों में कई पर्यावरण तनावों को सहने हेतु सहिष्णुता स्तर में सुधार करना अति आवश्यक है। इस दिशा में अजैविक तनावों के प्रति होने वाली आणविक प्रक्रियाओं की प्रतिक्रियाओं को जानने

में उच्च क्षमता वाले अनुक्रमण एवं कार्यात्मक जीनोमिक्स उपकरणों की सहायता से अभूतपूर्व प्रगति हुई है। अब तक, अजैविक तनाव सहिष्णुता में शामिल बहुत सारे महत्वपूर्ण जीन्स की पहचान और पुष्टि कर ली गई है, जिनको आमतौर पर कार्यात्मक जीन्स और नियामक जीन्स नामक दो भागों में वर्गीकृत किया गया है। चूंकि, तनाव सहिष्णुता के लिए शारीरिक लक्षणों का उपयोग करने की सीमाएं हैं, और प्रत्येक लक्षण बहुत सारे जीन्स से नियंत्रित होते हैं, जो अजैविक तनावों के प्रति सहिष्णुता सुधार में जटिलता उत्पन्न करते हैं। तनाव सहिष्णु लक्षणों की इस जटिलता के कारण पारंपरिक प्रक्रियाओं से फसल सुधार में मामूली सफलता ही मिल पाई है। इसीलिए बेहतर तनाव सहिष्णु किस्में विकसित करने हेतु अब ट्रांसजेनिक विधियों का इस्तेमाल किया जा रहा है। हालांकि, कई तनाव सहिष्णुता जीन्स की पहचान कर ली गई है और ट्रांसजेनिक पौधे भी विकसित किए जा चुके हैं, परंतु वे केवल एक या दो विशिष्ट तनावों का प्रतिरोध करने के लिए ही उपयोगी हो सके हैं।

भविष्य में पौधों की बहुआयामी किस्में विकसित करना ही एक सार्थक प्रयास होगा। इन किस्मों से ज्यादा से ज्यादा स्थानीय रूप से अनुकूलित ट्रांसजेनिक किस्में उपलब्ध कराई जा सकेंगी जिन्हें आसानी से बाजार में भी स्वीकार किया जा सकेगा। साथ ही साथ इन्हें स्रोत सामग्री बनाकर महत्वपूर्ण जीन्स के रूप में प्रयोग में लाया जा सकेगा। फिर भी इस प्रक्रिया में 'लक्षण स्लाइसिंग' जो कि ट्रांसजेनिक कैसेट के बीच परस्पर प्रभाव (एपिस्टेटिक) जैसी कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं। यदि बहुत सारे ट्रांसजीन एक ही किस्म में समाविष्ट किए जाएं तो इस तरह के प्रभाव पीढ़ी दर पीढ़ी संचयी हो सकते हैं। इसलिए एक कार्यात्मक जीन में बदलाव के बजाय कुछ नियामक जीन्स में बदलाव के द्वारा अजैविक तनाव से संबंधित जीन्स की अभिव्यक्ति को नियंत्रित किया जाना एक प्रभावी रणनीति के रूप में उभरा है। अतः ट्रांसक्रिप्शन फैक्टर्स को आनुवांशिक अभियांत्रिकी द्वारा तनाव सहिष्णु फसल प्रजनन हेतु मास्टर नियामक के लिए एक अच्छा उम्मीदवार माना गया है। ट्रांसक्रिप्शन फैक्टर्स परिवार में एपी2/ईआरईबीपी/एमवाईबी/डब्ल्यूआरकेवाई/एनएसी/बीज़ेडआईपी इत्यादि की पहचान कर आदर्श/प्रतिरूपी/फसलीय पौधों में अभियांत्रिकी कर यह पाया गया है कि इनमें विभिन्न अजैविक तनावों के प्रति सहिष्णुता बढ़ाने की क्षमता है। ऐसी फसल किस्मों (ट्रांसजेनिक या गैर ट्रांसजेनिक) के विकास, जो अजैविक तनावों को सहन कर सकती हैं, द्वारा हम उन फसल क्षेत्रों, जहां अजैविक तनाव ज्यादा होता है, को लाभान्वित कर पाएंगे।

अजैविक तनावों की शारीरिक, जैव रासायनिक और आणविक क्रियाएं

फसलीय पौधों में अजैविक तनाव सहिष्णुता बढ़ाने के लिए इन तनावों की प्रतिक्रियाओं को समझना होगा। हाल के अनुसंधानों द्वारा आणविक, कोशिकीय, चयापचय, और शारीरिक स्तर पर अजैविक तनाव की विभिन्न अनुकूली प्रतिक्रियाओं की पहचान की है, हालांकि अंतर्निहित तंत्र अजैविक तनाव सहिष्णुता को पूरी तरह से समझने से दूर हैं। वर्तमान अध्याय अजैविक तनाव के लिए पादप अनुकूलन और सहिष्णुता को विनियमित करने, जैव रासायनिक, शारीरिक और आणविक तंत्र पर प्रमुख अनुसंधान पहलुओं की व्यापक समीक्षा प्रदान करता है।

द्रुतशीतन तनाव

अधिकांश फसलें, उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय दोनों ही मूल की, कम तापमान के प्रति संवेदनशील होती हैं। मक्का और चावल जैसी प्रमुख खाद्य फसलें कम तापमान के लिए बहुत संवेदनशील होती हैं। इन फसलों की बढ़ोत्तरी सामान्य से 10 डिग्री सेल्सियस से नीचे के तापमान द्वारा बुरी तरह से प्रभावित होती है जिसके परिणामस्वरूप उपज में काफी हानि या फसल पूर्णतया नष्ट हो सकती है। अन्य फसलों में अधिकतम आर्थिक नुकसान फलों के पेड़ों में देखा गया है। अतिशीतन तापमान पौधों को नुकसान पहुंचा सकता है, यह उष्णकटिबंधीय फलों में 0 से 4 डिग्री सेल्सियस, शीतोष्ण फलों के लिए 8 डिग्री सेल्सियस तथा उपोष्णकटिबंधीय फलों के लिए, जैसे कि केला हेतु 12 डिग्री सेल्सियस के आसपास पाया गया है। गैर खाद्य फसलों में, कपास उद्योग में लगभग 60 लाख डालर का अनुमानित वार्षिक नुकसान रोपण के तुरंत बाद अतिशीतन तापमान के कारण पाया गया है। कपास में अंकुरण अवस्था के दौरान अतिशीतन पौधे की ऊंचाई में कमी, देरी से फूल आना तथा उपज एवं रेशा गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

द्रुतशीतन आघात पौधों में शारीरिक और शरीर-क्रिया संबंधी परिवर्तन लाते हैं। ये द्रुतशीतन तापमान की अनावृति से प्रेरित होते हैं। शरीर-क्रिया संबंधी परिवर्तनों को प्राथमिक अथवा परोक्ष दर्जे का माना जा सकता है। प्राथमिक क्षति प्रारंभिक प्रतिक्रिया है जो पौधों में शिथिलता के रूप में झलकती है, परंतु यदि तापमान को गैर-अतिशीतन परिस्थितियों तक बढ़ाया जाता है तो इस क्षति को आसानी से प्रतिवर्तित भी किया जा सकता है। परोक्ष क्षति से आई शिथिलता, जो प्राथमिक क्षति के परिणामस्वरूप होती है, को परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। विशेषतया दृश्य लक्षण परोक्ष द्रुतशीतन से उत्पन्न होते हैं। द्रुतशीतन से प्रत्येक कोशिका का पूरा आतंरिक पर्यावरण एवं प्रत्येक अणु प्रभावित होता है, जिसमें मुख्यतया जीवन प्रक्रियाएं जैसे एंजाइम प्रतिक्रियाएं, सब्सट्रेट प्रसार दर, और झिल्ली परिवहन गुण शामिल हैं। शारीरिक उम्र, अंकुर विकास और फसल कटने से पहले की जलवायु भी द्रुतशीतन संवेदनशीलता को प्रभावित करते हैं। द्रुतशीतन संवेदनशील ऊतकों में आघात की अधिकता तापमान घटने के साथ-साथ जोखिम तापमान की अवधि पर भी निर्भर करती है। गहन द्रुतशीतन तनाव कोशिकीय आत्मविनाश एवं वार्धक्य को बढ़ावा देते हैं। प्रकाश की मौजूदगी में फोटो आक्सीकरण के परिणामस्वरूप क्लोरोफिल की कमी के कारण, पत्तियों में पीलापन भी हो सकता है।

प्लाज्मा झिल्ली की अखंडता को नुकसान अंतर कोशिकीय रिक्त स्थान में कोशिकीय द्रव्य के रिसाव की अनुमति देता है जिससे शीतित ऊतक पानी से लथपथ प्रतीत होता है और कोशिकीय कक्षों की प्रथकता एवं कोशिकीय स्फीत को कायम रखने में विफल हो जाता है। इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी अध्ययन से पता चला है कि द्रुतशीतन के बाद संवेदनशील प्रजातियों के माइटोकोंड्रिया फूल जाते हैं एवं उनका स्वरूप विकृत हो जाता है। सामान्यतयः कार्बनडाईआक्साइड और एथिलीन उत्पादन की दर में वृद्धि हो जाती हैं। हालांकि दृश्य लक्षणों की उपस्थिति से पहले एथिलीन शीत जनित आघात का एक आकस्मिक एजेंट नहीं है। संभवतयः प्रत्येक कोशिका द्वारा अतिशीतन तनाव स्थानीय स्तर पर महसूस किया जाता है। अतिशीतन तनाव को विस्थापित नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए जब एक खीरे के पौधे को इस प्रकार वर्गीकृत किया

जाता है कि उसकी एक शाखा को अतिशीतित किया जाए जबकि शेष पौधे को गर्म तापमान पर रखा जाए तो अतिशीतन से होने वाला नुकसान केवल उस एक शाखा तक ही सीमित रहता है। कोशिकीय स्तर की चोट ही वो प्रमुख घटना है जो अतिशीतन जनित आघात के लक्षणों को उद्वेलित करती है।

उच्च तापमान तनाव

उच्च तापमान तनाव प्रायः इस प्रकार परिभाषित किया जाता है, जहां तापमान इतने पर्याप्त समय के लिए गर्म रहे कि वे पादप क्रियाओं अथवा उनके विकास को अपरिवर्तनीय क्षति पहुंचा सके। इसके अलावा, उच्च तापमान प्रजनन विकास की दर को बढ़ा देते हैं जो प्रकाश संश्लेषण के लिए समय कम कर देता है। यह भी एक उच्च तापमान तनाव के प्रभाव के रूप में माना जाता है, क्योंकि प्रजनन विकास की दर में वृद्धि कुल फल या अनाज की उपज को काफी हद तक कम कर देती है, भले ही यह विकास अपरिवर्तनीय नुकसान का कारण नही होता है।

दिन के समय उच्च तापमान या तो प्रत्यक्ष रूप से ऊतकों का तापमान बढ़ा सकता है अथवा परोक्ष रूप से उच्च वाष्पीकरण मांग के कारण पौधे में पानी की कमी कर देता है। दिन के समय तापमान में वृद्धि के साथ वाष्पीकरण मांग तेजी से बढ़ जाती है और परिणामस्वरूप स्वेद दर को बढ़ा एवं जल-विभव को कम कर सकता है। मृदा का उच्च तापमान पादप उद्भव को घटा सकता है। ग्रीष्म ऋतु के पौधों के लिए अंकुरण एवं उद्भव की अधिकतम तापमान सीमा शीत ऋतु के पौधों की तुलना में अधिक रहती है। उदाहरण के लिए, लोबिया के उद्भव के लिए बीज क्षेत्र की अधिकतम तापमान सीमा, सलाद पत्ता के लिए 25-33 डिग्री सेल्सियस की तुलना में 37 डिग्री सेल्सियस है।

पौधे के वानस्पतिक विकास के दौरान दिन के समय के उच्च तापमान प्रकाश संश्लेषी तंत्र को नुकसान पहुंचा सकते है और सामान्य तापमान की तुलना में कार्बनडाईआक्साइड के आत्मसात्करण को घटा सकते हैं। विषम (तापमान के प्रति संवेदनशीलता में भिन्न) पौधों की प्रजातियों की गर्मी के प्रति अनुक्रियाओं के तुलनात्मक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि गेहूं, एक ठंडे मौसम की प्रजाति, का फोटोसिस्टम-II, चावल व बाजरा जो गर्म मौसम प्रजातियां हैं, की तुलना में गर्मी के प्रति अधिक संवेदनशील है। अत्यधिक तापमान पौधों की असामयिक मृत्यु का कारण बन सकता है। शीतकालीन फसलों में मटर की फसल दिन के समय उच्च तापमान के लिए अत्यधिक संवेदनशील है क्योंकि जब वायु का तापमान पर्याप्त समय के लिए 35 डिग्री सेल्सियस से अधिक रहता है तो पौधे मर जाते है, जबकि जौ की फसल गर्मी के लिए अत्यधिक सहिष्णु है। ग्रीष्म कालीन फसलों में लोबिया, जब पृथ्वी पर सबसे अधिक गर्म वातावरण (एक मौसम स्टेशन शेड में अधिकतम दिन के समय हवा का तापमान लगभग 50 डिग्री सेल्सियस) में उगाया जाता है तो पर्याप्त बायोमास उत्पन्न कर सकता है। हालांकि, इसका वानस्पतिक विकास पत्ती प्रपट्टन जैसी असामान्यताएं उत्पन्न कर सकता है।

कई फसलों में प्रजनन विकास गर्मी से प्रभावित होता है। इन परिस्थितियों में उनमें कोई फूल ही उत्पन्न नहीं होता और यदि हो भी जाए तो वे फूल किसी भी फल या बीज में परिवर्तित नहीं हो पाते हैं। उच्च पौधों की पत्तियों की गर्मी सहनशीलता की सीमा थैलेकोइड झिल्ली प्रणाली

में होने वाली प्राथमिक प्रकाश रासायनिक क्रियाओं के उच्च तापमान के प्रति संवेदनशीलता के साथ मेल खाती है। सहनशीलता की सीमा में जीनोटाइप्स के बीच भिन्नता है, लेकिन यह भी दशानुकूलन के अधीन है। दीर्घकालिक दशानुकूलन, कुछ घंटे की समय सीमा में तेजी से होने वाली तापीय स्थिरता के अनुकूली समायोजनों पर अध्यारोपित किया जा सकता है। प्रकाश, उच्च तापमान के लिए सहिष्णुता में वृद्धि का कारण बनता है और यह स्थिरीकरण प्रकाश प्रेरित प्रोटान विभव से संबंधित है। अपरिवर्तनीय प्रभावों के अलावा, उच्च तापमान प्रकाश संश्लेषण की दर में भी बड़े प्रतिवर्ती प्रभाव डाल सकता है। फोटोरेस्पिरेशन से उत्सर्जित ऊर्जा कार्बनडाईआक्साइड आत्मसात्करण में खपने वाली ऊर्जा से अधिक हो सकती है और एक प्रतिवर्ती तापमान प्रेरित गैर रासायनिक शमन प्रक्रिया, जो कि फोटोसिस्टम-I की उत्तेजना ऊर्जा के रिसाव से संबंधित है, तापमान में वृद्धि के साथ फोटोसिस्टम-II की क्षमता घटा देता है। हालांकि, संभावित क्वांटम दक्षता में समग्र गिरावट के बावजूद, उच्च तापमान के द्वारा कार्बन उपापचय के विनियमन में असंतुलन उत्पन्न कर कार्बनडाईआक्साइड आत्मसात्करण की प्रक्रिया को सीमित किया जा सकता है जो कि रिबुलोज़-1,5-बिस्फोस्फेट कार्बोक्सिलेज़/ओक्सिजिनेस की सक्रियता अधो-विनियमन के रूप में परिलक्षित होता है।

लवणता

लवणता प्राकृतिक या मानव प्रेरित प्रक्रियाओं से होती है जो कि भूमि जल में घुले हुए लवणों के संचयन के परिणामस्वरूप होता है। क्षारीयता, चिकनी मिट्टी में लवणता का एक अप्रत्यक्ष परिणाम है, जहां अवभूमि में मानव-प्रेरित प्रक्रियाओं से घुलनशील लवण लीचिंग के द्वारा धुल जाते हैं और मिट्टी के ऋणात्मक आवेश से बंधा हुआ केवल सोडियम रह जाता है। उच्च नमक संध्रता मिट्टी मिश्रण में जल विभव को घटा देता है जो पौधों में जल तनाव की स्थिति को उत्पन्न करता है। दूसरे, वे गंभीर आयन विषाक्तता का कारण है क्योंकि सोडियम धनायन (Na^+) लवण मृदोद्भिदों क़ी तरह आसानी से रिक्तिकाओं में जब्त नहीं किए जा सकते हैं। अंततोगत्वा, लवणों का खनिज तत्वों के साथ मिलना पोषक तत्वों का असंतुलन एवं कमी उत्पन कर सकता है। अंततः इन सभी का परिणाम, पौधे के विकास अवरोध और आणविक नुकसान के कारण पौधों क़ी मौत हो सकती है। मृदा जल में लवणों क़ी अधिकता पौधों क़ी वृद्धि को दो तरीके से अवरुद्ध कर सकती है। पहला, मृदा मिश्रण में लवणों क़ी प्रचूरता पौधे क़ी पानी लेने क़ी क्षमता को कम कर देती है, जिसको परासरणी अथवा लवणता प्रेरित पानी क़ी कमी के प्रभाव के रूप में जाना जाता है। दूसरा, यदि अत्यधिक मात्रा में लवण पौधे क़ी स्वेद धारा में प्रवेश कर जाते हैं तो ये स्वेद प्रक्रिया में संलग्न पत्तियों में घाव कर देते हैं और जो पौधों क़ी वृद्धि में कमी का कारण बनते हैं। यह नमक विशिष्ट या लवणता का अतिरिक्त आयन प्रभाव के रूप में जाना जाता है। नमक सहिष्णुता आमतौर पर खारी मिट्टी क़ी तुलना में गैर खारी मिट्टी में पौधों के समय की एक विस्तारित अवधि के लिए विकास के बाद उत्पन्न बायोमास का प्रतिशत होता है। धीमी गति से बढ़ने वाली, लंबे समय तक जीवित रहने वाली या असभ्य प्रजातियों के लिए, बायोमास उत्पादन में कमी का आकलन करना मुश्किल होता है, इसलिए नमक सहिष्णुता सूचक के रूप में अक्सर प्रतिशत अस्तित्व (जीवित पौधों का प्रतिशत) प्रयोग किया जाता है। लवणता केवल आयनिक तनाव ही उत्पन्न नहीं करती है अपितु यह परासरणी तनाव भी उत्पन्न

करती है। आयनिक तनाव पौधों में प्रमुखतः सोडियम विषाक्तता के कारण होता है कुछ पादप प्रजातियां क्लोराइड विषाक्तता के लिए भी संवेदनशील होती हैं। कुछ खारी मिट्टी में, आयन विषाक्तता क्षारीय पीएच के होने से और अधिक बढ़ जाती है। उच्च नमक तनाव की वजह से उत्पन्न हुए परासरणी तनाव को प्रायः शारीरिक सूखे के रूप में जाना जाता है।

लवणमृदोद्भिद पौधे, जो सोडियम विषाक्तता के लिए सहिष्णु हैं, उनकी वृद्धि में अवरोध का प्रमुख कारण परासरणी तनाव है। हालांकि, ज्यादातर फसलीय पौधे ग्लाइकोफाइट्स हैं और लवणों की अपेक्षाकृत कम मात्रा के प्रति संवेदनशील हैं। इसलिए, आयन विषाक्तता फसलीय पौधों के लिए नमक तनाव का एक महत्वपूर्ण और प्रायः प्रमुख घटक है। उच्च लवणता के कारण अति-परासरणी तनाव एवं आयन असंतुलन होता है जो पौधे में कुछ अप्रत्यक्ष प्रभाव एवं विकृतियां उत्पन्न करता है। मूलतः पौधे नमक तनाव का या तो टालने की प्रवृत्ति या सहनशीलता बढ़ाकर सामना करते हैं अर्थात पौधे या तो नमक तनाव के दौरान निष्क्रिय हो जाते हैं या खारे पर्यावरण को सहन करने के लिए कोशिकीय स्तर पर कुछ समायोजन कर लेते हैं। सहिष्णुता प्रक्रियाओं (तंत्र) को उन रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है जहां या तो ये परासरणी तनाव एवं आयन असंतुलन को कम करते हों अथवा इन तनावों की वजह से उत्पन्न परोक्ष प्रभावों को कम करने के लिए कार्य करते हों।

क्षारीय घोल का रासायनिक विभव, शुरुआती तौर पर एपोप्लास्ट और सिमप्लास्ट के बीच जल-विभव का असंतुलन स्थापित कर देता है जो स्फीत न्यूनता को उत्पन्न करता है। विकास विराम तब हो जाता है जब स्फीत कोशिका भित्ति की उपज सीमा से भी कम हो जाती है। कोशिकीय निर्जलीकरण तब शुरू हो जाता है जब जल विभव का अंतर स्फीत में कमी के द्वारा प्रतिपूर्ति से भी अधिक हो जाता है। परासरणी समायोजन, स्फीत न्यूनता के प्रति कोशिकीय प्रतिक्रिया है। चूंकि पादप कोशिकाओं का विकास मुख्यतः दिशात्मक प्रसार के कारण होता है जो रिक्तिकाओं के आयतन में वृद्धि के द्वारा निर्धारित होता है। इस प्रकार सोडियम धनायन और क्लोराइड ऋणात्मक का अलग-अलग संग्रहण परासरणी समायोजन को प्रोत्साहित करता है जो कोशिकीय विकास के लिए आवश्यक है। नमक की उपस्थिति से एंज़ाइम्स के रूपांतरण के कोई सबूत नहीं है इसलिए कोशिकीय स्तर पर नमक तनाव से सहिष्णुता की प्रक्रियाओं में नमक को कोशिका द्रव्य से बाहर रखना एवं उनका रिक्तिकाओं में संग्रहण सम्मिलित है। यह प्रक्रिया अधिकांश प्रजातियों में पाई जाती है जो इस बात से प्रमाणित है क़ि कुछ पत्तियों में लवण की सांद्रता बहुत अधिक होने पर भी वे सामान्य रूप से कार्य कर रही होती हैं; 200 मिली मोलर से अधिक लवण सांद्रता, कृत्रिम परिवेश में एंजाइम गतिविधि के पूरी तरह से अवरोधन के लिए जानी जाती है। सामान्यतयः सोडियम धनायन की सांद्रता 100 मिली मोलर से अधिक होने पर यह एंजाइम गतिविधि को अवरुद्ध करने लगती है। सांद्रता पर क्लोराइड ऋणात्मक विषाक्त हो जाते हैं जो कि भली-भांति परिभाषित नहीं हैं, लेकिन संभवतयः यह सोडियम धनायन के समान ही हैं। यदि सोडियम धनायन और क्लोराइड ऋणात्मक रिक्तिकाओं में संग्रहित कर लिए जाते हैं तो रिक्तिकाओं के परासरणी दबाव को संतुलित करने के लिए पोटाशियम धनायन (K^+) और जैविक विलेय, कोशिका द्रव्य एवं कोशिकांगों में संचयित हो जाते हैं। जैविक विलेय जो क्षारीय तनाव में सबसे अधिक संचयित होते हैं वे प्रोलीन एवं ग्लाइसीनबिटेन हैं। हालांकि अल्प मात्रा

में कुछ अन्य अणु भी जमा हो सकते हैं। नमक सहिष्णु प्रजातियों के टोनोप्लास्ट पर कुछ ऐसे परिवहन तंत्र (परिवाहक) होते हैं जो सोडियम धनायन एवं क्लोराइड ऋणात्मक को कोशिका द्रव्य एवं अन्य कोशिकाओं में एक निम्न स्तर पर कायम रखते हुए इन्हें रिक्तिकाओं में बहुत अधिक मात्रा में संग्रहित कर सकते हैं। जबकि, कई फसलें लवणता के प्रति संवेदनशील हैं। चावल नमक प्रभावित मिट्टी में अपेक्षाकृत बेहतर पनपते हैं क्योंकि जल भराव ऊपरी मृदा से लवणों के बहाव में मदद करता है। चावल में लवण-सहिष्णुता के लिए विभिन्न गुणसूत्रों पर स्थित 'क्यू टी एल' की पहचान करने के लिए बहुत सारे मानचित्रण अध्ययन किए गए। 'सालटोल' के रूप में नामित एक प्रमुख 'क्यू टी एल', गुणसूत्र-1 जो नमक अपग्रहण में 40 प्रतिशत से अधिक बदलाव के लिए जिम्मेदार हैं, पर मानचित्रित किया गया है। कई प्रजातियां मार्कर द्वारा सहायता प्रदत्त संवर्धन द्वारा 'सालटोल' 'क्यू टी एल' युक्त विकसित की गई हैं जो अंततः नमक सहिष्णु चावल की किस्मों के रूप में विकसित हुई हैं।

सूखा तनाव

पौधों में पानी की कमी तब उत्पन्न होती है जब पानी की मांग आपूर्ति से अधिक हो जाती है। पानी की आपूर्ति पौधे की जड़ प्रणाली की गहराई तक मिट्टी में मौजूद पानी की मात्रा से निर्धारित होती है। पानी की मांग पौधे की स्वेद दर या फसल के वाष्पीकरण (इवेपोट्रांसपिरेशन), जिसमें पौधे का स्वेदन एवं मिट्टी का वाष्पीकरण दोनों शामिल हैं, के द्वारा निर्धारित होती है। यह ऊर्जा आंशिक रूप से पौधे से गर्मी के रूप में उत्सर्जित विकिरण के द्वारा विच्छिन्न कर दी जाती है, परंतु इसका अधिकांश भाग स्वेदन के द्वारा ही विच्छिन्न किया जाता है। जब पौधे पर पर्यावरणीय ऊर्जा का भार अधिक होता है तब स्वेदन पत्तियों के तापमान को परिवेश के तापमान के सापेक्ष ठंडा करता है। स्वेद दर वाष्प दाब में कमी (सापेक्षिक आर्द्रता) एवं वायु वेग से भी प्रभावित होती है। पानी की कमी पुष्पन (फूल आने की) प्रक्रिया को अग्रवर्ती अथवा विलंबित कर देती है, जो कि प्रजाति विशेष पर निर्भर करता है। इस संदर्भ में एबीए की एक प्रमुख भूमिका हो सकती है जैसे कि टमाटर और मक्का में इसे पुष्पन को विलंबित करने में देखा गया है। पुष्पन से पहले शुष्कता तनाव से चावल में पुष्पन में 50 दिन तक की देरी देखी गई है। पानी की कमी प्रजनन विफलता का कारण बन सकता है। पराग कण या पराग-मातृ कोशिकाएं अंडाशय की अपेक्षा शुष्कन के प्रति अधिक संवेदनशील हैं, इसीलिए पुष्पन के दौरान सूखे तनाव का एक आम परिणाम नर बंध्यता है। सूखा तनाव के तहत गेहूं में कम दाना भरने के लिए टहनियों में एबीए के संचयन को जिम्मेदार माना गया है। एक एबीए उत्तरदाई जीन टमाटर के पुष्पीय भागों में पाया गया था। सूखे के दौरान संचयित कार्बन और कभी-कभी नाइट्रोजन की उपलब्धता में कमी अनाज और फलों की वृद्धि में रूकावट का प्रमुख कारण होती है। अनाज उद्विकास के दौरान सूखा तनाव धान्य फसलों में अनाज भरने की अवधि और अनाज का वजन कम कर देता है।

तनाव के तहत परासरणी समायोजन जड़ों को गहराई तक बढ़ने के लिए प्रेरित करता हुआ पाया गया। मिट्टी के भीतर जड़ों का वितरण, तनाव विकसित होने के साथ ही इस प्रकार बदल जाता है कि पौधे को मृदा की गहरी परतों से नमी को खोजने में मदद करता है। धान्य फसलों में, ऊपरी सूखी मिट्टी, मिट्टी की ऊपरी पर्त में नई जड़ों के बनने और उनके संस्थापन को अवरुद्ध करती है और उसी समय जड़ों के लिए विभाजित किया गया प्रकाश संश्लेषण परिपाक मौजूदा

जड़ों को ओर अधिक गहरी मिट्टी में विकसित करने में इस्तेमाल किया जाता है। छोटे अनाजों और चावल में कल्ले निकलना, नई जड़ों के बनने के साथ जुड़ा हुआ है। इसीलिए, विस्तृत कल्ले आमतौर पर घनी और उथली जड़ों से जुड़े हैं, जबकि सीमित कल्ले विरल (तितर- बितर) और गहरी जड़ों के साथ जुड़े हुए हैं। अनेक कारणों में से एक कारण यह भी है कि शुष्क क्षेत्रों में विकसित खाद्यान्न फसलों की अधिकांश किस्में सीमित कल्लों वाली होती हैं। यह ज्ञात नहीं है कि पानी की कमी के प्रति कोशिकीय प्रतिक्रियाओं का प्रमुख मध्यस्थ कौन है और उनकी महत्वता का क्रम क्या है। फिर चाहे यह कोशिकीय जल की स्थिति, स्फीत, बाध्य पानी, हार्मोन (मुख्य रूप से एबीए), कोशिकीय झिल्ली के क्रिया कलाप या अन्य कोई घटक हो। यह भी स्पष्ट नहीं है कि कोशिकाएं कैसे कोशिकीय जल की कमी का अनुभव करती हैं और कोशिकीय जल की कमी को कैसे इस तनाव के विभिन्न प्रत्यक्ष एवं परोक्ष परिणामों में पारगमित और प्रतिलेखित किया जाता है।

पौधों को विभिन्न अजैविक दबावों के लिए शारीरिक, जैव रासायनिक और आणविक आनुवंशिकी प्रतिक्रियाओं को समझने में जबरदस्त प्रगति हुई है। सूखा सहिष्णुता सुधार के लिए अनुकूली लक्षण जैसे शीघ्र दृढ़ांगता, परासरणी समायोजन, पत्ती वार्धक्य, हरित-स्थगन आदि का बड़ी संख्या में अध्ययन और प्रयोग किया गया है। पौधों में सहिष्णुता, आमतौर से हरित स्थगन लक्षण, सूखा प्रेरित पुष्पण के बाद वार्धक्य से जोड़कर देखा गया है। जड़ें भी कई फसलों में सूखा तनाव के लिए अनुकूलन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

बाढ़ तनाव

फसलीय पौधों को प्रकाश संश्लेषण और श्वसन के लिए वायुमंडलीय गैसों के मुक्त आदान-प्रदान की आवश्यकता होती है। गैस प्रसार के लिए सबसे आम बाधा पानी है जो खराब पानी के निकास वाली मिट्टी में जड़ों के परिवेश को संतृप्त कर देता है या नदियों के आप्लाव, अत्यधिक वर्षा या अत्यधिक सिंचाई के कारण मिट्टी क़ी क्षमता से ज्यादा जमा हो जाता है। लंबी अवधि की बाढ़ मृदा में मौजूद सूक्ष्म वनस्पतियों को अवायुवीय सूक्ष्म जीवों, जो आक्सीजन के लिए वैकल्पिक इलेक्ट्रान स्वीकारकर्ताओं का उपयोग करते हैं, के हित में परिवर्तित कर देता है। इसके परिणामस्वरूप, मृदा का झुकाव खनिज आयनों की ओर अधिक पराभवी एवं पौधों के लिए विषाक्त रूपों जैसे नाइट्राइट और लौह आयन, को जमा करने की तरफ हो जाता है। कुछ पौधे ऐसी मिट्टी में विकसित होने के लिए अनुकूलित होते हैं। समय-समय पर आने वाली बाढ़ की वजह से पौधों के लिए उत्पन्न अल्पकालिक अवायुवीय तनाव जड़ों के आसपास आक्सीजन के स्तर को कम कर देता है और यह जड़ों के विकास को सीधे तौर पर प्रभावित करता है, जबकि टहनियों के विकास में परिवर्तन जड़ों के चयापचय में होने वाले परिवर्तन के परिणाम के अनुरूप होता है। जब मृदा जलग्रस्त होती है, मृदा और वायुमंडल के बीच गैसों का आदान- प्रदान नगण्य हो जाता है। प्रारंभ में, बाढ़ के पानी में आक्सीजन होती है, लेकिन यह तापमान और श्वसन दर पर निर्भर करते हुए कुछ ही घंटों के भीतर समाप्त हो जाती है। इसीलिए प्रकृति में, पौधे आक्सीजन की कमी से पहले अल्प-आक्सीजन का अनुभव करते हैं और यह उत्तरोत्तर आक्सीजन की कमी दो प्रमुख प्रभाव डालती है। पहला, आंतरिक आक्सीजन सांद्रता में न्यूनता की प्रतिक्रिया स्वरूप एथिलीन संश्लेषण में एक उत्तेजना है। अत: एथिलीन इस प्रकार की कई अनुकूली प्रकियाओं का सूत्रपात एवं विनियमन करती है जो बाढ़ और जल भराव वाली मिट्टी

में जड़ों के लिए आक्सीजन की उपलब्धता को बढ़ाकर आक्सीजन न्यूनता को टाल सके। इसके अलावा, एथिलीन कुछ अन्य लक्षणों को उद्वेलित करती है जो पौधों को जड़ों में गैस विनिमय से निपटने की क्षमता प्रदान करते हैं; जैसे पौधों का झुक जाना (एपिनास्टी), हरिद्रोग और पत्ती वार्धक्य। ऐसे खेत जहां अस्थाई रूप से जल संतृप्त मृदा हो या जहां भू-जल का स्तर काफी ऊपर होता है, जड़ें केवल सतह के आसपास ही एक छोटे से क्षेत्र में वृद्धि करती हैं और उतनी बड़ी मात्रा में मिट्टी का दोहन नहीं करती हैं जितना वे वातयुक्त अवस्था में करेंगी। यह उन्हें उत्तरवर्ती सूखे के लिए अतिसंवेदनशील बनाता है और उनकी उर्वरक आवश्यकताएं ओर अधिक बढ़ जाती है। दीर्घकालिक बाढ़, सैलाब के दौरान एकत्रित हुए कई नकारात्मक और सकारात्मक संकेतों के फलस्वरूप वार्धक्य और पत्ती अपच्छेदन को बढ़ावा देता है। इस प्रतिक्रिया का एक अनुकूली वैशिष्ट्य, बिगड़ी हुई जड़ प्रणाली के लिए एक अंतिम समायोजन के रूप में टहनी और जड़ का अनुपात घटा देना है।

इन पर्यावरण प्रतिकूल स्थितियों में बाढ़ की आशंका वाले क्षेत्रों में तेजी से पैदावार घटाने की क्षमता होती हैं। बाढ़ सहिष्णु किस्मों को विकसित करने के लिए, तनाव की अवधि के दौरान पौधों की वृद्धि एवं विकास को बनाए रखने और बढ़ावा देने वाले लक्षणों की पहचान करना आवश्यक है। पौधों में तनाव सहिष्णुता, तनाव के तहत सीमित संसाधनों का सामना करने और साथ ही जब तनाव से राहत मिली हो तो उच्च उत्पादन क्षमता के साथ वापस स्वस्थ होने की क्षमता के रूप में व्यक्त की जाती है। तटीय जिलों में, बाढ़ सहिष्णु चावल की किस्में जैसे 'स्वर्ण-सब-1' के सफल अनुकूलन द्वारा चावल में जल जमाव सहिष्णुता के सुधार का प्रदर्शन किया है।

भारी धातु तनाव

कृषि क्षेत्रों में धातु संदूषण बहुत तीव्र गति से बढ़ रही एक आम समस्या होती जा रही है। मिट्टी, चट्टान, हवा, पानी और जीवों में पाई जाने वाली धातुएं, लौकिक तंत्र का एक स्वाभाविक हिस्सा है। हालांकि, तांबा, मैंगनीज और जस्ता सहित कुछ धातुएं, आंशिक मात्रा में पौधों में चयापचय के लिए आवश्यक है। केवल तब जब धातुएं जैव उपलब्ध अवस्था में अत्यधिक मात्रा में मौजूद हों, पौधों के लिए विषाक्त होने की क्षमता रखती हैं। धातुओं के लिए पौधे की प्रतिक्रियाएं उनकी मात्रा पर आधारित हैं। आवश्यक धातुओं के लिए, इन प्रतिक्रियायों में न्यूनता से लेकर प्रचूरता/सहनशीलता एवं विषाक्तता तक के चरण शामिल होते हैं। गैर जरूरी धातुओं के लिए, केवल सहिष्णुता और विषाक्तता के चरण ही होते हैं। नाजुक या विषाक्तता सीमा जैसे प्रत्यय प्रायः उस स्थिति में प्रयोग किए जाते हैं जिस पर धातुएं पौधों की वृद्धि में सार्थक कमी कर देती हैं। ये अक्सर धातु सांद्रता जो उपज में 10 प्रतिशत की कमी कर दे, के अनुरूप परिभाषित किए जाते हैं। यह सिद्धांत महत्वपूर्ण सब्सट्रेट सांद्रता और महत्वपूर्ण पर्णीय उपयोग के लिए सांद्रता दोनों के निर्धारण के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। नाजुक मात्रा धातुओं और पौधों की प्रजातियों के अनुसार बदलती रहती है।

पौधों ने मृदा घोल से धातुओं को प्राप्त करने और पौधों के भीतर इन धातुओं के परिवहन के लिए क्रियाविधियों की एक श्रृंखला विकसित कर ली है। अधिकांश अनुसंधान और इस कारण इन क्रियाविधियों की ज्ञान प्राप्ति, धातुओं की प्रचुरता और कमी के स्तर पर किया गया है। हालांकि, उन क्रियाविधियों का ज्ञान, जो धातुओं की कमी और प्रचुरता पर संचालित होती हैं, के

साथ ही धातुओं की ओर अधिक आपुर्ति से प्राप्त होने वाले ज्ञान से उन प्रक्रियाओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है जो पौधों के द्वारा धातुओं के ग्रहण करने एवं उनके परिवहन को प्रभावित करती हैं। पौधे की जड़ों में धातुओं का अपग्रहण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें मृदा घोल से जड़ों की सतह तक एवं जड़ों की कोशिकाओं के भीतर धातुओं का परिवहन सम्मिलित है। धातुओं के अपग्रहण की यह प्रक्रिया मूलपरिवेश की जटिल प्रकृति, जो कि पौधे की जड़ों, मृदा घोल के सम्मिश्रण और मूलपरिवेश के भीतर रहने वाले सूक्ष्मजीवों के परस्पर प्रभाव के कारण है, से बाधित होती है। धातु विषाक्तता के साथ पत्ती लक्षणों की एक बड़ी श्रृंखला है जो विषाक्तता पहचानने और निदान में सहायक के रूप में इस्तेमाल किए जा सकते हैं। ताम्र विषाक्तता के कारण अक्सर पर्णीय शिराओं के मध्य में हरिद्रोग हो जाता है, अधिक जोखिम में पत्तियां परिगलित होने लगती हैं। मैंगनीज विषाक्तता के लक्षणों में हरिद्रोग पत्ते, परिगलित धब्बे और नई पत्तियों पर एक लक्षण जो पत्ती ऐंठन (क्रिन्कल लीफ) के रूप में जाना जाता है, शामिल हैं। जस्ता विषाक्तता के लक्षणों में हरिद्रोग और गंभीर मामलों में पत्तियों पर परिगलित घावों के साथ युवा पत्तियों का लाल होना शामिल है। धातुओं का प्रभाव संपूर्ण पौधे के स्तर पर पौधे क़ी कम वृद्धि में और अंगों के स्तर पर पत्ती लक्षणों में दिखाई देता है। सूक्ष्म स्तर पर धातुओं के प्रभाव कोशिकीय लक्षणों के रूप में देखे जा सकते हैं। लक्षण, दोनों स्थूल और कोशिकीय और विकास में प्रभाव, प्रत्यक्ष ढंग से होने वाली कार्रवाइयों के दुष्प्रभाव हैं। किसी धातु की प्रत्यक्ष कार्रवाई पौधे के चयापचय पर होती है। प्रत्येक धातु कार्रवाई की एक अलग विधा है। हालांकि, सामान्य रूप में धातु विषाक्तता प्रकाश संश्लेषण को कम कर देती है, एंजाइम और प्रोटीन के उत्पादन और उपयोग को प्रभावित करती है, पोषक तत्वों के परिवहन में बदलाव कर देती है ।

धातु सहिष्णुता की संभाव्य क्रियाविधियों में बहुत अधिक तर्क-वितर्क हैं। यह धातु विषाक्तता के बारे में हमारी कम समझ और पादप प्रतिक्रियाओं के जटिल स्वभाव के कारण हो सकता है। इस बात की काफी संभावना है कि विभिन्न पादप प्रजातियों ने इन तनावों को सहन करने की अलग-अलग युक्तियां विकसित की हों। यहां तक कि एक ही प्रजाति में एक से अधिक युक्तियां प्रचलन में हो। उन युक्तियों को जिन्हें पौधे उच्च धातु सांद्रता से प्रतिरोध करने में उपयोग में ला सकते हैं, दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है; अपग्रहण अथवा परिवहन पर प्रतिबंध और सहनशीलता के लिए आतंरिक युक्तियां। कुछ महत्वपूर्ण युक्तियों में कोशिका भित्ति पर अपवर्जन, रिक्तिकाओं में संचयन, और फायटोचिलेटिन्स का उत्पादन सम्मिलित हैं। स्थूल स्तर पर धातुओं के विषाक्त प्रभाव विकास में कमी और पर्णीय लक्षणों पर देखा जाता है। सूक्ष्म स्तर पर ये प्रभाव कोशिकीय लक्षणों के रूप में देखे जा सकते हैं। दोनों ही लक्षण, स्थूल और कोशिकीय, और विकास में कमी, प्रत्यक्ष ढंग से होने वाली कार्रवाइयों, जो कि पौधे के चयापचय पर होती हैं, के दुष्प्रभाव हैं। किसी भी मेटाबोलाइट की सांद्रता में वृद्धि या तो उसके उत्पादन में वृद्धि या उन क्रियाओं के द्वारा जिसके लिए यह एक सब्सट्रेट या उत्पाद है, उसके उपयोग में आई कमी को प्रदर्शित कर सकता है।

बहु-तनावों के लिए सहिष्णु फसलें विकसित करने की रणनीतियां

पौधों में तनाव-जैवप्रौद्योगिकी का उद्देश्य ऐसे ट्रांसजेनिक पौधों या फसलों को विकसित करना है जो ऐसे जीन/जीन्स को अभिव्यक्त करता हो जो उपरोक्त चर्चा में विस्तृत रूप में वर्णित

किए गए अन्य सस्य विज्ञान के लिए वांछनीय गुणों के साथ-साथ तनाव विरोधी कार्रवाइयों को उत्प्रेरित करने में कार्यात्मक रूप से सक्रिय हो। सरल शब्दों में, इस प्रक्रिया में शामिल कदम हैं, कैंडिडेट जीन्स की पहचान करना, उनके क्लोन बनाना और उन्हें उन किस्मों में समाविष्ट करना जिनमें पहले से ही उच्च गुणवत्ता वाले कृषि लक्षण मौजूद हों। हालांकि, यह काफी आसान प्रतीत होता है परंतु हर कदम की जटिलता बहुत असाधारण है। एक ट्रांसजेनिक पौधे में एक या एक से अधिक कृत्रिम रूप से सम्मिलित किए गए जीन/जीन्स होते हैं। सम्मिलित किया गया जीन अनुक्रम या जीन सीक्वेंस (ट्रांस्जीन के रूप में जाना जाता है) किसी दूसरे गैर संबंधित पौधे अथवा पूर्ण रूप से भिन्न प्रजाति से हो सकता है। एक पादप प्रजनक, जीन समुच्चय को एक फसलीय पौधे में इस प्रकार समाविष्ट करने का प्रयास करता है जो इसे यथासंभव (जितना अधिक हो सके उतना) उपयोगी और उत्पादक बना दे। इस बात पर निर्भर करते हुए कि पौधे को कहां और किस प्रयोजन के लिए उगाया जाता है, वांछनीय जीन को उच्च उपज या गुणवत्ता में सुधार जैसे लक्षणों के अलावा गर्मी, ठंड और सूखे के संयोजन से सहिष्णुता भी प्रदान करने की क्षमता होनी चाहिए। सर्वोत्तम जीन्स को एक पौधे में संयोजित करना एक लंबी और जटिल प्रक्रिया है। कैंडिडेट जीन, जो इस मामले में तनाव से मुकाबला करने की कार्यक्षमता रखने वाले जीन हैं, की पहचान करना वास्तव में उन्हें पौधों में स्थानांतरित करने की तुलना में कहीं अधिक मुश्किल काम है। निम्नलिखित विमर्श उन तरीकों और रणनीतियों को संक्षेप में प्रस्तुत करता है जो कि उन कार्यात्मक कैंडिडेट जीन्स को इंगित करने के लिए हैं जिनकी तनाव सहिष्णुता में एक भूमिका हो सकती है।

फसल सुधार में पादप लक्षणों का महत्व

ऐसे पादप लक्षण जो उपज में सहायक हैं और जिनका सहिष्णुता प्रक्रियाओं में भी सीधा प्रभाव है, उन महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है जिनको, दोनों ही पारंपरिक एवं आणविक विधियों द्वारा अजैविक तनावों से सहिष्णुता के लिए प्रजनन करते समय ध्यान में रखना चाहिए। पौधों को तथाकथित पादप कार्यात्मक प्रकार में वर्गीकृत करने पर जन्मजात पौधीय लक्षणों के अध्ययन से महत्वपूर्ण जनसंख्या पारिस्थितिकी संबंधी जानकारियां प्राप्त हुई हैं। पादप लक्षणों के विश्लेषण से प्राप्त ज्ञान को पौधों के उनके प्राकृतिक वातावरण में विशिष्ट पनाह में अनुकूलन और प्रचलित रणनीतियों का आकलन करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। पादप लक्षण, जो एक प्रजाति विशेष के हैं अथवा एक बड़े वर्ग के लिए विशिष्ट हैं, एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि वे काफी हद तक यह निर्धारित करते हैं कि कोई पौधा या वनस्पति जब किसी तनाव से अवगत होगा तो वह कितना संवेदनशील या अतिसंवेदनशील होगा। इन लक्षणों का शरीर क्रिया विज्ञान संबंधी ज्ञान, आनुवंशिक विविधता एवं ओर भी बढ़िया उपज अथवा ज़्यादा उत्पादक जर्मप्लाज्म या किस्मों के ओर अधिक सटीक निर्धारण में परिणित होगा। इन तत्वों की अंतर्निहित विशेषताओं को फिर सफलता के उन तत्वों की पहचान करने के लिए परखा जाता है जिनका प्रयोग आगे बहु-तनावों के वातावरण में उपज बढ़ाने के लिए किया जा सकता है। इन लक्षणों में अपने प्रभावों को सीधे या परोक्ष रूप से, एक लंबे समय के दौरान उपयोग दक्षता, जल उपयोग दक्षता (डब्ल्यू यू ई) और बायोमास विभाजन प्रत्येक को प्रभावित करते हुए कुल उपज पर हस्तांतरित करने की क्षमता होती है।

यह ध्यान में रखते हुए कि तनाव सहिष्णुता में कोई भी उन्नयन एक अंतर्निहित शारीरिक परिवर्तन का परिणाम होना चाहिए। यह आश्चर्य की बात है कि किसी शारीरिक लक्षण के लिए प्रत्यक्ष चयन अधिकांश खाद्य फसलों में उपज वृद्धि में कुछ खास योगदान नहीं देता है। यहां शारीरिक परिवर्तनों की एक व्यापक अर्थों में व्याख्या, फसल की वृद्धि, विकास, आकृति, शरीर रचना या दैहिकी, किसी भी परिवर्तन के रूप में की जा सकती है। फिर भी, फूल आने का समय और पौधे की ऊंचाई जैसे शारीरिक परिवर्तन उपज में वृद्धि और आणविक आनुवंशिकी के लिए महत्वपूर्ण घटक हैं; नियमित रूप से इन घटकों को वांछनीय अभिव्यक्ति अनुकूलन और इष्टतम उपज बनाए रखने के लिए चयनित किया जाता रहा है। तनाव सहिष्णुता और उपज वृद्धि के साथ जुड़े लक्षण आमतौर पर बहुत ज्यादा फसलों के लिए समान नहीं होते हैं। इसलिए आणविक प्रजनन कर्ताओं के सामने चुनने के लिए अत्यंत विरोधाभासी विकल्प मौजूद होते हैं, जिसकी वजह से कुछ खास लक्षण जो परस्पर अनन्य हैं, उनका मजबूरी में बहिष्कार करना पड़ता है। वांछनीय लक्षण पौधे द्वारा अनुभव किए गए तनाव की प्रकृति के लिए अत्यधिक विशिष्ट होते हैं। इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि जब भी कोई बहुतनाव सहिष्णु फसलों के लिए प्रजनन कर रहा हो तो वह तनाव विशिष्ट लक्षणों से भिन्न रहता है। ऐसे ही कुछ सामान्य लक्षणों का वर्णन निम्नलिखित हैं :-

प्रकाश संश्लेषण और उपज

प्रकाश संश्लेषण एक शारीरिक प्रक्रिया की आधारशिला और पौधों में शुष्क पदार्थ उत्पादन का आधार है। प्रकाश संश्लेषण दर संश्लेषक तंत्र की संश्लेषक क्षमता निरूपण में एक महत्वपूर्ण मापदंड है। यह कार्यक्षमता को भी दर्शाता है, क्योंकि यह फसल की उपज और प्रकाश उपयोग दक्षता का एक कारक है। प्रकाश संश्लेषण, पत्ती क्षेत्र और पत्ती वार्धक्य तथा रंध्र खोलने की दैनिक अवधि के माध्यम से नियंत्रित किया जाता है और पर्याप्त लचीलेपन के साथ एक फसल-उत्पादन प्रदान करता हैं। पौधों में अनेक पर्यावरणीय तनावों के खिलाफ संरक्षण के रूप में प्रकाश संश्लेषण के लिए एक अतिरिक्त सामर्थ्य होती है। आतंरिक घटकों में से पत्ती संश्लेषक दर एक बुनियादी किंतु एकमात्र घटक नहीं है। कुल पत्ती क्षेत्र फसल की उपज के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण कारक होता है। जब रोपण घनत्व बहुत अधिक नहीं होता है तो पत्ती क्षेत्र और उपज के बीच एक घनिष्ट संबंध देखा गया है। कई प्रजातियों में पत्तों के आकार और प्रति इकाई पत्ती क्षेत्र के संश्लेषक दर के बीच एक महत्वपूर्ण नकारात्मक संबंध होता है। पत्ती कार्यात्मक अवधि भी उपज को प्रभावित करने एक महत्वपूर्ण कारक है। जब प्रकाश संश्लेषण और उपज के संबंध का विश्लेषण किया जाए तो फोटोसिंथेटस के विभिन्न अंगों में वितरण, जिसे विभाजन गुणांक के रूप में व्यक्त किया जाता है या फसल सूचकांक जो फसल काटने पर उपज जैवभार के अनुपात में कुल संचयी जैवभार के रूप में भी व्यक्त किया जाता है, को ध्यान में रखा जाना चाहिए। श्वसन क्रिया से होने वाले नुकसान की मात्रा गुप्त रूप से फसल की उपज से संबंधित है। कम पत्ती श्वसन विभिन्न फसलों में उपज वृद्धि को प्रेरित करता है। अधिकांश फसलों में, फूल आने के बाद आधी से अधिक आर्थिक उपज प्रकाश संश्लेषण से व्युत्पन्न होती है। इसीलिए, प्रजनन अवस्था के दौरान प्रकाश संश्लेषण और अधिक सीधे तौर पर उपज की मात्रा से संबंधित है। अधिकांशतः इस अवस्था में पत्ती प्रकाश संश्लेषण और उपज के बीच सकारात्मक संबंध देखा जाता है।

जल उपयोग दक्षता और वाष्पोत्सर्जन दक्षता

जल उपयोग दक्षता, किसी फसल में प्रति इकाई वाष्पोत्सर्जन (ईटी) पर होने वाले शुष्क पदार्थ उत्पादन के रूप में परिभाषित की गई है। पौधे अपने कुल ग्रहण किए गए जल का 90 प्रतिशत से भी अधिक भाग, प्रकाश संश्लेषण के दौरान कार्बन संचयन के परोक्ष कारणों से गंवा देते हैं। इस प्रकार फसलों की सर्वाधिक जल आवश्यकता न्यूनतम हाइड्रेशन के लिए पानी की जरूरत या जैव रसायन के लिए आवश्यक पानी के रूप में दैहिकीय आवश्यकता नहीं है बल्कि कुछ आवश्यक गतिविधियों में उपोत्पाद के रूप में होती है। जल उपयोग दक्षता में विभिन्नता जंगली और फसलीय दोनों तरह के पौधों में एक बड़ी मात्रा में पाई जाती है परंतु ओर अधिक जल-निपुण फसलों को तैयार करने में इसके दोहन की बहुत सीमित उपलब्धियां ही हैं। दरअसल, अधिक उपज के लिए संवर्धित की गई कई फसलें परोक्ष रूप से उच्च रंध्र चालकता और पानी का उपयोग कम करने में दक्षता के लिए चुनी गईं। जल संबंध और रंध्र संबंधी व्यवहार जलवायु एवं मृदा संबंधी प्रचलित परिस्थितियों में पौधे की मूलभूत आवश्यकताओं को सीमित कर लेने की क्षमता को प्रतिबिंबित करने वाले महत्वपूर्ण सूचकांक हैं। शुष्क वातावरण के लिए अनुकूलित पौधों में, पत्तियों और संपूर्ण शरीर के स्तर पर होने वाले संरचनात्मक एवं रूपात्मक परिवर्तन चयापचय असंतुलन को रोकते हैं और जल संबंधों के सुधार में मदद करते हैं। इसलिए उन्नत पैदावार वाली तनाव प्रतिरोधी किस्में प्राप्त करने हेतु जल उपयोग दक्षता और ऊतकीय जल अवस्था में सुधार और पानी की खपत में किसी भी अतिरिक्त वृद्धि के बिना उपज सुधार सर्वोपरि है। वाष्पोत्सर्जन दक्षता (टीई), पर्यावरण एवं पौधा दोनों के ही कार्बनडाईआक्साइड स्थिरीकरण संबंधी विशेषताओं का प्रतिफल है। कुछ परिस्थितियों में, वाष्पोत्सर्जन दक्षता पर पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण प्रभाव हो सकता है। वाष्पोत्सर्जन दक्षता, सूखे के लिए अनुकूलन में शामिल घटकों में से एक है जो मृदा में नमी उपलब्धता की अवधि बढ़ाती है और इस प्रकार सूखा प्रभावित वातावरण के लिए अनुकूलन में सुधार के लिए इसका योगदान अपेक्षित है। विशेष रूप से ऐसा तब होता है जब फसल नियत संग्रहित आर्द्रता पर उगाई गई हो।

परासरणी समायोजन

परासरणी समायोजन एक जैव रासायनिक प्रक्रिया है जो पौधों को सूखा और ख़ारी परिस्थितियों के लिए अभ्यस्त होने में मदद करता है। कोशिका स्फीत के संरक्षण और पौधों की सामान्य वृद्धि के लिए बाहरी परासरणी दबाव की प्रतिपूर्ति में पौधों के रस की परासरणीयता में पर्याप्त वृद्धि, परासरणी समायोजन की एक आवश्यक प्रक्रिया है। कई सूखा सहिष्णु पौधे, क्षणिक या विस्तारित अवधि के पानी तनाव की प्रतिपूर्ति के लिए परासरणी समायोजन के द्वारा अपने कोशिकीय द्रव्य (विलेय) के विभव को नियंत्रित कर सकते हैं जिसका परिणाम पादप कोशिकाओं में उपस्थित विलेय कणों की संख्या में शुद्ध वृद्धि है। परासरणी समायोजन तब होता है जब एक पादप कोशिका में, अपने भीतर एक सकारात्मक दबाव बनाए रखने के लिए, विलेय की सांद्रता बढ़ जाती है। कोशिकाएं सक्रिय रूप से विलेय कणों को जमा करने लगती हैं जिसके परिणामस्वरूप विलेय विभव में कमी हो जाती है जो कोशिका के भीतर पानी के प्रवाह को बढ़ा देता है। यह भी देखा गया है कि परासरणी समायोजन विकास और फसलों की पैदावार पर तनाव के प्रभावों को कम कर देता है।

साधन और रणनीतियां

वातावरणीय बहु तनावों के लिए सहिष्णु पौधे विकसित करने हेतु रणनीतियां बनाने में एक व्यवस्थित दृष्टिकोण की कमी रही है। एक ही फसल प्रजाति में जीनोटाइप्स के बीच तनाव अनुकूलन में विविधता के लिए जिम्मेदार अनुक्रियाओं को अच्छी तरह से नहीं समझा जा सका है और उनके आनुवंशिक आधार को तो ओर भी कम। ज्ञान में इस कमी के लिए बहुत से कारण रहे हैं। सबसे पहले तो, पादप तनाव के क्षेत्र में अधिकांश बुनियादी अनुसंधान या तो विभिन्न प्रजातियों के बीच तुलनात्मक अध्ययन या एक ही जीनोटाइप को बहुत सारे तनाव देने पर केंद्रित रहे हैं। दूसरा यह है कि पादप तनाव अनुसंधान के क्षेत्र में, संसाधन सीमित परिस्थितियों में कृषि उत्पादकता से जुड़े लक्षणों की तुलना में अत्यधिक तनाव की स्थिति में पौधे का अस्तित्व मात्र बनाए रखने से संबंधित लक्षणों पर अधिक जोर देने के लिए प्रेरित किया गया है। आखिरकार, एक फसल जो नमी की कमी का अनुभव करती है, इसके साथ ही साथ वह अनेकों अतिरिक्त अजैविक और जैविक तनाव कारकों को भी अनुभव कर सकती है जो कि सूखा तनाव को ओर तीक्ष्ण कर देते हैं। यह एक सिस्टम्स स्ट्रेस एप्रोच के लिए प्रेरित करता है जो तनाव शरीर-क्रिया विज्ञान और जैव रसायन में बहु तनावों के संयोजन से निपटने के लिए रणनीतियों का आधार बनाए। अनेक क्षेत्रों में प्रगति के कारण यह जीव विज्ञान का एक उभरता हुआ क्षेत्र है। सबसे महत्वपूर्ण कारक आणविक जीव विज्ञान में तेजी से हुई प्रगति है, जिसमें डीएनए अनुक्रम, जीन अभिव्यक्ति प्रोफाइल, प्रोटीन-प्रोटीन संवाद, आदि का निरूपण शामिल हैं। जैविक आंकड़ों के सतत बढ़ते प्रवाह के साथ ही बहु तनावों के लिए सहिष्णु जीनोटाइप्स उत्पन्न करने के महत्वपूर्ण तरीकों में एक, तनाव प्रणालियों को एकीकृत प्रणाली के रूप में समझने के लिए गंभीर प्रयास है। कई तनाव प्रतिक्रियाएं तनाव विशिष्ट प्रतीत होती हैं जबकि, कुछ प्रतिक्रियाएं सामान्य हैं और अनेक तनावों में सहिष्णुता प्रदान करते हैं। इन सामान्य तनाव प्रतिक्रियाओं के साथ जुड़े जीन अंतर्निहित तनाव प्रतिरोधी जैव रासायनिक तंत्र में अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकते हैं और पौधों में तनाव प्रतिरोधक अभियांत्रिकी के लिए लक्ष्य के रूप में साबित हो सकते हैं। बहु-तनाव सहिष्णुता के क्रियात्मक आधार, दोनों ही यंत्रवत और ऊर्जावान दृष्टिकोणों से समझाए गए हैं। यंत्रवत दृष्टिकोण काफी हद तक आदर्श पादप प्रणाली (प्लांट माडल सिस्टम), जिसमें विभिन्न प्रकार के तनावों के प्रति कोशिकीय प्रतिक्रियाओं के बीच, कोशिकीय जल क्षमता पर अलग तनाव उपचारों के साझा प्रभाव के संदर्भ में समानता पर केंद्रित अध्ययन से विकसित हुआ है। यह आम प्रभाव अक्सर अरेबिडोप्सिस और अन्य पादप प्रजातियों में ठंड, सूखा और लवणता तनावों की प्रतिक्रियाओं के बीच पाए गए संबंधों को समझाने के लिए उद्धृत किया गया है।

ऊर्जावान परिप्रेक्ष्य अंतर-सहिष्णु प्रक्रियाओं के लिए जिम्मेदार है। मोटे तौर पर उन आम प्रभावों के रूप में जो अलग-अलग तनाव स्थितियां ऊर्जा आवंटन पर डालती हैं। तनाव की स्थितियों में, जीवों के लिए सहिष्णुता और अस्तित्व के तंत्र को सक्षम करने के लिए, मुक्त ऊर्जा संसाधन होने चाहिए। इस तरह की कई प्रक्रियाओं के तनाव विशिष्ट होने की संभावना है, लेकिन चयापचय परिवर्तन जो इन तनाव विशिष्ट प्रक्रियाओं को ऊर्जा आवंटित करते हैं, एक सामान्य प्रतिक्रिया प्रदर्शित करते हैं जो विभिन्न प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों में हो सकती है। इस तरह की अनुक्रियाओं के समर्थन में साक्ष्य दोनों ही, मात्रात्मक आनुवंशिकी और आणविक

स्तर पर प्राप्त किए गए हैं। मात्रात्मक आनुवंशिक अध्ययन ने तनाव प्रतिरोध लक्षण के बीच आनुवंशिक सहसंबंधों की पहचान की है, जिसमें ऐसा होता है कि किसी एक प्रकार के तनाव के प्रतिरोध के लिए चयन को एक सहसंबद्ध चयन प्रतिक्रिया के रूप में अन्य प्रकार के तनावों के प्रतिरोध के साथ संबद्ध किया गया है। आणविक स्तर पर, कुछ हीट शाक प्रोटीन्स विभिन्न तनावपूर्ण स्थितियों की प्रतिक्रियास्वरूप आमतौर पर प्रकट होते हैं। आणविक अध्ययन उन जीन्स की पहचान करने में केंद्रित किया गया है जो तनाव के विभिन्न रूपों के द्वारा सक्रिय हो जाते हैं और इस तरह सहिष्णुता के लिए योगदान दे सकते हैं।

इस क्षेत्र में हाल की प्रगति यह संकेत करती है कि तनाव सहिष्णुता एक जटिल मात्रात्मक लक्षण है और अभी तक कोई वास्तविक नैदानिक मार्कर प्रतिवेदित नहीं किया गया है। कई तनाव उत्तरदाई जीनों के लक्षण वर्णन के बावजूद, कुछ ही जीन्स के कार्यों को प्रमाणित किया जा सका है। यही तथ्य बहु-तनाव सहिष्णुता में सुधार करने के लिए एक 'ट्रांसजेनिक दृष्टिकोण' के अभिप्राय को जटिल बनाते हैं। अजैविक तनावों से सहिष्णुता के लिए जैव प्रौद्योगिकी दृष्टिकोण पर अनुसंधान एक या एक से अधिक अजैविक तनावों की प्रतिक्रियास्वरूप अभिप्रेरित चयापचय मार्गों की आणविक समझ प्राप्त होने के एक दशक के भीतर ही शुरू हो गया था। अधिकांश मामलों में ट्रांसजींस व्यक्त तो पूरी तरह से हुए किंतु नियंत्रित पौधों की तुलना में तनावपूर्ण स्थितियों से सहिष्णुता केवल एक सीमित स्तर तक ही प्रदान की। कई मामलों में, ट्रांसजेनिक्स में कुछ रूपात्मक असामान्यताएं और गैर तनावपूर्ण पर्यावरण में धीमी वृद्धि पाई गई। परासरणी समायोजन के लिए जिम्मेदार कई संगत ओस्मोलाइट्स का स्तर बहुत ही कम था। वह भी इतना कि आवश्यक जल प्रतिधारण और परासरणी समायोजन प्रदान करने में इस तरह के रूप में प्रभावी होने के लिए भी कम पड़ गया। एक या एक से अधिक अजैविक तनावों के लिए विभिन्न सहिष्णुता प्रक्रियाओं का चरणबद्ध या सह-परिवर्तन के माध्यम से प्रयोग वाणिज्यिक दोहन के लिए उच्च स्तर की सहिष्णुता प्राप्त करने में मदद कर सकता है। कुछ प्रजातियों में, तनाव सहिष्णुता के लिए क्यूटील मानचित्रण, तुलनात्मक मानचित्रण (कंपैरेटिव मैपिंग) और मानचित्रण (मैपिंग) के आधार पर क्लोनिंग का, उन जीन्स को छांटने में इस्तेमाल किया जा सकता है जो न केवल तनाव के समय कार्य करते हैं अपितु तनाव के प्रतिउत्तर में प्रेरित भी होते हैं।

सारांश

आने वाले 50-100 वर्षों में दुनिया की खाद्य जरूरतों को पूरा करने में सक्षम होने के लिए मजबूत राष्ट्रीय कृषि नीतियां, सुनियोजित अनुसंधान रणनीतियों और कुशल वितरण प्रणाली से जुड़े एक ठोस प्रयास की आवश्यकता है। अनुसंधान रणनीतियों में तनाव सहिष्णुता को नियंत्रित करने वाले जीन्स की पहचान करने एवं और अधिक कुशल और बेहतर ढंग से अनुकूलित फसलों के प्रजनन या अभियांत्रिकी में जैव प्रौद्योगिकी और जीनोमिक्स की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। इस तरह के एक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, आणविक जीव विज्ञान, माडलिंग/प्रतिरूपण सहित अंतर-विषयी फसल अनुसंधान करने के लिए संपूरक है। फसलों की बहु-तनावों के लिए सहिष्णु विशेषताओं का विकास अभी भी अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही है। यह आकर्षक होगा कि भविष्य के काम दैहिकीय और आणविक/आनुवंशिक अनुसंधान अंतरफलक के सहयोग का लाभ उठाएं। अजैविक तनावों के संकेत पारगमन को नियंत्रित करने वाले जटिल मात्रात्मक

लक्षणों के अध्ययन के लिए एक एकीकृत योजनाबद्ध दृष्टिकोण आवश्यक है। वर्तमान कार्यों से अजैविक तनावों के संकेत पारगमन मार्ग की बहुत साफ तस्वीर उभरने एवं पौधों की संवेदन और संकेत प्रणाली के बेहतर तालमेल से बहुतनाव सहिष्णुता के लिए आनुवंशिक सुधारों के कई ओर उदाहरण मिलने की अधिक संभावना है। पादप जीनोटाइप्स और पर्यावरण में उगने वाली अनुसंधान प्रक्रियाओं के बीच परस्पर क्रियाओं के इकोफिजिओलोजिकल ज्ञान के साथ मात्रात्मक आनुवंशिकी, जीनोमिक्स और बायोमेथेमेटिक्स में नई प्रौद्योगिकियों के संयोजन से नवीनतम जीनोमिक्स संसाधनों का उपयोग करना चाहिए। अधिकांश वर्तमान अनुसंधान कार्यक्रमों में इस अंतर्विषयी दृष्टिकोण की कमी है। विभिन्न अवधारणाओं और विधियों के प्रयोग के इस तरह के समन्वय एशियाई देशों में परियोजनाओं के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। इन परियोजनाओं को एक साथ समूहबद्ध करने से ठोस एवं बेहतर परिणाम मिलेंगे। अभी तक अजैविक बहुतनाव संकेतन काफी हद तक एक रहस्य ही बना हुआ है। अब कुछ संकेत तत्वों की आणविक पहचान हो गई है। लेकिन हम अभी भी एक स्पष्ट तस्वीर से बहुत दूर हैं। किसी पहेली को क्रमबद्ध करने में सबसे महत्वपूर्ण कठिनाई उसके खंड़ों का पर्याप्त न होना है। इसलिए निकट भविष्य में बड़ी चुनौती ओर अधिक सिग्नल तत्वों की पहचान करने के लिए बनी हुई है। एक बार जब अधिक घटकों की जानकारी हो जाएगी तो संकेतन विशिष्टताओं एवं उनकी परस्पर वार्ताओं का सही तरीके से पता लगाया जा सकता है।

जीन अभिव्यक्ति या यहां तक कि प्रोटीन मात्रा या एंजाइम सक्रियता में परिवर्तन यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि क्या यह अवयव लवणता या सूखे के संकेतन तंत्र का हिस्सा है। किसी भी संकेतन घटक को उसकी कार्यात्मक आवश्यकता एवं कार्यात्मक निर्भरता द्वारा प्रमाणित करना पड़ता है। कहने का मतलब यह है कि पौधों के गुणों के लिए चाहे वे आणविक, जैव रासायनिक या शारीरिक हों, उनके लिए यह प्रमाणित करने की आवश्यकता होती है कि वह विशेष घटक तनाव संकेतन में कार्य करता है। जीनोमिक्स उपकरणों के समूह ने बहुतायत में आंकड़े मुहैया कराए हैं और कोशिकीय चयापचय में होने वाले परिवर्तनों को बेहतर समझने में पहले ही बहुत सहायता की है परंतु पौधे की समग्र कार्य पद्धति के संदर्भ में कम नतीजे ही उपलब्ध हैं। कई आंकड़े अभी भी केवल आंकड़ों तक ही सीमित होकर रह गए हैं और उनका जानकारी के रूप में रूपांतरण का कार्य अभी भी अधूरा ही है। आंकड़ों का संयोजन एवं निस्पंदन और उनकी स्वतंत्र रूप से अत्याधुनिक जैव सूचना विज्ञान उपकरणों की युक्तियों के साथ पुष्टि इस अंतर को कम कर सकती है। इससे पौधों की एक परस्पर प्रभावित होने वाले कार्यों के निकाय के रूप में समझ का आविर्भाव होगा परंतु एक तत्काल समस्या इस समग्र ज्ञान के अनुप्रयोगों को खोजना प्रतीत होती है।

मात्रात्मक लक्षणों की खोज और उनके संचयन को एक निष्पक्ष दृष्टिकोण का लाभ मिला है। इसके अलावा, तुलनात्मक, कार्यात्मक जीनोमिक्स के अध्ययन से एक महत्वपूर्ण सबक, तनाव सहिष्णुता सहित कई लक्षणों में भारी अनुकूली कार्यात्मक विविधता की आणविक साधनों द्वारा मान्यता है। पर्याप्त जीनोमिक संसाधनों से परिपूर्ण 'एलील खनन' द्वारा स्थापित माडलों के करीबी रिश्तेदारों पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। इस तरह की रणनीतियां अनेक प्रजातियों के संयोजन के साथ संभव प्रतीत होती हैं और तनाव सहिष्णु फसलों, जिनमें अजैविक तनावों के कारण विकास और उपज कम प्रभावित हो, विकसित करने के लिए मौजूदा विकासवादी अनुकूली

विविधताओं के दोहन के लिए एक रास्ता प्रदान करेंगी। प्रजनन कार्यक्रम के समर्थन में विकास और उपज को बनाए रखने वाले तनाव सहिष्णु एलील्स की खोज करना ही पादप जीनोमिक्स के लिए असली चुनौती पेश करते हैं। सूखे के दौरान चयापचयों की एक व्यापक स्क्रीनिंग प्रमुख चयापचय प्रक्रियाओं के बारे में हमारी बुनियादी समझ को और आगे बढ़ाएगी और भविष्य में सूखा तनाव सहिष्णुता के लिए फसलों में चयापचय अभियांत्रिकी के लिए नई दिशा प्रदान करेगी। अंत में, फसलीय पौधों में तनाव सहिष्णुता के लिए किसी भी जीन अथवा चयापचय मार्ग की कीमत केवल उनके खेतों में ठोस प्रदर्शन के सबूतों से ही आंकी जा सकती है। सभी जीन्स की तनाव अनुकूलन या सहिष्णुता प्रतिक्रियाओं में भाग लेने के कार्यात्मक दृढ़ संकल्प से, पौधों में तनाव प्रतिक्रियाओं के जैव रासायनिक और शारीरिक आधार की एक संघटित समझ प्रदान करने की उम्मीद है। स्थापित माडलों से प्राप्त इस प्रकार की जानकारियों से सुसज्जित होने पर, 21वीं सदी में फसल उत्पादकता में सुधार हेतु सहिष्णुता लक्षणों में एक तर्कसंगत हेरफेर और सुधार करना संभव हो पाएगा।

संदर्भ

एबायोटिक एंड बायोटिक स्ट्रेस इन प्लांट्स- रीसेंट एडवांसेज एंड फ्यूचर पर्सपेक्टिव्स (2016). एडीटर्स, अरुण कु शंकर एंड चित्रा शंकर। इंटेक ओपन एग्रीकल्चरल एंड बायोलाजिकल साइंसेज, आई एस बी एन 978-953-51-2250-0, पी.768.

एबायोटिक स्ट्रेस रिस्पांस इन प्लांट्स - फिजियोलॉजिकल, बायोकैमिकल एंड जेनेटिक पर्सपेक्टिव्स (2011). एडीटर्स, अरुण कु शंकर एंड बी वेंकटेश्वर्लु, इंटेक ओपन एग्रीकल्चरल एंड बायोलाजिकल साइंसेज, आई एस बी एनः978-953-307-672-0, पी. 358.

ब्लूम ए (2011). प्लांट वाटर रिलेशन्स, प्लांट स्ट्रेस एंड प्लांट प्रोडक्शन (पीपी. 11-52)। स्प्रिंगर न्यूयार्क.

बोहनेर्ट एच जे एंड जेनसेन आर जी (1996). स्ट्रेटेजीज फार इंजीनियरिंग वाटर-स्ट्रेस टॉलरेंस इन प्लांट्स, ट्रेंड्स इन बायोटेक्नोलॉजी,14(3), 89-97.

क्राप स्ट्रेस एंड इट्स मैनेजमेंट: पर्सपेक्टिव्स एंड स्ट्रेटेजीज (2011). एडीटर्स, वेंकटेश्वर्लु बी, शंकर ए के, शंकर सी एंड महेश्वरी एम, स्प्रिंगर लाइफ साइंसेज एग्रीकल्चर, आई एस बी एन : 978-94-007-2219-4.

कुशमैन जे सी, एंड बोहनेर्ट एच जे (2000). जीनोमिक अप्रोचेज टू प्लांट स्ट्रेस टॉलरेंस. करेंट ओपिनियन इन प्लांट बायोलॉजी, 3(2), 117-124.

गोलडक डी, ली सी, मोहन एच एंड प्रोब्स्ट एन (2014). टालरेंस टू ड्राउट एंड साल्ट स्ट्रेस इन प्लांट्स : अनरेवलिंग द सिग्नेलिंग नेटवर्क्स. फ्रंटियर्स इन प्लांट सांइस, 5, 151.

विनोकर बी एंड अल्टमैन ए (2005). रीसेंट एडवांसेज इन इंजीनियरिंग प्लांट टालरेंस टू एबायोटिक स्ट्रेस: अचीवमेंट्स एंड लिमिटेशंस। करेंट ओपिनियन इन बायोटेक्नोलॉजी, 16 (2), 123-132.

वांग डब्ल्यू, विनोकर बी एंड अल्टमैन ए (2003). प्लांट रेस्पोन्सेस टू ड्राउट, सैलिनिटी एंड एक्सट्रीम टेंपेरेचर्स: टुवर्ड्स जेनेटिक इंजीनियरिंग फार स्ट्रेस टॉलरेंस, प्लांटा, 218(1), 1-14.

★★★

7

वर्षा आधारित टिकाऊ कृषि प्रणालियां

- के ए गोपीनाथ, जी रविंद्रा चारी, प्रभात कुमार पंकज एवं बोइनी नरसिम्लू

परिचय

देश के शुष्क, अर्द्ध-शुष्क एवं उप-आर्द्र क्षेत्रों में वर्षा आधारित कृषि की प्रमुखता है। इन क्षेत्रों में देश के 81 प्रतिशत से ज्यादा गरीब लोग निवास करते हैं। इसलिए, वर्षा आधारित कृषि, भारत की अर्थव्यवस्था और खाद्य सुरक्षा बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्तमान में, भारत के कुल बुआई क्षेत्रों में से 55 प्रतिशत वर्षा आधारित कृषि क्षेत्र है जो देश के कुल खाद्यान्न उत्पादन में 41 प्रतिशत योगदान करता है तथा यहां 40 प्रतिशत मानव और 60 प्रतिशत पशुधन आबादी निवास करती है। वर्षा आधारित क्षेत्रों की प्रमुख समस्याएं अस्थिर मानसून वर्षा, मृदा की अनुत्पादकता एवं पोषक तत्वों की कमी, पानी की उपलब्धता एवं गुणवत्ता में कमी, भूजल स्तर में निरंतर गिरावट, किसानों के पास संसाधनों की कमी, अस्थाई उत्पादन एवं उत्पादकता आदि है। इसके अलावा वैश्विक जलवायु परिवर्तन से विपरीत मौसम की घटनाओं में वृद्धि, वर्षा आधारित कृषि के लिए गंभीर खतरा बन गई है।

कृषि प्रणाली वास्तव में मृदा, पौधे, पशु, औजार, बिजली, श्रम, पूंजी और अन्य आदानों की एक जटिल अंत:संबंधित व्यूह रचना है जो कृषक परिवारों द्वारा कई स्तरों पर बदलती राजनीतिक, आर्थिक, संस्थागत और सामाजिक बलों से नियंत्रित और प्रभावित होती है। शब्द 'कृषि प्रणाली', किसान के लक्ष्यों, वरीयताओं और संसाधनों के अनुसार भौतिक, जैविक और सामाजिक-आर्थिक परिवेश के लिए खेती के उद्यमों में से एक विशेष व्यवस्था करने के लिए संदर्भित करता है। घर, संसाधन और संसाधनों का बहाव, अलग-अलग खेत स्तरों पर पारस्परिक विचार-विमर्श के साथ एक खेत प्रणाली के रूप में जाना जाता है। एकीकृत कृषि प्रणाली में साधारणतया फसल और पशुओं के उद्यमों का एक संयोजन होता है और कुछ मामलों में मुर्गी पालन, कृषि वानिकी, बागवानी, मधुमक्खी आदि के संयोजन भी मिलते हैं। इसके अलावा, एकीकृत कृषि प्रणाली में विभिन्न उद्यमों के बीच सहयोग और पूरकता पाई जाती है। कृषि प्रणाली में एकीकरण का मतलब है जब एक उद्यम के उत्पाद को दूसरे उद्यम के लिए उत्पादक सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया जाए। मिश्रित खेती और एकीकृत खेती के बीच अंतर यह है कि एकीकृत कृषि प्रणाली में उद्यम पारस्परिक रूप से अनुपूरित रहते हैं और एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। एकीकृत कृषि प्रणाली की एक मौलिक अवधारणा यह भी है कि उद्यमों के बीच तालमेल के साथ कृषि विविधता बढ़ जाती है। कृषि की गतिविधियों का विविधीकरण, श्रम के

उपयोग में सुधार, बेरोजगारी में कमी करता है और उन परिवारों को एक पूर्णकालिक व्यवसाय के रूप में उनके खेत संचालित करने के लिए जीने का एक साधन प्रदान करता है।

परंपरागत रूप से, वर्षा आधारित क्षेत्रों में जिन किसानों ने मिश्रित खेती प्रणाली को अपनाया है उन्हें काफी हद तक सूखे वर्षों के दौरान मौसमी विचलन का सामना करने के लिए स्थिरता मिली है और साथ ही साथ उनका जोखिम भी कम हुआ है। हालांकि, इन पारंपरिक प्रणालियों की उत्पादकता कम है और इसके द्वारा हम पूरी तरह से आजीविका को सुनिश्चित भी नहीं कर सकते हैं। दूसरी ओर, उच्च उत्पादकता वाली एकल कृषि प्रणाली भी अत्यधिक जोखिम ग्रस्त हैं और किसानों पर गंभीर आय संबंधी आघातों के लिए जिम्मेदार है। इसलिए, स्थान विशेष एकीकृत कृषि प्रणाली के विकास और अंगीकरण से (अ) खेत में उत्पन्न खेत के कचरे सहित जैविक अवशेषों की यथावत पुनरावृत्ति एवं बाहरी आदानों पर निर्भरता में कमी, (आ) उत्पादक सामग्री उपयोग दक्षता में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ उपोत्पाद के उपयोग से उत्पादन की लागत में प्रभावी कमी, (इ) एकल खेती उद्यम पर कम निर्भरता, (ई) प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, और (उ) खाद्य सुरक्षा, रोजगार सृजन, प्रणाली उत्पादकता में वृद्धि और आय/इकाई क्षेत्र के साथ जुड़े जोखिम में प्रभावी कमी आदि अनेक फायदे प्राप्त होते हैं।

जलविभाजन आधारित कृषि प्रणाली

वर्षा आधारित क्षेत्रों में, पानी का एकमात्र स्रोत वर्षा होता है और उसका कुशल उपयोग सफल फसल उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण है। इसके अलावा, शुष्क भूमि में अनिश्चित वर्षा की स्थिति और इसके फलस्वरूप पानी की कमी से सूखा एक आम बात बात है। समुचित वर्षा जल प्रबंधन, संरक्षण और जल संसाधनों का विकास, पानी के घरेलू उपयोग के लिए, सिंचाई के लिए और पशुओं के पीने के लिए आवश्यक है। 1980 के दशक में केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (क्रीडा) ने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (भाकृअनुप) के 47 में से 30 आदर्श जलविभाजन क्षेत्रों को शुष्क भूमि कृषि के लिए तकनीकी सहायता प्रदान की और इस तरह की विभिन्न कृषि जलवायु परिस्थितियों में कृषि वानिकी, कृषि-बागवानी और वन-चारागाह प्रणाली के रूप में कई वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणालियों को विकसित किया। 1984-1988 के दौरान भारत सरकार-भाकृअनुप-राज्य विभागों द्वारा देश भर में 47 स्थानों पर आदर्श जलविभाजन कार्यक्रम आयोजित किए गए जिसके मूल्यांकन द्वारा पानी की उपलब्धता (दोनों सतह और भूमिगत जल), फसलों की उत्पादकता, ग्रामीण जलविभाजक क्षेत्रों में चारा व ईंधन की उपलब्धता और रोजगार सृजन में स्पष्ट रूप से वृद्धि पाई गई। अब कई केंद्र प्रायोजित योजनाओं और परियोजनाओं, जैसे कि राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम (एनआरइजीपी), नाबार्ड प्रायोजित विकास कार्यक्रम, जिला ग्रामीण विकास एजेंसी (डीआरडीए) के कार्यक्रमों में जलग्रहण दृष्टिकोण के साथ काम चल रहा है।

500 से 700 मिलीमीटर बारिश वाले क्षेत्रों में किसानों के लिए खेती प्रणाली, पशुओं के साथ कम पानी की जरूरत वाली घास, पेड़ और झाड़ी, ईंधन और लकड़ी की आवश्यकता को पूरा करने के आधार पर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। 700 से 1100 मिलीमीटर वर्षा वाले क्षेत्रों में, फसल, बागवानी और पशुधन आधारित खेती प्रणाली को मिट्टी के प्रकार और विपणन कारकों के

आधार पर अपनाया जा सकता है। जलग्रहण आधारित खेती प्रणाली में अपवाह उपयोगीकरण इस क्षेत्र के प्रमुख घटक हैं। 1100 मिलीमीटर से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में, एकीकृत कृषि प्रणाली के तहत धान उत्पादन के साथ मत्स्य पालन को प्राथमिकता देनी चाहिए। भारत के पूर्वी राज्यों में वर्षा आधारित धान उत्पादक क्षेत्रों में मत्स्य पालन के साथ-साथ वर्षा आधारित धान की खेती की कई प्रणालियां विकसित की गई हैं।

किसानों की प्राथमिकताओं, रणनीतियों और उद्यमों के आबंटन को समझने और निर्णय लेने के लिए जलविभाजन आधार पर खेती प्रणाली दृष्टिकोण काफी सहायक सिद्ध होता है। इसका विश्लेषण दर्शाई गई जल विज्ञान संबंधी इकाई में किसानों के ज्ञान, समस्याओं और प्राथमिकताओं के साथ शुरू किया जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण भूमि के उपयोग, जो कि जैविक, सामाजिक-आर्थिक और संबंधित बुनियादी ढांचागत संसाधनों सहित प्राकृतिक संसाधनों का एक कुशल, इष्टतम और सतत उपयोग, में परिणाम से संबंधित होना चाहिए। एक आदर्श कृषि पद्धति में मृदा संसाधनों, जैसे कृषि योग्य, गैर कृषि योग्य, आम संसाधनों और निजी संपत्ति भूमि का समायोजन और जल संरक्षण के उपाय, फसलों, मेड़ पर पेड़, चरागाह प्रणाली, कृषि-बागवानी प्रणाली, वृक्षारोपण, उच्च मूल्य वाली कम मात्रा में फसल, आदि घटकों को एकीकृत करके एक समग्र रूप से गठित होना चाहिए। इस दृष्टिकोण में, ध्यान प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग और संरक्षण के साथ-साथ, मृदा, पानी, वनस्पति, आदि का विकास और खाद्य, चारा, ईंधन, लकड़ी और रेशा उत्पादन की बढ़ती मांग के लिए स्थाई आधार पर होना चाहिए। मिट्टी का कटाव मध्यम, बाढ़ को कम करने, सूखा कम करने, पानी की उपलब्धता में सुधार आदि का प्रावधान भी होना चाहिए। इसके अलावा इस प्रणाली में, रोजगार सृजन, बचत और आय सृजन गतिविधियों को बढ़ावा, गांव के मानव और अन्य आर्थिक संसाधनों के विकास में मदद करने वाला होना चाहिए।

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा 1.15 हेक्टेयर क्षेत्र की सलेटी से भूरी सतहों वाली मृदा में छोटे धारकों के लिए सूक्ष्म जलविभाजक के अंतर्गत एक आदर्श कृषि प्रणाली विकसित की गई जिसमें फसल, सब्जी, हरी खाद, मेड़ पर झाड़ी, फलों के पौधे और घास उगाई जाती है। 0.2 हेक्टेयर भूमि में बारिश के पानी का उपयोग करके 4,500 रुपए की उत्पादन लागत के साथ अरहर, सब्जी और मक्का उगाकर 12,850 रुपए का शुद्ध लाभ कमाया गया। साथ ही फसल अवशेषों और चारे का उपयोग करते हुए 20 भेड़ों को भी पाला गया। 6 साल की अवधि (2005-11) के बाद, इस प्रणाली के आर्थिक विश्लेषण से पता चला कि फसल घटक के लिए उत्पादन लागत 15,164 रुपए प्रति हेक्टेयर थी और फसलों से शुद्ध लाभ 31,556 रुपए प्रति हेक्टेयर था (सारणी-1)। भेड़ के बच्चों का पालन करके 20,800 रुपए का शुद्ध लाभ उठाने के कारण इस पूरी कृषि प्रणाली से इस तरह 52,356 रुपए प्रति हेक्टेयर का शुद्ध लाभ प्राप्त किया गया। इस क्षेत्र में दूसरी लोकप्रिय कृषि प्रणाली, ज्वार + अरहर फसल प्रणाली (12,340 रुपए प्रति हेक्टेयर) और अरंडी की खेती (3,550 रुपए प्रति हेक्टेयर) की तुलना में वर्तमान खेती प्रणाली की आर्थिक क्षमता (52,356 रुपए प्रति हेक्टेयर) सर्वाधिक थी। कुल शुद्ध आय में व्यक्तिगत उद्यमों जैसे कृषि योग्य फसल, कृषि वानिकी, सब्जियों, घास और झाड़ियों का योगदान क्रमश: 38.2, 10.3, 27.2, 7.1 और 17.2 प्रतिशत रहा।

सारणी-1: दक्षिणी तेलंगाना में छोटे किसानों (1.12 हेक्टेयर) हेतु कृषि प्रणाली प्रतिरूप

कृषि प्रणाली	शुद्ध आय (रुपए/हेक्टेयर/ वर्ष)
विकसित कृषि प्रणाली	
फसल (अरहर, बाजरा, अरंडी, कुल्थी), सब्जियां (भिंडी, बैंगन, ग्वारफली) फल (शरीफा)	31556
चारा फसल (स्टायलोसेंथेस, सिंकर्स और ग्लैरीसीडिया) नर भेड़ और भेड़ के बच्चे (20)	20800
कुल	**52356**
मौजूदा खेती या फसल प्रणाली	
ज्वार + अरहर	12340
अरंडी	3550
कुल	**15890**

स्रोत: भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद की वार्षिक रिपोर्ट (2011)

कर्नाटक के धारवाड़ क्षेत्र में छोटे और सीमांत किसानों के लिए राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना (एनएटीपी) में एकीकृत कृषि प्रणाली में प्रौद्योगिकी आंकलन और शोध कार्यक्रम के अंतर्गत एक आदर्श स्वरूप अनाज के अंतर्गत 35.4 प्रतिशत क्षेत्र, दालों के तहत 25.7 प्रतिशत, तिलहन के तहत 21 प्रतिशत, वाणिज्यिक फसलों के अंतर्गत 17.3 प्रतिशत और 1.2 प्रतिशत क्षेत्र चारा के अंतर्गत के साथ-साथ मुर्गी पालन (प्रति परिवार 6 पक्षी) पाया गया। मुर्गी पालन घटक ने सूखे वर्षों के दौरान किसानों की आय को स्थिर करने में एक प्रमुख भूमिका निभाई। इसी तरह, दक्षिणी राजस्थान के अरजिया क्षेत्र में, केवल मक्का फसल की तुलना में एकीकृत कृषि प्रणाली के साथ संयोजित यथावत वर्षा जल प्रबंधन और जैव-बाड़ लगाने से मक्का, दलहन, तिलहन और चारा घास के साथ-साथ 22.37 प्रतिशत अधिक मुनाफा प्रदान किया।

किसान-परिवार केंद्रित कृषि प्रणाली

इस प्रणाली में, विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों और अलग-अलग घरों की टिकाऊ आजीविका सुरक्षा पर ध्यान दिया जाता है। इस दृष्टिकोण में, किसानों के द्वारा अपनाई जाने वाली पारंपरिक खेती प्रणाली की शक्तियों और कमजोरियों का मूल्यांकन किया जाता है और इसके आधार पर चयनात्मक उत्पादन बढ़ाने वाले उद्यम और विविधीकरण आधारित हस्तक्षेप किए जाते हैं। इसके लिए जरुरत है एक विस्तृत भागीदारी कृषि प्रणाली विश्लेषण की जिसमे प्रत्येक घर के संसाधन, निवेश की क्षमता, श्रम की उपलब्धता आदि की विस्तृत जानकारी हो। यह ध्यान केंद्रित समूह चर्चा, घरेलू सर्वेक्षण और स्थानीय बाजार की जरूरत के माध्यम से किया जा सकता है। प्रत्येक उद्यम द्वारा प्राप्त आय के आधार पर (>50 प्रतिशत) परिवार केंद्रित कृषि प्रणाली को फसल, कृषि वानिकी और पशुधन आधारित प्रणालियों में बांटा जा सकता है।

फसल आधारित कृषि प्रणाली

इस प्रणाली में, फसलोत्पादन ही आजीविका का मुख्य स्रोत होता है। पशुओं को फसल अवशेष एवं आम संपत्ति संसाधन पर पाला जाता है। पशु शक्ति को कृषि कार्यों के लिए

इस्तेमाल किया जाता है। पशुओं के गोबर को खाद और ईंधन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। उच्च वर्षा वाले क्षेत्रों में, जहां वर्षभर तालाब में पानी रहता है, मछलियों को पशुपालन के साथ एकीकृत किया जाता है और पशुओं के उपोत्पाद के साथ खाद भी बनाया जाता है। कोविलपट्टी (तमिलनाडु) में शुष्क भूमि की लाल मृदा में एकीकृत कृषि प्रणाली अध्ययन से पता चला है कि फसल + बकरी (4) + मुर्गी (20) + भेड़ (6) + डेयरी (1) से उच्चतम शुद्ध आय (17,598 रुपए प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष) दर्ज हुई, जबकि फसल + बकरी + मुर्गी + डेयरी से थोड़ी कम (14,208 रुपए प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष) शुद्ध आय दर्ज हुई और परंपरागत प्रणाली कृषि के अंतर्गत सिर्फ फसल उगाने से 2,057 रुपए प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष की शुद्ध आय प्राप्त हुई (सारणी-2)। गाय से 20-22 किग्रा प्रति पशु प्रति दिन, भेड़ और बकरी से 400-450 ग्राम प्रति पशु प्रति दिन और मुर्गी पालन से 40 किग्रा प्रति 20 मुर्गी प्रति महीना अपशिष्ट एकत्र किया गया जिसका उपयोग मिट्टी की उर्वरता सुधार और फसल की पैदावार बढ़ाने में किया गया। पारंपरिक फसल प्रणाली में 185 मानव दिवस प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष रोजगार की तुलना में एकीकृत कृषि प्रणाली में 389 मानव दिवस प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष पाया गया। विभिन्न प्रणाली नमूनों के लिए निकाली गई स्थिरता सूचकांक के आधार पर, फसल + बकरी (4) + मुर्गी (20) + भेड़ (6) + डेयरी (1) को शामिल अन्य प्रणाली की तुलना में बेहतर स्थिरता सूचकांक (65.3) पर पाया गया। तमिलनाडु के पश्चिमी क्षेत्र की शुष्क भूमि के लिए कृषि तालाब के साथ फसल के एकीकरण, फसल (भैंस खाद के साथ पोषित), कबूतर के साथ उद्यम संयोजन (10 जोड़े), बकरी (5:1 मादा : नर), भैंस (2 दूध देने वाली भैंस + 1 बछड़ा), और कृषि वानिकी की सिफारिश की जा रही है। लेकिन, सीमित मृदा एवं संसाधन वाले किसानों के लिए फसल के साथ कबूतर, बकरी, कृषि वानिकी और भैंस उद्यम के रख-रखाव से अपेक्षाकृत उच्च राशि प्राप्त की जा सकती है। तमिलनाडु में शुष्क भूमि क्षेत्रों के किसानों के लिए इस प्रकार की प्रणाली द्वारा बेहतर पोषण सुरक्षा, कुशल जैव संसाधन उपयोग, अवशेष पुनरावृत्ति और रोजगार सृजन किए जा सकते हैं।

सारणी-2 : कोविलपट्टी, तमिलनाडु में विभिन्न कृषि प्रणालियों का प्रदर्शन

कृषि प्रणाली	शुद्ध आय (रुपए/ हेक्टेयर/वर्ष)	लाभ: लागत अनुपात	रोजगार सृजन (श्रम दिवस/ हेक्टेयर/ वर्ष)	स्थिरता सूचकांक
केवल फसल	2057	1.28	185	-23.0
फसल+बकरी+मुर्गी पालन	8274	1.92	297	12.3
फसल+बकरी+मुर्गी पालन+डेयरी	14208	1.72	343	46.1
फसल+बकरी+मुर्गी पालन+भेड़	7265	1.47	343	6.6
फसल+बकरी+मुर्गी पालन+भेड़+डेयरी	17598	1.75	389	65.3

स्रोत : सोलइप्पन एवं सहयोगी (2007).

वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसल आधारित कृषि प्रणाली में भेड़ पालन का समाकलन एक लाभकारी रोजगार प्रदान करता है। तेलंगाना के वारंगल जिले में एक हेक्टेयर पर कपास से जुड़ी खेती और 10 भेड़ के बच्चों के पालन से 27500 रुपए प्रति हेक्टेयर की शुद्ध आय प्राप्त

हुई जबकि अकेले कपास की खेती से केवल 8700 रुपए प्रति हेक्टेयर ही प्राप्त हुए। इसी प्रकार, कर्नाटक के पूर्वी और मध्य शुष्क क्षेत्र में सीमांत किसानों के लिए, अकेले वर्षा आधारित मूंगफली उत्पादन प्रणाली से शुद्ध आय 5059 रुपए प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुई जबकि मूंगफली + डेयरी + भेड़ (8-10) के एकीकरण से शुद्ध आय 22,000 रुपए प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुई। छोटे और बड़े किसानों के लिए, फसल + डेयरी प्रणाली, जबकि मध्यम किसानों के लिए फसल + भेड़ कृषि प्रणाली अधिक किफायती और उच्च शुद्ध आय वाली पाई गई (सारणी-3)। आंध्र प्रदेश के दुर्लभ वर्षा क्षेत्र में आने वाले अनंतपुर जिले में मूंगफली (2.6 हेक्टेयर) की एक मात्र फसल से 14,872 रुपए प्रति हेक्टेयर की शुद्ध आय प्राप्त हुई जबकि मूंगफली की खेती + डेयरी (3 भैंस) से 40,606 रुपए की शुद्ध आय और मूंगफली की खेती (2 हेक्टेयर) + मुर्गी से उच्चतम शुद्ध आय 43,360 रुपए प्राप्त हुई।

सारणी-3 : कर्नाटक के पूर्वी और मध्य क्षेत्र में मूंगफली आधारित कृषि प्रणालियों से प्राप्त आय (रुपए प्रति वर्ष)

कृषि प्रणाली	सीमांत	लघु	मध्यम	बड़े किसान
फसल (1 हेक्टेयर)	5059	11154	7199	-
फसल + डेयरी (1 पशु)	14048	12102	18339	23100
फसल + भेड़ (8-10)	-	-	28570	-
फसल + भेड़ (8-10) + डेयरी (1 पशु)	22000	-	-	-

स्रोत : शंकर एवं सहयोगी (2007).

कर्नाटक के वर्षा आधारित क्षेत्रों में 120 किसानों की विभिन्न श्रेणियों के बीच अलग-अलग और संयुक्त उद्यमों वाले खेतों से शुद्ध आय की तुलना सारणी-4 में दर्शाई गई है। छोटे किसानों को फसल + डेयरी + शुष्क बागवानी + भेड़ से उच्चतम शुद्ध आय (31,000 रुपए) प्राप्त हुई। इसी प्रकार, मध्यम और बड़े किसानों के लिए अन्य कृषि प्रणाली की तुलना में उच्चतम शुद्ध आय क्रमशः 49,250 रुपए और 1,05,000 रुपए, फसल + डेयरी + शुष्क बागवानी + भेड़ एकीकृत कृषि प्रणाली से प्राप्त हुई।

सारणी-4 : कर्नाटक में किसानों की विभिन्न श्रेणियों के बीच मौजूदा कृषि प्रणालियों से प्राप्त शुद्ध आय (रुपए प्रति वर्ष)

कृषि प्रणाली	लघु किसान	मध्यम किसान	बड़े किसान
फसल + भेड़	6250	9000	-
फसल + डेयरी	10400	17125	22938
फसल + शुष्क भूमि बागवानी	19000	-	43000
फसल + डेयरी + भेड़	12500	20667	26000
फसल + डेयरी + शुकर पालन	20000	-	-
फसल + डेयरी + शुष्क भूमि बागवानी	27100	42800	100900
फसल + डेयरी + शुष्क भूमि बागवानी + भेड़	31000	49250	105000

स्रोत : नागराज एवं सहयोगी (2004).

कर्नाटक के दक्षिणी मध्य कृषि जलवायु क्षेत्र के लिए, एक एकड़ आदर्श कृषि प्रणाली वर्षा जल संचयन द्वारा सूक्ष्म-जलविभाजन के आधार पर विकसित की गई जिसमें कृषि के विभिन्न घटकों जैसे बागवानी, कृषि वानिकी, वन-चरागाह, हरी खाद फसल, मेढ़ पर पेड़, शाकवाटिका, पशु, मुर्गी, मछली और मधुमक्खी के साथ एकीकृत करके प्रयोग किया गया। यह आदर्श कृषि प्रणाली विभिन्न सहक्रियाओं को एकीकृत करके एक साथ स्थाई आधार पर पोषण और आर्थिक सुरक्षा (भोजन, चारा, फल, फाइबर, ईंधन और मछली, आदि) प्रदान करने में सक्षम है। इसी तरह, कर्नाटक के चामराज नगर जिले के वर्षा आधारित क्षेत्र में फसल + डेयरी + भेड़ + मुर्गी + रेशम उत्पादन + चारा प्रणाली (1,15,584 रुपए प्रति हेक्टेयर), एक अन्य कृषि प्रणाली फसल + डेयरी + भेड़ + बकरी + चारा प्रणाली (1,04,078 रुपए प्रति हेक्टेयर) की तुलना में अधिक शुद्ध आय प्रदान करने में सक्षम पाई गई। एक पूर्व कार्योत्तर अध्ययन के आधार पर जिसमें 120 किसान शामिल थे, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यों के लिए सबसे किफायती वर्षा आधारित आदर्श कृषि प्रणाली की पहचान की गई (सारणी-5)। इस खेती प्रणाली के प्रमुख घटक अनाज फसल, तिलहन, सब्जी, फल, गोपालन और बकरी पालन शामिल थे।

सारणी-5 : विभिन्न राज्यों में उच्च आर्थिक लाभ (रूपए प्रति हेक्टेयर) उपलब्ध कराने वाली कृषि प्रणालियां

राज्य	किसानों के खेत का आकार			
	सीमांत किसान	लघु किसान	मध्यम किसान	बड़े किसान
आंध्र प्रदेश	मक्का-धान-बकरी पालन (14,334)	अरंडी-मक्का-गोपालन (18,625)	अरंडी-धान-गोपालन (28,581)	मक्का-धान-दलहन (18,886)
कर्नाटक	दलहन-गौपालन (13,180)	बाजरा-दलहन-मूंगफली-गौपालन (17,690)	ज्वार-दलहन-गन्ना-गौपालन (16,280)	दलहन-केला-गन्ना-गौपालन (1,74,105)
तमिलनाडु	धान-ज्वार-प्याज-गौपालन-मुर्गी पालन (30,082)	मूंगफली-तिल-प्याज-गौपालन- बकरी पालन (19,490)	धान-तिल-सब्ज़ी-गौपालन- बकरी पालन (23,500)	धान-तिल-मूंगफली-गौपालन-बकरी पालन (29,058)

स्रोत : देसाई एवं सहयोगी (2009).

ओडिशा की वर्षा आधारित चावल की खेती प्रणाली में, अकेले चावल (15,294 रुपए प्रति हेक्टेयर) उगाने की तुलना में बहाव में अतिरिक्त जल संरक्षण द्वारा चावल के खेत में मछली पालन से उच्चतम शुद्ध आय 21,197 रुपए प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुई जिसका लाभ:लागत अनुपात 2.78 था। झारखंड में, किसानों के अभ्यास जैसे चावल-परती प्रणाली (2,770 रुपए प्रति हेक्टेयर) की तुलना में धान की विकसित किस्म (आई आर-64)+मछली (मिश्रित कार्प) + गेहूं (पीबीडब्ल्यू-443) प्रणाली से अधिक शुद्ध आय (58,557 रुपए प्रति हेक्टेयर) प्राप्त हुई। झारखंड के ही एक अन्य अध्ययन में किसानों के द्वारा अकेले मछली पालन (12,125 रुपए प्रति हेक्टेयर) की तुलना में मछली-सह-सुकर पालन (2:3) प्रणाली से अधिक शुद्ध आय (रुपए 53,100 प्रति हेक्टेयर) प्राप्त हुई जिसका लाभ:लागत अनुपात 4.12 था।

भाकृअनुप-राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (एनआरआरआई), कटक द्वारा 1.0 हेक्टेयर में वर्षा आधारित खेती प्रणाली के अंतर्गत तटीय ओडिशा में किए गए एक अध्ययन में जिसमे 13 प्रतिशत क्षेत्र खाई व तालाब और 20 प्रतिशत भूभाग तराई क्षेत्र बांध के लिए प्रायोगिक हुआ, से सालाना फूल, रेशे, ईंधन की लकड़ी के अलावा 16 से 18 टन खाद्य फसल, 0.6 टन मछली और झींगा, 0.6 टन मांस, 10,000 अंडे और 5.2 टन चारे की प्राप्ति हुई। इस प्रणाली द्वारा पहले साल में 55,000 रुपए का शुद्ध लाभ और छठे वर्ष में लगभग 1,00,000 रुपए के शुद्ध लाभ के अलावा 250-300 कार्य दिवस प्रति वर्ष उत्पन्न हुए और पारंपरिक चावल की खेती की तुलना में आय और उत्पादकता में 12 से 15 गुना वृद्धि पाई गई। ओडिशा में वर्षा आधारित खेती प्रणाली के एक ओर क्षेत्र अध्ययन में, पारंपरिक कृषि प्रणाली (अकेले चावल की फसल/चावल के साथ मूंग) की तुलना में एकीकृत खेती दृष्टिकोण पर फसल संयोजन के साथ (चावल, गैर-मौसमी टमाटर, फूलगोभी) और गैर फसल उद्यम (मुर्गी पालन + धान के पुआल पर मशरूम उत्पादन + कृमि खाद) बेहतर शुद्ध आय, उच्च लाभ: लागत अनुपात (1.78) के साथ-साथ बेहतर स्थिरता सूचकांक (54.58 प्रतिशत) प्रदान करने में सक्षम पाया गया।

गोवा के वर्षा आधारित निम्न भूमि क्षेत्रों में, मशरूम के साथ एकीकृत चावल-बैंगन प्रणाली और मुर्गी पालन उच्चतम शुद्ध लाभ देने के साथ साथ बेहद किफायती भी पाए गए। इसके अलावा चावल-बैंगन की तरह एक गहन फसल प्रणाली के अभिग्रहण से अतिरिक्त रोजगार 118 कार्य दिवस प्रति वर्ष के अवसर और अकेले चावल की खेती की हानियों को कम किया जा सका है (सारणी-6)। इसके अलावा, जब इन गहन फसल प्रणालियों को मुर्गी पालन और मशरूम जैसे श्रम गहन उद्यमों के साथ एकीकृत किया गया तो 164 कार्य दिवस प्रति वर्ष के अतिरिक्त रोजगार उत्पन्न होने की संभावना बनी। इस प्रकार, कुल श्रम रोजगार के अवसरों को एक ही खेत के भीतर साढ़े तीन गुना बढ़ाया जा सकता है। चावल-लोबिया + मशरूम + मुर्गी और चावल-मूंगफली + मशरूम + मुर्गी पालन प्रणाली भी परंपरागत खेती प्रणाली की तुलना में क्रमशः 213.6 और 218.2 प्रतिशत अधिक कार्य दिवस क्षमताओं को बढ़ाने में सक्षम पाए गए।

सारणी-6 : चावल आधारित विभिन्न कृषि प्रणालियों के द्वारा रोजगार सृजन और शुद्ध आय (रुपए)

कृषि प्रणाली	शुद्ध आय रुपयों में (प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष)	रोजगार सृजन (श्रम दिवस प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष)
केवल धान आधारित कृषि	19210	110
धान - मूंगफली + मशरूम + मुर्गी पालन	60650	350
धान - लोबिया + मशरूम + मुर्गी पालन	73430	345
धान - बैंगन + मशरूम + मुर्गी पालन	77310	392
धान - पटसन + मशरूम + मुर्गी पालन	52750	309

स्रोत: कोरीकांतिमठ एवं मंजुनाथ (2009).

उत्तर-पूर्वी पहाड़ी (एनईएच) क्षेत्र, स्थाई बहु-उद्यम टिकाऊ प्रणाली के लिए उपयुक्त हैं। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में फसलों के साथ फलों के पेड़ उगाने से एकमात्र फसल के साथ बढ़ते

जोखिम कारक को कम और कृषि पद्धति को ओर भी किफायती बनाया जा सकता है। इस क्षेत्र के त्रिपुरा केंद्र में एक हेक्टेयर भूमि पर बागवानी, वानिकी और पशुधन पालन के साथ कृषि के संयोजन की एक आदर्श कृषि प्रणाली को विकसित किया गया है। इसमें जल संचयन संरचनाओं के साथ विभिन्न उद्यमों जैसे अनाज फसल, दलहन, तिलहन, आम और अन्नास के पौधे, सब्जियां, और बतख पालन, सुअर पालन और मछली पालन जैसे पशुधन घटकों को अंगीकृत किया गया है। परिणामों से ऐसा संकेत मिला है कि परंपरागत वर्षा आधारित चावल की खेती की तुलना में बहु-उद्यम प्रणाली, करीब पांच गुना अधिक लाभदायक है। असम में कामरूप जिले के एक अन्य अध्ययन में, वर्षा आधारित स्थितियों के तहत, फसल + डेयरी + मत्स्य + मुर्गी पालन; फसल + डेयरी + बकरी पालन और फसल + डेयरी + बकरी पालन + कबूतर, सीमांत, छोटे और मध्यम किसानों के लिए क्रमशः लाभकारी प्रणालियां पाई गई।

कृषि वानिकी आधारित खेती प्रणाली

भारत में किसानों द्वारा खेतों और घरों के आसपास पेड़ उगाने की एक लंबी ऐतिहासिक परंपरा है। ऐसी परंपराओं और स्वदेशी नैतिकताओं का लोगों की सामाजिक, आर्थिक और पारिस्थितिकी भलाई पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण निवासियों में विशेष रूप से भूमिहीन वर्ग के लोग ईंधन और ऊर्जा के लिए अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मुख्य रूप से पेड़ों पर निर्भर रहते हैं। ऐसी प्रणाली, ग्रामीण लोगों के ईंधन की लकड़ी की आवश्यकता को पूरा करने के अलावा, पेड़ और घास की बारहमासी घटकों, पानी और हवा कटाव से फसलों की रक्षा के अलावा इन घटकों पर वर्षा में वार्षिक विभिन्नता का प्रभाव कम करते हुए खेती को स्थिरता प्रदान करेगी। वर्षा आधारित पारिस्थितिक तंत्र के तहत कृषि वानिकी प्रणाली के साथ जुड़ी व्यवस्था (वन-चरागाह, फसल-पेड़, कृषि-बागवानी) में प्रति रुपए पर लाभ काफी ज्यादा होता है। काजरी, जोधपुर द्वारा किए गए अध्ययनों से ज्ञात होता है कि शुद्ध कृषि योग्य फसल की तुलना में पेड़ आधारित खेती प्रणाली से अधिक लाभःलागत अनुपात प्राप्त होता है। कृषि-वन-संवर्धन प्रणाली 750 मिमी वार्षिक वर्षा के साथ चतुर्थ श्रेणी की क्षमता वाली जमीन के लिए सिफारिश की जाती है। अर्ध शुष्क उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में अफ्रीकी विंटरथॉर्न (फैदरबिया अल्बीडा) और अंजन घास (हार्डवीकीया बीनाटा) के साथ पेड़ पंक्तियों के बीच में कम अवधि वाली फसलों, जैसे बाजरा, काला चना और मूंग का व्यापक रूप से उगाना एक बेहतर विकल्प है। इसी तरह, वर्षा आधारित सीमांत भूमि में अफ्रीकी विंटरथॉर्न के साथ कृषि योग्य फसल जैसे अरंडी और अरहर, पेड़ के पर्णपाती प्रकृति के कारण समृद्ध क्षेत्रीय लाभ के साथ विकसित किया जा सकता है। गुजरात के वर्षा आधारित शुष्क क्षेत्रों में उगाए जाने वाली एकल फसल नीम (एज़ाडीरेकटा इंडिका) और महारूख (एलीयानथस एक्सेलसा) की तुलना में लोबिया, मूंग, ग्वार और तिल शामिल करने से क्रमशः 59.3 प्रतिशत और 25.7 प्रतिशत अधिक आय प्राप्त हुई। इस प्रणाली द्वारा किसानों को आवश्यकतानुसार चारा, लकड़ी और ईंधन की लकड़ी, मृदा जैविक कार्बन में सुधार तथा अधिक मुनाफा मिलता है। ये कृषि प्रणालियां, उत्तर और उत्तर पश्चिमी गुजरात के लिए अधिक उपयुक्त है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में बारहमासी घास घटक, खेती प्रणाली को स्थिरता प्रदान करने के अलावा, वनस्पति हवा निस्पंदन पट्टी के रूप में और पानी के कटाव की रोकथाम के लिए काम करते हैं। वन-चारागाह विकास के लिए, सिरीस (एल्बीज़िया लब्बेक), रेगिस्तान सागौन (टेकोमेला अंडुलेट), मोपने (कोलोफोस्पर्मम मोपाने), गम अरबी पेड़ (ऐकेसिया सेनेगल), छाता कांटा (ऐ. टोर्टिलिस), बेर (जीजीफूस नुमुलेरिया) और जंगली बेर (जी. रोटुन्डिफोलिया), महत्वपूर्ण प्रजातियों के पेड़ हैं जो आसानी से घास घटकों के साथ संगत कर रहे हैं। चरागाह फलियां, नीले मटर (क्लीटोरिया टेरनेसिया) और भारतीय बीन (लबलब परप्यूरियस) सेवन घास (लेसिउरस सिंडिकस) और अंजन घास (सिनक्रस सिलिएरिस) के साथ अच्छा तालमेल रखते हैं। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (क्रीडा), हैदराबाद में चारा-बागवानी प्रणाली के अंतर्गत वर्षा आधारित अमरूद और शरीफा के साथ पहले वर्ष के दौरान अंजन घास से 7 टन प्रति हेक्टेयर का सूखा चारा प्राप्त हुआ जबकि वृक्षारोपण के दूसरे वर्ष के दौरान स्टायलोसिंथेस घास से 5.6 टन हरा चारा प्राप्त हुआ।

बेर की फल आधारित कृषि-बागवानी प्रणाली में बाजरा+अरहर (सोलापुर), अरहर+उड़द (रीवा), अरंडी (दंतेवाड़ा) और ग्वार बीन (हैदराबाद) ने आशाजनक परिणाम दिखाया। हैदराबाद में इस प्रणाली के अंतर्गत एक वर्ष में 40 किलो फल प्रति बेर पेड़ के साथ-साथ औसतन 100 किलो चना और 450 किलो लोबिया भी प्राप्त हुई है। कर्नाटक की शुष्क भूमि में आम के बागों के बीच में बाजरा, मूंगफली या चना के साथ-साथ पशु या भेड़ या बकरी भी रख सकते हैं जो कि बड़े पैमाने पर कोलार जिले के पारंपरिक आम उत्पादन क्षेत्रों में टिकाऊ प्रणाली के रूप में देखे जाते हैं। इस प्रणाली को और अधिक टिकाऊ बनाने के लिए बांस की तरह कुछ और घटकों को भी जोड़ा जा सकता है। यहां तक कि काजू और इमली के पेड़ आमतौर पर आम के पेड़ के साथ रखे जा सकते हैं।

तमिलनाडु के कोयंबतूर क्षेत्र में, चारा+लोबिया (अनाज या चारा)+सिनक्रस ग्लॉकस+ भारतीय करौंदा (एंबिल्का ओफिसिनालिस) के साथ बकरी पालन के एकीकरण द्वारा उच्चतम उत्पादकता और वर्षा आधारित कृषि के तहत उच्च आर्थिक आय प्राप्त हुई। विभिन्न वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणालियों की तुलना में, शुष्क भूमि फसल की खेती के दौरान 18 वर्षों के आर्थिक मूल्यांकन से पता चला है कि एक प्रभावी अवधि के रूप में सभी पेड़ आधारित प्रणाली, शुद्ध कृषि योग्य फसल की तुलना में अधिक लाभप्रद होती है। मेघालय में अमरूद और असम की नींबू आधारित कृषि वानिकी प्रणाली (एक ऐसी खेती प्रणाली जिसमें फलों के पेड़ और जंगल के पेड़ों को एकीकृत किया जाता है) द्वारा पेड़ों के बिना खेतों से प्राप्त लाभ की तुलना में क्रमशः 2.96 और 1.98 गुना उच्च शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ। अमरूद आधारित कृषि वानिकी प्रणालियों के लिए औसत शुद्ध लाभ 20610 रुपए प्रति हेक्टेयर और असम नींबू आधारित कृषि वानिकी प्रणालियों के लिए, 13,788 रुपए प्रति हेक्टेयर हुआ। इस तरह की प्रणाली मेघालय के वर्षा आधारित कृषि क्षेत्र में आजीविका सुधार रणनीतियों के लिए सबसे अधिक उपयोगी रही है।

आर्थिक लाभ के अलावा, पेड़ आधारित प्रणाली से मिट्टी में जैविक पदार्थ का जमाव हुआ और पोषक तत्वों के माध्यम से मिट्टी की उर्वरता में सुधार भी होता है। अध्ययन ने पाया है कि

पूर्वोत्तर भारत में झूम खेती की बहाली के दौरान इस तरह के बांस के रूप में कई प्रजातियां (बम्बूसा न्यूटंस) मृदा के पोषक तत्व बढ़ाने में मदद करती है। कृषि वानिकी प्रणाली प्रबंधन के तरीकों से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने के लिए मदद मिल सकती है और मृदा के कार्बन भंडार में भी काफी वृद्धि हो सकती है। भारत में कृषि वानिकी में औसत कार्बन पृथक्करण संभावित 96 लाख हेक्टेयर से 25 टन प्रति हेक्टेयर से अधिक होने का अनुमान है, लेकिन जैवभार के आधार पर अलग-अलग क्षेत्रों में काफी भिन्नता पाई जाती है। साथ-ही-साथ कृषि वानिकी प्रणाली द्वारा जल उपयोग दक्षता में सुधार तथा पानी संतुलन के अनुत्पादक घटकों (अपवाह पानी, मिट्टी वाष्पीकरण और जल निकासी) को कम करने में सहायता मिलती है।

पशुधन आधारित खेती प्रणाली

मिश्रित फसल पशुधन प्रणाली को भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था की एक विशिष्ट व्यवस्था माना जाता है। सदियों से, दूध और भारी सामान ढोने के लिए मवेशियों का उपयोग प्रचलन में है। गाय और भैंसों का पालन दूध के लिए और भेड़, बकरी, सुअर, मुर्गी पालन का पालन मुख्य रूप से मांस के लिए किया जाता है। पशुधन उत्पादन का थोक रूप में प्रयोग ग्रामीण क्षेत्रों में होता है, जबकि शहरी क्षेत्रों में डेरी और मुर्गी पालन उद्यमों के रूप में उभर रहे हैं। पशुधन उत्पादन में फसल उत्पाद और अवशेष पशु पोषण के प्रमुख स्रोत हैं। इन प्रणालियों में गोबर का उपयोग खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है जिससे रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग कम करने में सहायता मिलेगी और पर्यावरण की भी रक्षा हो सकेगी।

पशुधन आधारित प्रणाली, वर्षा आधारित कृषि में जटिल और आमतौर पर पारंपरिक सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर की जाती है। पशुधन एकीकरण के लिए पशुओं के उत्पादन को प्रभावित करने वाले कारकों (पशुधन, पैसा, भूमि और श्रम) और प्रसंस्करण को प्रभावित करने वाले कारकों (विवरण, निदान, प्रौद्योगिकी बनावट, परीक्षण और विस्तार) की समझ पूर्व अपेक्षित है। वर्षा आधारित कृषि के क्षेत्र में खेती प्रणाली में पशुधन की उत्पादकता, चारा उत्पादन में वृद्धि, चारा में सुधार (यूरिया उपचार, भिगोकर) द्वारा बढ़ाया जा सकता है। दुधारू पशुओं की उत्पादकता में सुधार लाने के लिए पशुओं की चारा गुणवत्ता और उनकी पूरकता, चारा बैंकों की स्थापना जहां चारा अधिशेष उपलब्ध है, कृत्रिम गर्भाधान, टीकाकरण, बधिया और निवारक उपाय जैसे प्रयोग करने जरूरी हैं। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद ने रंगा रेड्डी जिले के आईवीएलपी गांवों में अध्ययन से पता चला कि दुग्ध प्रदान करने वाले जानवरों को यूरिया उपचारित भूसा देने से दुग्ध उत्पादन में 0.47-1.2 लीटर प्रति दिन के हिसाब से वृद्धि हुई। धान के भूसे की खपत में भी इस हस्तक्षेप के कारण 1-1.2 किलो प्रति पशु दुग्ध उत्पादन में वृद्धि हुई। गायों और भैंसों को यूरिया उपचारित गुड़ खनिज ब्लॉक (यूएमएमबी) देने से दूध की मात्रा में 25-30 प्रतिशत बढ़ोत्तरी पाई गई। इससे सूखे के दौरान भी पशुओं की उत्पादकता और समग्र स्वास्थ्य बनाए रखने में मदद मिली, विशेषकर जब चारे की कमी सूखे की अवधि में तीव्र थी। किसानों के परंपरागत अकेले चराई (2,156 रुपए) की तुलना में खनिज पूरकता से दुग्ध उत्पादन में 58 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि शुद्ध लाभ 6816 रुपए प्रति पशु बढ़ा हुआ पाया गया (सारणी-7)।

सारणी-7 : पशुधन आधारित कृषि प्रणालियों की लाभ-लागत का विश्लेषण

कृषि प्रणाली	खर्च (रुपए प्रति वर्ष)	शुद्ध आय (रुपए प्रति वर्ष)
फसल (0.4 हेक्टेयर) + 1 गाय + 2 भेड़ + 10 मुर्गी	17575	45925
फसल (0.4 हेक्टेयर) + 2 गाय + 4 भेड़ + 10 मुर्गी	32046	56954
फसल (1 हेक्टेयर) + 1 गाय + 2 भेड़ + 10 मुर्गी	25825	91675
फसल (1 हेक्टेयर) + 2 गाय + 4 भेड़ + 10 मुर्गी	35900	107100

स्रोत: शंकर एवं सहयोगी (2007).

भाकृअनुप-केंद्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान (सीफा), भुवनेश्वर में 1.0 हेक्टेयर जलकुंड में मछली आधारित कृषि प्रणाली के अंतर्गत मछली-मुर्गी पालन, मछली-बतख और मछली-सुअर के रूप में विभिन्न प्रणाली से शुद्ध लाभ क्रमशः 1,37,200 रूपए, 1,16,126 रूपए और 1,72,540 रूपए के साथ लाभ-लागत अनुपात क्रमशः 1.42, 1.62 और 1.44 पाए गए। इस प्रणाली में कुल 5,000-6,000 कार्प मछली, 500-600 मुर्गी, 200-300 बतख और 30-40 सूअर प्रयुक्त हुए थे। छोटे और सीमांत किसानों के लिए जीवन के उच्च मानक सुनिश्चित करने के लिए इस प्रणाली में 1.25 हेक्टेयर क्षेत्र में एक तालाब आधारित व्यवस्था में बागवानी फसल, मछली पालन, मुर्गी पालन, मधुमक्खी, मशरूम, डेयरी और कृषि वानिकी शामिल थी। इस प्रणाली से शुद्ध लाभ 58,360 रुपए तथा 573 श्रम दिन का रोजगार उत्पन्न के साथ लाभ लागत अनुपात 2.18 पाया गया। इसी तरह, ओडिशा के उत्तर पूर्वी तटीय मैदानी क्षेत्र में एकीकृत कृषि प्रणाली (0.4 हेक्टेयर) का शुद्ध रिटर्न 47,825 रूपए और 248 श्रम दिन का रोजगार के साथ पारंपरिक केवल फसल घटक की तुलना में शुद्ध आय 82-87 प्रतिशत बढ़ी। इस कृषि प्रणाली में बागवानी फसल, मछली पालन, डेयरी और कृषि वानिकी शामिल थे। छत्तीसगढ़ में, सीमांत किसानों के लिए 1.5 एकड़ के एक मिश्रित खेती (फसल-पशुधन) प्रणाली द्वारा 316 श्रम दिन का रोजगार सृजन कर 33,076 रुपए प्रति वर्ष की शुद्ध आय के साथ विकसित किया गया था जबकि एकल फसल की खेती में 7843 रुपए प्रति वर्ष की शुद्ध आय और 165 श्रम दिन का रोजगार सृजन ही हो पाया था (सारणी-8)। इसी तरह, छत्तीसगढ़ में आदिवासियों की आय बढ़ाने के लिए 2 गाय + 2 भैंस + 4 बैल + 25 बकरी के साथ अन्य सहायक घटक जैसे मुर्गी और बत्तख द्वारा एकीकृत कृषि प्रणाली सबसे अधिक लाभकारी हो सकती है।

सारणी-8 : सीमांत किसानों के लिए मिश्रित कृषि प्रणालियों से प्राप्त आय और व्यय का ब्यौरा

उपचार	खर्च (रुपए प्रति वर्ष)	शुद्ध आय (रुपए प्रति वर्ष)	लागत : वापसी अनुपात	रोजगार सृजन (श्रम दिवस प्रति वर्ष)
फसल (1.5 एकड़)	12396	7843	1.63	165
फसल+2 बैल + 1 गाय	18920	14184	1.75	273

उपचार	खर्च (रुपए प्रति वर्ष)	शुद्ध आय (रुपए प्रति वर्ष)	लागत : वापसी अनुपात	रोजगार सृजन (श्रम दिवस प्रति वर्ष)
फसल+2 बैल + 1 भैंस	19188	18260	1.95	273
फसल+2 बैल + 1 गाय + 1 भैंस	21341	21462	2.00	291
फसल+2 बैल + 1 गाय + 1 भैंस + 10 बकरी	23294	29400	2.26	308
फसल + 2 बैल + 1 गाय + 1 भैंस + 10 बकरी + 10 मुर्गी + 10 बतख	24899	33076	2.23	316

स्रोतः रामाराव एवं सहयोगी (2006).

कृषि प्रणाली के दृष्टिकोण का मूल्य संवर्धन

छोटे और सीमांत किसानों के लिए कृषि प्रणाली का दृष्टिकोण महत्वपूर्ण और विशेष रूप से प्रासंगिक माना जाता है। सामान्य और विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों की विभिन्न श्रेणियों के लिए आर्थिक रूप से व्यवहार्य और स्थान विशेष आदर्श कृषि प्रणाली माडल विकसित करने की जरूरत है। पहले से ही विकसित एकीकृत कृषि प्रणाली को संबंधित क्षेत्रों में पुष्टि करके प्रतिरूपित करने की आवश्यकता है। हालांकि, छोटे और सीमांत किसान, मृदा की कमी, जोखिम परिहार उद्देश्यों और एक सतर्क रहने की प्रवृत्ति के कारण शायद ही अपनी कृषि व्यवस्था में भारी परिवर्तन करे अपितु वे एक समय में एक और कभी कभी दो नए निवेश या प्रथाओं को अपनाने के लिए बारी-बारी से तैयार हों। इसलिए, हमें भी किसानों की स्वीकार्य संसाधन उत्पादकता बढ़ाने के लिए एक कुशल अनुसंधान रणनीति पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इसके अलावा, विभिन्न बहु-उद्यमी कृषि प्रणाली के सफल और टिकाऊ रूप से अपनाने के लिए, निम्नलिखित गतिविधियों पर विभिन्न शोधकर्ताओं, विस्तार कर्मियों और नीति निर्माताओं द्वारा विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए:-

- गांव/क्षेत्र के लिए उचित विविध फसलों की बीज सामग्री के सामुदायिक स्तर पर सुरक्षित भंडारण के साथ बीज बैंकों को बनाए जाने की जरूरत है। इन बीज बैंकों को नियमित आधार पर सरकार द्वारा वर्षा आधारित कृषि के लिए एक आवश्यक आम बुनियादी ढांचे के रूप में माना जाना चाहिए। बीज बैंकों का नियंत्रण और संगठन किसान समूहों द्वारा बनाए रखा जाना चाहिए। प्रशिक्षित बीज किसानों के साथ बीज बैंकों को जोड़कर स्थापित करने की जरूरत है।
- कृषि प्रणाली को बढ़ावा देने के कार्यक्रम में मिट्टी के जैविक पदार्थ में सुधार लाने के घटक पर जोर दिया जाना चाहिए। दूर-दराज के कृषि क्षेत्रों के लिए खाद परिवहन (अधिमानतः बैलगाड़ी के माध्यम से) हेतु नियमित रूप से रियायत प्रदान की जानी चाहिए। इसमें महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) के साथ इस सेवा को एकीकृत करने के लिए गुंजाइश है।

- 750 मिलीमीटर से कम बारिश वाले क्षेत्रों में भूजल ही सिंचाई जल का एक प्रमुख स्रोत है। खरीफ मौसम के दौरान सिंचाई भूजल स्रोतों के मालिक को प्रोत्साहित करने के लिए प्रयासरत किसान, जो अन्य वर्षा आधारित किसानों के साथ पानी साझा करने के लिए तैयार हैं, को सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए। इसी तरह, साझा कुओं (कम से कम खरीफ मौसम के लिए) पर सामूहिक अधिकार को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। सब्सिडी, ऊर्जा या अक्षय ऊर्जा प्रणालियों को भी जल बंटवारे और सामाजिक नियमन के लिए एक प्रोत्साहन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
- गांवों और जलसंग्रहण (वाटरशेड) केंद्रों के भीतर वन विभाग के स्वामित्व के तहत वन भूमि के पृथक खंड विशेष की व्यवस्था की जरूरत है। पशुओं और आजीविका के लिए जैवभार उपलब्ध कराने के लिए लोगों की भागीदारी के साथ देश के इन वन क्षेत्रों के उचित प्रबंधन की व्यवस्था ही मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। गांवों में सामुदायिक भूमि, जो बेहतर उपयोग के लिए सुलभ है, को उत्पादन उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इसलिए, इस क्षेत्र की पारिस्थितिकी में सुधार, सामाजिक वानिकी, जल संचयन और अवशेषों की पुनरावृत्ति से रोजगार सहित अन्य कई अप्रत्यक्ष लाभों के साथ शुद्ध लाभ अर्जित होगा।
- चारा और चारा बैंकों के विकास के लिए एक विशिष्ट और व्यावहारिक वर्षा आधारित प्रणाली, पारिस्थितिकी तंत्र में महत्वपूर्ण स्थान पर है। जैवभार गहनता विशेष रूप से छोटे जुगाली करने वाले पशुओं को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए प्राप्त करनी चाहिए; बकरियों और भेड़ों के लिए झाड़ी/पेड़ जैवभार का छोटा सा प्रयास, संसाधनों को आसानी से बढ़ा सकता है। फसल अवशेषों की पोषक गुणवत्ता में सुधार करने के लिए लागत प्रभावी प्रौद्योगिकियों का विकास, मौजूदा पोषण संसाधनों का कुशल उपयोग सुनिश्चित करने में सहायक होगी।
- इसी तरह, पशुपालन विभागों के साथ पर्याप्त संबंधों के साथ समुदाय में टिकाऊ पशुधन स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली बनाई जानी चाहिए।
- कटाई उपरांत प्रसंस्करण एवं सीधे उत्पादकों द्वारा सामूहिक खरीद और विपणन कृषि प्रणाली को सीधे बाजार से जोड़ने से मुनाफे में काफी वृद्धि होगी। देश भर में स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) सामूहिक विपणन और मूल्य संवर्धन के लिए विकल्पों को खोल रहे हैं। प्रसंस्करण/मूल्य जोड़ने के बुनियादी ढांचे की जरूरतों एवं मानचित्रण के लिए एक विशेष क्षेत्र आधारित योजना शुरू किए जाने की आवश्यकता है। बुनियादी ढांचे में बीज और अन्य कृषि आदानों और गांव के भीतर विभिन्न बिंदुओं पर कृषि उपज के लिए आम भंडारण स्थानों को शामिल करना चाहिए।
- गांवों में कृषि सेवा केंद्रों की स्थापना आदानों की लागत बचाने के लिए कर सकते हैं। इससे किसान उच्च लाभ के लिए समय पर कृषि सलाहकार सेवाएं प्राप्त कर सकते हैं।
- वस्तु समूहों और खेत महिलाओं के स्व-सहायता समूहों के गठन से गैर-मौसमी आय सृजन गतिविधियों और आजीविका सुधार के लिए नेतृत्व को बढ़ावा देने में मदद कर सकते हैं। भूमिहीन, छोटे और सीमांत किसानों के लिए उभरते बाजार में विविध मांगों के अनुसार कौशल और शिल्प में प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है।

- कृषक समुदाय के प्रति जागरूकता और क्षमता निर्माण को बनाने के लिए विस्तार विभाग द्वारा प्रशिक्षण, अनावरण दौरे और स्थान विशेष पर खेती प्रणाली का प्रदर्शन बढ़ाने के लिए ओर अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है।

सारांश

एकीकृत कृषि प्रणाली में, घरेलू स्तर पर फसलों, मवेशियों, बागवानी, मुर्गी पालन और खेत रहित उद्यम, जैसे कई घटकों को सकारात्मक दृष्टि से एकीकृत करके ही आय बढ़ाने और संसाधनों के उपयोग का अनुकूलन करने के लिए प्रयोग किया जाता है। कृषि प्रणाली दी गई कृषि जलवायु स्थिति में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर अत्यधिक स्थान विशिष्ट होती हैं। एक एकीकृत कृषि प्रणाली की सफलता और स्थिरता इसकी आंतरिक शक्तियों और कमजोरियों जैसे कि प्राकृतिक संसाधन (मिट्टी और पानी), खेत का आकार, जैविक अवशेषों की उपलब्धता, श्रम और बाहय कारकों जैसे कि बाजार में कीमतें, बुनियादी ढांचे और मूल्य संवर्धन जैसे कारकों पर पूरी तरह से निर्भर रहती है। वर्षा आधारित कृषि के क्षेत्र में एकीकृत कृषि प्रणाली एक जलविभाजन आधार पर या एक किसान केंद्रित दृष्टिकोण के साथ अपनाई जा सकती है।

संदर्भ

अरुणाचलम, ए, खान, एम एल एवं अरुणाचलम, के. 2002. बैलेंसिंग ट्रेडिशनल झूम कल्टीवेशन विथ मॉडर्न एग्रोफोरेस्ट्री इन ईस्टर्न हिमालय-ए बायोडायवर्सिटी हॉट स्पॉट. करंट साइंस, 83: 117-118.

बलुसामी, एम, षणमुगम, पी एम एवं भास्करन, आर. 2003. मिक्स्ड फार्मिंग ऍन आइडियल फार्मिंग. इंटेंसिव एग्रीकल्चर, 41(11-12) : 20-25.

बेहेरा, यू के, येट्स, सी एम, केबराब, इ एंड फ्रांस, जे. 2008. फार्मिंग सिस्टम मेथोडोलॉजि फार एफ्फिसिएंट रिसोर्स मैनेजमेंट एट दी फार्म लेवल : एन इंडियन पर्सपेक्टिव. जर्नल आफ एग्रीकल्चरल साइंसेज (कैंब्रिज) 146 : 493-505.

देसाई, जी आर, मनोहारी, पी एल एवं रमण राव, एस वी. 2009. परफारमेंस आफ रेनफेड फार्मिंग सिस्टम्स इन सिलेक्टेड डिस्ट्रिक्स आफ साउथर्न इंडिया. जर्नल आफ एग्रीकल्चरल एक्सटेंशन मैनेजमेंट, 10(2) : 35-60.

गिल, एम एस. 2010. फार्मिंग सिस्टम एप्रोच : इट्स प्रिंसिपल्स एंड रोल टूवार्डस सस्टेनेबिलिटी. इन: एक्सटेंडेड संमरिज़, 2010. XIX नेशनल सिम्पोजियम ऑन “रिसोर्स मैनेजमेंट एप्रोचस टुवर्ड्स लाइवलीहुड सिक्योरिटी”, हेल्ड ड्यूरिंग दिसंबर 2-4, 2010 एट बेंगलुरू, पीपी. 155-159.

गोपीनाथ, के ए, श्रीनाथ दीक्षित, रविन्द्रा चारी, जी, श्रीनिवास राव, सीएच, उस्मान, एम, राजू, बी एम के, रमण, डी बी वी, वेंकटेश, जी, ग्रोवर, एम, महेश्वरी, एम एवं वेंकटेश्वर्लु, बी. 2013. इम्प्रोविंग दी रेनफेड फार्मिंग सिस्टम्स आफ स्माल एंड मार्जिनल फार्मर्स इन अनंतपुर एंड आदिलाबाद डिस्ट्रिक्स आफ आंध्र प्रदेश. सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार डॉयलांड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, तेलंगाना, पीपी. 46.

कोरिकंठीमठ, वी एस एवं मंजुनाथ, बी एल. 2009. इंटीग्रेटेड फार्मिंग सिस्टम्स फार सस्टेनेबिलिटी इन एग्रीकल्चरल प्रोडक्शन. इंडियन जर्नल आफ एग्रोनॉमी, 54(2) : 140-148.

नंदा, एस एस एवं गार्नायक, एल एम. 2010. इंटीग्रेटेड फार्मिंग सिस्टम्स फार लाइवलीहुड सिक्योरिटी इन कोस्टल इकोसिस्टम्स. इन : एक्सटेंडेड सुम्रीज़, 2010. XIX नेशनल सिम्पोजियम ऑन "रिसोर्स मैनेजमेंट अप्प्रोअचएस टुवर्ड्स लाइवलीहुड सिक्योरिटी", हेल्ड ड्यूरिंग दिसंबर 2-4, 2010 एट बेंगलुरू, पीपी. 160-167.

उस्मान एम, वेंकटेश्वर्लु बी. एवं सिंह आर पी. 1989. एग्रोफोरेस्ट्री सिस्टम्स फार सेमी-एरिड ट्रॉपिक्स आफ इंडिया - ए रिव्यु इन : एग्रोफोरेस्ट्री सिस्टम्स इन इंडिया - रिसर्च एंड डेवलपमेंट (सिंह आर पी, अहलावत आई पी एस एंड गंगासरन, (एडीर्टस), इंडियन सोसाइटी आफ एग्रोनॉमी, नई दिल्ली, पीपी. 18-35.

पांडेय, डी एन. 2007. मल्टीफंक्शनल एग्रोफोरेस्ट्री सिस्टम्स इन इंडिया. करंट साइंस, 92(4) : 455-463.

प्रसाद, आर एन 1993. फार्मिंग सिस्टम एप्रोच - ए सलूशन फार सस्टेनेबल एग्रीकल्चर फार हिल्स इंडियन जर्नल आफ हिल फार्मिंग, 6(1) : 19-27.

शंकर, एम ऐ, धनप, जी एन एवं उमेश, एम आर. 2007. फार्मिंग सिस्टम्स इन रेनफेड एरियाज आफ कर्नाटक. मैनेज एक्सटेंशन रिसर्च रिव्यु, 8(2) : 1-19.

शकीना, डी इ, जयंती, सी एवं संकरण, एन. 2005. फिजिकल इंडीकेटर्स आफ सस्टेनेबिलिटी - ए फार्मिंग सिस्टम्स एप्रोच फार दी स्माल फार्मर इन दी रेनफेड वर्टीसॉल आफ दी वेस्टर्न जोन आफ तमिलनाडु. जर्नल आफ सस्टेनेबल एग्रीकल्चर, 25(3) : 43-65.

सोलाइअप्पन, यू, सुब्रमनियन, वि एवं मारुति शंकर, जी आर. 2007. सिलेक्शन आफ सूटेबल इंटीग्रेटेड फार्मिंग सिस्टम मॉडल फार रेनफेड सेमी एरिड वर्टिक इंसेप्टिसोल्स इन तमिलनाडु. इंडियन जर्नल आफ एग्रोनॉमी, 52(3) : 194-197.

विट्ठल, के पी आर, सिंह, एच पी, प्रसाद, जे वि एन एस, राव, के वि, विक्टर, यू एस, मारुति शंकर, जी आर, रविंद्रा चारी, जी, गुरबचन सिंह एवं सामरा, जे एस. 2003. बायो-डिवर्स फार्मिंग सिस्टम मॉडल्स फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर. आल इंडिया कोऑर्डिनेटेड रिसर्च प्रोजेक्ट, सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद 500 059, पीपी. 58.

★★★

8

उच्च चारा उत्पादन सुनिश्चित करने की उन्नत तकनीकियां

- वी मारुति, डी सुधीर एवं प्रभात कुमार पंकज

परिचय

भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन शैली में, कृषि और पशुपालन ग्रामीण जीवन के एक अभिन्न भाग के रूप में पूरी तरह अंगीकृत है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान तेजी से घट रहा है, जो वर्ष 1982-83 में 36.4 प्रतिशत से वर्ष 2006-07 में घटकर मात्र 18.5 प्रतिशत रह गया है। जबकि कृषि और पशुधन अभी भी भारत के कुल कार्यबल के 52 प्रतिशत लोगों को रोजगार प्रदान करता है। पशुधन से न सिर्फ दूध, मांस, अंड़ा, ऊन, खाद, इत्यादि प्राप्त होता है बल्कि इसका प्रयोग विद्युत उत्पादन, ईंधन और ग्रामीण परिवहन में भी होता है। पशुधन, खेतों से नियमित रूप से नकद आय का एक मात्र स्रोत है जो फसल खराब होने की स्थिति में बीमा की तरह कार्य करता है। इसके अलावा पशुधन से, वैश्विक ऊर्जा संकट को दूर किया जा सकता है। गुणवत्ता जैविक खाद प्राप्त करके जैविक चारा उत्पादन किया जा सकता है और पशु उत्पादों हेतु पशुधन आधारित जैव ऊर्जा के उपयोग के साथ कृषि अपशिष्ट की पुनरावृत्ति को भी बढ़ावा मिलता है।

वर्षा आधारित कृषि में चारा उत्पादन का महत्व

भारत, जो कि विश्व के 2.3 प्रतिशत भूमि क्षेत्र पर फैला हुआ है, में पशुओं की लगभग 20 प्रतिशत आबादी और मानव की 16.8 प्रतिशत आबादी निवास करती है। भारत में विश्व के गोवंश की सबसे बड़ी आबादी (16 प्रतिशत), भैंसों की सबसे बड़ी जनसंख्या (55 प्रतिशत), बकरियों की दूसरी सबसे बड़ी आबादी (20 प्रतिशत) एवं भेड़ों की चौथी सबसे बड़ी आबादी (5 प्रतिशत) निवास करती है। 17[वीं] पशुधन जनगणना (2003) के अनुसार देश में कुल 48.5 करोड़ पशुधन एवं 48.9 करोड़ मुर्गियां हैं (सारणी-1)।

सारणी-1 : पशुधन आबादी (10 लाख व्यस्क मवेशी इकाई)

वर्ष	गोवंश	भैंस	भेड़	बकरी	घोड़ा	ऊंट	कुल
1995	180.5	82.8	4.0	9.2	0.5	0.9	278
2000	187.1	87.7	4.1	9.9	0.4	1.0	290
2005	192.2	92.6	4.2	10.5	0.3	1.0	301
2010	197.3	97.5	4.3	11.2	0.3	1.0	312

वर्ष	गोवंश	भैंस	भेड़	बकरी	घोड़ा	ऊंट	कुल
2015	202.3	102.4	4.4	11.8	0.1	1.1	322
2020 (अनुमानित)	207.4	107.3	4.5	12.5	0.1	1.1	333
2025 (अनुमानित)	212.5	112.2	4.6	13.2	0.1	1.1	344

स्रोत: भारत सरकार की दसवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज के आधार पर

भारत के शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण और मांस क्षेत्र में उच्च वृद्धि के कारण पशुधन की संरचना में छोटे जुगाली करने वाले पशुओं के प्रति रुझान बढ़ा है। वर्तमान परिस्थिति में, भारत में भैंस तथा बकरियां अधिकाधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं।

पशुधन उत्पादों के लिए मांग

भारत का दूध उत्पादन 1983 के 43 लाख टन की तुलना में वर्ष 2014-15 में बढ़कर 1463 लाख टन हो गया। भारत मांस और मुर्गी उत्पादन में आत्मनिर्भर होने के अलावा दूध उत्पादन में विश्व में पहले स्थान पर है। हालांकि, यहां के पशुओं की उत्पादकता कम है और उपलब्ध संसाधनों का उपयोग सीमित रूप में ही होता है। इसके अलावा, प्रति व्यक्ति उपलब्धता के आधार पर दूध, मांस और अंडे की खपत अभी भी विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एच ओ) की सिफारिशों से कम है। देश में प्रति व्यक्ति प्रति दिन दूध की खपत 250 ग्राम के आदर्श की तुलना में केवल 178 ग्राम ही है। इसी तरह, 180 अंडे और 11 किलोग्राम मांस की आदर्श खपत की तुलना में वास्तविक उपयोग क्रमश: मात्र 35 अंडे और 800 ग्राम प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति ही है। दुनिया के अन्य भागों में उत्पादकता की तुलना में, भारत के पशुधन की उत्पादकता बढ़ाने की काफी संभावनाएं मौजूद हैं। यूरोप जैसे विकसित देशों में दुग्ध उत्पादन प्रति मवेशी प्रति वर्ष 4,500 लीटर, संयुक्त राज्य अमेरिका में 7,000 लीटर से अधिक और इजराइल में 10,000 लीटर की तुलना में हमारे मवेशी और भैंस का उत्पादन मात्र 1,000 लीटर ही है। भारत में पशुओं की कम उत्पादकता एक गंभीर चिंता का विषय है जो कि मुख्य रूप से गुणवत्ता वाले चारे की अपर्याप्त आपूर्ति के कारण है। भारत जैसे विकासशील देशों में जहां ग्रामीण अर्थव्यवस्था की धुरी पशुओं के इर्द गिर्द ही घूमती है, ऐसा माना जाता है कि भविष्य में मांस और दूध की खपत में क्रमश: 2.8 और 3.3 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वृद्धि होगी।

2006-07 में पशुधन क्षेत्र ने विभिन्न उत्पादों (दूध 10.1 करोड़ टन, 51.0 अरब अंडे, 45.0 करोड़ किलोग्राम ऊन और 0.23 करोड़ टन मांस) द्वारा भारतीय खाद्य सुरक्षा और अर्थव्यवस्था में योगदान दिया। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-2012) के दौरान, दूध, मांस और अंडा उत्पादन में विकास का लक्ष्य क्रमशः 5, 6 और 12 प्रतिशत की दर से पेश किया गया ताकि 2012 तक, 13.0 करोड़ टन दूध, 0.7 करोड़ टन मांस और 95.0 अरब अंडों का उत्पादन हो सके। भारत में 2025 तक, मानव आबादी 140 करोड़ से अधिक होने की संभावना है। शहरीकरण से देश की जनता की जीवन शैली में एक अभूतपूर्व बदलाव देखने को मिला है जिसमे दूध, मांस और अंडे का बढ़ता हुआ उपयोग शामिल है। शहर के इर्द गिर्द फैले हुए डेरी उद्योग और सघन चारे का उत्पादन, पशुधन क्षेत्र में एक बड़े बदलाव की तरफ संकेत करता है।

देश में पशुधन क्षेत्र का वर्तमान परिदृश्य

भारत मूल रूप से एक कृषि प्रधान देश है और यहां के 70 प्रतिशत लोग गांवों में रहते हैं। उनकी आजीविका मुख्य रूप से कृषि और पशुपालन पर निर्भर है। भारत में 481 लाख से अधिक पशुधन (मुर्गी और सुअर पालन के अलावा) की एक बड़ी आबादी है। देश ने दूध उत्पादन में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है (11.2 करोड़ टन, 2009-10) जो विश्व में प्रथम है। अंडा उत्पादन के मामले में (45 अरब, 2006) भारत, दुनिया में तीसरे स्थान पर है एवं कुल मांस उत्पादन 0.492 करोड़ टन (2006) है। इस विशाल उत्पादन के बावजूद, दूध, मांस और अंडे की उत्पादकता विकसित देशों की तुलना में काफी कम है। हमारे पशुधन की कम उत्पादकता के कारणों में, जानवरों की कम आनुवंशिक क्षमता और कुपोषण प्रमुख है।

चारा उत्पादन की स्थिति और उपलब्धता

भारत के अधिकांश इलाकों में कृषि पद्धति के तहत चारा उत्पादन का कोई ख़ास ध्यान नहीं रखा जाता है। अधिकतर किसान दाना, दलहन या तिलहन फसलों पर जोर देते हैं तथा जानवरों के हरे चारे हेतु आम संपत्ति संसाधनों (सीपीआर) पर निर्भर रहते हैं। राष्ट्रीय पशुधन नीति, 2013 के अनुसार, अगर किसान अपने भूमि संसाधनों का 10 प्रतिशत चारे की खेती करने के लिए लगा दें तो इससे वर्तमान में आवश्यकतानुसार चारा उपलब्ध कराया जा सकता है। नए आंकड़ों के अनुसार, हमारे देश में हरे चारे की 61.5 प्रतिशत, सूखे चारे की 21.8 प्रतिशत एवं दाना मिश्रण की 47.1 प्रतिशत कमी है (सारणी-2), जिसको अतिशीघ्र दूर करने की आवश्यकता है ताकि भारत के पशुओं में परिस्थितिजन्य कुपोषण को दूर किया जा सके।

सारणी-2 : दुधारू पशुओं हेतु चारे (करोड़ टन में) की वर्तमान स्थिति

चारा पदार्थ	उपलब्धता	आवश्यकता	कमी	
			सकल	प्रतिशतता
हरा चारा	38.73	100.60	61.87	61.5
सूखा चारा	43.79	56.00	12.21	21.8
दाना मिश्रण	4.20	7.94	3.74	47.1

स्रोत : भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली की कृषि पुस्तिका (2006)

यदि वर्तमान अवधि के संसाधनों को देखे तो ऐसा लगता है कि चारा संसाधनों की कमी आगे भी बनी रहेगी (सारणी-3)। यह कमी आने वाले दशक में हरे चारे के लिए 65 प्रतिशत और सूखे चारे के लिए 25 प्रतिशत तक हो सकती है।

सारणी-3 : हरे और सूखे चारे की मांग और आपूर्ति (करोड़ टन में)

वर्ष	मांग		आपूर्ति		मांग के प्रतिशत के रूप में कमी	
	हरा चारा	सूखा चारा	हरा चारा	सूखा चारा	हरा चारा	सूखा चारा
1995	37.9	42.1	94.7	52.6	60	20
2000	38.4	42.9	98.8	54.9	61	22
2005	39.0	44.4	102.5	56.9	62	22

वर्ष	मांग		आपूर्ति		मांग के प्रतिशत के रूप में कमी	
	हरा चारा	सूखा चारा	हरा चारा	सूखा चारा	हरा चारा	सूखा चारा
2010	39.5	45.1	106.1	59.0	63	23
2015	40.1	46.6	109.8	61.0	64	24
2020 (अनुमानित)	40.6	47.4	113.4	63.0	64	25
2025 (अनुमानित)	41.1	48.8	117.1	65.0	65	25

स्रोतः भाकृअनुप-एनएआईएनपी, बेंगलुरू मोनोग्राफ (2007)

चारा उत्पादन के तहत क्षेत्र

पशुओं के चारे हेतु, हरे और ताजा पौधों की प्रजातियों की चारा फसलों की खेती की जाती है और इन्हें सुखाकर सूखे चारे के रूप में तथा किण्वित कर साइलेज के रूप में उपयोग किया जाता है। खेती की जाने वाली चारा फसलों के अंतर्गत कुल क्षेत्र अलग-अलग फसल के आधार पर लगभग 83 लाख हेक्टेयर है। भारत में होने वाली चारे की कुल खेती में 54 प्रतिशत भाग खरीफ में उगाए जाने वाले ज्वार (26 लाख हेक्टेयर) और रबी में उगाए जाने वाले बरसीम (19 लाख हेक्टेयर) की फसल के अंतर्गत है। स्थाई रूप से उगाए जाने वाली चारे की खेती के क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में कमी आ रही है और यह प्रवृत्ति भविष्य में और भी ज्यादा होने की आशंका है। चारा फसलों के अंतर्गत क्षेत्रों की स्थिति लगभग पिछले 3-4 दशकों से स्थिर बनी हुई है। हालांकि, चारा फसलों के तहत क्षेत्र मुख्यतः शहर के आसपास के क्षेत्रों तक सीमित है क्योंकि विगत वर्षों में शहर के इर्द-गिर्द दूध की मांग काफी बढ़ी है और डेरी व्यवसाय का चलन भी इन क्षेत्रों में काफी बढ़ा है। गहन डेयरी उत्पादन प्रणाली के तहत दुग्ध उत्पादन इन क्षेत्रों में छोटी छोटी सघन इकाइयों के रूप में पनपे हैं। इसके कारण इन गतिविधियों के कई पर्यावरण संबंधी सकारात्मक या नकारात्मक दूरगामी परिणाम भी मिल सकते हैं। इस तरह की पशुधन आबादी में वृद्धि से जैविक खाद की उपलब्धता भी प्रभावित हुई है, जिसमें कृषि उत्पादन को बढ़ाने की असीमित क्षमता है।

चारा फसलों के क्षेत्र और उनकी उत्पादकता

भारत में चारे की कई प्रजातियां पाई जाती है (सारणी-4)। विभिन्न क्षेत्रों में सर्वेक्षण के दौरान पाया गया कि पशुपालक अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न किस्म के चारे का इस्तेमाल करते हैं। भारत में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की चारा प्रजातियां निम्नलिखित हैं :-

सारणी-4 : भारत में प्रमुख रूप से पाई जाने वाली चारा प्रजातियां एवं उनकी उत्पादकता

क्र. सं.	फसल	वानस्पतिक नाम	क्षेत्र (1000 हेक्टेयर में)	हरा चारा उत्पादकता (टन/हेक्टेयर)
1	बरसीम (मिस्र की तिपतिया घास)	ट्रायफ़ोलियम एलेग्जेंड्रियम	1900	60-110
2	ल्यूसर्न (अल्फाल्फा)	मेडिकॉगो सटाइवा	1000	60-130
3	सेंजी (मीठा तिपतिया घास)	मेलीलोटस इंडिका	5	20-30
4	शफताल (फारसी तिपतिया घास)	ट्रायफ़ोलियम रेसुपीनेटम	5	50-75

क्र. सं.	फसल	वानस्पतिक नाम	क्षेत्र (1000 हेक्टेयर में)	हरा चारा उत्पादकता (टन/हेक्टेयर)
5	मेथा (मेथी)	ट्राइगोनेला फेनूग्रीकम	5	20-35
6	लोबिया	विग्ना उंगीकुलाटा	300	25-45
7	ग्वार (क्लस्टर बीन)	सायामोपसीस टेट्रागोनालोबा	200	15-30
8	चावल बीन	विग्ना उमबेलाटा	20	15-30
9	जई	ऐविना सटाइवा	100	35-50
10	जौ	होरडीयम वलगेयर	10	25-40
11	ज्वार/चारी	सौरघम बाईकलर	2600	35-70
12	बाजरा	पेनीसेटम ग्लौकम	900	20-35
13	मक्का	ज़ीया मेज़	900	30-55
14	मकिया	ज़ीया मेक्सिकाना	10	30-50
15	चारा सरसों (चीनी गोभी)	ब्रासीका पेकिनेंसीस	10	15-35

वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों में चारे की खेती के लिए महत्वपूर्ण किस्में

भारत के वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों में दूसरी हरित क्रांति की संभावनाएं व्याप्त हैं। इसके तहत शुष्क क्षेत्रों के लिए एक विशेष रणनीति की आवश्यकता है जिससे कि यहां के जानवरों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान (आईजीएफआरआई), झांसी द्वारा किए गए अनुसंधान से यह निष्कर्ष निकाला गया कि भारत में चारे की ऐसी कई फसलें हैं जिनका यदि एक रणनीति के तहत प्रयोग किया जाए तो चारे की उपलब्धता में आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सकती है (सारणी-5)।

सारणी-5 : देश के विभिन्न क्षेत्रों में सुझावित चारा फसलें

क्षेत्र	सुझाई गई चारा फसलें
पहाड़ी क्षेत्र	मक्का, ज्वार, ल्यूसर्न, लोबिया, टीयोसिंट, बरसीम, जौ, जई, एन बी संकर, गिनी घास, सेटेरिया, दीनानाथ घास, जॉब्स टीयर, लोबीयम, टाल फेसके, लाल तिपतिया घास, सफेद तिपतिया घास
मध्य क्षेत्र	बाजरा, ज्वार, मक्का, ल्यूसर्न, लोबिया, ग्वार, टीयोसिंट, बरसीम, जौ, जई, एन बी संकर, गिनी घास, दीनानाथ घास, बौना घास, संगमरमर घास, अंजन घास, जॉब्स टीर
उत्तर पश्चिम क्षेत्र	ज्वार, बाजरा, मक्का, ल्यूसर्न, लोबिया, ग्वार, टीयोसिंट, बरसीम, जौ, जई, एन बी संकर, गिनी घास, दीनानाथ घास, स्टाइलो, बौना घास, संगमरमर घास, अंजन घास
पूर्वोत्तर क्षेत्र	ज्वार, चावल सेम, मक्का, लोबिया, टीयोसिंट, बरसीम, जौ, जई, एन बी संकर, गिनी घास, जॉब्स टीयर
दक्षिण क्षेत्र	बाजरा, ज्वार, मक्का, बरसीम, ल्यूसर्न, जई, एन बी संकर, गिनी घास, दीनानाथ घास, स्टाइलो, अंजन घास, चना, मेड़ ल्यूसर्न, सिग्नल घास, कांगो सिग्नल घास

स्रोत : भाकृअनुप-आईजीएफआरआई, झांसी (विज़न डाक्यूमेंट-2050)

वर्षा आधारित क्षेत्रों में वर्ष भर चारा प्राप्त करने के लिए उत्पादन प्रणाली

वर्षा आधारित क्षेत्रों में, जहां जोत बहुत छोटा है वहां किसान उपलब्ध जोतों को ओर भी छोटा कर रहे हैं। इसलिए पशुपालन निर्वाह आधारित अर्थव्यवस्था ही एक अंतिम विकल्प है। ऐसी परिस्थितियों में हरे चारे की उपलब्धता की कमी नवंबर माह के बाद महसूस की जाती है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए, चारा हेतु विशेष रूप से भूमि का आबंटन संभव नहीं है। भोजन और अन्य कृषि फसलों के साथ चारा फसलों का एकीकरण आजीविका में सुधार के लिए अपरिहार्य हो गया है। इसलिए वर्षा आधारित क्षेत्रों में मौजूदा फसल के साथ चारा के एकीकरण द्वारा पशुपालन एवं अन्य कृषि उत्पादों का उत्पादन सुनिश्चित कर सकते हैं। वर्षा आधारित चारा उत्पादन एक ऐसी तकनीक है जिसमें अलग-अलग मिट्टी की परतों से नमी और पोषक तत्वों का इस्तेमाल करके चारा प्रजाति के उचित संयोजन द्वारा वर्ष भर हरे चारे की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है।

प्रौद्योगिकी का संक्षिप्त विवरण

पेनिसेटम ट्राईस्पेसिफिक हाइब्रिड संकर (टीएसएच) एवं सुबबूल (लयूकेना) जोड़ों में 75 सेंमी की दूरी पर जुलाई-अगस्त के महीने में लगाए जाते हैं (सारणी-6)। सुबबूल की एक पंक्ति टीएसएच पंक्ति से 50 सेंमी की दूरी पर लगाई जाती है। रोपित युग्म को 3.0 मीटर की दूरी पर दोहराया जाता है तथा इस रिक्त स्थान का प्रयोग ज्वार चारा + अरहर को 30 सेंमी दूरी पर पंक्ति में बोने के लिए किया जाता है। अरहर को छोड़कर ज्वार चारा की कटाई 55-60 दिनों के बाद कर ली जाती है। बचे हुए अरहर को मार्च के आखिरी सप्ताह से अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक रखा जाता है।

सारणी-6 : वर्षा आधारित क्षेत्रों में लंबे समय तक चारे की आपूर्ति के लिए प्रौद्योगिकी

क्र.सं.	विषय	विवरण
1.	तकनीकी का नाम	वर्षा आधारित चारा उत्पादन
2.	प्रणाली	पेनिसेटम ट्राईस्पेसिफिक हाइब्रिड संकर (टीएसएच) (पेनिसेटम परपुरीयम X पी. स्कुएमूलएटम X पी. ग्लौकम)+सुबबूल (लयूकेना लयूकोसिफाला) एवं (ज्वार चारा + अरहर दाल)
3.	विवरण	रोपण कृषि विज्ञान टीएसएच जोड़ों में 75 सेंमी की दूरी पर सुबबूल, टीएसएच से 50 सेंमी की दूरी पर टीएसएच से सुबबूल की दूरी: 3.0 मीटर ज्वार चारा एवं अरहर दाल (2:1) की बुआई 30 सेंमी की दूरी पर बुआई का समय: जुलाई-अगस्त
4.	प्रदर्शन के परिणाम	प्रणाली उत्पादकता: हरा चारा 50-55 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष सूखा चारा 13-14 टन प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष इसके अलावा 0.41 टन अनाज प्रति हेक्टेयर
5.	संभावना लागत	25,000 रुपए प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष

उपज : इस प्रणाली से 4.0 क्विंटल अरहर दाल के अलावा, 50-55 टन हरा चारा और 13-14 टन शुष्क चारा प्रति हेक्टेयर का उत्पादन प्राप्त हुआ। सुबबूल द्वारा प्राप्त ईंधन की लकड़ी से कुछ राशि भी प्राप्त हुई। प्रणाली की उत्पादन लागत 25000 रुपए प्रति हेक्टेयर थी।

विशेष लाभ : इस प्रणाली से बेहतर चारा उत्पादन के साथ-साथ लंबे समय तक चारा उपलब्धता (मई के महीने तक आपूर्ति) एवं अनाज प्राप्त होता है।

वर्षा आधारित कृषि क्षेत्र से चारा उत्पादन में सुधार करने के लिए रणनीतियां

खेती की भूमि में चारा उत्पादन

भारत की कृषि योग्य भूमि में चारा उत्पादन पिछले कई दशकों से केवल 4.9 प्रतिशत क्षेत्र पर ही किया जाता है। परंतु विगत वर्षों से, चारा के महत्व को समझने के बाद, देश के विभिन्न हिस्सों में चारा फसलों का व्यापक उत्पादन हो रहा है। विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में, चारा फसलों की उत्पादकता अस्थिर रही है। खरीफ चारा फसलों में, बाजरा, मक्का, और लोबिया प्रमुख है और रबी चारा फसलों में जई, ल्यूसर्न और बरसीम प्रमुख है। देश के विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों में, पशुओं के लिए हरे चारे की मांग को ध्यान में रखकर विभिन्न चारा प्रणालियां अपनाई जाती है। विभिन्न हितधारकों की मांग को पूरा करने के लिए छोटी से बड़ी सभी इकाइयों में चारे का उत्पादन किया जाता है। दुग्ध मांग बाहुल्य क्षेत्रों में, विकसित डेयरी और दूध के लिए बाजार की वजह से चारे का उत्पादन फसल प्रणालियों के महत्वपूर्ण घटक माने जाते हैं। देश के अन्य भागों में, चारे का उत्पादन मौसमी या आवश्यकता के अनुसार आधारित संसाधनों में कुछ वाणिज्यिक उपक्रम के अंतर्गत किया जा रहा है।

सिंचित भूमि में साल भर चारा उत्पादन करने की प्रणाली

सिंचित और शहरी क्षेत्रों के आस-पास विशेष रूप से दुग्ध मांग बाहुल्य क्षेत्रों में, पूरे वर्ष हरे चारे की उपलब्धता, पशु स्वास्थ्य, उत्पादकता और लाभप्रदता को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। सिंचित भूमि में गहन चारा फसल, अंतर-फसल प्रणाली के रूप में, उपज बढ़ाने, चारा गुणवत्ता में सुधार, उर्वरक का समुचित प्रयोग और बेहतर भूमि उपयोग सुनिश्चित करने के लिए की जाती है। हरे चारे की आपूर्ति पूरे वर्ष देश के अधिक से अधिक क्षेत्रों में डेयरी किसानों और छोटे पशुओं के रखवालों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए भाकृअनुप-आईजीएफआरआई, झांसी में विकसित किया गया था। इस उत्पादन प्रणाली में, 3-4 चारा फसलों की खेती डेयरी पशुओं के लिए चारे की निरंतर आपूर्ति हेतु एक कैलेंडर वर्ष में की जाती है (सारणी-7)। पशुओं के चारे की जरूरत भी मौजूदा फसल प्रणाली में चारा फसलों के एकीकरण के माध्यम से और इकाई भूमि क्षेत्र के प्रति उत्पादकता वृद्धि द्वारा संभव है। विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में किसान उनके संसाधनों, मिट्टी के प्रकार और चारा उत्पादन और उपयोग की रणनीतियों से वर्ष भर हरा चारा प्राप्त कर सकते हैं।

सारणी-7 : विभिन्न फसल दृश्यों का उत्पादन अर्थशास्त्र

वार्षिक चारा उत्पादन प्रणाली	प्रणाली उत्पादकता (टन/हेक्टेयर/वर्ष)	लागत संभावना (रुपए/हेक्टेयर)	अनुमानित लाभ:लागत अनुपात
एन.बी.संकर + (लोबिया-बरसीम/ल्यूसर्न)	हरे चारे की उपज-350	प्रथम वर्ष में 35000 रुपए, आगामी 2-3 वर्ष में 20000 रुपए	2.5
गिनी घास/एन.बी. संकर +(बीन/लोबिया-ल्यूसर्न/ बरसीम)	हरे चारे की उपज-300	प्रथम वर्ष में 35000 रुपए, आगामी 2-3 वर्ष में 20000 रुपए	2.5

उपयुक्त वार्षिक चारा उत्पादन प्रणाली

क) एन बी संकर+(लोबिया-बरसीम/ल्यूसर्न) चारा उत्पादन प्रणाली: यह चारा उत्पादन प्रणाली कृषि प्रौद्योगिकी आकलन और शोध संस्थान के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ एवं सप्तम जोन के लिए उपयुक्त है। ऐसी प्रणाली उन क्षेत्रों में उपयोगी है जहां डेयरी आस-पास के क्षेत्रों में विकसित है और व्यावसायिक पैमाने पर दुग्ध उत्पादन किया जाता है।

क्षेत्र I	पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर
क्षेत्र II	पश्चिम बंगाल, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, बिहार, झारखंड
क्षेत्र IV	उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड
क्षेत्र VII	मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, ओडिशा

ख) गिनी घास/एन.बी. संकर+(बीन/लोबिया-ल्यूसर्न/बरसीम) चारा उत्पादन प्रणाली: यह प्रणाली जोन द्वितीय, छठी और आठवीं, जहां डेयरी तकनीक व्यावसायिक पैमाने पर आ गया है, विशेष रूप से शहरों के आस-पास और दूध बाहुल्य क्षेत्रों के लिए प्रासंगिक है। बरसीम, उत्तर मध्य और पूर्वी हिस्सों में उपयुक्त है जबकि ल्यूसर्न पश्चिमी और दक्षिणी भाग के लिए उपयुक्त है। चावल बीन, पूर्वी भाग में अच्छी तरह से उगाया जाता है, जबकि लोबिया बढ़ते क्षेत्रों में से अधिकांश में उगाया जा सकता है।

क्षेत्र II	पश्चिम बंगाल, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, बिहार, झारखंड
क्षेत्र VI	राजस्थान, गुजरात
क्षेत्र VIII	कर्नाटक, गोवा, तमिलनाडु, पांडिचेरी, केरल, लक्षद्वीप

विशेष लाभ : यह प्रणाली उपज में वृद्धि, चारा की गुणवत्ता में सुधार, हरे चारे की आपूर्ति, नियमित रूप से मिट्टी के भौतिक-रासायनिक गुणों में सुधार, अंतर पंक्ति स्थान के कुशल उपयोग, किसानों को नियमित रूप से रोजगार सृजन आदि सुनिश्चित करता है।

गैर-कृषि भूमि से चारा उत्पादन

वर्षा आधारित क्षेत्रों में 80 प्रतिशत पशुधन, सीमांत, छोटे और मध्यम वर्ग के किसानों के

पास है। अच्छे कृषि योग्य क्षेत्र में चारा उत्पादन की संभावनाएं निम्न हैं क्योंकि वहां अनाज फसलों, नकदी फसलों, और अन्य मानव विज्ञान गतिविधियों के लिए भूमि पर भारी दबाव रहता है। प्राकृतिक घास के मैदानों में अति चराई के कारण इनकी उत्पादकता में आई कमी एक बहुत बड़ी चुनौती है जिस पर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है। चरागाह में सुधार और स्थापना के लिए संभावित क्षेत्र उपलब्ध है जिसमें केवल जंगल 69.41 लाख हेक्टेयर (22.70 प्रतिशत), स्थायी चराई और चारागाह 10.90 लाख हेक्टेयर (3.60 प्रतिशत), खेती बंजर भूमि 13.66 लाख हेक्टेयर (4.50 प्रतिशत), परती भूमि 24.99 लाख हेक्टेयर (8.10 प्रतिशत), अन्य मौजूदा खाली भूमि 10.19 लाख हेक्टेयर (3.30 प्रतिशत) और अकृष्य बंजर भूमि 19.26 लाख हेक्टेयर (6.30 प्रतिशत) प्रमुख है।

चरागाह/वन-चरागाह का विकास और प्रबंधन : इसके अंतर्गत मिट्टी की नमी का संरक्षण, जल संचयन, बहुउद्देशीय प्रजातियों के पेड़ों और पंक्तिबद्ध तरीके से फलीदार पेड़ों का समावेश, आदि पहलुओं को शामिल करके वर्षा आधारित क्षेत्र से कुल बायोमास उत्पादकता में कई गुणा वृद्धि की जा सकती है।

चरागाह का विकास : घास, भूमि व्यापक क्षेत्र (18.04 लाख हेक्टेयर) जहां अनियोजित तरीके से असिंचित घास उगा रहे हैं, को फिर से ज्यादातर प्राकृतिक वनस्पति एवं चारा घास उगाकर उपयोगी बनाया जा सकता है। यह क्षेत्र देश के कुल क्षेत्रफल का 3.87 प्रतिशत है। इस श्रेणी की सबसे ज्यादा भूमि हिमाचल प्रदेश (33.7 प्रतिशत) और मध्य प्रदेश (6.2 प्रतिशत) में है।

स्थापित चरागाह में सुधार : मुख्यतः ऐसे क्षेत्रों में दो प्रकार से सुधार संभव है:-

i) गुणवत्ता और प्राकृतिक घास के मैदानों के संदर्भ में प्राकृतिक घास के साथ पंक्तिबद्ध तरीकों से फलीदार पेड़ों का समावेश एक महत्त्वपूर्ण बदलाव ला सकता है।

ii) गैर कृषि योग्य सूखे क्षेत्रों में स्थित चरागाहों में अधिकांश स्थानीय घास, हालांकि सहिष्णु, कम उपज क्षमता, कम प्रोटीन सामग्री और कम स्वादिष्ट है, परंतु इन मैदानों में पंक्तिदार फलीदार पेड़ों का समावेश इनकी उपयोगिता और पशुओं की उत्पादकता में गति ला सकता है।

हाइड्रोपॉनिक्स (मृदा रहित चारा उत्पादन प्रणाली)

हाइड्रोपोनिक्स बिना मिट्टी में दानों को कम समय में अंकुरित करके चारा पैदा करने की एक विधि है। यह भली-भांति स्वीकार किया गया तथ्य है कि डेयरी पशुओं को खिलाने के लिए अपने आहार में हरे चारे को शामिल किए बिना उनका उत्पादन अधूरा है। हरा चारा डेयरी पशुओं के लिए प्रधान खाद्य पदार्थ हैं। प्रति दिन 12-15 लीटर दूध का उत्पादन करने वाले डेयरी पशुओं को हरा चारा खिलाने से उनकी उत्पादकता बनी रह सकती है। डेयरी पशुओं के राशन में हरे चारे का समावेश दाना मिश्रण की मात्रा में कमी करके लाभ बढ़ाता है। इसलिए, किफायती और टिकाऊ डेयरी प्रबंधन के लिए, चारा उत्पादन अत्यधिक आवश्यक है।

हरा चारा उत्पादन की पारंपरिक विधि के लिए एक विकल्प के रूप में, हाइड्रोपॉनिक्स प्रौद्योगिकी खेत जानवरों के लिए चारा विकसित करने के लिए है। मिट्टी के बिना लेकिन पानी

या पोषक तत्वों से समृद्ध समाधान में बढ़ते बीज द्वारा उत्पादित हरा चारा हाइड्रोपोनिक्स हरा चारा के रूप में जाना जाता है। सरल तरीके से हम कह सकते हैं कि एक हाइड्रोपोनिक चारा प्रणाली आमतौर पर अलमारियों की एक रूपरेखा है जिस पर प्लास्टिक की ट्रे खड़ी कर बीज को रात भर भिगोने के बाद, बीज की एक परत ट्रे के आधार पर फैला देते हैं। बढ़ती अवधि के दौरान, बीज नम रखा जाता है, लेकिन संतृप्त नहीं। इनमें आमतौर पर स्प्रे सिंचाई के माध्यम से नमी के साथ आपूर्ति की जाती है। ट्रे में छेद के द्वारा अतिरिक्त पानी की निकासी की सुविधा भी रहती है। बीज भिगोने के बाद आमतौर पर 8 से 12 घंटे के भीतर अंकुरित होता है और 7 दिनों में 8 से 10 इंच उच्च घास कटाई की प्राप्ति हो जाती है।

हाइड्रोपोनिक्स चारा आसानी से पच जाता है और इसके द्वारा पोषक तत्वों और एंजाइमों पर होने वाली अतिरिक्त ऊर्जा खपत का बोझ हटने से यह ऊर्जा अतिरिक्त दूध उत्पादन और विकास के लिए प्रयुक्त हो जाता है। बढ़ती हुई चारे की समस्या के संदर्भ में यह तकनीकी एक वरदान है, क्योंकि हाइड्रोपोनिक चारे हेतु कम जगह की आवश्यकता होती है और यह मिट्टी खेती की तुलना में बेहद पौष्टिक चारा पैदा करती है।

लोकप्रिय पेड़

कई पेड़ों के पत्ते, विशेष रूप से शुष्क, अर्ध शुष्क क्षेत्रों और पहाड़ियों में जुगाली करने वाले पशुओं के लिए चारे के रूप में इस्तेमाल किए जा रहे हैं। सामान्य रूप से इन क्षेत्रों में, बकरियों के चारे की आवश्यकता का 60 प्रतिशत से अधिक झाड़ियों और पेड़ों के पत्ते से पूरा कर रहे हैं। भारत में कुछ चारे प्रति पेड़ प्रति झाड़ियों प्रति फली के उपलब्धता की अवधि के नीचे दी गई है (सारणी-8)।

सारणी-8 : भारत में चारे, प्रति पेड़, प्रति झाड़ियों एवं प्रति फली की उपलब्धता की अवधि

जाति	चारा उपलब्धता की अवधि	
	चारा पत्ती	फली चारा
अकेसिया निलोटिका	मई-फरवरी	मई-जून
अकेसिया टोर्टिलिस	मई-फरवरी	मई-जून
एलियंथस एक्सेल्स	मई-मार्च	
अल्बिज़िया अमारा	जून-मार्च	
अल्बिज़िया लब्बेक	अप्रैल-अक्टूबर	
अल्बिज़िया प्रोसेरा	जुलाई-मार्च	
बौहिनिया वरिएगेट	अप्रैल-नवंबर	
डॉल्बेरगीया सिस्सो	फरवरी-दिसंबर	
डाईक्रोस्टेचय सिनेरिया	जुलाई-अक्टूबर	अगस्त-दिसंबर
फायकस ग्लोमेराटा	दिसंबर-अगस्त	मार्च-जुलाई
हार्डवीकीया बैनाटा	अप्रैल-जनवरी	-
लूकीना ल्यूकॉसीफाला	जुलाई-दिसंबर	-

जाति	चारा उपलब्धता की अवधि	
	चारा पत्ती	फली चारा
पार्किंसोनिया एक्यूलेट	वर्ष भर	दिसंबर-मार्च
प्रोसोपिस सिनेरेरिया	वर्ष भर	जून-अगस्त
प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा	-	मार्च-मई
सेस्बेनिया ग्रान्डीफ्लोरा	जुलाई-नवंबर	-
ज़िज़िफस नुमुलारिया	वर्ष भर	दिसंबर-जनवरी

चारा उत्पादन की विभिन्न कृषि प्रणालियां

भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान (आईजीएफआरआई), झांसी ने देश के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों के लिए चारा उत्पादन प्रणालियां विकसित की हैं जिससे की बंजर और अनुपयोगी भूमि का सकारात्मक उपयोग हो सके। भारत में वर्तमान कृषि प्रणाली में चारे की खेती को एकीकृत करके काफी भूमि का इस्तेमाल जरूरी वानस्पतिक उत्पादन के लिए किया जा सकता है। वन संसाधन, बागवानी, आम संसाधन क्षेत्रों में फलीदार चारे को एकीकृत करके ना सिर्फ हरे चारे का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है बल्कि उपलब्ध चारे की गुणवत्ता में भी वृद्धि की जा सकती है। हरे चारे की उपलब्धता बढ़ाने के लिए निम्नलिखित कृषि प्रणालियां अत्यंत सहयोगी हो सकती हैं:-

बंजर भूमि में घास के मैदानों की स्थापना : आईजीएफआरआई, झांसी द्वारा विकसित प्रौद्योगिकियों के द्वारा बंजर भूमि में घास के मैदानों की स्थापना सफलतापूर्वक की गई। हालांकि, ऐसी भूमि में घास के मैदानों की मौजूदा फसल प्रणाली में चारा फसलों को एकीकृत करने की लिए अधिकाधिक अवसर हैं। ऐसी भूमियों में, वन, संयुक्त वन, बगीचे और अन्य बागानों में घास और फलीदार फसलें एकीकृत करने की बड़ी संभावनाएं हैं। कुल चारा उत्पादन को बढ़ाने के अनेकानेक लाभों के साथ-साथ जंगल के तहत बढ़ते क्षेत्र के लिए संयुक्त वन प्रबंधन के क्षेत्रों में वन-वृक्ष/ बागवानी चारागाह प्रौद्योगिकी लागू करने की अपार क्षमता है।

घास के मैदानों का विकास : घास के मैदानों को दो समूहों में (प्राकृतिक और बोया गया क्षेत्र) वर्गीकृत किया जाता है। प्राकृतिक घास के मैदानों में फलियां शामिल करने से उनकी गुणवत्ता में सुधार लाया जा सकता है। घास के मैदानों में प्रमुख रूप से उगने वाली फलियों में से स्टाइलोसेनथस हैमाटा, एस. सीब्राना, अलीसीकॉर्पस रुगोसस, ऐटाईलोसिया स्कारबाइओइड्स, अपराजिता, डिसमोडियम टोरटोसम, ग्लाइसिन जवनिका, लबलब पुर्पुरेस, मेक्रोप्टिलियम अट्रोपर्पुरम, एम. लेथयरॉइड्स, मिमोसा एनविस, स्टिज़ोलोबिम ड्रिनीअनुम, स्टाइलोसेन्थस हूमिलिस, एस. गुइनेन्सिस, सेस्बेनिया सेसबन और विग्ना लियूटीओला प्रमुख हैं। बोया गया क्षेत्र प्रति स्थापित चराई या घास के मैदानों में जहां सिंक्रस सिलिएरिस, सी. सेटीगेर्स, क्लोरिस गयाना, पेनीकम ऐंटिडोले और यूरोकला मोसंबिसाइंसिस की घास मौजूद थी, स्टाइलोसेनथस हामटा, एस. स्काब्रा, और एस.विस्कोसा का चारा लगाने से प्रति हेक्टेयर चारा उपलब्धता की मात्रा 4-5 गुणा बढ़ने के साथ-साथ पशुओं के दुग्ध उत्पादन में भी आशातीत वृद्दि हुई।

वन-वृक्ष चारागाह प्रणाली की स्थापना : वन-वृक्ष चारागाह प्रणाली एक स्थाई आधार पर भूमि की उत्पादकता अनुकूलन, पौधे, मिट्टी और पोषक तत्वों के संरक्षण, चारा और ईंधन के लिए लकड़ी उत्पादन और पेड़ों के आदर्श संयोजन की बढ़ोत्तरी करने के लिए संदर्भित करता है। इसमें फिर से वृक्षारोपण, प्रतिस्थापन या वांछनीय प्रजातियों द्वारा मौजूदा वनस्पति में हस्तक्षेप करना भी शामिल है। सीमांत भूमि/बंजर भूमि, जो कुल भूमि का लगभग 50 प्रतिशत है, में वन-वृक्ष चारागाह प्रणाली शामिल करने से चारा उत्पादन बढ़ाने में सहायता मिल सकती है। इसे भी एक कम लागत वाली तकनीकी के अंतर्गत देखा जाता है जिसमें बंजर भूमि का उपयोग, चारा उत्पादन और ईंधन प्राप्त करने के लिए लकड़ी उत्पादन जैसे उद्देश्यों के साथ किया जाता है। अनावृष्टि या सूखे समय में पेड़ की पत्तियों को भी चारे के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

बागवानी चारागाह प्रणाली की स्थापना : भूमि की वह इकाई बागवानी चारागाह प्रणाली कही जाती है जिसमे चरागाह (घास या फलियां) के साथ फलों के पेड़ भी उगाए जाते हैं। यह प्रणाली इंसान के लिए सुरक्षात्मक भोजन (फल) की आपूर्ति और जानवरों के लिए चारे की आपूर्ति करती है जिससे कि फल और चारे दोनों की आपूर्ति और मांग के बीच के व्यापक अंतर को कम करने में मदद मिल सके। बागवानी चारागाह प्रणाली के लिए फलों के पेड़ का चयन कृषि जलवायु उपयुक्तता के अनुसार किया जाना चाहिए। फल प्रजातियों का चयन करने से पहले, उस क्षेत्र की कृषि जलवायु उपयुक्तता के अनुसार एक विशेष किस्म की चारा घास का भी चयन करना चाहिए। हालांकि, आंवला, बेर, अमरूद, इमली, बेल, आदि जैसे सहिष्णु बागवानी फल अपनी गहरी जड़ प्रणाली के साथ बारहमासी फल उपलब्धता के द्वारा बेहतर विकल्प प्रदान करते हैं।

चारा उपयोग और संरक्षण

पशुओं के लिए चारा एक ऐसा आहार है, जिसमें कि 18 प्रतिशत से अधिक कच्चे रेशे और कम सुपाच्य पोषक तत्वों में (40 प्रतिशत के आसपास नाइट्रोजन मुक्त रस (एन.एफ.ई.)) क्रूड प्रोटीन और ऊर्जा होती है। हालांकि, चारा, पोषक तत्वों का सबसे किफायती स्रोत है, विशेष रूप से ऊर्जा का। दुधारू पशुओं में विशेष रूप से दूध उत्पादन की पूरी आनुवंशिक क्षमता की अभिव्यक्ति के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले हरे चारे (जिसके कई अतिरिक्त लाभ है) की आवश्यकता होती है। चारा के कुशल उपयोग और संरक्षण के लिए आमतौर पर अपनाए जाने वाले कुछ तरीके निम्नलिखित हैं:-

पशुओं के लिए संतुलित आहार : एक दुधारू पशु के लिए एक संतुलित आहार के निर्माण में उन खाद्य पदार्थों का समायोजन किया जाता है जिससे कि पशु की दैनिक भोज्य आवश्यकताओं की आपूर्ति जरूरी मात्रा में की जा सके। एक संतुलित आहार में सभी आवश्यक पोषक तत्व मौजूद होते हैं जिनकी आवश्यकता 24 घंटे की अवधि के दौरान पशुओं को होती है। एक संतुलित आहार के द्वारा उचित मात्रा में पानी, ऊर्जा, रेशेदार कार्बोहाइड्रेट (जो रूमेण किण्वन को उत्तेजित करता है), गैर रेशेदार कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, आवश्यक फैटी एसिड, खनिज और विटामिन जैसे पोषक तत्वों का समावेश होता है जिनका एक दुधारू पशु प्रभावी ढंग से इस्तेमाल कर सके।

कुट्टी बनाना : कुट्टी बनाना एक भौतिक प्रसंस्करण क्रिया है जिसमें हरे या सूखे चारे को एक वांछित माप में संयंत्र के द्वारा काटकर एवं सही मात्रा में मिलाकर पशुओं को खिलाया जाता है। कुट्टी बनाने से जानवर के सेवन और पाचन में सुधार आता है।

यूरिया उपचार : सूखी घास और कम गुणवत्ता वाले चारे के उपचार के लिए यूरिया सबसे अधिक व्यवहारिक और सस्ती रासायनिक विधि है। सूखी घास या घास के तिनके की यूरिया उपचारण विधि के तहत, 4 किलोग्राम यूरिया को 40-65 लीटर पानी में अच्छी तरह मिला कर 100 किलोग्राम सूखी घास/तिनके पर स्प्रेयर के साथ छिड़काव किया जाता है। चारे की कमी/अवायवीय स्थितियों में ढेर लगाकर या साइलेज बनाकर 2-3 सप्ताह के लिए भंडारित किया जाता है।

पूर्ण आहार सूत्रीकरण : साधारणतया, पशुओं को दिन भर हरा और सूखा चारा काटकर दिया जाता है एवं एक बार या दूध देने के समय में दाना मिश्रण पूरक की तरह दिया जाता है। पूर्ण आहार प्रणाली में, जानवरों के लिए विभिन्न खाद्य सामग्री को एक निश्चित मात्रा में मिलाकर परोसा जाता है। व्यक्तिगत खाद्य सामग्री स्वाद और जरूरत के आधार पर मिलाया जाता है। ये पूरा राशन, चारा एवं दाना मिश्रण इष्टतम अनुपात में, पर्याप्त और संतुलित पोषक तत्वों को प्रदान करने में समर्थ होते हैं। यह पूरा मिश्रित राशन (मैश फार्म), छर्रों या फ़ीड ब्लॉक की तरह अलग-अलग रूपों में जानवरों को दिया जा सकता है।

क्षेत्र विशिष्ट खनिज मिश्रण : एक सामान्य खनिज मिश्रण में सभी आवश्यक खनिज शामिल होते हैं। लेकिन कुछ खनिज तत्वों (मैग्नीशियम, सल्फर, पोटैशियम, आयोडीन, कोबाल्ट, आयरन और मैंगनीज) की आवश्यकता हमेशा नहीं होती है क्योंकि ज्यादातर दिनचर्या वाले खाद्य पदार्थों से ही इनकी आपूर्ति हो जाती है। 8-10 किलो दैनिक दूध उत्पादन करने वाले पशुओं के चारे में ये पोषक खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहते हैं। साधारणतया उच्च दुग्ध उत्पादक पशुओं में अलग से खनिज लवण देने की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि इनके उत्पादन को बनाए रखने के लिए ज्यादा मात्रा में खनिज चाहिए जो सिर्फ भोज्य पदार्थ से नहीं मिल सकते। इसलिए, खनिज की खुराक में इन तत्वों का समावेश एक संतुलन पैदा करता है। देश के विभिन्न कृषि पारिस्थितिक तंत्र से पशुधन की खनिज स्थिति पर जानकारी को संकलित किया गया है और यह देखा गया कि पूरे देश में कॉपर, जिंक, मैग्नीशियम, आयरन, कोबाल्ट, इत्यादि की कमी है। खनिज मिश्रण में इन तत्वों का समावेश निश्चित ही पशुओं के उत्पादन संवर्धन में सहायक सिद्ध होगा।

साइलेज बनाना : पशुओं के लिए ये चारा का सबसे सस्ता स्रोत है और यह अन्य उपलब्ध चारा संसाधनों का प्रभावी उपयोग सुनिश्चित करता है। भारत एक उष्णकटिबंधीय मानसून देश होने के नाते, खरीफ चारा का अधिशेष बड़ी मात्रा में उत्पादन करता है जो जरूरत से अधिक रहता है। इसलिए खरीफ के दौरान अतिरिक्त चारे को साइलेज बनाकर उनके उपलब्ध पोषक तत्वों को संरक्षित करने के साथ-साथ रबी या सूखे के दौरान उचित स्तर पर पोषक तत्व प्रदान करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। साइलेज, हरा चारा विशेष रूप से गैर फली की अवायुवीय किण्वन द्वारा उत्पादित होता है (सारणी-9)। इसे चारे को अचार भी कहा जाता है। वांछनीय बैक्टीरिया, आमतौर पर लैक्टोबैसिलस और स्ट्रेप्टोकोकस के द्वारा पानी में घुलनशील कार्बोहाइड्रेट को लैक्टिक एसिड में परिवर्तित कर, वांछनीय पीएच (3.8-4.8) पर सभी माइक्रोबियल गतिविधियों को रोककर साइलेज बनाने में सहयोगी करता है।

सारणी-9 : महत्वपूर्ण चारा से साइलेज बनाने के लिए उपयुक्त फसल

चारा फसल	फसल कटाई का चरण
मक्का	50 प्रतिशत पुष्प खिलने के पश्चात
ज्वार	50 प्रतिशत पुष्प खिलने के पश्चात
जई	कली बनने के पश्चात
बाजरा	50 प्रतिशत पुष्प खिलने के पश्चात
बारहमासी घास	प्रत्येक 35-40 दिनों के पश्चात

सूखी घास बनाना : फसलों की घास को सुखाने के लिए दोनों फली और गैर-फलीदार फसल उपयुक्त होते हैं। ज्यादातर ल्यूसर्न, लोबिया, बरसीम, जई आदि को सूखी घास बनाने के लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है। ल्यूसर्न सबसे अच्छी घास मानी जाती है।

सूखी घास बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण बिंदु निम्नलिखित हैं :-

- तने और अधिक पत्तियों के साथ फसलों का चयन किया जाना चाहिए, क्योंकि पत्ते अधिक पौष्टिक होते हैं।
- फसल को फूल चरण के दौरान ही काटा जाना चाहिए, क्योंकि जब फसल परिपक्व होती है तो इसमें लिग्निन की मात्रा बढ़ जाती है और पोषक तत्त्व कम हो जाते हैं।
- हरे रंग का कम-से-कम नुकसान होना चाहिए ।
- घास को सुखाने की प्रक्रिया तीव्र होनी चाहिए ताकि शीघ्रातिशीघ्र घास सुख जाए और पोषक तत्वों का छरण भी ना हो।
- भंडारित सूखी घास में 51 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए।

फसल के अवशेष और चारा फसलों का घनत्वीकरण : फसल के अवशेष और घास अधिक घनत्व (40-70 किलोग्राम प्रति घन मीटर) के होते हैं, जिनके परिवहन में बहुत खर्च आता है और भंडारण में भी काफी जगह की आवश्यकता होती है। फसल के अवशेषों और पशुओं के कीमती खाद्य पदार्थों की भारी बर्बादी को रोकने के लिए घनत्वीकरण एक अच्छा विकल्प है। चारा फसल सहित चारा संसाधनों के प्रबंधन और ट्राली की लदाई के दौरान, ट्रकों, बैल, चारा सामग्री के साथ परिवहन राजमार्ग पर मुश्किलें पैदा करता है और दुर्घटना की आशंका भी बनी रहती है। अतः खाद्य संसाधनों के घनत्विकरण के द्वारा इन सभी समस्याओं से निजात पाई जा सकती है।

पत्ता चारा प्रौद्योगिकी : उष्णकटिबंधीय देशों में पेड़ों के पत्ते का उपयोग पशु आहार के रूप में एक व्यापक अभ्यास है और उष्णकटिबंधीय पेड़ों के भीतर भारी जैविक विविधता, पशु के भोजन के लिए उनके उपयोग का अवसर प्रदान करता है। भारत में, पेड़ों की कई प्रजातियां यथा फायकस स्पीशीज, नीम, ग्रेविया स्पीशीज, सेल्टिक्स स्पीशीज, सेस्बेनिया, प्रोस्पोपीस सिनेरेरिया, ज़िज़िफस स्पीशीज, फ्लाकूरटीया इंडिका, आदि चारे के रूप में पारंपरिक रूप से इस्तेमाल हो रही है। फलीदार चारा पेड़ों के पत्तों (स्टायलोसिन्थस, कसावा, लूसर्न एवं अल्फा अल्फा) के अलावा

अन्य पेड़ भी हैं, जो पत्ता भोजन बनाने के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण हैं और पशुओं के पालन के लिए इन पेड़ों में वाणिज्यिक क्षमता है।

प्रमुख बाधाएं

भारत में कम चारा उत्पादन के तहत ऐसे क्षेत्र है जहां जोतें छोटी हैं और किसानों की खाद्य फसलों पर निर्भरता अधिक है। छोटे किसानों के मध्य, पशुपालन मुख्यतः फसल के अवशेषों पर निर्भर है जो कि ज्यादा पोषक नहीं हैं। चराई पर अधिक निर्भरता की वरीयता के कारण चारा उत्पादन के लिए क्षेत्र के आबंटन हेतु किसान तैयार नहीं हैं। किसानों के बीच हरे चारे के फायदे के संबंध में जागरूकता कम है। किसानों को फलीदार चारे के महत्व के बारे में अधिक जानकारी नहीं होने के कारण वो इस तकनीकी को अपनाने में झिझकते हैं। भारत में पशुओं की बहुत बड़ी आबादी निवास करती है जिसके लिए चारे की मांग बहुत ज्यादा है और लोग दाना कृषि से चारा कृषि की तरफ जाने में संकोच करते हैं।

भविष्य में चारा उत्पादन बढ़ाने के लिए सिफारिशें

- चारा बीज के उत्पादन में वृद्धि और नए चारे संसाधनों की पहचान।
- मौजूदा खेती प्रणाली के भीतर चारा उत्पादन बढ़ाना।
- कृषि वानिकी प्रणालियों के तहत पशुपालन के लिए विभिन्न पेड़-चारा का उपयोग।
- आहार और चारा संसाधनों के विकास के लिए सीमांत और लघु किसानों को प्राथमिकता।
- खाद्य और नकदी फसलों के साथ बढ़ रही चारे की संभावनाओं को बढ़ाना।
- बंजर और अनुपजाऊ भूमि का चारा उत्पादन में प्रयोग।
- गांवों में चारा बैंकों की स्थापना।
- चारा ब्लॉकों में चारे का संरक्षण।
- यूरिया से पुआल/चारा का संवर्धन।
- कुट्टी-मशीन का प्रयोग।
- चारा घटक के शामिल किए जाने के साथ व्यापक जल विभाजन विकास कार्यक्रम।

सारांश

पशुधन क्षेत्र ग्रामीण आजीविका और रोजगार के लिए सदियों से कृषि के लिए महत्वपूर्ण है। हालांकि, पर्याप्त चारा और चारे की उपलब्धता देश के सभी भागों में एक प्रमुख चिंता का विषय है। चारा उत्पादन और उपलब्धता में क्षेत्रीय और मौसमी विभिन्नता है। भारत में 61.5 प्रतिशत हरे चारे, 21.8 प्रतिशत सूखे चारे और 47.1 प्रतिशत दाना मिश्रण की कमी है, जिसको पूरा करने के लिए सतत प्रयास की आवश्यकता है। पशुधन क्षेत्र में चारा उत्पादन के योगदान और महत्त्व के बावजूद, इस क्षेत्र में अब तक ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया है। साल भर हरे चारे की आपूर्ति जलवायु परिस्थितियों के कारण संभव नहीं है। चारा संरक्षण सूखी अवधि के दौरान और हरे चारे की मांग-आपूर्ति के बीच की खाई को भरने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा

सकते हैं। सूखी अवधि के दौरान कुछ कम अवधि वाले चारा फसलों को उगाने की संभावनाएं भी मौजूद हैं। सूखा प्रतिरोधी घास, फलियां, झाड़ियों और चारा पेड़, पशु चारा सुरक्षा प्रणाली (चारा बैंक), मौसम की भविष्यवाणी और पशुधन राहत कोष की स्थापना के विकास का रोपण, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण पशुधन के तनावों की जांच के लिए एक स्थाई सुविधा होनी चाहिए। कम-से-कम पोषक तत्वों की आवश्यकता के आधार पर पशुओं की विभिन्न श्रेणियों को ध्यान में रखकर उनका खाद्य निर्णय लिया जाना चाहिए।

संदर्भ

अग्रवाल, आर के, पलसानिया, डी आर एवं सिंह, जे पी. 2014. फोडर प्रोडक्शन सिनेरियो इन इंडिया : ऍन ओवरव्यू. इन नेशनल सेमिनार ऑन न्यू डायमेंशनल ऐपरोचेज़ फार लाइवस्टॉक प्रोडक्टिविटी एंड प्रॉफिटेबिलिटी एनहांसमेंट अंडर एरा आफ क्लाइमेट चेंज जनवरी 28-30, 2014. पीपी. 145-154.

जखमोला, आर सी. 2010. फीडिंग एंड मैनेजमेंट स्ट्रेटेजीज फार स्माल रुमिनेंट्स ड्यूरिंग स्ट्रेसफुल कंडीशन्स आफ ड्रॉट इन नेशनल सेमिनार ऑन स्ट्रेस मैनेजमेंट इन स्माल रूमिनंट प्रोडक्शन एंड प्रोडक्ट प्रोसेसिंग 29-31, जनवरी 2010, पीपी. 21.

कुमार, के एवं पासवान, वी के. 2012. फीडिंग स्ट्रेटेजी फार लाइवस्टॉक ड्यूरिंग नेचुरल डिजास्टर - ए रिव्यु लाइवस्टॉकलाइन, 5 : 14-18.

मैन्युअल आन फोरेज प्रोडक्शन, 2013 यूटिलाइजेशन एंड कंजर्वेशन, आईजीएफआरआई, झांसी, यू पी, टेक्निकल बुलेटिन नंबर-1.

पान, एस. 2014. क्लाइमेट चेंज : इम्पोर्टेंस एंड इम्प्लीकेशन इन लाइवस्टॉक प्रोडक्शन विथ पर्टिक्युलर रिफरेन्स टू इंडियन सिनेरियो. इन नेशनल सेमिनार ऑन न्यू डायमेंशनल अप्प्रोचज फार लाइवस्टॉक प्रोडक्टिविटी एंड प्रॉफिटेबिलिटी एनहांसमेंट अंडर एरा आफ क्लाइमेट चेंज. जनवरी 28-30, पीपी. 76-90.

पंकज, पी के एवं रमण, डी बी वी. 2013. क्लाइमेट रेसिलिएंट स्माल रुमिनेंट प्रोडक्शन इन ड्राइलैंड्स. इन क्लाइमेट रेसिलिएंट स्माल रूमिनंट प्रोडक्शन (एडीटेड. साहू एवं सहयोगी). पब्लिश्ड बाई निक्रा एंड सीएसडब्लूआरआई. पीपी. 69-74.

रामचंद्र, के एस. 2009. लाइवस्टाक मैनेजमेंट इन ड्राउट सेकंड इंडिया डिजास्टर मैनेजमेंट कांग्रेस, विज्ञान भवन, नई दिल्ली, 4-6, नवंबर, 2009.

सिंह, पी के एवं चंद्रमोनी. 2010. फीडिंग आफ फार्म एनिमल्स ड्यूरिंग स्कारसिटी. समव्स डेरी ईयर बुक, पीपी. 93-95.

सोरेन, एन एम. 2012. न्यूट्रिशनल मनिपुलेशन्स टू ऑप्टिमाइज़ प्रोडक्टिविटी ड्यूरिंग एनवायर्नमेंटल सट्रेस्सेस इन लाइवस्टॉक. इन एनवायर्नमेंटल स्ट्रेस एंड एमएलियोरेशन इन लाइवस्टॉक प्रोडक्शन (एडीटर्स. सेजीण एवं सहयोगी). स्प्रिंगर वेरलग बर्लिन हेइडेलबेर्ग. पीपी. 181-209.

थोर्नटन पी, हेर्रेरो, एम, फ्रीमैन, ए, मवई, ओ, रेगे, इ, जोंस, पी एवं मकडेर्मोट, जे 2008. वल्नेरेबिलिटी, क्लाइमेट चेंज एंड लाइवस्टॉक-रिसर्च अपोरचुनिटीज एंड चैलेंजेज फार पावर्टी अलेविएशन". इलरी, केन्या.

विहान, वी एस, गुरुराज, के एवं कुमार, ए. 2010. बायोटिक एंड आबिओटिक सट्रेस्सेस एंड स्माल रूमिनंट डिसीसेस. इन नेशनल सेमिनार आन स्ट्रेस मैनेजमेंट इन स्माल रूमिनंट प्रोडक्शन एंड प्रोडक्ट प्रोसेसिंग, 29-31 जनवरी 2010. पीपी. 103.

★★★

9

जलवायु परिवर्तन के परिपेक्ष्य में उच्च लचीलापन एवं टिकाऊपन के लिए कृषिवानिकी

- जी राजेश्वर राव एवं आर पी द्विवेदी

परिचय

जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल (आईपीसीसी) से प्राप्त सूचना के अनुसार सन 2004 में जमीन के उपयोग में बदलाव तथा वानिकी के द्वारा संयुक्त रूप में 17 प्रतिशत कुल ग्रीनहाउस गैस का उत्सर्जन हुआ। इसमें वनों की कटाई, खेती के लिए जमीन का शोधन विशेषकर फसल अवशेष जलाना शामिल है। सन 2004 में ग्रीन हाउस उत्सर्जन में अकेले कृषि का योगदान 14 प्रतिशत रहा है। इसमें मुख्यतः खेती की जमीन का प्रबंधन, मवेशियो द्वारा धान की खेती तथा जैव अवशेष का जलाना मुख्य कारण है। मानव की वैश्विक खाद्य प्रणाली, उर्वरक निर्माण से खाद्य भंडारण तथा पैकेजिंग इत्यादि से 19-29 प्रतिशत ग्रीन हाउस गैस का उत्सर्जन होता है। इस प्रकार वैश्विक तापमान में कमी करने के लिए ग्रीन हाउस गैसों की वायुमंडलीय सांद्रता विशेष रूप से कार्बनडाईआक्साइड कम करने पर जोर दिया जाता है। जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन का तात्पर्य प्रकृति एवं मानव का जलवायु के प्रति समायोजन करना है जिससे जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचा जा सके तथा लाभप्रद अवसरों को प्राप्त किया जा सके।

जलवायु परितर्वन पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। हाल के दिनों में दुनिया का ध्यान जलवायु परिवर्तन के प्रति ज्यादा आकर्षित हुआ है। विभिन्न स्तरों पर परिणामों, जटिलताओं और मानव प्रेरित जलवायु परिवर्तन की गंभीरता को समझने के लिए दुनिया भर में सम्मेलनों, विचार-विमर्श, अनुसंधान गतिविधियां एवं कार्रवाई योजना आदि माध्यमों से प्रयास जारी हैं। पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तन का गंभीर मुद्दा आज मानव जीवन को प्रभावित कर रहा है। विकसित देशों में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के द्वारा तापमान को बढ़ाने के लिये आमतौर पर ग्लोबल वार्मिंग के रूप में जिम्मेदार माना जा रहा है। ग्रीन हाउस गैसों के अलावा कार्बनडाईआक्साइड गैस सबसे प्रमुख है तथा अन्य महत्पूर्ण गैसें जैसे मीथेन एवं नाइट्रस आक्साइड को ग्लोबल वार्मिंग का कारण माना जा रहा है।

पर्यावरण के विकृत होने पर गंभीर चिंता प्रकट की जा रही है। पारिस्थितिकी पर गंभीर दुष्प्रभाव, वातावरण में कार्बनडाईआक्साइड में बढ़ोत्तरी, भूमि का चिंताजनक ह्रास, बार-बार अकाल पड़ना, बाढ़ और गंभीर प्रदूषण जैसी समस्याएं वन संसाधनों के समाप्त होने का ही

परिणाम है। इन दुष्प्रभावों को रोकने में कृषिवानिकी अत्यंत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। कृषिवानिकी प्रणाली से वनाच्छादित क्षेत्र की बढ़ोत्तरी में सहायता मिलती है। इससे लोगों को अपेक्षित मात्रा में इमारती लकड़ी, फल, ईंधन, चारा तथा अन्न मिलता है। जिसके लिए वे परंपरागत रूप में वनों पर निर्भर रहते आए हैं। इस प्रकार, कृषिवानिकी से वनों पर दवाब कम होता है और उनके विकास तथा संरक्षण में मदद मिलती है। अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जो विभिन्न प्रकार के प्रदूषण से बुरी तरह प्रभावित हैं। वृक्ष विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों से हमारी रक्षा करते हैं। वे हमें धूल, गंदगी और भौतिक वायु प्रदूषण से बचाते हैं। आंकड़ों से पता चलता है कि एक हेक्टेयर घना वन पेड़ों के द्वारा लगभग 50 टन धूल को साफ कर देता है और उसके दुष्प्रभावों से मानव की रक्षा करता है। पेड़ों से ध्वनि प्रदूषण भी काफी नियंत्रित होता है।

हमारे देश की जनसंख्या एवं पशुधन की संख्या बहुत ही तेज गति से बढ़ रही है। देश के भू-भाग का क्षेत्रफल स्थिर होने के कारण प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में पशुधन एवं मनुष्यों की आबादी का दबाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। जिसकी वजह से कृषि योग्य भूमि आवास के लिए इस्तेमाल की जाने लगी है, जिसकी वजह से पर्यावरण को हम बुरी तरह से हानि पहुंचा रहे हैं। अब ऐसी जमीन बचती है जिस पर या तो किसी कारण से खेती नहीं कर सकते या वह भूमि खेती योग्य नहीं है। अतः भविष्य की अन्न, फल, लकड़ी, चारा एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऐसी बेकार पड़ी हुई भूमि को हमें उपयोग में लाना होगा। इसके लिए कृषिवानिकी एक वरदान के रूप में सि़द्ध हुई है। कृषिवानिकी पद्धति को अपनाकर देश में बेकार पड़ी हुई जमीन का उपयोग भली-भांति कर सकते हैं। इस प्रणाली के द्वारा किसान अपने ही खेत से विभिन्न प्रकार की आवश्यकता की वस्तुएं जैसे इमारती लकड़ी, ईंधन, कृषि यंत्र के लिए लकड़ी, हरा चारा, रेशम, शहद, अन्न, फल तथा कुटीर उद्योग हेतु कच्चा माल आदि प्राप्त कर सकता है।

कृषिवानिकी पद्धति से नत्रजन (नाइट्रोजन) स्थिर करने वाले पेड़ों जैसे सुबबूल, अंजन, शीशम, सिरस, नीम, बबूल आदि को लगाकर भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। दलहनी फसलों एवं वृक्षों की पत्तियों के द्वारा जीवांश पदार्थ को अधिक से अधिक मात्रा में भूमि में मिलाकर उर्वरा शक्ति में वृद्धि की जा सकती है। इसके साथ ही साथ रसायनिक खाद की मात्रा को कम किया जा सकता है। कृषिवानिकी पद्धति से भूमि का उपयोग बढ़ जाता है तथा फसल उत्पादन में होने वाले जोखिम घटते जाते हैं।

कृषिवानिकी

कृषिवानिकी जमीन के प्रबंधन की ऐसी पद्धति है जिसके अंतर्गत एक ही भूखंड पर कृषि फसलों और बहुउद्देशीय पेड़ों/झाड़ियों के उत्पादन के साथ-साथ पशुपालन भी किया जाता है। कृषिवानिकी पद्धति से जमीन की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जाता है। सीधे शब्दों में फसलों के साथ वृक्ष (फलदार, इमारती, ईंधन वाले) उगाने की पद्धति को कृषिवानिकी कहते हैं।

कृषिवानिकी के लाभ

- कृषि उत्पादन को सुनिश्चित करना एवं खाद्यान्न को बढ़ाना।
- मृदा क्षरण में नियंत्रण।

- भूमि सुधार।
- ईंधन एवं इमारती लकड़ी की आपूर्ति करना।
- कुटीर उद्योगों को बढ़ाने के लिए अधिक साधन जुटाना एवं रोजगार के अधिक अवसर प्रदान करना।
- पर्यावरण की सुरक्षा।
- पशुओं के लिए साल भर अच्छे गुणों वाले चारे प्रदान कर उनकी उत्पादन क्षमता को बढ़ाना।
- ऊसर एवं बीहड़ भूमि का सुधार करना।
- फलों के उत्पादन को बढ़ाना।
- जलाऊ लकड़ी की आपूर्ति करके गोबर को ईंधन के रूप में प्रयोग करने से रोकना तथा इसे खाद के रूप में उपयोग करना।

कृषिवानिकी पद्धतियां

हमारे देश में कृषिवानिकी की निम्नलिखित प्रमुख पद्धतियां प्रचलित हैं। किसान अपनी सुविधानुसार ये पद्धतियां अपना सकते हैं:-

- **कृषि-वन पद्धति:** इस पद्धति में कृषि फसलों के साथ-साथ चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी, देने वाले पेड़ों को लगाते हैं।
- **कृषि-उद्यानिकी पद्धति :** इस पद्धति में कृषि फसलों के साथ फलदार पेड़ों को लगाया जाता है।

बेर आधारित कृषिवानिकी

आंवला आधारित कृषिवानिकी

- **कृषि-वन-उद्यानिकी पद्धति:** इसमें फसलों के साथ-साथ फलदार तथा चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी प्रदान करने वाले वृक्षों को उगाया जाता है।
- **वन-चारागाह पद्धति:** इस पद्धति में चारा प्रदान करने वाली घास को दलहनी फसलों सहित वृक्षों को भी लगाया जाता है। यह पद्धति ऐसी जमीन पर अपनाते हैं जहां खेती (फसलें) नहीं की जा सकती हो।
- **उद्यानिकी-चारागाह पद्धति:** इसमें चारा प्रदान करने वाली घासों के साथ-साथ फलदार वृक्षों को लगाते हैं। इसी पद्धति को बेकार पड़ी जमीन पर अपनाते हैं।
- **कृषि-वन-चारागाह पद्धति:** इस पद्धति में खेती योग्य जमीन में वृक्षों के साथ-साथ जमीन के कुछ हिस्सों में कृषि फसलें तथा कुछ भाग में चारा वाली घासों को लगाते हैं।
- **कृषि-उद्यानिकी-चारागाह पद्धति:** इस पद्धति में खेती योग्य जमीन में फलदार वृक्षों के साथ-साथ कृषि फसलें तथा जमीन के कुछ हिस्सों में चारा प्रदान करने वाली घासों को लगाते हैं।
- **मेड़ (बाउंड्री) वृक्षारोपण:** इस पद्धति में खेती योग्य जमीन पर खेत के चारों तरफ वृक्षों को लगाते हैं।

बाउंड्री वृक्षारोपण-यूकेलिप्टस

वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए बड़े-बड़े समझौते किए जा रहे हैं। जलवायु परिवर्तन ने जहां पर्यावरण को प्रभावित किया है, वहीं पर अनाज, दलहनी फसलें और फल भी अछूते नहीं हैं। एक तरफ तो अनियंत्रित प्रकृति, पैदावार पर असर डाल रही है, तो दूसरी ओर फलों एवं अनाजों को बेस्वाद भी कर रही है। दुनिया भर में जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के खतरों का अध्ययन किया जा रहा है। अभी तक जो भी अध्ययन सामने आए हैं उनका परिणाम मानव जीवन के लिए अत्यधिक घातक होने वाला है। वैश्विक तापमान में वृद्धि ने अब अपना असर दिखाना शुरू कर दिया है। कल तक जो बात सिर्फ बहस तक सीमित थी अब उसके दुष्परिणाम हमारे सामने आने लगे हैं। बेमौसम बारिश, सूखा, बाढ़, अत्यधिक ठंड और गर्मी से मानव जीवन तो क्या जीव-जंतु और वनस्पतियां तक प्रभावित हो रही हैं। यह परिस्थितियां केवल कुछ देशों तक सीमित नहीं हैं, प्रकृति की मार भौगोलिक सीमाओं को खत्म कर चुकी है। प्राकृतिक आपदाओं की बाढ़ ने विकसित और विकासशील देशों को एक श्रेणी में ला दिया है। जलवायु परिवर्तन सिर्फ मौसम को ही क्षति नहीं पहुंचा रहा है, बल्कि समूचा पारिस्थितिकी तंत्र भी इससे प्रभावित हो रहा है। इंटरनेशनल सेंटर फार ट्रॉपिकल एग्रीकल्चर द्वारा किए गए एक अध्ययन से यह बात सामने आई है कि अगले कुछ दशकों में कई अनाजों एवं फलों की पैदावार में कमी और उनकी गुणवत्ता व स्वाद पर असर पड़ने वाला है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह बदलाव हमारे जीवन को निश्चित ही प्रभावित करेगा।

जलवायु परिवर्तन एवं इसके लक्षण

जलवायु आमतौर पर एक ही स्थान पर "औसत मौसम" के रूप में परिभाषित है। इसमें तापमान, वर्षा (बारिश या बर्फ), आर्द्रता, हवा तथा मौसम आदि के अन्य घटक सम्मिलित हैं। जलवायु के पैटर्न पर मानव जीवन, प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र, अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति आदि निर्भर करते है। हमारी जलवायु में तेजी से कई विघटनकारी प्रभाव देखे जा रहे हैं, जो कि पिछले 2000 वर्षों में सर्वाधिक तेज हैं। वातावरण में कार्बनडाईआक्साइड तथा ऊष्मा को रोकने वाली अन्य गैसें बढ़ रही हैं, जिसके कारण पृथ्वी की सतह का तापमान लगातार बढ़ रहा है। पृथ्वी की सतह का तापमान बढ़ने से समुद्र का जल स्तर बढ़ रहा है। ग्लेशियरों की बर्फ तेजी से पिघल रही है। गर्मी की घटनाएं अपने चरम पर हैं तथा आग, सूखा, तूफान, बारिश और बाढ़ आदि प्राकृतिक आपदाएं बढ़ रही हैं। इन घटनाओं में वृद्धि से मानव स्वास्थ्य, जंगल, कृषि उत्पादन, मीठे पानी की आपूर्ति, प्राकृतिक संसाधन, अर्थव्यवस्था तथा हमारे जीवन से जुड़े हुए अन्य क्षेत्रों में गतिरोध पैदा हो रहा है। ये सारी प्रणालियां जलवायु से जुडी हुई हैं, जिनके द्वारा खाद्य उत्पादन, उपलब्धता, उपयोग हेतु पानी, स्वास्थ्य, पौधों तथा जानवरों के रहने तथा खाने आदि की समस्या उत्पन्न हो रही हैं। उदाहरण के लिए तापमान तथा वर्षा में परिवर्तन से पेड़-पौधों में पुष्पन तथा फल लगने की अवधि में बदलाव देखने को मिल रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण मूंगफली के उत्पादन में कमी आ रही है। दरअसल मूंगफली के उत्पादन को सही अनुपात में बरसात एवं सूर्य की रोशनी की आवश्यक्ता होती है। लेकिन बदलते तापमान के चलते मूंगफली को अब यह सब नहीं मिल पाता। मक्का पूरे विश्व में खाद्य पदार्थों में अपना प्रमुख स्थान रखती है। पानी की कमी और बढ़ते तापमान के चलते मक्का की खेती में कमी आ रही है।

इससे भी बुरी खबर यह है कि तापमान में जरा भी वृद्धि से मक्के का उत्पादन प्रभावित होता है। यदि तापमान मौजूदा अनुपात में बढ़ता रहा तो इससे मक्का का उत्पादन कम होना निश्चित है।

कुछ अल्पकालिक जलवायु परिवर्तन सामान्य हैं, परंतु लंबी अवधि के रूझान अब बदलते हुए मौसम तथा जलवायु की तरफ संकेत कर रहे हैं। जलवायु परिवर्तन अत्यधिक प्रदूषण, मानव की जैविक प्रक्रियाओं, पृथ्वी से प्राप्त सौर विकीरण, प्लेट-टेक्टोनिक्स और ज्वालामुखी विस्फोट के कारण हो रहा है। साथ ही साथ मानव गतिविधियां भी जलवायु परिवर्तन के लिए बहुत हद तक जिम्मेदार हैं। वैज्ञानिक सैद्धांतिक मॉडलों का उपयोग करके अतीत और भविष्य के जलवायु को समझने का प्रयास कर रहे हैं। कई वर्षों के जलवायु आंकडे ग्लेशियरों की बर्फ, हिमनदों तथा आइसोटोपों के अध्ययन से जलवायु परिवर्तन की गहरी जानकारी प्राप्त हो रही है।

जलवायु परिवर्तन के कुछ प्रमुख संकेत

- **चरम घटनाक्रम :** सन् 1950 के बाद भारत में रिकार्ड उच्च तापमान की घटनाओं में वृद्धि हुई है तथा कम तापमान की घटनाओं में कमी आई है। अभी हाल ही में भारत के विभिन्न राज्यों जैसे कि राजस्थान, गुजरात, उत्तराखंड तथा चेन्नई में अत्यधिक वर्षा देखने को मिली जो कि जलवायु परिवर्तन की पुष्टि करती है।

- **वैश्विक तापमान वृद्धि :** पृथ्वी की तीन प्रमुख सतहों का तापमान यह प्रदर्शित करता है कि सन् 1880 के बाद पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। पिछले 12 वर्षों में से 10 वर्ष सर्वाधिक गर्म रिकार्ड किए गए।

- **बर्फ की चादर सिकुड़ना :** वैज्ञानिक लगातार ध्रुवीय क्षेत्रों तथा हिमालय की चोटियों में बर्फ पिघलने की सूचनाएं दे रहे हैं। एल्प्स, हिमालय, एंडीज, अलास्का, अफ्रीका तथा रॉकी में ग्लेशियर सिकुड रहे हैं।

- **समुद्र का जल स्तर बढ़ना तथा समुद्र गर्म होना :** समुद्रों या महासागरों का तापमान भी लगातार बढ़ रहा है। इनकी ऊपरी सतह के 700 मी. (2300 फीट) गर्म हो चुके हैं। वैश्विक स्तर पर समुद्री जल स्तर पिछली सदी में लगभग 17 सेमी (6.7 इंच) बढ़ चुका है तथा इन घटनाओं में पिछले एक दशक में लगभग दोगुनी वृद्धि हुई है।

- **कृषि पर प्रभाव :** जलवायु परिवर्तन एवं कृषि दो परस्पर जुड़ी हुई प्रक्रियाएं हैं, जलवायु परिवर्तन विभिन्न तरीकों से कृषि को प्रभावित करता है जिसमें मुख्यतः औसत तापमान में वृद्धि, अत्यधिक वर्षा, सूखा, जलवायु की चरम सीमाएं (ऊष्मीय तरंगे), कीट तथा रोगों में वृद्धि, वातावरणीय कार्बनडाईआक्साइड में वृद्धि, पृथ्वी की सतह पर ओजोन की सांद्रता में परिवर्तन, खाद्य पदार्थों की पोषक तत्वों की गुणवत्ता में कमी तथा समुद्री जल स्तर बढ़ना प्रमुख हैं। 21 वीं शताब्दी में तेजी से जलवायु परिवर्तन तथा इसके प्रभावों में अत्यधिक वृद्धि देखी जा रही है। अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि के साथ मिलकर जलवायु परिवर्तन ने किसी युद्ध की तुलना में भी अधिक लोगों को प्रभावित करेगा।

जलवायु परिवर्तन का भारतीय कृषि पर प्रभाव

- तापमान में वृद्धि, वातावरणीय कार्बनडाईआक्साइड में वृद्धि तथा सिंचाई हेतु पानी की अनुपलब्धता के कारण ज्यादातर अनाजों के उत्पादकता में कमी।
- तापमान में वृद्धि के कारण ज्यादातर खाद्य फसलों की पैदावार में कमी।
- वर्षा आधारित क्षेत्रों में पादप वृद्धि समय कम होना।
- चरम जलवायु में वृद्धि।

जलवायु से विभिन्न घटक बहुत गहराई से जुड़े हुए हैं। जलवायु में थोड़े से परिवर्तन से ही फसलों पर बहुत घातक प्रभाव होने लगते हैं (चित्र-1)। वैश्विक तापमान वृद्धि से अत्यधिक सूखे की घटनाएं बढ़ रही हैं और निकट भविष्य में समूचे विश्व में इन घटनाओं में और अधिक वृद्धि की आशंका की जा रही है। सूखे के कारण फसलें खराब होने की संभावना है। साथ ही साथ पशुओं के लिए चारागाहों एवं चारे की किल्लत निकट भविष्य में विकराल रूप ले सकती है। वैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रकार की घटनाएं यदि लगातार होती रहीं तो मानव स्वास्थ्य, जंगलों, कृषि, साफ पानी के स्रोतों के साथ-साथ हमारे प्राकृतिक संसाधनों, अर्थव्यवस्था तथा प्रकृति एवं मानव जीवन पर इनका दुष्प्रभाव पड़ना निश्चित है।

चित्र-1ः वर्ष 2015 में बेमौसम बारिश तथा ओलावृष्टि से झांसी के किसानों की फसल की क्षति का एक दृश्य

कृषि क्षेत्र एवं किसानों से संबंधित मुख्य चिंता के विषय

अभी तक के शोधों एवं अध्ययनों से यह पता चलता है कि जलवायु परिवर्तन से गर्मियों में आने वाले मानसून में देरी होगी तथा सर्दियों के मौसम में तापमान वृद्धि की घटनाएं देखी जाएंगी। विभिन्न माडलों के अध्ययन एवं विश्लेषणों तथा पादप दैहिकी एवं सस्य विज्ञान के अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि तापमान में वृद्धि से फसल उत्पादन कम हो जाएगा। बढ़ते हुए तापमान एवं कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा तथा कम वर्षा अथवा सूखे एवं अतिवृष्टि की संभावनाएं बढ़ सकती हैं। जलवायु परिवर्तन से सिंचाई के साधनों में कमी होना भी सुनिश्चित है। वर्षा आधारित कृषि के साथ-साथ नहरों, कुंओं एवं नदियों का पानी भी सीमित हो जाएगा जिससे सिंचाई की समस्या और गंभीर हो जाएगी (चित्र-2)।

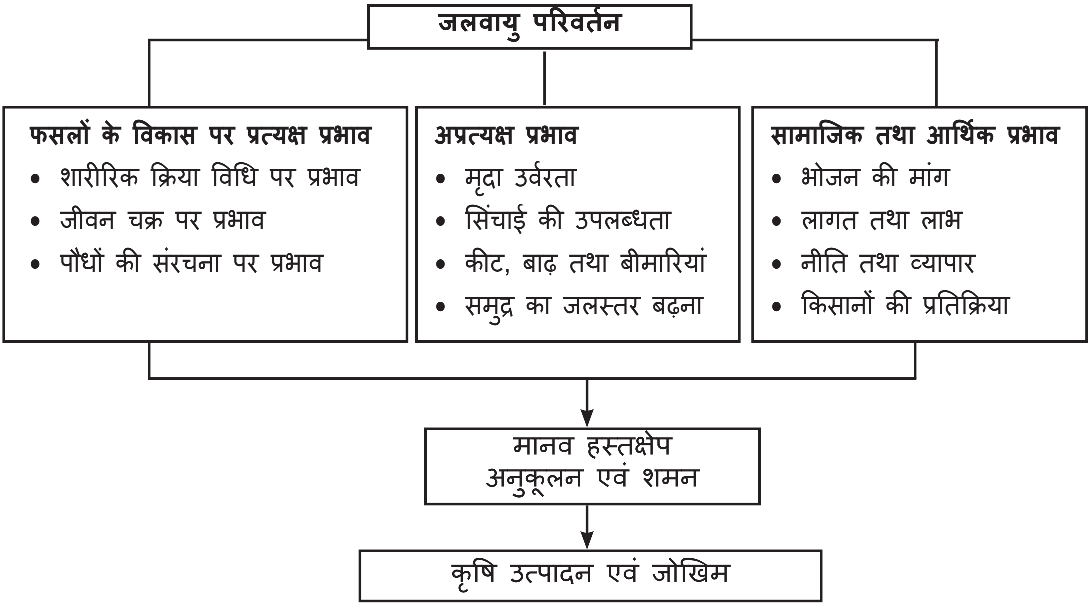

चित्र-2 : जलवायु परिवर्तन का फसलों के विकास पर प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष एवं सामाजिक तथा आर्थिक प्रभाव

मृदा की गुणवत्ता में भी दिनों-दिन गिरावट हो रही है। तापमान में वृद्धि तथा वर्षा का पैटर्न बदलने से मृदा की पानी को रोकने की क्षमता में कमी आ रही है। इसके साथ ही साथ मृदा में अपवाह और कटाव, पोषक तत्वों के चक्र आदि पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। समुद्र का जल स्तर बढ़ने से निचले क्षेत्रों में नमक की मात्रा बढ़ रही है जिससे मृदा उपज कम हो रही है तथा भूमि क्षीण एवं अनुपयोगी हो रही है।

अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि वातावरणीय तापमान में 2 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से वैश्विक स्तर पर ज्यादातर फसलों का उत्पादन कम हो जाएगा। अधिक उत्पादन वाले क्षेत्र (जैसे कि उत्तर भारत) इससे कम प्रभावित होंगे जबकि जिन क्षेत्रों में उत्पादन क्षमता कम है, वे अधिक प्रभावित हो सकते हैं। उत्पादन में कमी ज्यादातर उन क्षेत्रों में देखी जा रही है जहां वर्षा आधारित कृषि की जाती है तथा जहां सीमित पानी की आपूर्ति है क्योंकि इन घटनाओं से मुकाबला करने की कोई भी क्षमता एवं तंत्र अभी तक विकसित नहीं हो पाया है। आधारभूत जलवायु द्वारा उपज में अंतर आ रहा है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उप उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों की अपेक्षा गेहूं की पैदावार में ज्यादा कमी देखने को मिल रही है। इससे यह सिद्ध हो रहा है कि ज्यादा गर्म क्षेत्रों में फसलों को ज्यादा नुकसान होने की संभावना है।

भारत में जलवायु परिवर्तन (मुख्यतः वर्षा में कमी एवं दिन की लंबाई बढ़ने) से विशेषकर वर्षा आधारित क्षेत्रों में उपज कम हो रही है। कुछ विशेष चरणों पर सिंचाई करके उपज को बढ़ाया जा सकता है। पिछली हरित क्रांति तथा तकनीकी प्रगति के पूर्व अनुभवों को देखते हुए कृषि में अभी और उन्नति संभव है। उपज को थोड़ा सा तकनीकी सुधार करके बढ़ाया जा सकता है। अब कृषि क्षेत्रों में कुछ महत्वपूर्ण सुधारों की बहुत आवश्कता है जिसमें विशेषकर जल प्रबंधन, भूमि सुधार, तकनीकी प्रयोगों को बढ़ावा देना, कृषि क्षेत्र में विपणन तथा निवेश प्रमुख हैं।

जलवायु परिवर्तन को कम करने के उपाय तथा इसमें कृषिवानिकी का योगदान

कृषिवानिकी का अर्थ एक ही भूमि पर कृषि फसल एवं वृक्ष प्रजातियों को विधिपूर्वक रोपित कर दोनों प्रकार की उपज लेकर कृषकों की आय बढ़ाना। कृषिवानिकी के अंतर्गत काष्ठीय बहुवर्षीय प्रजातियां एक ही भूमि पर कृषि फसलों के साथ उगाई जाती है (चित्र-3)। यह पद्धति आर्थिक रूप से लाभप्रद, सामाजिक रूप से स्वीकार्य तथा समस्त भूमि सुधार प्रक्रियाओं का समेकित नाम है।

चित्र-3 : राष्ट्रीय स्तर पर अपनाई गई कुछ प्रमुख कृषिवानिकी प्रणालियां।

हमारे देश की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित है। प्राकृतिक आपदा तथा बाढ़ व सूखा से फसल नष्ट होने पर कृषकों को आर्थिक क्षति पहुंचती है तथा उनकी अर्थव्यवस्था की रीढ टूट जाती है। उत्पादन अधिक होने पर मूल्य न्यून हो जाने से कृषक को लागत भी प्राप्त नहीं होती है। कृषि के साथ वृक्ष रोपित करने से उपयुक्त समय व बाजार मूल्य प्राप्त होने पर काटने व बेचने की सुविधा है। इसके साथ ही साथ फसल के साथ रोपित वृक्ष प्राकृतिक आपदा को झेलते हुए कृषक के लिए निवेश व बीमा जैसे लाभकारी परिणाम सिद्व होते हुए आवश्यकतानुसार धन उपलब्ध करवाते हैं। कृषिवानिकी को अपनाकर कृषक खेती में विविधता लाकर अनाज के साथ ही ईंधन लकडी, कृषि औजारों की लकड़ी, पशुओं के लिए चारा आदि निवास के समीप खेतों से प्राप्त कर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ ही अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर सकते हैं। ईंधन के रूप में प्रयुक्त किए जाने वाले गोबर को जलाने से बचा कर खाद के रूप में प्रयुक्त किए जाने से कृषि उत्पादन बढाने के साथ ही रासायनिक उर्वरक में व्यय होने वाली धनराशि की बचत कर सकते हैं। संक्षेप में कृषिवानिकी अपनाने के निम्न फायदे हैं:-

- उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग कर अधिकतम व बहुतायत उत्पाद प्राप्त करना।
- कृषि उत्पादन बढ़ाने व आर्थिक उन्नति के साथ रोजगार के प्रत्यक्ष व परोक्ष अवसर प्रदान करने में सहायता करना।
- अकृष्य भूमि में सुधार व उसकी उत्पादकता में वृद्धि।

- बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी तथा कुटीर एवं लघु उद्योगों हेतु कच्चे माल की कमी का निवारण।
- उत्पादन में विविधता एवं प्राकृतिक आपदाओं व अन्न के अधिक उत्पादन के कारण विक्रय मूल्य में कमी से सुरक्षा।
- उपलब्ध प्राकृतिक वनों पर जैविक दबाव कम करना।
- प्रति इकाई भूमि से अधिक पैदावार प्राप्त करने व भूमि की उत्पादकता में वृद्धि।
- वृक्षावरण में वृद्धि कर भूमि एवं जल संरक्षण व पर्यावरण संतुलन स्थापित करना।
- ग्रामीण आंचल में उद्यमियों को प्रोत्साहन तथा वन आधारित लघु व कुटीर उद्योग की अर्थव्यवस्था को सशक्त करना।

छोटे तथा मंझले किसानों की जीविका को बढाने, जलवायु परिवर्तन को रोकने तथा किसानों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को मजबूत करने में कृषिवानिकी पद्धतियां महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर रही हैं। कृषिवानिकी पद्धतियों को अपनाने से जहां एक ओर वातावरणीय कार्बनडाईआक्साइड की बढ़ी हुई मात्रा को पेड़-पौधों द्वारा जैवभार के रूप में संरक्षित करके कम किया जा सकता हैं वहीं दूसरी ओर पारिस्थितिकी तंत्र को सुदृढ़ एवं खाद्य पदार्थों के पोषण को भी बढ़ाया जा सकता है। अनुसंधान आंकड़े दर्शाते हैं कि बेकार जमीन को वन चरागाह पद्धति के द्वारा विकसित किया जा सकता है तथा भेड़ों को प्रोटीन प्रदान करने में वन चरागाह पद्धति वर्षा आधारित क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती हैं।

कृषिवानिकी पद्धतियां जलवायु परिवर्तन के शमन और अनुकूलन के साथ बेहतर आजीविका भी प्रदान करने में सहायक है। इसीलिए कृषिवानिकी पद्धतियों को स्मार्ट जलवायु पद्धतियां भी कहते है। कृषिवानिकी पद्धतियों को अपनाने से खेतों के सूक्ष्म पर्यावरण में सुधार होता है, मृदा का कटाव रुकता है तथा मृदा में पोषक तत्वों की गुणवत्ता में भी सुधार होता है। अनाज के साथ-साथ ईंधन एवं फर्नीचर के उपयोग हेतु लकडी उपलब्ध होती है तथा पशुओं के लिए चारे का वर्ष भर उत्पादन होता है। विपरीत परिस्थितियों तथा मौसम में जब फसलें नष्ट हो जाती है अथवा फसल उत्पादन कम हो जाता है तब कृषिवानिकी पद्धतियों द्वारा किसानों को अतिरिक्त आय का साधन उपलब्ध होता है तथा उनकी आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति होती है।

कृषिवानिकी एक ऐसी भूमि उपयोग प्रणाली है जिसमें वर्ष भर उत्पादन लिया जा सकता हैं तथा मृदा उर्वरता, पोषक तत्वों, प्रकाश उपयोगिता एवं जल संरक्षण को भी सुधारा जा सकता हैं। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कृषिवानिकी को जलवायु परिवर्तन से जूझने के उपाय के रूप में जाना जाता है। विभिन्न शोध परियोजनाओं के अंतर्गत राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय अनुसंधान केंद्र एवं संस्थाएं कृषिवानिकी का अध्ययन कर रही हैं। इसी क्रम में वर्ष 2014 में देश के लिए कृषिवानिकी नीति भी बनाई गई है जिससे कृषिवानिकी को अधिक से अधिक अपनाया जा सके तथा जलवायु परिवर्तनों के जोखिमों से बचा जा सके।

कृषिवानिकी में लगाए जाने वाले वृक्षों के गुण

- वृक्षों की बढ़वार तेजी से हो।
- बार-बार कटाई-छंटाई की सहन शक्ति हो।
- पेड़ों की जड़े गहरी जाने वाली हों, जिससे फसलों एवं पेड़ों को पोषक तत्व प्राप्त करने में स्पर्धा न हो।
- वृक्ष का फैलाव कम हो जिससे फसलों के ऊपर छाया का असर कम पड़े।
- पेड़ में शाखाएं कम निकलती हों।
- पेड़ों का पतझड़ ऐसे समय में हो कि फसल के ऊपर हानिकारक प्रभाव न पड़े।
- पत्तियां जमीन में गिरने के बाद मिट्टी में जल्दी सड़ जाएं।
- पेड़ वायुमंडलीय नाइट्रोजन (नत्रजन) स्थिर करने वाले हों जिससे भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि हो सके।
- देश मे केरल, ओडिशा आदि राज्यों में घर के आस-पास कृषिवानिकी प्रचलित है। इस पद्धति में घर के आस-पास पेड़ (ईंधन, फल, चारा आदि), फूल, औषधि, सब्जी, मसाला आदि वाले पौधे साथ-साथ लगाते हैं जिससे अनेक प्रकार की जरूरतों की पूर्ति होती है।
- पशुओं के खाने योग्य वृक्षों की पत्तियों में पौष्टिक तत्व अधिक होना चाहिए।
- वृक्षों का चुनाव करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उस क्षेत्र की सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय आवश्यकता की पूर्ति करने वाले हों।

जीविकोपार्जन में कृषिवानिकी का योगदान

कृषिवानिकी प्रबंधन से किसानों को स्वरोजगार के साधन प्राप्त होते हैं जिससे उनमें आत्मनिर्भरता आती है। कृषिवानिकी से साल भर कुछ न कुछ कार्य मिलता रहता है। जैसे पौधशाला की देख-रेख, पौधरोपण, कलम बांधना, निराई-गुड़ाई, रोग तथा कीड़े से बचाव हेतु दवा का छिड़काव, फलों की तुड़ाई, डिब्बाबंदी, बाजार में विपणन, गड्ढे खोदना, गोबर तथा कंपोस्ट खाद गड्ढ़ों में डालना, गोंद, छाल, पेड़ों के बीज, तथा ईंधन की लकड़ी इकट्ठा करना आदि। इस तरह कृषिवानिकी से स्वरोज़गार के साधन प्राप्त होते हैं। इसके साथ-साथ कुटीर उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति भी किसानों द्वारा की जाती है, जिससे उनमें आत्म निर्भरता प्राप्त होती है। इस प्रकार कृषिवानिकी के प्रबंधन में किसानों के खाली समय को उपयोग में लाया जा सकता है।

महिलाओं की सहभागिता

कृषिवानिकी द्वारा मौसम की विपरीत परिस्थितियों में भी फसल न होने पर फलों एवं बहुपयोगी वृक्षों से आय के रूप में ईंधन, फल, इमारती लकड़ी, चारा तथा कुटीर उद्योग हेतु सामग्री के रूप में ग्रामीण महिलाओं को रोजगार के अवसर मिलते हैं। ग्रामीण महिलाएं ईंधन की लकड़ी की कमी के कारण गोबर का इस्तेमाल कंडे बनाकर करती हैं। अगर ईंधन के रूप में प्रयोग होने वाले गोबर का प्रयोग खाद के रूप में इस्तेमाल हो सके तो प्रतिवर्ष 2 करोड़ टन

अन्न की अधिक उपज मिल सकती है। गांवों में 80 प्रतिशत ऊर्जा जलाऊ लकड़ी से ही मिलती है। किसान की घनिष्ठ सहयोगी उसकी पत्नी, बेटी या मां होती है। ग्रामीण महिला, पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खेत-खलिहान में रोजाना 8 से 9 घंटे खेती-बाड़ी के अनेक कार्यों में अपना हाथ बंटाकर अपने परिवार का बोझ हल्का करती है। विश्व की महिलाओं पर उपलब्ध सांख्यिकीय आंकड़ों के अनुसार महिलाओं द्वारा संपन्न कार्य घंटों में ग्रामीण महिलाओं द्वारा संपन्न किए गए कार्यों का समय लगभग दो-तिहाई रहा है। ग्रामीण महिलाएं, पुरुष के काम में 60 से 70 प्रतिशत सहायता करती हैं। जो काम पुरुष मुंह बनाकर करते हैं वह काम महिलाएं खुशी-खुशी आसानी से कर देती हैं और वह भी अपनी क्षमता से अधिक। इस प्रकार खेती में बीज बोने से लेकर अनाज भंडारण तक का कार्य ग्रामीण महिलाओं द्वारा ही संपन्न किया जाता है। कई बार कृषक काम पर शहर चले जाते हैं और कृषि का समस्त कार्य कृषक महिलाएं ही करती हैं। हमारे कृषि कार्य पूरी तरह महिलाओं पर आधारित हैं। समाज में उनका श्रम एवं योगदान व्यापक स्तर का रहा है। ये सुबह से शाम तक कृषि कार्यों में जुटी रहती हैं। यदि महिलाएं खेती-बाड़ी का कार्य न करें तो कृषि का क्या होगा?

इसके अलावा कृषक महिलाएं पशुओं की देखभाल, दूध निकालना, पशुओं की सफाई आदि में अपना योगदान देती हैं। कृषक महिलाओं का कार्य खेती-बाड़ी तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह पति, बच्चों व परिवार के अन्य सदस्यों के लिए भोजन बनाती हैं। बच्चों के लालन-पालन व गृह प्रबंधन, घर की सफाई व अन्य घरेलू कार्य भी प्रतिदिन करती हैं। इस प्रकार वे गृह-लक्ष्मी के साथ-साथ गृह एवं विश्व की अन्नपूर्णा भी हैं। कृषिवानिकी में महिलाओं की भागीदारी विभिन्न रूपों में है। विशेषकर कृषिवानिकी की विभिन्न पद्धतियों में महिलाओं की भागीदारी निम्नलिखित रूप में होती हैं : ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी कृषि-उद्यानिकी में नर्सरी तैयार करने, पौध लगानें, फसलों की जुताई तथा फलों की तुड़ाई तथा फसलों की कटाई तक है। फल वृक्षों एवं फसलों की देख-रेख में महिलाओं का बहुत बड़ा योगदान है। महिलाएं ईंधन की लकड़ी, चारा तथा वृक्षों से फल इकट्ठा करती हैं जो कि परिवार के आय के रूप में मददगार सिद्ध होता है। ग्रामीण महिलाएं फलों की सुरक्षा, तुड़ाई व गैर परंपरागत फलों को स्थानीय बाजार में बेचने का कार्य आसानी से करती हैं। इससे उन्हें स्व-रोजगार के अवसर मिलते हैं।

महिलाएं वृक्षों से पशुओं के लिए चारा तथा घरेलू ईंधन के लिए लकड़ी इकट्ठा करती हैं। इस पद्धति में एक ही भूखंड से ईंधन, इमारती लकड़ी खाद्यान्न, पशुओं के लिए चारा तथा फल प्राप्त होते हैं। महिलाओं को ईंधन इकट्ठा करने के लिए दूर-दराज नहीं जाना पड़ता है तथा पैदल चलने में श्रम की बचत होती है। वृक्षों से कच्चे माल को इकट्ठा करना तथा इसे स्थानीय बाजार में बेचने का कार्य भी महिलाओं द्वारा कुशलतापूर्वक किया जाता है। इनमें मुख्य हैं: शहद, छालें, तेंदू की पत्तियां, ईंधन, गोंद निकालना, पशुओं के लिए चारा तथा जड़ी-बुटियां आदि।

महिला स्वयं सहायता समूह

गांव स्तर पर महिलाओं के स्वयं सहायता समूह बनाने होंगे। इन समूहों में ग्रामीण महिलाएं कुटीर उद्योंगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। महिलाएं कृषिवानिकी उपज इकट्ठा कर कुटीर उद्योगों: जैसे कागज उद्योग, रबर उद्योग, मोम उद्योग,

शहद, फर्नीचर, कृषि यंत्र हेतु लकड़ी, लाख, रंग एवं वार्निश, कत्था, छालें बांस की टोकरियां, जड़ी-बुटियां तथा फल संरक्षण आदि के कार्यों में पूरा योगदान देती हैं। अतः ऐसे कार्यक्रमों के प्रबंधन में ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी से इन कुटीर उद्योगों का तो विकास होगा ही, साथ ही साथ ग्रामीण महिलाओं को भी रोज़गार के भरपूर अवसर मिलेंगे।

कृषिवानिकी प्रसार एवं परामर्श सेवाओं का सुदृढ़ीकरण

कृषिवानिकी क्षेत्र के समग्र विकास में कृषि प्रसार सेवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। कृषि प्रसार का कार्य मुख्यतः कृषि एवं इससे संबंधी विभागों द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रसार हेतु देश में बढ़ी संख्या में भारत सरकार के सहयोग से कृषि विज्ञान केंद्र (651) कार्यरत हैं। जलवायु परिवर्तन के बारे में कृषि विज्ञान केंद्रों के विषय विशेषज्ञों द्वारा ग्रामीण और किसानों को जागरूक करने की आवश्यकता है। देश में लघु एवं सीमांत कृषकों की संख्या 85 प्रतिशत है तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से यह किसान बहुत ज्यादा प्रभावित होते हैं। अतः देश के विभिन्न कृषि जलवायुवीय एवं आर्थिक क्षेत्रों को आधार मानकर प्राकृतिक संसाधनों, फसल पद्धतियों, कृषिवानिकी पद्धतियों एवं फसल उत्पादन की विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर कृषि विज्ञान केंद्रों का योगदान महत्वपूर्ण है। नवीनतम कृषि अन्वेषक के तीव्र संचार हेतु सूचना प्रौद्योगिकी एवं दूर संचार के प्रयोग को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। मानव संसाधन विकास हेतु कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं एवं कृषकों को शिक्षित करने एवं कौशल में वृद्धि हेतु समय-समय पर प्रशिक्षण संचालित किए जाने की जरूरत है। प्रशिक्षण हेतु कृषि प्रशिक्षण केंद्रों, कृषि विज्ञान केंद्रों, कृषि ज्ञान केंद्रों तथा कृषि विश्वविद्यालयों की आधारभूत सुविधाओं को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। प्रत्येक कृषि विश्वविद्यालय में कृषि तकनीकी सूचना केंद्र भी स्थापित/सुदृढ़ किए जाए। कृषि क्षेत्र में शोध संबंधी मुद्दों के प्रचार हेतु जनपद स्तर पर कृषि विज्ञान केंद्रों को नोडल केंद्र बनाया जाए। मोबाइल फोन आधारित प्रसार सेवाओं को प्रारंभ कर त्वरित गति से तकनीकी विस्तार, मौसम आधारित कृषि परामर्शों तथा विपणन सूचनाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने की आवश्यकता है ताकि जलवायु परिवर्तन और मौसम परिवर्तन के प्रभावों के बारे में किसान जागरूक हो सकें।

कृषिवानिकी हेतु बहुउपयोगी वृक्ष एवं उनकी उपयोगिता

क्रम.सं.	वृक्ष का नाम	उपयोगिता
1.	विलाइती बबूल (प्रोसोपिस जूलीफलोरा)	जलाऊ लकड़ी, कोयला, फलियों से चारा, नत्रजन स्थिरीकारक
2.	इजराइली बबूल (एकेसिया टारटीलिस)	जलाऊ लकड़ी, नत्रजन स्थिरीकारक
3.	हल्दू (एडिना कार्डिफोलिया)	कृषि औजार, जलाऊ लकड़ी,
4.	काला सिरस (अल्बिजिया अमारा)	जलाऊ व इमारती लकड़ी, नत्रजन स्थिरीकारक
5.	सफेद सिरस (अल्बिजिया प्रोसेरा)	कृषि औजार, बल्लियां, चारा, नत्रजन स्थिरीकारक
6.	नीम (एजाडिरेक्टा इंडिका)	जलाऊ व इमारती लकड़ी, चारा, औषधि एवं तेल
7.	सेमल (सिवा पेटेन्ड्रा)	फलियां, माचिस उद्योग रेशा एवं गोंद
8.	केजुरिना (केजुरिना स्पीसीज)	जलाऊ लकड़ी, वायु अवरोधक, नत्रजन स्थिरीकारक

क्रम.सं.	वृक्ष का नाम	उपयोगिता
9.	बॉस (बेम्बूसा स्पीसीज)	पशु चारा, घरेलू कार्य, घर निर्माण, मृदा संरक्षण
10.	महुआ (मधुका लेटिफोलिया)	बैलगाड़ी के पहिए, नाव निर्माण, फल-फूल, औषधि एवं बीज का उपयोग तेल व खली
11.	बकायन (मेलिया अजाडेरक)	पशु चारा, जलाऊ लकडी
12.	खैर (एकेसिया कटेचू)	जलाऊ व लघु इमारती लकड़ी, नत्रजन स्थिरीकारक
13.	बबूल (अकेसिया निलोटिक)	लकड़ी, गोंद, पशु चारा, कृषि औजार, नत्रजन स्थिरीकारक
14.	शीशम (डलबरजिया स्पीसिज)	पशु चारा, फर्नीचर हेतु लकड़ी, नत्रजन स्थिरीकारक
15.	सुबबूल (ल्यूसिना ल्यूकोसिफेला)	जलाऊ व लघु इमारती लकड़ी, नत्रजन स्थिरीकारक, चारा
16.	खेजरी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया)	लघु इमारती लकड़ी, पशु चारा
17.	देशी सिरस (अल्बिजिया लेबेक)	जलाऊ लकड़ी, कृषि औजार, चारा, नत्रजन स्थिरीकारक
18.	अंजन (हार्डविकिया वाइनाटा)	पशु चारा, इमारती लकड़ी, नत्रजन स्थिरीकारक
19.	करधई (डाइक्रोसटेकिस साइनेरिया)	जलाऊ लकड़ी, कृषि औजार, मृदा संरक्षण, पशुचारा

कृषिवानिकी हेतु उपयुक्त फलदार वृक्ष

क्रम.सं.	वृक्ष का नाम	उपयोगिता
1.	आंवला (इम्बलिका ओफिसिनेलिस)	मध्यम आकार वाला औषधीय फल, त्रिफला का महत्वपूर्ण घटक, जलाऊ लकड़ी
2.	बेर (जिजिफस मोरिशियाना)	मध्यम आकार, जलाऊ लकड़ी, पशुचारा, पौष्टिक फल
3.	सीताफल (एनोना एसक्यूमोसा)	मध्यम आकार, जलाऊ लकड़ी, पौष्टिक फल
4.	शहतूत (मोरस एल्वा)	मध्यम आकार, कीट पालन हेतु उपयोगी, स्वादिष्ट फल
5.	बेल (एगल मारमिलस)	मध्यम आकार वाला औषधीय फल, लघु इमारती लकड़ी
6.	फालसा (ग्रीविया एसीयाटिका)	मध्यम आकार वाला औषधीय फल
7.	शहजन (मोरिन्गा ओलिफेरा)	मध्यम आकार, पतझड़ फल, औषधीय तथा सब्जी
8.	आम (मेन्जिफेरा इंडिका)	बड़ा आकार, फल, जलाऊ व इमारती लकड़ी
9.	जामुन (सिजाइजियम क्यूमिनी)	बड़ा आकार, सदाबहार, फल, जलाऊ लकड़ी, बीज व छाल
10.	इमली (टमरिन्डस इंडिका)	बड़ा आकार, फल, पशुचारा, इमारती लकड़ी
11.	कटहल(आर्थोकार्पसहेट्रोफिलस	बड़ा आकार, फल एवं सब्जी
12.	चिरोंजी (वकनानिया लंजन)	मध्यम आकार, फल तथा लकड़ी
13.	कैथा(लीमोनीआ आसीडीसिस्मा)	बृहद आकार, फल तथा लकड़ी
14.	खिरनी (मेलिनकारा हेक्जेन्ड्रा)	मध्यम आकार, फल तथा लकड़ी
15.	अमरूद (सीजियम ग्वाजाभा)	मध्यम आकार, फल तथा लकड़ी
16.	नींबू वर्गीय (सिट्रस स्पीसीज)	संतरा, किन्नों, मुसम्मी के फल उत्पादन के लिए उपयोगी

अमरूद आधारित कृषिवानिकी

भारत के विभिन्न राज्यों में कृषकों द्वारा अपनाई गई एवं परंपरागत विभिन्न प्रकार की कृषिवानिकी पद्धतियां प्रचलन में हैं। इन पद्धतियों को मुख्य रूप से दो भागों में वर्गित किया जा सकता है। प्रथम वे कृषिवानिकी पद्धतियां हैं जोकि देश में वैदिक युग से प्रचलित हैं एवं पारंपरिक कृषिवानिकी पद्धतियां कहलाती हैं। दूसरी वे कृषिवानिकी पद्धतियां हैं जिन्हें कृषक वाणिज्यिक रूप में (शीघ्र आमदनी हेतु) प्रयोग में लाते हैं। इन पद्धतियों को नीचे दर्शाया गया है।

पारंपरिक कृषिवानिकी पद्धतियां

क्र.सं.	कृषिवानिकी पद्धति	प्रचलित क्षेत्र
1.	उत्तिस (अलनस नेपालेनसिस) आधारित	उत्तर-पूर्वी राज्य-सिक्किम, नागालैंड, अरूणाचल प्रदेश
2.	फल आधारित	हिमालय क्षेत्र
3.	खेजरी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया) आधारित	राजस्थान, गुजरात के कुछ भाग में
4.	भीमल (ग्रेविया आप्टिवा) आधारित	उत्तराखंड, हिमांचल
5.	अन्यः महुआ (मधुका लेटिफोलिया), नीम (अजेडिरेक्टा इंडिका), शीशम (डलवर्जिया शिशु) आदि	मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ, बिहार, झारखंड

वाणिज्यिक (शीघ्र आमदनी हेतु) कृषिवानिकी पद्धतियां

क्र.सं.	कृषिवानिकी पद्धत्ति	प्रचलित क्षेत्र
1.	पापुलर (पापूलस डेलट्वाइडस) आधारित	हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश
2.	यूकेलिप्टस (यूकेलिप्टस प्रजाति) आधारित	हरियाणा, पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, तमिलनाडू, कर्नाटक
3.	सुबबूल (ल्यूसिना ल्यूकोसिफैला) आधारित	महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश

क्र.सं.	कृषिवानिकी पद्धत्ति	प्रचलित क्षेत्र
4.	अरडू-महारूख (आइलेन्थस एक्सेल्सा) आधारित	राजस्थान, गुजरात
5.	आंवला (इम्बिलिका आफिसिनेलिस) आधारित	उत्तर प्रदेश एवं अन्य अर्धशुष्क क्षेत्र

सारांश

जलवायु परिवर्तन के प्रति उच्च लचीलेपन एवं टिकाउपन के लिए कृषिवानिकी का महत्वपूर्ण योगदान है। विषम परिस्थितियों में जैसे लगातार सूखा पड़ना, बाढ़ आना, अधिक ठंड पड़ना, तापमान में वृद्धि आदि में पर्यावरण प्रबंधन एवं जलवायु परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में कृषिवानिकी का योगदान महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए प्रत्येक कृषि पारिस्थितिकीय क्षेत्रों हेतु प्रभावी रणनीति एवं उपयोगी उपाय करने की आवश्यकता है। जलवायु परितर्वन एवं इसके प्रभावों से संबंधित वर्गों के बीच जुड़ी जानकारियों के संग्रहण एवं आदान-प्रदान की व्यवस्था को विकसित करने की आवश्यकता है। नवीन वृक्ष प्रजातियों के विकास एवं भू-उपयोग पद्धति पर शोध को बढ़ावा देना जरूरी है। इसके साथ-साथ जैव ईंधन की क्षमता को बढ़ाने तथा कृषिवानिकी एवं संरक्षण के प्रयासों की आवश्यकता है। विकास कार्यक्रमों (सड़क, जल संसाधन, विद्युत एवं नगरीकरण) के संचालन में लिए जाने वाले निर्णयों के समय जलवायु परिवर्तन को संज्ञान में लेते हुए नीति निर्धारित करने की आवश्यकता है। भारतीय वन नीति 1988 के अनुसार देश में एक-तिहाई वनाच्छादन की आवश्यकता है, क्योंकि वन क्षेत्र को बढ़ाया नहीं जा सकता तथा खेती की जगह पर पेड़ लगाए नहीं जा सकते। अतः एक-तिहाई वनाच्छादन के लिए कृषिवानिकी ही एकमात्र ऐसा विकल्प है जिसके माध्यम से खेत में, मेड़ों पर तथा बाउंड्री पर ईंधन, इमारती एवं फलदार वृक्षों को लगाकर पर्यावरण को संतुलित कर जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों को कम किया जा सकता है।

संदर्भ

आई पी सी सी. 2007. आईपीसीसीस 4 स्टेटस रिपोर्ट (http://www.ipcc.ch/, 4 accessed on जुलाई 2013)

द्विवेदी, आर पी एवं एस के शुक्ला 1998. स्थाई भूमि प्रबंधन के लिए कृषिवानिकी. रोजगार समाचार अंक 23 सं. 36 नई दिल्ली, पृ. 1-2,

द्विवेदी, आर पी एवं डी बी वी रमण 2002. चरागाह प्रबंधन द्वारा पशुधन उत्पादन रोजगार समाचार अंक 27 सं. 11 नई दिल्ली पृ. 1-2,

द्विवेदी, आर पी सिंह रमेश, एस.पी.एस चौहान, राजेंद्र सिंह एवं एस पी एस यादव 2002. ग्रामीण युवाओं को आत्मनिर्भर बनाने में कृषिवानिकी का योगदान. कृषिवानिकी समाचार पत्र, अंक 14 सं. 3(1) पृ. 17-20.

राव, जी आर 2003. सिल्वीपाश्चर सिस्टम फार डेवलपमेंट आफ डिग्रेडेड लैंड. (लैंड यूज डाइवर्सीफिकेशन फार सस्टेनेबल रेनफेड एग्रीकल्चर - एडिटर्स - के डी शर्मा, जे वी राव, जी आर राव, ग्रोवर मीनाक्षी एवं श्रीनाथ दीक्षित) सी आर आई डी ए, हैदराबाद, पीपी. 243-254.

राव जी आर एवं रमण डी बी वी 2009. रेसपान्स आफ प्रोटीन सप्लीमेंटेशन टू डेकनी लैम्ब्स ग्रेजिंग आन सिल्वोपास्टोरल सिस्टम इन रेलफेड एरियाज. इंडियन वेटरीनरी जर्नल पीपी. 155-157.

★★★

10

छोटे कृषि उपकरण एवं फसल कटाई उपरांत प्रौद्योगिकियां

- रविकांत वी अड़के, आई श्रीनिवास, बी संजीव रेड्डी, आशीष एस धिमते, एम उदय कुमार, के सम्मी रेड्डी एवं सीएच श्रीनिवास राव

परिचय

छोटे एवं मध्यम वर्गीय किसान देश में कृषि का एक प्रमुख घटक है। देश में कृषि कार्य से जुड़े कुल कृषकों के लगभग 80 प्रतिशत किसान इस वर्ग में आते हैं। इनमें से 90 प्रतिशत से भी ज्यादा किसानों की खेती वर्षा आधारित है। वर्षा आधारित खेती में वर्षा की अनुकूलता व प्रतिकूलता के साथ-साथ किसानों को कई अन्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिसमें कृषि कार्य समय पर संपन्न करने हेतु कृषि मजदूरों की कमी एक महत्वपूर्ण समस्या है। जुताई से लेकर फसल कटाई तक विभिन्न कृषि कार्यों में जुटे कृषि मजदूरों की भागीदारी 55 प्रतिशत है, लेकिन इनकी कार्यक्षमता कम होने के कारण कृषि कार्यों को समय पर निपटाना काफी कठिन होता जा रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण सूखे एवं बाढ़ की समस्या तीव्र गति से बढती जा रही है, इसलिए वर्षा आधारित खेती में नैसर्गिक संसाधनों के प्रबंधन हेतु इनका योगदान एवं महत्व ज्यादा बढ़ जाता है। समय पर कार्य न होने के कारण उत्पादन में काफी कटौती होती है। कई बार छोटे एवं मध्यम कृषकों की आय, होने वाले व्यय/लागत से कम होती है। इन सभी कारणों से आज यह कृषक वर्ग आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। इसके परिणामस्वरुप, छोटे एवं मध्यम वर्गीय किसान मजबूरन खेती को बंजर छोड़कर रोजी-रोटी हेतु शहरों में पलायन करने लगे हैं। भारत में अगर आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति होनी है तो इस वर्ग को सशक्त करके उनके अलाभकारी कृषि व्यवसाय को लाभकारी व्यवसाय में परिवर्तित करना जरूरी है।

इस दिशा मे कृषि यांत्रिकीकरण, छोटे एवं मध्यम वर्गीय किसानों को सशक्त करने हेतु एक विकल्प हो सकता है। देश में 1967 में प्रथम हरित क्रांति आई थी। इस दौरान नई किस्मों के अविष्कार और रासायनिक खादों के भरपूर प्रयोग के कारण कृषि की उत्पादकता में काफी बढ़ोतरी हुई किंतु हरित क्रांति के 50 वर्ष बाद आज भारतीय कृषि में, मूलतः वर्षा आधारित खेती में एक बार फिर नई चुनौतियां सामने आने लगी हैं। भूमि के उपजाऊपन एवं उर्वराशक्ति में कमी, खेतों में खरपतवार का बढ़ता प्रकोप, मौसम की विषमता, लगातार मृदा स्वास्थ्य में गिरावट आदि तकनीकी समस्याओं के साथ सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएं भी उभरकर आने लगी हैं, जिन पर सोच विचार करना आज की प्राथमिकता है। ऐसे मोड़ पर कृषि यांत्रिकीकरण का उपयोग करना एक समाधान हो सकता है। अध्ययनकर्ताओं का कहना है कि यांत्रिकीकरण

से 20-25 प्रतिशत खेती उत्पादन में बढ़ोतरी एवं 30-45 प्रतिशत लागत में कटौती होती है। यांत्रिकीकरण से उचित प्रकार की जुताई, समय पर बीज बुवाई, निराई-गुड़ाई, आदि के साथ-साथ कामगारों की कार्य क्षमता भी बढ़ती है। जिससे उत्पादन में बढ़ोतरी और लागत में कटौती होगी। इसलिए, खेती में उन्नत कृषि उपकरणों का प्रयोग करना अनिवार्य है।

दूसरी बात यह है कि, लाभकारी कृषि के लिए फसल कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना नई तकनीकियों का कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने में है। फसल कटाई उपरांत उपज की मूल्य वृद्धि हेतु अनाज भंडारण से लेकर विभिन्न प्रक्रियाओं तक उचित एवं उन्नत तकनीकियों का प्रयोग होना अनिवार्य है। यह अनुमान है कि, अनाज भंडारण और फसल कटाई उपरांत विभिन्न प्रक्रियाओं हेतु उचित एवं उन्नत उपकरण न होने कारण हमारे देश में टिकाऊ उपज (अनाज, बीज आदि) में 5-15 प्रतिशत, निम्न टिकाऊ उपज (प्याज,आलू आदि) में 20-30 प्रतिशत और जल्द खराब होने वाली उपज (फल, हरी-सब्जी आदि) में 30-50 प्रतिशत की गुणात्मक एवं तोल में क्षति होती है। बीज (अनाज के दाने) में नमी का बढ़ना, बुआई क्षमता घटना, अम्लता बढ़ना आदि कारणों से गुणात्मक क्षति होती है और अनाज का कम वजन, कीड़े, चूहे, चींटियों आदि का प्रकोप बढ़ जाता है। कटाई उपरांत उचित भंडारण और समय पर परिवहन की व्यवस्था न होने से फल और सब्जियों के कुल उत्पादन में लगभग 50 प्रतिशत की हानि होती है। गुणात्मक क्षति होने कारण घरेलु एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कृषि उपज की कीमत मे काफी गिरावट आती है और किसान को आर्थिक नुकसान सहना पड़ता है क्योंकि गुणात्मक आधार पर ही उपज की कीमत निर्धारित की जाती है। इस संदर्भ में, आधुनिक कृषि उपकरण और फसल कटाई उपरांत तकनीकी का सहारा खाद्य सुरक्षा हेतु अनिवार्य हो जाता है।

छोटे एवं मध्यम वर्गीय किसानों के लिए कृषि उपकरणों का महत्व जानते हुए कई सरकारी अनुसंधान संस्थाओं एवं निजी संस्थाओं ने उन्नत उपकरणों का अविष्कार एवं विकास किया है। ये संस्थाएं इन उपकरणों को प्रचलित करने एवं किसानों तक पहुंचाने हेतु निरंतर प्रयासरत हैं। इस अध्याय में हम छोटे एवं मध्यम वर्गीय किसानों हेतु विकसित किए गए उपकरणों पर प्रकाश डाल रहे हैं। अध्याय में इन उपकरणों की कार्यक्षमता, इन के फायदे और कृषि उत्पादकता पर कैसे प्रभाव होता है, इस पर विस्तृत चर्चा की गई है। साथ ही फसल कटाई उपरांत हमारे देश मे उपलब्ध प्रौद्योगिकी और मूल्य आधारित तकनीकियों पर भी प्रकाश डाला गया है। छोटे एवं मध्यम वर्गीय किसान इन्हें अपनाकर अपने अनाज की सुरक्षा एवं मूल्य वृद्धि कर अलाभकारी कृषि व्यवसाय को लाभकारी व्यवसाय में परिवर्तित करने का प्रयास कर सकते हैं।

कृषि यांत्रिकीकरण परिदृश्य

देश मे कृषि यांत्रिकीकरण की वास्तविक स्थिति से पता चलता है कि कृषि यांत्रिकीकरण का औसत स्तर 45 प्रतिशत है। हालांकि, यह देश में स्थान विशेष की परिस्थितियों, फसल प्रणाली, कृषक उपकरणों के तौर-तरीके और विभिन्न कृषक वर्गों पर निर्भर करता है। विभिन्न कृषि क्रियाओं के अनुसार यांत्रिकीकरण का स्तर संक्षिप्त में सारणी-1 में दर्शाया गया है। जुताई और बुवाई में यांत्रिकीकरण का कुल स्तर क्रमश: 40 और 29 प्रतिशत रहा है, लेकिन इसमें

ट्रैक्टर्स और पावर टिलर्स के बढ़ते उत्पादन के बावजूद ट्रैक्टरचलित उपकरणों का योगदान कम ही रहा है। भारत में पिछले दशकों में ट्रैक्टर्स और पावर टिलर्स के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई जिससे फार्म शक्ति की उपलब्धता भी बढ़ी है। आंकड़े दर्शाते हैं कि, ट्रैक्टर की बिक्री 3.4 लाख (2008-09) से बढ़कर 6.5 लाख (2015-16) तक पहुंच गई है। इसके साथ ही पावर टिलर्स की बिक्री में भी वृद्धि पाई गई है। वर्ष 2015-16 में करीब एक लाख पावर टिलर्स किसानों तक पहुंचे हैं। ट्रैक्टर्स, पावर टिलर्स, डीजल इंजिन्स, मोटर्स के बढ़ते उपयोग से फार्म शक्ति की उपलब्धता 2015-16 में 2.02 किलोवाट प्रति हेक्टेयर रही। ट्रैक्टर और ट्रैक्टरचलित उपकरण आधारित कृषि यांत्रिकीकरण आज पंजाब और हरियाणा राज्यों में सफल हुआ है। इन राज्यों में धान और गेहूं के लिए बुआई से लेकर कटाई तक 80-90 प्रतिशत यांत्रिकीकरण हुआ है। लेकिन अन्य राज्यों और फसल प्रणालियों में ट्रैक्टर आधारित यांत्रिकीकरण अभी भी बहुत कम है। अन्य प्रांतों में जुताई और बुवाई के लिए ट्रैक्टर आधारित यांत्रिकीकरण क्रमश: 15.6 और 8.3 प्रतिशत ही है। अन्य कृषि क्रियाएं जैसे कि निराई-गुड़ाई, फसल कटाई, आदि में बैलचलित उपकरणों का ही उपयोग अधिक होता है। घटते जोत क्षेत्र, विभिन्न फसल प्रणालियां, मृदा प्रकार, आदि कारणों से पिछले दो दशक से ट्रैक्टर और फार्म शक्ति की वृद्धि के बावजूद देश में कृषि यांत्रिकीकरण का स्तर काफी कम है। बदलते मौसम के कारण कृषि कार्यों को समय पर निपटाना भी एक बड़ी चुनौती बनी है। इसके लिए कम से कम समय में छोटे जोत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त कृषि उपकरणों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

सारणी-1 : कृषि क्रियानुसार भारत में यांत्रिकीकरण का स्तर

यांत्रिकीकरण स्तर, प्रतिशत	कृषि क्रियाएं
40 (ट्रैक्टर चलित 15.6 प्रतिशत और बैल चलित 24.4 प्रतिशत)	जुताई
29 (ट्रैक्टर चलित 8.3 प्रतिशत और बैल चलित 20.7 प्रतिशत)	बीज बुवाई और रोपण
10	खरपतवार, निराई-गुड़ाई
70 (पावर स्प्रयेर का अवलंब होने से)	फसल संरक्षण (रोग निवारण)
65	सिंचाई
20	फसल कटाई
60	थ्रेशिंग

स्त्रोत: वी. एम. मायंदे (1999)

छोटे एवं खंडित जोत धारक

किसानों के पास औसत जोत क्षेत्र कम होता जा रहा है। सारणी-2 में दिए गए आंकड़ोंनुसार, भारत में औसत जोत क्षेत्र 1.33 हेक्टेयर प्रति धारक (2001-02) से घटकर 1.15 हेक्टेयर प्रति धारक (2010-11) है। इसके अलावा कुल जोत क्षेत्र में छोटे एवं मध्यम वर्गीय धारकों का अनुपात भी बढ़ा है। 2010-11 में छोटे एवं मध्यम वर्गीय धारकों का अनुपात कुल कृषक वर्ग के 85 प्रतिशत रहा है। कुल मिलाकर देखा जाए तो, कुल जोत क्षेत्र खंडित क्षेत्रों में परिवर्तित हो रहा है और मुख्यत: खंडित क्षेत्रों के प्रमुख धारक छोटे एवं मध्यम वर्गीय किसान ही है। इसलिए, भारत में यदि कृषि यांत्रिकीकरण के स्तर को बढ़ाना है तो इन वर्गों को ध्यान में रखते हुए

कृषि उपकरणों का विकास और इन्हें किसानों तक पहुंचाने हेतु राष्ट्रीय स्तर पर नई नीतियों की आवश्यकता है। इस दिशा में, किराए पर कृषि उपकरणों की उपलब्धता की परिपाटी संकल्पना को साकार करने की और उसे अमल में लाने की नितांत आवश्यकता है (सारणी-2)।

सारणी-2 : भारत में जोत क्षेत्र का संबंध विच्छेद

जोत क्षेत्र (मिलियन हेक्टेयर)					धारक संख्या (मिलियन में)	जोत धारक वर्ग
2010-11	2005-06	2000-01	2010-11	2005-06	2000-01	बहुत कम क्षेत्र (1 हेक्टेयर)
35.4	32	29.9	92.4	83.7	75.4	छोटे (1-2 हेक्टेयर)
35.1	33.1	32.1	24.7	23.9	22.7	निम्न-मध्यम (2-4 हेक्टेयर)
37.5	37.9	38.2	13.8	14.1	14	मध्यम (4-10 हेक्टेयर)
33.7	36.6	38.2	5.9	6.4	6.6	बड़े (10 हेक्टेयर)
17.4	18.7	21.1	1	1.1	1.2	कुल जोत
159.1	158.3	159.4	137.8	129.2	119.9	(हेक्टेयर प्रति धारक)
1.15	1.23	1.33				धारक (प्रतिशत)
			85	83.3	81.8	

स्रोत: कृषि मंत्रालय

कृषि उपकरणों के फायदे

छोटे धारकों से लेकर बड़े धारको तक यदि आधुनिक कृषि उपकरणों का उपयोग करें तो इसके अनेक फायदे देखने को मिलते है। अध्ययन के आंकड़े यह दर्शाते हैं कि, बुवाई और रोपण यंत्र से बीज में 20 प्रतिशत और खाद में 15-20 प्रतिशत तक की बचत होती है। पारंपरिक पद्धति में हाथ से बुवाई करने से बीजों का असमान वितरण होने की संभावना अधिक होती है जिसका असर फसल उत्पादन पर होता है। बीज के समान और उचित वितरण होने से फसल उत्पादन में 10-15 प्रतिशत इजाफा देखने को मिला है। कुछ विशिष्ट यंत्रों से जुताई एवं बुवाई करने से सूखे की स्थिति में मृदा की नमी को कुछ समय तक बरक़रार रख सकते है। ऐसे उपकरण भी फसल उत्पादन बढ़ाने में मददगार साबित हुए हैं। आधुनिक उपकरणों से निराई-गुड़ाई करने से समय पर खरपतवार निकालने के लिए काफी मदद मिलती है और लागत में भी 30-40 प्रतिशत की बचत होती है क्योंकि कृषक कामगारों का वेतनमान बढ़ने से हाथ से खरपतवार निकालना काफी महंगा हो रहा है। यांत्रिकीकरण से मनुष्य की नीरसता कम होकर विपरित स्थिति में कार्य को निपटाने के लिए धीरज मिलता है। पिछले कई वर्षों मे कृषि यांत्रिकीकरण का विस्तार संस्थागत रूप में उभकर आ रहा है और ग्रामीण क्षेत्रों में युवा पीढ़ी के लिए रोजगार का एक बड़ा साधन/स्त्रोत बन सकता है।

वर्षा आधारित खेती के लिए छोटे कृषि उपकरण

वर्षा आधारित खेती में जुताई और मृदा कार्य से लेकर फसल कटाई और थ्रेशिंग तक लगने वाले कुछ उपयुक्त उपकरणों का विवरण इस प्रकार हैः-

जुताई और मृदा कार्य उपकरण

जुताई के लिए छोटे उपकरणों में लकड़ी से बने हल, लोहे के हल, मेड़ एवं नाली बनाने वाले बैलचलित उपकरण प्रचलित हैं। मेड़ बनाने वाले बैलचलित जुताई उपकरण मौसम की विषमता में मृदा की नमी को बनाये रखने के लिए उपयुक्त होते हैं (चित्र-1)। इनकी धारण शक्ति 0.5 से 1 हेक्टेयर प्रति दिन होने से यह उपकरण छोटे एवं मध्यम जोत धारकों के लिए काफी उपयुक्त है। खुले-बाजार में इनकी कीमत कम होने से छोटे जोत धारक इन्हें स्वयं निवेश करने की क्षमता रखते हैं। यही कारण है जुताई के कुल 40 प्रतिशत यांत्रिकीकरण स्तर में बैलचालित उपकरणों का योगदान 24 प्रतिशत है। ट्रैक्टरचलित उपकरणों में मोल्डबोर्ड प्लाऊ, डिस्क प्लाऊ, कल्टीवेटर, डिस्क हैरो, रोटावेटर आदि उपकरण जुताई के लिए प्रचलित है। मृदा प्रकारनुसार, वर्टिसॉल (काली मृदा की खेती) जहां गहरी जोत की आवश्यकता होती है वहां मोडबोर्ड प्लाऊ और डिस्क प्लाऊ का उपयोग किया जाता है। लाल (अल्फीसोल), लैटेराइट आदि मृदाओ में कल्टीवेटर, डिस्क हैरो, और रोटावेटर का उपयोग किया जाता है। इन उपकरणों से प्रति दिन 4-5 हेक्टेयर तक जुताई कर सकते हैं, इसलिए यह बड़े और मध्यम धारकों के लिए अधिक उपयुक्त है। छोटे धारक की बात करें तो, ट्रैक्टर और ट्रैक्टर चलित उपकरण महंगे होने से इन्हें प्रत्येक किसान स्वयं खरीदने की क्षमता नहीं रखते, लेकिन यह वर्ग इन उपकरणों को किराए पर लेने लगे हैं। ट्रैक्टर आधारित जोत यांत्रिकीकरण का स्तर 16 प्रतिशत है किंतु आने वाले दिनों मे इसके बढ़ने की संभावना अधिक है। ग्रामीण क्षेत्रों में बैल या कृषि कार्य संबंधी अन्य पशुओं की संख्या दिनों दिन कम होती जा रही है। वर्तमान में किराए की परिपाटी संकल्पना देश में संस्थागत रूप से उभरकर आ रही है और इसका लाभ बड़े किसानों से लेकर छोटे एवं मध्यम किसानों तक हो रहा है। साथ ही साथ ग्रामीण क्षेत्रों में युवाओं के लिए यह रोजगार का एक साधन भी बनता जा रहा है। जिस गति से यह संकल्पना विस्तारित हो रही है उससे यह अनुमान लगया जा सकता है कि आने वाले दशकों में ट्रैक्टर आधारित यांत्रिकीकरण का स्तर दुगुना/तिगुना बढ़ेगा।

चित्र-1: बैलचालित मेड़ बनाने वाला उपकरण

बीज बुवाई और रोपण उपकरण

छोटे धारकों के लिए लकड़ी से बने बैलचलित बुवाई उपकरण प्रचलित हैं। इसमें बीज और खाद हाथ से डाला जाता है जिसके लिए 3-4 कुशल कामगारों की आवश्यकता होती है। इस पद्धति में बीज नियंत्रण की गुणवत्ता कामगारों के कौशल पर निर्भर होने से बीज वितरण में काफी

बार असमानता पाई जाती है। अंकुरण के पश्चात, कई बार बीज का पुनःभरण करना पड़ता है। पारंपरिक उपकरणों से समान बीज अंकुरण की अनिश्चितता होती है। इन त्रुटियों को देखते हुए आधुनिक व उन्नत उपकरणों को अपनाना अनिवार्य है।

निजी और सरकारी संस्थाओं ने कई प्रकार के उन्नत बुवाई उपकरण बनाए हैं और ये खुले बाजार में आसानी से उपलब्ध हैं। छोटे और मध्यम धारकों के लिए एक से लेकर चार पंक्तियों वाले बैलचलित यंत्र उपयुक्त साबित हुए हैं। इनमें बीज गिरने का नियंत्रण बीज पेटी में बिठाये विशेष प्लेट द्वारा होता है। यंत्र रचना के आधार पर इन्हें फ्लुटेड रोलर, इनक्लाइन (तिरछे) प्लेट प्लांटर, होरिजंटल (आड़े), और वर्टिकल (खड़े) प्लेट प्लांटर कहते हैं। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा विकसित सस्ता, कुशल और एकल पंक्ति बीज तथा उर्वरक डालने वाला उपकरण चित्र-2 में दर्शाया गया है। यह इनक्लाइन (तिरछे) प्लेट सिद्धांत पर आधारित है और खुले बाजार में इसे प्लाऊ प्लांटर के नाम से जाना जाता है। यह उपकरण देसी हल के साथ जोड़कर विकसित किया गया है। इसमें एक तिरछे प्लेट तंत्र की सहायता से बीज को उठाकर सही स्थान पर छोड़ा या प्रतिस्थापित किया जाता है। इसके बाद बीज पेटी के पीछे दिए गए पाइप के द्वारा बीज मृदा मे 3-5 इंच (आवश्कतानुसार) गहराई में गिरता है। ऐसे उपकरणों से बीजो में सही अंतर रख सकते है। उर्वरक को मिट्टी में गिराने के लिए एक रबर के चक्ति का तथा छिद्र तंत्र उपयोग किया गया है। इस उपकरण के पीछे एक अस्थाई ब्लेड (लोहे की पट्टी) होता हैं। यह, बीज तथा उर्वरक को मिटटी में अच्छे तरीके से ढक देने का कार्य करता है। पारंपरिक बुवाई तकनीक की तुलना में इन उपकरण को चलाने के लिए एक तिहाई मानव श्रम और बैल की आधी शक्ति की आवश्यकता होती है। उपकरण की क्षेत्र क्षमता 0.4 से 0.6 हेक्टेयर प्रतिदिन है। इसी सिद्धांत (इनक्लाइन प्लेट) पर आधारित 2 से लेकर 9 पंक्तियों तक बीज बुवाई उपकरण विकसित किए गए है। इसमें 2-4 पंक्ति तक के उपकरण बैलचलित हैं और 6-9 पंक्ति वाले ट्रैक्टर चलित है। 3-4 पंक्ति वाले उपकरण मध्यम जोत धारकों के लिए काफी उपयुक्त है। इससे दिन में 3-4 हेक्टेयर तक की बुवाई कर सकते है। ट्रैक्टर चलित उपकरणों की क्षमता प्रति दिन 6-8 हेक्टेयर है। यह उपकरण बहु-फसलीय बुवाई के लिए उपयुक्त है।

चित्र-2 : बैल चालित एकल पंक्तिवाला बुवाई यंत्र

उन्नत बीज बुवाई और रोपण यंत्रों में बी बी एफ प्लांटर, जीरो टिल ड्रिल, रेज्ड बेड प्लांटर आदि उपकरण भी खुले बाजार में आने लगे हैं। मृदा में नमी की धारणा को बढ़ाने के लिए ऐसे उपकरण काफी लाभकारी साबित हुए हैं। इसके परिणामस्वरुप, वर्षा आधारित क्षेत्रों में फसलों

का उत्पादन 20-25 प्रतिशत बढ़ने के संकेत मिले हैं। ट्रैक्टर चलित होने से छोटे जोत धारक इस उपकरण को किराए पर ले सकते है। बदलते मौसम में जहां सूखे की संभावना अधिक हैं वहां ऐसे उपकरणों का प्रसार करना जरुरी हैं। बाजार में 18-24 अश्वशक्ति के छोटे ट्रैक्टर भी आने लगे है। इनके अनुरूप नए उपकरणों का विकास करना, छोटे धारकों के लिए उपयुक्त हो सकता है। इन छोटे ट्रैक्टरचलित बुवाई यंत्रों का निर्माण और उसमे यथोचित सुधार करने का कार्य प्रगति पर है। छोटे ट्रैक्टर से चलने वाले बुवाई यंत्र का दृश्य चित्र-3 में दर्शाया गया है।

चित्र-3 : छोटे ट्रैक्टर से चलने वाला बुवाई यंत्र

धान (पैडी) में अंकुर रोपण करने के लिए मैकेनिकल ट्रांसप्लांटर का उपयोग होता है और यह उपकरण अधिक मात्रा में पावर टिलर चालित हैं। छोटे एवं मध्यम वर्गीय कृषक धारक इन उपकरणों का उपयोग करने लगे हैं। देश के कई भागों में धान की सीधी बुवाई भी की जाती हैं। सीधी बुवाई के लिए छोटे, हल्के और सस्ते मानव चलित डायरेक्ट पैडी सीडर का इस्तेमाल होता है (चित्र-4)। यह छोटे और मध्यम धारकों के लिए काफी उपयुक्त हैं। इन उपकरणों से प्रतिदिन 1-2 हेक्टेयर की बुवाई की जा सकती हैं। बुवाई के पहले बीज को 24 घंटे पानी में भिगोकर अगले 24 घंटे तक अंकुरण उगने के लिए (अंकुरण की पूर्व स्थिति) रखते हैं। तत्पश्चात, डायरेक्ट पैडी सीडर से बुवाई करते हैं।

चित्र-4 : डायरेक्ट पैडी सीडर

बीज बुवाई एंव हर्बिसाइड-सह-यंत्र

इस यंत्र में बुवाई के साथ-साथ खरपतवार नियंत्रण हेतु तृण नाशी दवाई का छिड़काव किया जा सकता है। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा विकसित एक ऐसा ही

उपकरण चित्र-5 में दर्शाया गया है। इसमें प्रत्येक फरो ओपनर के शीर्ष पर व्यक्तिगत बीज सह उर्वरक बॉक्स संलग्न किया गया है। बुवाई यंत्र के ऊपरी भाग में टैंक में संगृहीत तृणनाशी दवा डाली जाती है। छिड़काव करने के लिए 150 वाट क्षमता वाले पंप का उपयोग किया जाता है। यह पंप एक इनवर्टर के माध्यम से ट्रैक्टर की बैटरी द्वारा संचालित किया जाता है। तृणनाशी दवा के छिड़काव के लिए नोजल्स की लाइन बुवाई यंत्र के पिछले हिस्से में लगाई गई है। इससे बुवाई के तुरंत बाद तृणनाशी दवा का छिड़काव किया जाता है। ये दोनों प्रक्रियाएं एक साथ चलती हैं। बुवाई के बाद फरो ओपनर के पीछे लगे प्लंकेर की सहायता से बीज मिटटी से ढक दिया जाता है और ऊपर से छिकड़ाव किया जाता है। इस मशीन की बुवाई क्षेत्र क्षमता 3 हेक्टेयर प्रतिदिन है।

चित्र-5 : बीज बुवाइ यंत्र हर्बिसाइड प्लांटर के साथ

निराई और गुड़ाई उपकरण

अधिकांश रूप में यह माना जाता है कि निराई एवं गुडाई फसलों के लिए महत्वपूर्ण है। वैसे देखा जाए तो खरपतवार एक तरह से मुख्य फसल के साथ मिट्टी की नमी और पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा का काम करते है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में सीमित नमी की उपलब्धता निराई एवं गुडाई करने के दिनों की संख्या को कम कर देती है। अगर समय पर निराई एवं गुडाई करके खरपतवार को नष्ट नहीं किया गया तो यह फसल की पैदावार को प्रभावित करते है। परंपरागत पद्धति में खुरपी जैसे उपकरणों की सहायता से हाथ से खरपतवार निकाला जाता है। खुरपी से खरपतवार निकालने की क्षमता 0.03 हेक्टेयर प्रति दिन होती है लेकिन कामगारों की त्रुटि के कारण बड़े क्षेत्रों में समय पर खरपतवार निकालना कठिन है। इस समस्या पर काबू पाने के लिए कई अनुसंधान संस्थानों ने विभिन्न मानव चालित तथा बैल चालित निराई एवं गुडाई यंत्र विकसित करके उनका बाजारीकरण किया है। कामगारों की क्षमता बढ़ाने हेतु खुले बाजार में अनेक प्रकार के निराई-गुड़ाई यंत्र उपलब्ध हैं। इन्हें फसल की उपयोगितानुसार व्हील हो, मंडवा वीडर, कोनो वीडर, स्टार वीडर, रोटरी वीडर आदि नामों से जाना जाता है। व्हील हो में साइकिल के रिम जैसे एक पहिया होता है (चित्र-6), जिसके जरिए पहिये के पीछे लगे हुए ब्लेड को हैंडल द्वारा आगे-पीछे करके उपकरण को धीरे-धीरे आगे की दिशा में चलाया जाता है। ब्लेड की हलचल के आधार पर इसे 'पुश-पूल' प्रकार का वीडर कहते हैं। यह उपकरण जमीन की ऊपरी सतह के नीचे 2-3 इंच गहराई तक भेदने की क्षमता रखता है और खरपतवार को जड़ के साथ

निकाल देता है। व्हील हो और इसके स्वरुप मानवचलित अन्य निराई-गुड़ाई उपकरण की क्षमता 0.15 हेक्टेयर प्रति दिन होती है। ऐसे उपकरण छोटे धारकों के लिए काफी उपयुक्त साबित हुए हैं जिनसे कामगारों की कार्य करने की क्षमता, पारंपरिक खुरपी की तुलना में लगभग 7-8 गुना बढ़ती है। इन उपकरणों का उपयोग अलग-अलग फसल पद्धति में किया जाता है।

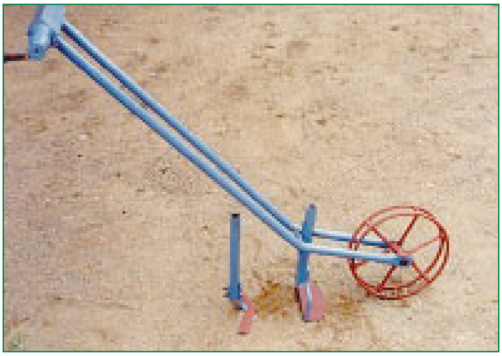

चित्र-6 : व्हील हो वीडर

छोटे और मध्यम धारकों के लिए बैलचलित उपकरण भी विकसित किए गए हैं। पारंपरिक पद्धति में लकड़ी या लोहे से बने 30 से 45 सेंमी चौड़ाई के ब्लेड का उपयोग किया जाता है, जिसे दो फसल पंक्तियों में बैलों द्वारा खींचा जाता है। इससे 2-3 इंच तक जोत कर के खरपतवार को उसकी जड़ सहित निकाला जाता है। कठोर जमीन में ऐसे उपकरणों को चलाने के लिए एक शक्तिशाली बैलों के जोड़े की आवश्यकता होती है अन्यथा खरपतवार निकलने की क्षमता कम होती है। इन चीजों को ध्यान में रखकर केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद ने एक बैलचलित उपकरण विकसित किया है। विकसित उपकरण में कठोर जमीन को भेदने हेतु लोहे के बने ब्लेड के साथ शॉवेल/स्वीप का उपयोग किया गया है। ब्लेड और शॉवेल एक आयताकृति, लोहे के फ्रेम पर विशिष्ट रूप से बिठाए गए हैं, ताकि ब्लेड के सामने कठिन और पपड़ीदार जमीन को शॉवेल या स्वीप के द्वारा भेदकर पीछे दिए गए ब्लेड की सहायता से आसानी से खरपतवार जड़ सहित निकल सके। यह फ्रेम, लोहे/स्टील से बने बीम द्वारा बैलजोड़ की जुगल को जोड़ा जाता है। इस तरह के उपकरण स्थानिक विशेषता के साथ अलग-अलग ढांचे में मौजूद हैं। यह निराई-गुड़ाई के साथ साथ पौधों को मिटटी लगाने का काम भी करते हैं। इन उपकरणों की क्षेत्र क्षमता 30 से 45 सेंमी चौड़ाई ब्लेड के साथ एक हेक्टेयर प्रति दिन तक होती है।

स्वचालित यंत्रों में, 1 से लेकर 3 अश्वशक्ति तक के पावर वीडर काफी मात्रा में बाजार में आने लगे हैं। इनमें ब्लेड्स चक्राकार घूमने के कारण इन्हें रोटरी वीडर भी कहते हैं। तीन अश्वशक्ति के पावर वीडर से 4-6 से इंच गहराई तक निराई-गुड़ाई कर सकते हैं। यह विरल पंक्ति की फसलों जैसे, कपास, मक्का, आदि में काफी उपयोगी है और इनकी कार्य क्षमता एक हेक्टेयर प्रति दिन तक होती है। नजदीकी फसल पंक्तियों में 1.0 अश्वशक्ति वाले वीडर से प्रति दिन 0.2 हेक्टेयर तक निराई-गुड़ाई कर सकते हैं। व्हील हो और 1-अश्वशक्ति पावर (रोटरी) वीडर की क्षमता में तुलनात्मक फर्क नहीं होता है पावर वीडर में थकान कम होती है, जिससे कार्य करने में अच्छा लगता है। इन उपकरणों से पारंपरिक पद्धति की तुलना में इन उपकरणों

का उपयोग करने से 50-60 प्रतिशत निराई-गुड़ाई की लागत में बचत होती है और परिवार के एक या दो सदस्य से काम चल सकता है। हल्की जमीन में पावर वीडर से जोत भी कर सकते हैं, इसलिए यह बहुउद्देशीय साबित हुए है। पावर वीडर की उपयोगिता जानकर अनेक राज्यों में 3 अश्वशक्ति पावर वीडर अलग-अलग योजनाओं के अंतर्गत अनुदान देकर इन्हें छोटे और मध्यम वर्गीय किसानों तक पहुंचाने का कार्य किया जा रहा है। तीन अश्वशक्ति के पावर वीडर को चित्र-7 में दर्शाया गया है।

चित्र-7 : निराई-गुड़ाई के लिए पावर वीडर

छिड़काव उपकरण (स्प्रेयर)

अच्छे फसल उत्पादन के लिए समय पर कीट और रोगों का प्रबंधन करना अनिवार्य है। आंकड़े दर्शाते हैं कि, फसल बचाव और रोग नियंत्रण के लिए यांत्रिकीकरण का स्तर 70 प्रतिशत हुआ है और यह अन्य कृषि कार्यों की तुलना में सबसे अधिक है। नैपसैक स्प्रेयर्स, उन्नत पावर स्प्रेयर, बूम स्प्रेयर आदि उपकरणों का कृषि यांत्रिकीकरण में बड़ा योगदान रहा है। छोटे धारकों के लिए पारम्परिक नैपसैक स्प्रयेर्स उपयुक्त हैं। कीमतों में सस्ते और भार में हलके होने से छोटे जोत धारक वर्ग में इस प्रकार के स्प्रयेर्स काफी प्रचलित है। नैपसैक स्प्रेयर्स से एक दिन में 0.8 हेक्टेयर तक स्प्रे कर सकते है। इनकी कार्यक्षमता आदमी के कौशल निर्भर करती है लेकिन निरंतर हाथ की हलचल से मांसपेशियों में दर्द पैदा करता है और इस दर्द के कारण मनुष्य की कार्यक्षमता कम हो जाती है। इन हालात में एक समान दबाव के साथ कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव करना कठिन बन जाता है। कीट और रोगों पर प्रभावी नियंत्रण करने के लिए सुगम और नियमित दबाव के साथ रसायनों का छिड़काव होना बहुत आवश्यक है। इन मुद्दों को ध्यान में रखकर पावर स्प्रेयर, बैटरी स्प्रेयर, सोलर स्प्रयेर आदि उपकरणों का विकास किया गया है। पावर स्प्रेयर बाजार में उपलब्ध है और इन्हें कई राज्यों में किसानों को अनुदान भी मिलता है। बाजार में उपलब्ध पावर स्प्रेयर को चित्र-8 में दिखाया गया है। पावर स्प्रेयर में एक छोटे इंजन के जरिए पंप को चलाया जाता है। यह पंप एक निर्धारित दबाव के साथ विशिष्ट नोज़ल द्वारा कीट/रोग नाशक रसायन को छोटी-छोटी बूंदों के साथ फसल पर प्रभावी छिड़काव करता है। ऐसे स्प्रेयर से एक दिन में 2 हेक्टेयर तक स्प्रे कर सकते है। इस प्रकार के स्प्रेयर छोटे और मध्यम जोत धारकों के लिए उपयुक्त है। आजकल बाजार में ट्राली टाइप पावर स्प्रेयर भी आने लगे हैं जिसमें वाहन सुविधा उपलब्ध होती है।

चित्र-8 : पावर स्प्रेयर

बाजार में बड़े आकार के ट्रैक्टर चालित बूम स्प्रेयर भी उपलब्ध हैं। इनमें एक से ज्यादा नोजल्स एक साथ चला सकते है। इनकी कार्य क्षमता पावर स्प्रयेर्स से काफी अधिक होती है (7-8 हेक्टेयर प्रति दिन) और इन्हें बिना पंक्तियों मे बोई गई फसल जैसे मूंगफली, चना, सोयाबीन आदि के लिए उपयोग करना अधिक लाभकारी होता है। बहु पंक्तियों के फसल जैसे कपास आदि में पंक्ति अनुरूप नोजल्स का समायोजन करना पड़ता है। छोटे और मध्यम वर्गीय धारक इन उपकरणों को किराए पर भी अपना सकते हैं क्योंकि इससे कीट व रोगों पर बहुत ही कम समय में नियंत्रण किया जा सकता है।

बागवानी क्षेत्रों के लिए ट्रैक्टर चालित स्प्रेयर बनाए गए हैं (चित्र-9)। पारंपरिक तरीके में किसान रोकर स्प्रॉयर जैसे पैर से चलने वाले स्प्रेयर का उपयोग करके बागों में पैदा होने वाले कीट और रोगों को नियंत्रित करते है। ऐसे छिड़काव यंत्र के उपयोग के कारण रासायनिक द्रव की बूंदे ज्यादा से ज्यादा पेड़ के बाहरी हिस्से तक ही पहुंचती है, इसलिए पेड़ की भीतरी टहनियों मे स्थित कीट/रोग रासायनिक द्रव का लक्ष्य नहीं बन पाते। ट्रैक्टर चालित स्प्रेयर में उच्च दाब निर्मित ब्लोअर की सहायता से पेड़ की तरफ हवा छोड़ी जाती है और साथ ही द्रव पदार्थ भी स्प्रे किया जाता है। हवा, द्रव पदार्थ की बूंदों को सूक्ष्म कणों में परिवर्तित करती है और अपने साथ ले जाती और यह बूंद मिश्रित हवा पूरे पेड़ के अंदर और बाहरी हिस्से में फ़ैल जाती है। ऐसे स्प्रेयर की कार्य क्षमता 12-14 हेक्टेयर प्रतिदिन है। यह अनार, नारंगी, आम की तरह बागबानी फसलों में रसायनों के छिड़काव के लिए उपयुक्त है। छोटे धारक इन उपकरणों का उपयोग किराए पर लेकर कर सकते हैं।

चित्र-9 : बागवानी क्षेत्र के लिए ट्रैक्टर चालित स्प्रेयर

सिंचाई के लिए उपकरण

सिचाई में कृषि यांत्रिकीकरण का स्तर (65 प्रतिशत) है और यह फसल संरक्षण के बाद दूसरे स्थान पर आता है। ग्रामीण क्षेत्र में बिजली का प्रावधान होने से बिजली से चलने वाले पंपों का प्रयोग काफी मात्रा में है जहां बिजली नहीं है वहां डीज़ल पंपों और इनके अनुरूप सिंचन के उपकरण (स्प्रिंकलर) का प्रयोग किया जा रहा है। वर्षा आधारित खेती में वर्षा के पानी को खेत में ही छोटे तालाबों के जरिए भंडारण करने और उसे सूखे काल में फसल की आवश्यकतानुसार रक्षात्मक सिंचाई के लिए इस्तेमाल करने की संकल्पना उभरकर आ रही है और इस संकल्पना को बड़े पैमाने पर विस्तृत करने की योजना भी बनाई जा रही है। इन हालातों में, तालाबों से पानी खींचने/निकालने के लिए छोटे और सस्ते पंप की जरूरत होती है। इस हेतु बाजार में पैट्रोल, केरोसिन या डीज़ल पर चलने वाले छोटे पंप उपलब्ध हैं। सिंचाई के लिए 2-5 अश्वशक्ति के पंपसेट्स का उपयोग छोटे और बड़े स्प्रिंकलर द्वारा सिंचाई करने के लिए कर सकते हैं। यह छोटे और मध्यम धारकों के लिए उपयुक्त है। डीज़ल और बिजली स्रोत के अलावा सौर ऊर्जा का भी उपयोग पंप परिचालित करने में किया जाता है। इनका रख-रखाव और परिचालन लागत कम होने से यह काफी लाभकारी साबित हुए हैं।

स्थानीय तौर पर किसानों ने अपने विवेक से कुछ छोटे पंप बनाए है, यह पेडल आपरेटेड पंप, साइकिल आपरेटेड पंप, मोटर साइकिल आपरेटेड पंप के नाम से जाने जाते है। ऐसे पंप भी छोटे तालाब से पानी निकलने के लिए उपयोग में लाए जा सकते हैं। लेकिन इसमें कार्यक्षमता बढ़ाने हेतु बड़े पैमाने पर परीक्षण की आवश्यकता है। इन्हें व्यवसायिक रूप न मिलने से यह तकनीकियां स्थानिक क्षेत्र तक ही सीमित हो गई है।

फसल कटाई के उपकरण

फसल कटाई के लिए पारंपरिक एवं उन्नत हंसिया/दरांती का उपयोग किया जाता है। छोटे जोत धारक के लिए यह उपयुक्त भी हैं लेकिन इसमें शारीरिक श्रम बहुत है। इसके अलावा इनकी कार्य क्षमता कम होने से (0.05 हेक्टेयर प्रतिदिन प्रति मनुष्य) फसल कटाई में अधिक समय लगता है। कई बार उचित समय पर फसल कटाई न होने से अनापेक्षित वर्षा या अन्य नैसर्गिक आपदाओं में फसल का काफी नुकसान होता है। वर्षा आधारित फसलों में मूंग, उड़द, ज्वार, सोयाबीन आदि फसलें कई बार इन कारणों से आसानी से प्रभावित हुई हैं।

इन मुद्दों को ध्यान में रखकर, सुधारित फसल कटाई उपकरणों का विकास किया गया है। उत्तरी राज्यों में, स्वचालित फसल कटाई उपकरण धान और गेहूं के लिए काफी उपयुक्त साबित हुए हैं (चित्र-10)। अन्य क्षेत्रों में भी इस प्रकार के उपकरण उपयोग में लाए जा रहे हैं। इन उपकरणों से प्रति दिन एक हेक्टेयर तक फसल की कटाई कर सकते है। इसलिए यह छोटे और मध्यम जोत धारक के लिए काफी उपयुक्त है। अन्य उपकरणों में ब्रश कटर जैसे उपकरण भी धान और गेहूं की कटाई के लिए उपयुक्त साबित हो रहे है, जिनकी कार्यक्षमता 0.5 हेक्टेयर प्रति दिन होती है। लेकिन इसमें श्रम को घटाने के लिए कुछ सुधार लाना आवश्यक है।

चित्र-10 : स्वचलित फसल कटाई यंत्र

बड़े धारकों के लिए कंबाइन हार्वेस्टर जैसे उपकरण विकसित किए गए हैं। इससे प्रति दिन 4-5 हेक्टेयर तक कटाई कर सकते हैं और यह कटाई के लिए एक परिपूर्ण साधन माना जाता है। कंबाइन हार्वेस्टर से कटाई के दौरान भूसा और अन्य फसल अवशेष साफ कर स्वच्छ धान को बैग में भर दिया जाता है जिससे किसानों को काफी राहत मिलती है और कटाई भी समय पर होती है। पारंपरिक पद्धति की तुलना में कंबाइन हार्वेस्टर से कटाई करने से लगभग 60 प्रतिशत कटाई के खर्चे में बचत होती है। कंबाइन हार्वेस्टर का प्रसार और प्रभाव पहले हरियाणा और पंजाब जैसे राज्यों मे ही था लेकिन उसकी उपयुक्तता जानकर अब देश के हर प्रांत में किराए की परिपाटी पर इनका विस्तार और उपयोग हो रहा है। फसल की योग्यतानुसार अलग-अलग ढांचे के हार्वेस्टर बनाए गए हैं और इन्हें बाजार में मक्के का हार्वेस्टर, मूंगफली हार्वेस्टर, गेहूं हार्वेस्टर, ज्वार हार्वेस्टर आदि के नाम से जाना जाता है।

थ्रेशिंग के लिए उपकरण

फसल कटाई के बाद थ्रेशिंग एक मुख्य कृषि कार्य होता है। इसके लिए बाजार में बहु-फसलीय थ्रेशर्स काफी पैमाने पर उपलब्ध हैं (चित्र-11)। इसकी सरल तकनीक होने से इसका उपयोग सभी जोत धारक वर्गों में बड़ी मात्रा में हुआ है। इसलिए आंकड़े दर्शाते हैं कि थ्रेशिंग में यांत्रिकीकरण का स्तर 60 प्रतिशत से भी ज्यादा है। इन्हें चलाने के लिए ट्रैक्टर या डीजल इंजन का अधिकतर प्रयोग किया जाता है। इनमें ज्यादातर एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने की सुविधा होती है, जो किराए की परिपाटी के लिए उपयुक्त है। आवश्यकतानुसार बिजली से चलने वाले थ्रेशर्स भी मौजूद है, लेकिन इनका उपयोग स्थानीय होता है। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद ने छोटे जोत धारक को लक्ष्य मानकर अरंडी और मूंगफली निकालने के लिए उपकरण बनाए है।

चित्र-11 : बहु-फसलीय थ्रेशर

अरंडी छिलने वाला यंत्र

अरंडी छीलने वाले इस खास यंत्र को केस्टर शेलर कहते है। केस्टर शेलर में थ्रेशिंग ड्रम, कॉनकेव, हॉपर, छलनी और धौंकनी इकाई होती है जो लोहे के एक आयताकार पिंजरे में स्थित है (चित्र-12)। यह 3 अश्वशक्ति बिजली के मोटर से चलता है। अरंडी फली, एक हॉपर के माध्यम से थ्रेशिंग ड्रम में डाली जाती है। थ्रेशिंग कॉनकेव के बीच एरंड को रगड़ा जाता है जिसके कारण बाहरी छिलका और अंदरूनी बीज अलग होता है। अगली प्रक्रिया में, बीज और छिलका छलनी पर गिरता है जहां छलनी के दोलन गति के कारण बीज अलग हो जाता है और दिए गए निकास से बाहर थैली में जमा होता है। उर्वरित छिलके को ब्लोअर की सहायता से बाहरी दिशा मे उड़ाया जाता है। इस मशीन की अरंडी छीलने और सफाई की कार्यक्षमता क्रमश: 97 प्रतिशत और 95 प्रतिशत है। इस यंत्र से, 700 किलोग्राम प्रति घंटे तक थ्रेशिंग किया जा सकता है।

चित्र-12 : क्रीड़ा केस्टर शेलर

मूंगफली को पौधे से अलग करने के लिए यंत्र

मूंगफली को हार्वेस्टिंग के बाद 4-5 दिन सुखाया जाता है और फिर फलियों को हाथ से खींचकर निकाला जाता है। इस पद्धति में, कुल उत्पादन की 18-20 प्रतिशत लागत लगती है और यह कष्टदाई भी है। कार्य में सुलभता लाने और समय पर कार्य निपटाने हेतु मूंगफली स्ट्रिपर का विकास किया गया है (चित्र-13)। इसमें पौधे के हरेपन में ही फली को निकाला जाता है। कच्ची फलियों के दाम बाजार में बहुत बार ज्यादा होने से किसानों को इन्हें बेचने से अधिक आमदनी होती है और ऊपर से दाने निकालने के खर्चे में भी कटौती होती है। इसलिए ऐसे यंत्रों का उपयोग करने से किसानों को दोहरा फायदा होता है। छोटे जोत धारकों की उन्नति के लिए यह ओर भी उचित होगा। इस यंत्र में एक परिभ्रामी ड्रम होता है उस पर लूप्स होते है। ड्रम के एक छोर से मूंगफली के पौधे हाथ से पकडे जाते है और मूंगफली वाला हिस्सा ड्रम के ऊपर पकड़ा जाता है। ड्रम के घूमने के कारण उसमे ऊर्जा पैदा होती है वह मूंगफली को पौधे से अलग करती है। अलग हुई फलियां छलनी पर गिर जाती हैं और पत्तेदार सामग्री हाथ में रहती है। इस यंत्र को चलाने के लिए एक अश्वशक्ति का मोटर या इंजिन ही काफी है और एक घंटे में लगभग 150 किलोग्राम मूंगफलियां पौधों से अलग कर सकते हैं।

चित्र-13 : स्ट्रीपर से मूंगफली निकालते हुए

कटाई उपरांत प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी

कृषि अर्थशास्त्र में फसल कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी का बहुत महत्व है। कृषि उत्पादों की सफाई और प्रसंस्करण करने से उपज की गुणवत्ता और मूल्य में वृद्धि होती है जिससे किसानों को आर्थिक फायदा होता है। बाजार में उपज की गुणवत्ता के अनुसार सौदे का मूल्य निर्भर होता है। साधारण प्रक्रिया में उपज की सफाई करके उपज के आकार और प्रकारानुसार गुणवत्ता निर्धारित की जाती है। साथ ही अनाज-दाने सूखे रहने चाहिए। मोटे अनाज, तिलहन, दलहन में अगर नमी हो तो कवक जैसे रोगों का प्रादुर्भाव होता है जिससे मूल्य घटता है। सूखे अनाज के बाजार में अच्छे दाम मिलते हैं। सूखे अनाज को अधिक दिन तक भंडारण में (कोठार में) रख सकते हैं। इससे बाजार में तेजी और मंदी का फायदा किसानों को मिल सकता हैं। इसलिए इन संबंधित उपकरणों को ग्रामीण स्तर पर अगर उपलब्ध करा दें तो छोटे और मध्यम वर्गीय धारकों को लाभ हो सकता है। प्रसंस्करण में सफाई, छटाई, शुष्क करना आदि प्रक्रियाएं प्राथमिक चरण में आते हैं। द्‌वितीय चरण में मोटे अनाजों से आटा, दलहन से दाल और तिलहन से तेल आदि प्रक्रियाएं होती है। प्रौद्योगिकी में पिसाई के लिए विविध ढांचे की चक्कियां, दाल बनाने के लिए दाल मिल्स, तेल निकालने के लिए एक्सपेलर्स आदि बड़े पैमाने पर उपलब्ध है।

सफाई प्रक्रिया के लिए छोटे उपकरण

प्राथमिक तौर पर किसान सफाई के लिए हवा का पंखा (विनोवर) और श्रेणी (छटाई) के लिए छलनी का उपयोग करते हैं। यह उपकरण सस्ते और आकार में छोटे होते है तथा ये आमतौर पर बिजली से चलते है। जब वातावरण में हवा का रुख अच्छा होता है तो साधारणतया किसान 5-6 फ़ीट की ऊंचाई पर खड़े होकर 5-10 किलो की मात्रा में बीजों को टोकरी (छाज) में लेते हैं और ऊंचाई से धीरे-धीरे नीचे की ओर आच्छादित जमीन पर छोड़ते हैं। इसमें अधिक भार वाले बीज ऊंचाई से सीधे नीचे की ओर गुरुत्वाकर्षण के कारण जमा होते हैं। भार मे हल्के बीज हवा से उड़कर अधिक भार वाले बीज के आगे की ओर गिरते हैं। बीज के साथ अगर भूसा या अन्य अति हलके पदार्थ हो तो वे हवा से उड़कर बीज से अलग होते है। भारी और हल्के बीज को

अलग-अलग थैले में भर दिया जाता है। इस प्रकार की सफाई में 3-4 मजदूरों की आवश्यकता होती है। यह फार्म स्तर पर बहुत ही पारंपरिक पद्धति है और इस में काफी समय लगता है क्योंकि इस में हवा की उपलब्धता के आधार पर कार्य करना पड़ता है। जब अनुकूल हवा न हो तब कृत्रिम हवा का निर्माण करते है इसमें बिजली से चलने वाले खड़े प्रकार के फैन का उपयोग किया जाता है। खासकर इसी उद्देश्य के लिए बनाए गए फैन को 'विनोवर' कहते हैं। बाजार में सफाई और छटाई के लिए छोटे यंत्र भी उपलब्ध हैं, इनका विवरण नीचे दिया गया है।

सफाई एवं बीज श्रेणीकरण यंत्र

इन यंत्रों में तीन सिद्धांतों का अर्थात हवा का दाब, स्काल्पिंग और ग्रेडिंग का उपयोग होता है। यंत्र में आमतौर पर, दो ब्लोअर, दो छलनी और एलिवेटर होते हैं। यंत्र के एक छोर की ओर नीचे बीज का 300-400 किलोग्राम का छोटा भंडार (कोठार) रहता है जहां से बीज को एलीवेटर से उठाकर ऊपर वाली छलनियों तक पहुंचाया जाता है। ये छलनियां आगे-पीछे गति से चलती है। इनमें एक छोर से दूसरी ओर 5-10 डिग्री ढलान रहता है। इस प्रणाली में, बीज छलनी पर पहुंचने से पहले ही धूल और फूस को हटा दिया जाता है। साफ किया हुआ बीज दूसरी छलनी पर गिरता है। बीज की अशुद्धियां, जैसे: कंकड़, पत्थर, रेत, भूसा छलनी के दूसरे छोर से गिर जाते हैं। बाद में बीज ऊपरी छलनी से निचली छलनी, जो कि मुख्य रूप से एक ग्रेडिंग (छटाई) छलनी है, पर आ जाता है जो विभिन्न आकार की श्रेणी में अनाज को अलग कर देता है।

विशिष्ट गुरुत्व विभाजक

समान भार (परिमाण) और आकार के भिन्न-भिन्न बीजों को (अनाज के दाने को) उनके विशिष्ट गुरुत्वाकर्षण के आधार पर अलग किया जाता है। ऐसे यंत्र को विशिष्ट गुरुत्व विभाजक यंत्र कहते हैं। अनाज शुद्धता में, हलके और अपरिपक्व बीज या अधिक घने रेत कणों और पत्थर आदि को शुद्ध बीजों से अलग करने में यह यंत्र बहुत उपयोगी है। ग्रामीण स्तर पर छोटे जोत धारक या युवा बेरोजगार इन्हें अपना सकते हैं।

दांतेदार (इंडेंट) परिभ्रामी सिलेंडर सह विभाजक

इस यंत्र से समान चौड़ाई और मोटाई के बीज को उसकी लंबाईनुसार अलग कर सकते हैं। दाने की लंबाई के अनुसार अनाज को अलग करने वाला विभाजक यंत्र बाजार में उपलब्ध है (चित्र-14)। दांतेदार परिभ्रामी छलनी वाला सिलेंडर लंबाई के अंतर का उपयोग करके बहुत ही कुशलता से बीजों को अलग-अलग श्रेणी में छटाई करता है। परिभ्रामी सिलेंडर ग्रेडर लगभग विशिष्ट गुरुत्व विभाजक छलनी जैसे ही दिखता है लेकिन इसके साथ अंदर के हिस्से में एक चल ट्रे लगा होता है। सिलेंडर की लंबाई और सतह क्षेत्र पर इंडेंट की संख्या निर्भर करती है। इंडेंट्स सिलेंडर की सतह के अंदर लाइन में लगे होते है। दांतेदार बने सिलेंडर विभिन्न फसलों के बीज उन्नयन के लिए इस्तेमाल किए जाते है। यहां तक की घास के बीज, टूटे या कटे बीज, और अनुचित फसल की सामग्री को हटाने के लिए भी इनका उपयोग किया जाता है।

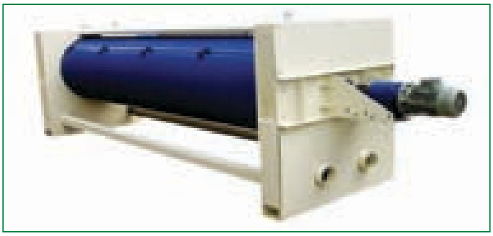

चित्र-14 : लंबाई अनुसार दाने को अलग करने वाला यंत्र

अनाज सुखाने के यंत्र (ग्रेन ड्रायर)

कृषि उपज को सुखाकर उसे सुरक्षित भंडारण की स्थिति में लाना कृषि प्रसंस्करण में एक महत्वपूर्ण कदम है। अगर बिना सुखाये ही भंडारण में रख दें तो अनाज के सड़ जाने की संभावना अधिक होती है। इसलिए उपज को एक सुरक्षित नमी तक (12-13 प्रतिशत) सुखाएं तो यह संभावना कम होती है। उत्पाद न सुखाने के कारण भंडारण के दौरान अक्सर अनाज में बेमौसम अंकुरण, फफूंदी लगना और कवक एवं कीटाणु फ़ैल जाते हैं। आजकल फसल काटने में कंबाइन हार्वेस्टर का बहुत बडा योगदान है। इससे हार्वेस्टिंग करने के लिए फसल में थोड़ी नमी होना जरूरी है जिससे कि कटाई के दौरान कम से कम नुकसान हो सके। इस कारणवश, अनाज में जब नमी आ जाती है तो उसे सुखाना अनिवार्य हो जाता है। अगर देखा जाए तो बाजार में विभिन्न प्रकार के अनाज सुखाने के यंत्र (ड्रायर) उपलब्ध हैं। सक्रिय प्रक्रिया के आधार पर ड्रायर को दो भागों में विभाजित किया गया है (i) डिब्बेवाले ड्रायर (बीन ड्रायर) और (ii) सतत प्रवाह प्रक्रिया वाले ड्रायर। ईंधन के आधार पर इन्हें सौर ऊर्जा वाले ड्रायर, बायोगैस ड्रायर, विद्युत ड्रायर आदि कहते हैं। ड्रायर में मुख्य रूप से बर्नर और धौंकनी, उपज को रखने के लिए कक्ष, अनाज डालने और उतरने की व्यवस्था आदि घटक होते हैं। अगले परिछेद में केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद द्वारा विकसित गैस से चलने वाले ड्रायर की विस्तृत चर्चा की गई है।

ग्रामीण क्षेत्र में बिजली की अनिश्चितता के कारण विद्युत चलित ड्रायर कामयाब नहीं हो रहे हैं। सौर ऊर्जा प्रचुर है लेकिन इसकी उपलब्धता मौसमी होती है। ड्रायर की जटिल गर्मी विनिमय प्रक्रिया से बचने के लिए, एक पोर्टेबल आठ क्यूबिक मीटर मात्रा वाला एलपीजी गैस पर आधारित यह ड्रायर विकसित किया गया है जो कि हर्बल सामग्री और अन्य उच्च मूल्य के उत्पादों को सुखाने के लिए उपयुक्त है (चित्र-15)। इस ड्रायर इकाई में एक कोठरी (कक्ष) है जिसके अंदर उत्पाद रखने के लिए योग्य स्टील का ढांचा बनाया है जिसमे उत्पाद रखने के लिए ट्रे की व्यवस्था है। इसमें एक गैस बर्नर होता और इसके साथ कोठरी में गर्म हवा को प्रसारित करने के लिए एक धौंकनी इकाई लगी है। इस ड्रायर में तापमान नियंत्रक के साथ एक इलेक्ट्रानिक रिले सिस्टम लगाया गया है जो कोठरी के तापमान के आधार पर गैस के प्रवाह को नियंत्रित करता है। अगर कोठरी का तापमान निर्धारित सीमा से कम या अधिक हो तो तापमान नियंत्रक, रिले प्रणाली गैस के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए संकेत भेजता है। कोठरी की नमी को नियंत्रित करने के लिए कोठरी के शीर्ष और निचले हिस्से में हवा का आवागमन होने के लिए छिद्र बनाए गए हैं। यह ड्रायर पत्तेदार सामग्री, आंवला, टमाटर, प्याज आदि के अलावा मोटे अनाज के लिए भी लिए उपयुक्त है।

चित्र-15 : गैस से चलने वाला अनाज/हर्बल ड्रायर

छोटे दाल मिल्स

देश में दाल मिलिंग प्रौद्योगिकी धीरे-धीरे बढ़ रही है। सन 1972 में देश मे दाल मिल्स की संख्या सिर्फ 2000 थी। यह 2015-16 में करीब दस गुना बढ़ गई है। देश के कुल दलहन उत्पादन के 75 प्रतिशत दलहन को दाल में परिवर्तित किया जाता है। यह प्रोटीन का एक अच्छा स्त्रोत है। दलहन से दाल बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की दाल मिल्स बाजार में उपलब्ध हैं। पारंपरिक पद्धति में घर में ही हैंड स्टोन ग्राइंडर याने चक्कियों से दालें बनाई जाती हैं, लेकिन इनकी कार्य क्षमता कम होने से इनका व्यवसायिक स्वरूप नहीं है। व्यवसायिक तौर पर बाजार में लघु क्षमता (1000 किलोग्राम दाल प्रतिदिन) से लेकर मध्यम क्षमता (5000 किलोग्राम दाल प्रतिदिन) और बड़ी क्षमता (10000) किलोग्राम दाल प्रतिदिन) तक के दाल मिल्स उपलब्ध हैं। बड़ी क्षमता वाले मिल्स संघटित हैं लेकिन लघु और मध्यम क्षमता के मिल्स भी अभी संघटित रूप ले रहे हैं। देश में आज कुल 250 दाल मिल सहकारियों के संगठन हैं, जिसमे तमिलनाडु अग्रिम स्थान पर है। बैंकों द्वारा उचित ब्याज दरों में ऋण मिलने से किसान संगठित होकर स्वयं सहायता दल बना रहे हैं और इस प्रौद्योगिकी को अपना रहे हैं जिसके परिणामस्वरुप दलहनों में मूल्यवृद्धि तो हो ही रही है, इसके अलावा ग्रामीण स्तर पर युवा और महिलाओं के लिए रोजगार भी उपलब्ध होने लगा है। बाजार में कई ढांचे के सुधारित दाल मिल आने लगे है। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद ने छोटे किसानों के लिए एक सुधारित दाल मिल तकनीक विकसित की है (चित्र-16)।

चित्र-16 : छोटी क्षमता वाले (मिनी) दाल मिल

इस प्रकार के यंत्र में, मूल रूप से अनाज के लिए प्रवेश द्वार (हॉपर), घर्षण रोलर, हवा की इकाई, उत्पाद निर्गम मार्ग और शक्ति स्रोत होते हैं। यंत्र में एक घूर्णन ड्रम रोलर होता है जिस पर घर्षण सामग्री लेपित होती है, जो घर्षण प्रदान करती है और अनाज से छिलका निकालकर उसे दालों में परिवर्तित करती है। धातु की एक जाली ड्रम के इर्द-गिर्द प्रदान की है यह जाली दाल बनाने में सहायता करती है। दाल बनाने के बाद छिलका और भूसा अलग करने के लिए उत्पाद निर्गम मार्ग में हवा प्रदान करने के लिए एक एस्पिरेटर लगाया गया है। टूटे हुए दाल को अलग करने के लिए एक छलनी सेट है। घर्षण ड्रम और एस्पिरेटर को आवश्यक गति प्रदान करने के लिए योग्य पुल्ली और बेल्ट की व्यवस्था की गई है। यह यंत्र तीन अश्वशक्ति के मोटर द्वारा संचालित होता है। यंत्र के सभी घटकों को एक हल्के स्टील फ्रेम पर समायोजित किया गया है। इस यंत्र से सभी प्रकार की दाल जैसे चना, अरहर, उडद आदि बना सकते हैं। दालों की गुणवत्ता के लिए पूर्व उपचार प्रक्रियाओं को भी मानकीकृत किया गया है। इस दाल मिल की क्षमता 1000 किलोग्राम प्रतिदिन है।

आटा बनाने के यंत्र (फ्लोर मिल्स)

अनाज, जैसे गेहूं, ज्वार, बाजरा आदि से आटा बनाने के लिए विशिष्ट प्रकार के अपघर्षक पत्थरों से (एमरी स्टोन) बनी चक्कियां प्रचलित हैं (चित्र-17)। इसमें दो गोलाकार पत्थर होते हैं जिसमे एक पत्थर स्थिर होता है और दूसरा घूमने वाला रहता है। 5 से लेकर 10 अश्वशक्ति तक की विद्युत मोटर से यह चक्कियां संचालित कर सकते है। दो गोलाकार पत्थरों में अपघर्षण होने से अनाज को आटे में परिवर्तित होने तक पीसा जाता है। आटे की गुणवत्ता के लिए चक्की मे दाने की मात्रा को नियंत्रित किया जाता है। पत्थर वाली चक्कियों में रखरखाव ज्यादा होता है। बाजार में धातुवाली उन्नत या सुधारित चक्कियां आने लगी हैं। लोहे वाली चक्कियों में टंकण से अनाज को पीसा जाता है। इनमे एक छोटे से गोलाकार कक्ष मे 4 टंकण लगाए जाते है जो कक्ष में उचित गति के साथ घूमते है। दस अश्वशक्ति की चक्कियों की कार्य क्षमता 80-100 किलोग्राम प्रति घंटे होती है। कुल अनाज पिसाई में इस प्रकार की छोटी चक्कियों का योगदान लगभग 80 प्रतिशत है और देश में इन चक्कियों की संख्या आज करीब 50 लाख है। छोटे चक्की धारक असंघटित हैं। देश मे पिसाई के बड़े रोलर मिल्स 1000 तक हैं और यह संघटित वर्गीकरण में आते हैं।

चित्र-17 : प्रचलित आटा चक्की

तेलघानी (ऑयल एक्सपेलर)

देश में कुल अनाज के उत्पादन में तिलहन का योगदान 13 प्रतिशत है। 2015-16 के आंकड़ों के अनुसार, वैश्विक स्तर पर देश मूंगफली तेल के उत्पादन में दूसरे स्थान पर (10.6 लाख टन), सरसों के तेल में चौथे स्थान पर (23.2 लाख टन) और सोयाबीन के तेल में छटे स्थान पर (10.6 लाख टन) रहा, लेकिन ज्यादातर तेल की खपत देश में ही होती है। इससे देश मे तिलहन के तेलों का और उससे संबंधित तेलघानियों का महत्त्व समझ में आता है। भारत मे पारंपरिक बैलचलित लकड़ी से बनी तेलघानियां हैं लेकिन पशुओं के अभाव से यह तेलघानियां धीरे-धीरे लुप्त होने लगी हैं। अब विभिन्न क्षमता वाले 5 अश्वशक्ति से लेकर 50 अश्वशक्ति तक के स्क्रू एक्सपेलर और एक्सट्रूडर जैसे सुधारित तेलघानी उपकरण बाजार में आने लगे हैं और इनका उपयोग बड़े पैमाने पर होने लगा है। छोटी क्षमता वाले तेलघानी (चित्र 18) ग्रामीण स्तर पर स्वयं सहायता समूह द्वारा भी चलाए जा रहे है और इसके लिए बैंकों द्वारा कम ब्याज में ऋण मिलता है। ग्रामीण स्तर पर इन प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने से रोजगार की उपलब्धि हो रही है।

चित्र-18 : प्रचलित तेलघानी

अनाज भंडारण कक्ष (कोठार)

हमारे देश में अनाज का भंडारण, घरेलु, व्यापारिक, और औद्योगिक तीन स्तर पर होता है। कुल अनाज उत्पादन के 50-60 प्रतिशत अनाज का भंडारण घरेलु स्तर पर और पारंपरिक संरचना कोठार में किया जाता है। घर में भंडारण करने की समय सीमा और क्षमता उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करती है। देश में प्रचलित और स्थानिय सामग्री की उपलब्धतानुसार पारंपरिक कोठार बनाए जाते हैं (चित्र-19)। इन भंडारण की संरचना उपयुक्त न होने से कई प्रकार के रोग और कीटकों का प्रादुर्भाव होता है जिससे अनाज में गुणवत्ता की क्षति होती है। इन मुद्दों को ध्यान में रखते हुए भारतीय अनाज भंडार व्यवस्थापन और संशोधन संस्थान ने पूसा बीन जैसी आधुनिक संरचना का विकास किया है। यह संरचना चिनाई ईंट (4.5 इंच) से बनी हुई है। ईंट की दो दीवारों मे पॉलीथीन शीट का अस्तर दिया गया है। दीवारों के बाहरी हिस्से को स्टील से सुदृढ़ करके सीमेंट का प्लास्टर किया गया है। संरचना के ऊपरी हिस्से में अनाज को भरने के लिए प्रवेशद्वार और नीचे वाले हिस्से में निकालने के लिए निकासद्वार दिया गया है। इस प्रकार के भंडारण की ग्रामीण स्तर पर अनाज को सुरक्षित रखने हेतु प्रसार करने की जरूरत है।

चित्र-19 : पारंपरिक अनाज के कोठार (भंडार)

फल और सब्जी परिरक्षक उपकरण

फल और सब्जियों को सुरक्षित रखने के लिए विशिष्ट ढांचे के परिरक्षक उपकरण बनाए गए हैं। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद ने छोटे धारक और व्यापारियों के उपयुक्त एक परिरक्षक उपकरण बनाया है। चित्र-20 में दिखाए गए चित्रानुसार इसमें छोटा प्लास्टिक से बना गोलाकार कक्ष दूसरे बड़े कक्ष में रखा गया है। दो कक्ष के गोले में पाइन ग्रास (एक प्रकार का घास) का मैट है। प्लास्टिक के दोनों कक्षों के इर्द-गिर्द छोटे छिद्र दिए हैं, जिनसे हवा का आवागमन होता है। कक्ष के ऊपर पानी के लिए गोलाकार 4-5 लीटर की टंकी लगी है। टंकी के नीचे ड्रिपर्स लगे है, जिससे पानी बूंद-बूंद पाइन के घास पर टपकता है। ड्रिपर्स द्वारा पानी के प्रवाह को नियंत्रित करने से दोनों कक्ष के गाले में रखी घास में निरंतर नमी बनी रहती है। अंदर के कक्ष में फल और सब्जियों को रखा जाता है। कक्ष के अंदर की गर्मी को वाष्पन की प्रक्रिया से बाहर निकाला जाता है। इसके कारण कक्ष का भीतरी तापमान बाहरी तापमान से 8-10 डिग्री सेल्सियस कम रहता है। कड़ी ग्रीष्म ऋतु में यह अंतर और भी बढ़कर 15 डिग्री सेल्सियस तक नीचे रहता है। इस प्रकार के साधन से हरी-सब्जियां और फलों को एक सप्ताह तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यह 10, 15 और 50 किलोग्राम की क्षमता तक उपलब्ध है। इनके परिचालन के लिए किसी प्रकार की बाहरी ऊर्जा शक्ति की आवश्यकता नहीं होने के कारण फल और सब्जियां प्राकृतिक रूप में तरो-ताजा बनी रहती हैं।

चित्र-20 : फल और सब्जियां सुरक्षित रखने के लिए परिरक्षक

सारांश

सारांश में अगर कहें तो छोटे और मध्यम वर्गीय जोत धारकों के लिए प्राथमिक तौर पर आधुनिक कृषि उपकरणों की आवश्यकता होती है। इसे मुख्य बिंदु मानकर निजी और सरकारी संस्थाओं ने कृषि उपकरणों का अविष्कार एवं विकास किया है। यह उपकरण जुताई से लेकर थ्रेशिंग और फसल कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी तक के कृषि संबंधित कार्यों में समयोचितता, यथार्थता और गुणवत्ता साधने हेतु अहम् भूमिका निभाते हैं। इनमें से कई उपकरण खुले बाजार में उपलब्ध होने लगे हैं। किसान वर्ग इन उपकरणों का लाभ उठा सकते हैं। यदि स्थानिय स्तर पर उपकरणों के ढांचे में कुछ छोटे-मोटे बदलाव की आवश्यकता हो तो नजदीकी कारीगरों की सहायता या सलाह से इनमें सुधार लाकर अपने कृषि व्यवसाय को और आगे बढ़ा सकते हैं।

संदर्भ

संजीव रेड्डी बी एवं अन्य (2015). स्माल फार्म मेकनाइज़ेशन टेक्नोलाजीज एंड ट्रांसफर स्ट्रेटेजीज. इंडियन फार्मिंग 65 (03): 45-48.

बसवराज एच एवं अन्य (2007). इकनोमिक एनालायसिस आफ पोस्ट हार्वेस्ट लॉसेस इन फ़ूड ग्रेन्स इन इंडिया: ए केस स्टडी आफ कर्नाटक. एग्रीकल्चरल इकोनामिक्स रिसर्च रिव्यु, 20 : 117-126.

श्रीनिवास राव सीएच एवं अन्य (2013). ओपेरेशनलाइजेसन आफ कस्टम हायरिंग सेंटर्स ऑन फार्म इंपलिमेंट्स इन हंड्रेड विलेजेस इन इंडिया, सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, पीपी. 151.

कवडे एस सी एवं अन्य (2015). फार्मर्स पार्टिसिपेटरी रिफाइनमेंट्स एंड एडॉप्शन आफ क्रीड़ा बुल्लोक ड्रान प्लांटर इन लातूर डिस्ट्रिक्ट आफ महाराष्ट्र. इंडियन जर्नल आफ ड्राइलैंड एग्रीकल्चरल रिसर्च एंड डेवलपमेंट. 30 (2) : 93 -99

श्रीनिवास आई एवं अन्य (2016). इफेक्टिव स्टोरेज स्ट्रक्चर्स फार फ़ूड ग्रेन्स, फ्रूट्स एंड वेजिटेबल्स. रिशेपिंग एग्रीकल्चर एंड न्युट्रिशन लिंकेजेस फार फ़ूड एंड नुट्रिशन सिक्योरिटी (एडिटर्स, के श्रीदेवी शंकर, आर नागार्जुन कुमार, पुष्पांजलि, के.नागश्री, जी निर्मला एंड एन सौरी राजू) सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद (ISBN:978-93-80883-42-7), पीपी. 306-313.

श्रीनिवास आई एवं अन्य (2014). फार्म मेकनाइज़ेशन फार रेनफेड रीजन्स : फार्म इंपलिमेंट्स डेवलप्ड एंड कमर्शिलाइज़ड. सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, पीपी. 31.

ज्ञानेंद्र सिंह एवं अन्य (1999). रोले आफ इम्प्रूव्ड फार्म इक्विपमेंट इन ड्राइलैंड एग्रीकल्चर. फिफ्टी इयर्स आफ ड्राइलैंड एग्रीकल्चरल रिसर्च इन इंडिया (एडिटर्स, एच. पी सिंह, वाई एस रामकृष्णा, के एल शर्मा और बी वेंकटेश्वर्लु), सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद पीपी. 431-445.

नवाब अली (1999). पोस्ट हार्वेस्ट टेक्नोलॉजी एंड एग्रो-प्रोसेसिंग फार इंपोर्टेन्ट रेनफेड क्रॉप्स. फिफ्टी इयर्स आफ ड्राइलैंड एग्रीकल्चरल रिसर्च इन इंडिया (एडिटर्स, एच पी सिंह, वाई एस रामकृष्णा, के एल शर्मा एंड बी वेंकटेश्वर्लु), सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलैंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, पीपी. 447-461.

★★★

11

फसलों के लिए समन्वित कीट प्रबंधन

- एम प्रभाकर, एस वेन्निला एवं अनिमा लुगुन

परिचय

मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण की सुरक्षा हेतु समेकित नाशीजीव प्रबंधन (आईपीएम) चिरस्थाई और पर्यावर्णीय पद्धति है जो कि कीटों, रोगों, खरपतवार, सूत्रकृमी आदि को आर्थिक हानि स्तर से नीचे रखने के लिए पारंपरिक, जैविक, यांत्रिक और रासायनिक विधियों को समायोजित करती है। प्रमख कीटों की जनसंख्या गतिशीलता और फसल विकास अवस्था को ध्यान में रखते हुए ही आईपीएम प्रणाली विकसित की जाती है। भारत में वर्षा आधारित परिस्थितियों के तहत शुष्क फसल प्रणाली में चारा, मक्का, अरहर, कपास, मूंगफली और अरंडी मुख्य फसलें है। अर्ध शुष्क उष्णकटिबंधीय में अनाज-फली मिश्रित फसल प्रणाली सामान्य हैं। अनियमित वितरण के साथ कम वर्षा और कम उर्वरता नाशीजीवियों द्वारा की जाने वाली हानि के अतिरिक्त फसल प्रजाति/किस्मों की क्षमता को भी नियंत्रित करती है। शुष्क भूमि उत्पादन प्रणाली में फसलों के लिए प्रयोग किए जाने वाले महत्वपूर्ण नाशीजीव प्रबंधन विकल्प नीचे दिए गए हैं:-

ज्वार

- स्थानीय क्षेत्रों में प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करें
    - शूट फ्लाई: आईसीएसवी-705 और आईसीएसवी-717
    - तना बेधक: आईएस-2205 और आईएस-2376
    - छोटे कीड़े: डीजे-6514, डीएसवी-3, आईसीएसवी-197, 743
- मानसून की शुरुआत से पूर्व बुवाई करें।
- देरी से बुवाई की स्थिति में, उच्च बीज दर (2.5 किलोग्राम अधिक) के साथ छंटाई और मृत केंद्र लक्षण से क्षतिग्रस्त पौधों को नष्ट करें।
- बुवाई के समय हल से जुताई के साथ मृदा में कार्बोफ्यूरान या फोरेट 1 किलोग्राम सक्रिय तत्व/हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।
- पौधे के निकलने के 25 और 35 दिन बाद कार्बोफ्यूरान दानों का 2-3 दाने प्रति चक्रिल प्रयोग करें।
- ईअर हेड कीट की रोकथाम के लिए कार्बेरिल 5 प्रतिशत डीपी अथवा मैलाथियान 5 प्रतिशत अथवा फोसालोन 4 प्रतिशत डीपी का 20 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

मक्का

- तना बेधक के लिए प्रमाणित प्रतिरोधी किस्मों का चयन करें।
- एचक्यूपीएम-1, डीएचएम-117, एचएम-4, एचएम-5, विवेक संकर का प्रयोग।
- थिराम-70 प्रतिशत डब्ल्यूएस का 25-30 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार।
- मक्का को फली-मक्का-सोयाबीन/मक्का-लोबिया/मक्का-हरा चना के साथ अंत: फसल के रूप में बोएं।
- मृत भागों को हटाएं और तना बेधक लार्वा को नष्ट करें।
- पर्णीय अंगमारी/रतुवा/कोमल फफूंद के लिए मेन्कोजेब 75 प्रतिशत डब्ल्यूपी का 1.5-2 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से पर्णीय छिड़काव।
- ठूंठी और बारहमासी खरपतवार को नष्ट करने के लिए ग्रीष्मकालीन जुताई।

अरहर

- हेलिकोवर्पा अर्मिजेरा (सूंडी) हेतु प्रतिरोधी किस्म अभय का उपयोग करें।
- निर्धारित स्थान में समकालिक बुवाई।
- ज्वार/बाजरा के साथ फसल चक्र।
- लघु एवं मध्यम अवधि में मटर के साथ अरंड (1:1) या ज्वार (1:2) को अंतर फसल के रूप में लगाएं।
- पक्षी के 20 बसेरे प्रति हेक्टेयर की दर से (5 'ऊंचाई वाले टी-आकार के बांस के खूंटे) स्थापित करें।
- ब्लिस्टर बीटल (भृंग) वयस्कों का हाथ से एकत्रित करें।
- 50 प्रतिशत पुष्पण अवस्था पर एनपीवी (500 एलई प्रति हेक्टेयर) का छिड़काव।
- पूर्व फली गठन चरण और देर से पैदा हुए इनस्टार लार्वा को नष्ट करने के लिए पौधों को हिलाएं।
- मासिक अंतराल पर एनएसकेई 5 प्रतिशत का छिड़काव।

मूंगफली

- स्थानीय क्षेत्रों में प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करें
    - पत्ती सुरंगक : वी आर-17, गिरनार-3
    - बड नेक्रोसिस: विजेता
    - जेसिड्स (पती चुसक फूदक कीट): कादिरी-7, कादिरी-8

    - थ्रिप्स (पती चुसक कीट) : गिरनार-3
    - पछेती पर्ण धब्बा: वीआरआई-6, जवाहर, ग्रीष्म, सीओ-6
- कीट एवं रोग नियंत्रण हेतु बीजोपचार
    - सफेद ग्रब (सफेद लट): क्लोरपायरिफोस 12 मिलीग्राम/किलोग्राम बीज
    - रोग: कार्बेंडाजिम 2 ग्राम+थिराम 3 ग्राम/किलोग्राम बीज
- विषाणु जनित रोगों की व्यापकता को कम करने के लिए जल्दी बुवाई करें और फसल पंक्तियों में कम अंतर पर लगाएं (30x10 सेंटीमीटर)।
- बाजरा/ज्वार को अंतरफसल के रूप में लगाएं।
- किनारे पर बाजरा/ज्वार की दो पंक्तियों को लगाएं।
- स्पोडोप्टेरा (पतंगा) की निगरानी के लिए अरंडी और सूरजमुखी को जाल फसल के रूप में लगाएं।
- लार्वा के भक्षण के लिए प्रति हेक्टेयर की दर से 20 पक्षी बसेरों की स्थापना करें।
- नीम बीज सत का पांच प्रतिशत अथवा नीम केक सत का एक प्रतिशत की दर से पर्णीय छिड़काव करें।
- पत्ती धब्बा नियंत्रित करने के लिए कार्बेंडाजिम 0.1 प्रतिशत+मेनकोजेब 0.2 प्रतिशत का पर्णीय छिड़काव करें; 35 दिनों के बाद 15 दिन के अंतराल पर दो छिड़काव करें।

कपास

- कपास के चूसक कीटों के लिए सहिष्णु किस्मों का चयन।
- फसल मौसम के दौरान व गैर फसल मौसम में क्षेत्र स्वच्छता का रख-रखाव।
- अंतर को भरने के माध्यम से सर्वोत्तम पौधों का रख-रखाव।
- हानिकारक कीटों के वैकल्पिक पोषक को हटाना।
- पक्षियों के बसेरों हेतु सेटेरिया को अंतर फसल रूप में लगाएं और सीमांत फसल के रूप में अरहर को लगाएं जो रेफ्युजिया के लिए प्रयोग हो; हेलिकोवेर्पा (सूंडी) के लिए गेंदे को ट्रैप फसल के रूप में लगाएं।
- ऐफिडोफेगास कोक्सिनेलिड परभक्षियों (कीट) को आकर्षित करने के लिए लोबिया को अंतर फसल और मिश्रित खेती के रूप में लगाएं।
- मौसम के प्रारंभ में चूसक कीटों के नियंत्रण के लिए कीटनाशकों का प्रयोग करें।
- गुलाबी सुंडी निगरानी हेतु 5 फेरोमोन जाल प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।
- “लेबल क्लेम“ युक्त रासायनिक कीटनाशकों की सही खुराक और प्रयोग आवश्यकता आधारित करें।

अरंडी

- म्लानि रोग के लिए प्रतिरोधी किस्मों: डीसीएस-9, जीसीएच-4 का प्रयोग करें।
- ट्राइकोडर्मा 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज या कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें।
- 20 पक्षी बसेरों की स्थापना प्रति हेक्टेयर की दर से करें।
- ट्राइकोग्रामा परजीवी अंड़ों को 50000 प्रति हेक्टेयर की दर से छोड़ें; बुवाई के 5 सप्ताह बाद साप्ताहिक अंतराल पर 4 बार छोड़ें।
- सेमीलूपर (अर्ध कुंडलक लट) के लिए बेकुलोवायरस का 500 एलई प्रति हेक्टेयर अथवा बीटी का 2.5 ग्राम प्रति लीटर अथवा नीम बीज का सत्त 5 प्रतिशत अथवा अनोना सत्त 0.5 प्रतिशत अथवा क्युनाल्फोस 0.05 प्रतिशत के 20 दिन के अंतराल पर 2 पर्णीय छिड़काव करें।
- स्पोडोप्टेरा (पतंगा) ग्रसित पत्तियों को हाथ से एकत्रित कर नष्ट करें
- झिल्ली बेधक के लिए अनाज की बाली पर क्लोरपाइरीफोस 0.05 प्रतिशत का छिड़काव करें।
- सितंबर माह में निरंतर 4-5 दिनों के लिए नम मौसम की पूर्व चेतावनी होने पर बोट्रायिट्स धूसर कवक गलन के लिए बाविस्टिन 0.2 प्रतिशत का पर्णीय छिड़काव करें।

सारांश

हानिकारक कीट एवं बीमारियां फसलों एवं भंडारित अनाज को भारी नुकसान पहुंचाते हैं। फसल के प्रकार, फसल अवधि एवं मौसम के अनुसार ये नुकसान कुल उत्पादन का लगभग 30 प्रतिशत हो सकता है। वातावरण में कार्बनडाईआक्साइड गैस एवं तापमान स्तर में बढ़ोत्तरी सीधे तौर पर कीटों एवं बीमारियों को प्रभावित कर रही है। बढ़ी हुई कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा से फसलों की पत्तियों में शर्करा की मात्रा मे बढ़ोत्तरी एवं नत्रजन मात्रा में गिरावट कर सकती है। परिणामस्वरूप बहुत से कीट भोजन में नत्रजन आवश्यकता की पूर्ति के लिए अधिक पत्तियों को नुकसान पहुंचा रहे हैं। अतः इन हानिकारक कीटों का समय पर समन्वित कीट प्रबंधन के माध्यम से प्रभावी नियंत्रण अति आवश्यक है।

संदर्भ

राव एम एवं अन्य (2007)। इन्टीग्रेटेड पेस्ट मैंनेजमेंट इन रेनफेड क्राप्स। केवीके टेक्नीकल बुलेटिन 131, सेंट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद. पीपी. 56.

वेन्निला एस एवं अन्य (2016) सक्सेस स्टोरीज आफ इंटीग्रेटेड पेस्ट मैंनेजमेंट इन इंडिया, आईसीआरएए नेशनल सेंटर फार इंटीग्रेटेड पेस्ट मैंनेजमेंट, नई दिल्ली, पीपी. 78.

★★★

12

टिकाऊ जीविकोपार्जन में पशुधन का महत्व

- प्रभात कुमार पंकज, डी बी वी रमण, जी निर्मला एवं सीएच श्रीनिवास राव

परिचय

गरीबों के लिए आजीविका संवर्धन आज भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। विकासशील देशों में ग्रामीण और गरीब परिवारों के लाखों लोगों के लिए पशुधन, क्षेत्र के सुदृढ़ीकरण एवं उनकी आजीविका बनाए रखने के लिए प्रासंगिक है। पशुधन क्षेत्र में गरीबी को कम करने और खाद्‌य सुरक्षा बढ़ाने की अपार क्षमता मौजूद है। पशुधन क्षेत्र का विकास न सिर्फ श्रम की मांग उत्पन्न करता है बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से कई इकाइयों (उदाहरण के लिए चारा और प्रसंस्करण उद्‌योग के रूप में) का भी समर्थन करता है और व्यापार में संतुलन बनाए रखता है। पशुधन से देश का आर्थिक विकास संभव है जिससे पशु-स्रोत भोजन की आपूर्ति के माध्यम से बेहतर खाद्‌य सुरक्षा प्रदत्त होती है। कृषि क्षेत्र के अंतर्गत पशुपालन, ग्रामीण महिलाओं की आय और संसाधन के रूप में रोजगार उत्पन्न करने का एक प्रमुख साधन है। पशुपालन, रोजगार के क्षेत्र में मुख्य धारा में अनुमानतः 1.14 करोड़ और सहायक धारा में 1.10 करोड़ लोगों को रोजगार देता है जो देश की कुल कामकाजी आबादी का 5.50 प्रतिशत है। इसके अलावा पशुपालन क्षेत्र में लगी 2.25 करोड़ आबादी में से 1.68 करोड़ महिलाएं हैं। इस प्रकार पशुपालन और मत्स्य पालन, रोजगार के क्षेत्र में देश में कुल कार्य बल का 9.05 प्रतिशत योगदान करता है।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का केंद्र बिंदु व भारतीय जीवन की धुरी है। आर्थिक जीवन का आधार, रोजगार का प्रमुख स्रोत तथा विदेशी मुद्रा अर्जन का माध्यम होने के कारण कृषि को देश की आधारशिला कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। देश की कुल श्रमशक्ति का लगभग 52 प्रतिशत भाग कृषि एवं कृषि से संबंधित क्षेत्रों से ही अपना जीविकोपार्जन कर रही हैं। अतः यह कहना समुचित होगा कि कृषि के विकास, समृद्धि व उत्पादकता पर ही देश का विकास व संपन्नता निर्भर है। वैश्वीकरण के इस प्रतिस्पर्धी युग में कृषि व कृषकों पर खतरों के बादल मंडरा रहे हैं। विडंबना यह है कि राष्ट्रीय आय में कृषि का अंश उत्तरोत्तर कम होता जा रहा है जबकि कृषि में संलग्न कार्यशील जनसंख्या का अनुपात लगभग स्थिर है। कृषि उपयोग भूमि के उपविभाजन एवं अपखंडन के परिणामस्वरूप अनार्थिक जोतों की संख्या में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। ज्ञातव्य है कि देश की लगभग 78 प्रतिशत कृषि जोतें 2.0 हेक्टयर से कम की हैं। इसी प्रकार अभी भी कृषिगत भूमि का एक तिहाई भाग ही सिंचित है और दो तिहाई भाग आज भी मानसून पर आधारित है। इसके अलावा किसान निराशाजनक स्थिति में तूफान, बाढ़

व ओलावृष्टि जैसी प्राकृतिक आपदाओं का कहर भी झेलता है तथा इन अप्रत्याशित संकटों के कारण किसान ऋण जाल में फंस जाते हैं।

पशुधन

पशुपालन देश की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण योगदान कर रहा है। ग्रामीण भारत में जहां 15-20 प्रतिशत से अधिक परिवार भूमिहीन हैं और 80 प्रतिशत किसान छोटे और सीमांत श्रेणी में आते हैं, वहां पशुधन आजीविका का मुख्य स्रोत है। उपजाऊ भूमि और सुनिश्चित सिंचाई के अभाव में छोटे और सीमांत किसान अपनी आय के पूरक के लिए पशुपालन अपनाते हैं जबकि एक छोटी सी आबादी औद्योगिक और सेवा क्षेत्र को नियंत्रित कर रही हैं। बड़े किसान भैंस और अन्य मवेशी पसंद करते हैं, जबकि भूमिहीन, छोटे और सीमांत किसान अपने जीवन यापन के लिए भेड़, बकरी और मुर्गी पालन पर निर्भर रहते हैं। पशुधन की विभिन्न प्रजातियों के बीच, भैंस और अन्य मवेशी राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र में प्रमुख योगदान प्रदान कर रहे हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पशुधन के महत्व के बावजूद, पशुधन मालिकों में अधिकांश तकनीकी सहायता सेवाओं और अक्षम पिछड़े और आगे एकीकरण की कमी के कारण, इस उद्योग की क्षमता का दोहन करने में असमर्थ हैं। भारत मवेशी और भैंस की आबादी में पहले स्थान पर, बकरी में दुसरे स्थान पर, भेड़ों में सातवें और अंडा उत्पादन में तीसरे स्थान पर है। हालांकि, पिछले 10 वर्षों के दौरान पशुओं की जनसंख्या 48.5 करोड़ के आसपास स्थिर हो गई है। भैंसों की आबादी में 8.91 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जबकि कुल पशु जनसंख्या 6.89 प्रतिशत कम हो गई है। पिछले पांच दशकों के दौरान बकरी की आबादी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। भूमि जोत के घटते आकार, अनियमित मानसून और लगातार सूखा पड़ने की वजह से कई छोटे किसान, बड़े जानवरों की तुलना में छोटे जुगाली करने वाले पशुओं को रखने के लिए मजबूर हुए हैं।

पशुधन के मामले में भारत का दुनिया में पहला स्थान है। 18वीं पशुधन जनगणना 2007 के अनुसार भारत में पशुधन की कुल संख्या 52.0 करोड़ है। पशुधन की इस आबादी में 20.0 करोड़ गाय एवं बैल, 10.0 करोड़ भैंस और 14.0 करोड़ बकरियां हैं जिनका दूध वृहद स्तर पर उत्पादित किया जा रहा है और दुग्ध उत्पादन में भी भारत दुनिया भर में अव्वल है। भारत ने वर्ष 2012-13 में 13.3 करोड़ टन दूध का उत्पादन किया और यदि दुग्ध की सालाना वृद्धि दर पर गौर करें तो 2011-12 में यह 5 प्रतिशत के आसपास था। दुग्ध उत्पादन ही नहीं बल्कि पशुधन से संबंधित हर उत्पाद अर्थव्यवस्था को बल दे रहा है। केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय के आंकड़ों के अनुसार साल 2011-12 में पशुधन उत्पादन का मूल्य 3,05,484 करोड़ रहा, जो धान और गेहूं के उत्पादन मूल्य से अधिक है। पशुधन के विकास पर नजर डालें तो पता चलता है की 1951 में गाय एवं भैंसों की संख्या 19.8 करोड़ थी जो 2006-07 में 30.4 करोड़ ही पहुंच पाई।

एक संगठित प्रजनन कार्यक्रम के तहत वर्तमान प्रजनन योग्य गौजातीय पशुओं की जनसंख्या 11.40 करोड़ है, जिसमें 1.26 करोड़ संकर, 5.11 करोड़ स्वदेशी पशु और 5.03

करोड़ भैंस भी शामिल है। भारत 13.4 करोड़ टन प्रति वर्ष दूध उत्पादन के साथ विश्व दुग्ध उत्पादन में सबसे ऊपर है। 2003-04 में पशुधन का योगदान 1645.09 करोड़ रुपए था, जिसमें से 1100.85 करोड़ रुपए (66.92 प्रतिशत) दूध और मांस से प्राप्त होता था। पशुधन प्रति वर्ष 0.16 करोड़ से अधिक लोगों के लिए लाभकारी रोजगार प्रदान करता है जिसमें से 70 प्रतिशत महिलाएं हैं। भारत में सकल घरेलू उत्पाद का 9.33 प्रतिशत पशुपालन से प्राप्त होता है, जिसमें दूध उत्पादन से कुल योगदान 5.86 प्रतिशत है (सारणी-1)।

सारणी-1 : पशुधन जनसंख्या

क्र. सं.	पशु जाति	पशुधन जनगणना (करोड़)		वृद्धि दर (प्रतिशत)
		1997	2003	2003 में 1997 की तुलना में
1.	गाय	19.89	18.52	-6.89
2.	भैंस	8.99	9.79	8.91
3.	भेड़	5.75	6.15	6.96
4.	बकरी	12.27	12.44	1.38
5.	अन्य पशु	1.63	1.60	-1.77
6.	कुल पशु	48.54	48.50	-0.08

स्त्रोत : पशुधन जनगणना, पशुपालन एवं डेयरी विभाग, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली

डेयरी पशु का प्रदर्शन

दुनिया में सबसे ज्यादा दूध उत्पादन प्राप्त करने के बावजूद, हमारे पशुओं का प्रदर्शन बेहद खराब रहा है। सारणी-2 से यह परिलक्षित होता है कि भारत में प्रति पशु दुग्ध उत्पादन दुसरे देशों की तुलना में काफी कम है। हालांकि विगत वर्षों में भारत के दुग्ध उत्पादन में सराहनीय विकास हुआ है, लेकिन यह अभी भी यूरोप में दुग्ध उत्पादन की तुलना में 25 प्रतिशत कम है। यदि हमारी स्वदेशी गायों के प्रदर्शन को देखा जाए तो यह संकर गायों की प्रदर्शन की तुलना में काफी कम है।

सारणी-2 : विभिन्न देशों में गायों की दुग्ध उत्पादकता

देश	औसतन दुग्ध उत्पादन (लीटर प्रति स्तनपान अवधि)	
	1961-65	1993
एशिया	512	1125
भारत	428	987
जापान	4193	6092
इजराइल	4625	9291
यूरोप	2682	4233
फ्रांस	2552	5289

देश	औसतन दुग्ध उत्पादन (लीटर प्रति स्तनपान अवधि)	
	1961-65	1993
डेनमार्क	3739	6273
ब्रिटेन	3477	5462
कनाडा	2852	5938
अमेरीका	3519	7038
ओशिनिया	2364	3508
आस्ट्रेलिया	2112	4451

सारणी-3 से यह ज्ञात होता है कि स्वदेशी नस्ल की पशुओं का दुग्ध उत्पादन 1.98 लीटर प्रतिदिन है, जबकि संकर नस्ल का उत्पादन 6.75 लीटर प्रतिदिन और भैंसों का दुग्ध उत्पादन 4.5 लीटर प्रतिदिन है। हालांकि, चारा और चारा के लिए प्रतिस्पर्धा के कारण फ़ीड संसाधनों की भारी कमी हो जाती है। भविष्य में पशुओं की बढ़ती हुई आबादी एक बहुत बड़ी चुनौती है। अत: हमें चारा और चारा संसाधनों की कमी के बीच, बढ़ती मांग के साथ इसका सामना करने के लिए तैयार रहने की आवश्यकता है।

सारणी-3 : पशुधन जनसंख्या और दुग्ध उत्पादन में वृद्धि की संभावनाएं

वर्ष	2006-07			2021-22		
पशु के प्रकार	जनसंख्या (लाख में)	दुग्ध उत्पादन (लाख टन)	दुधारू पशुओं का औसत दुग्ध उत्पादन (लीटर प्रति दिन)	जनसंख्या (लाख में)	दुग्ध उत्पादन (लाख टन)	दुधारू पशुओं का औसत दुग्ध उत्पादन (लीटर प्रति दिन)
स्वदेशी	28.16	202.63	1.98	31.264	262.48	2.28
संकर	2.58	186.82	6.75	12.347	447.03	7.98
भैंस	32.86	539.86	4.50	40.061	977.89	5.94
बकरी	--	40.73	--	--	65.12	--

लुप्तप्राय भारतीय पशु नस्ल

भारत में उपलब्ध कुल 30 मवेशी नस्लों में से केवल चार प्रजातियां साहीवाल, गिर, राठी और सिंधी ही दुग्ध उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उनमें से, सिंधी और साहीवाल की आबादी काफी कम हो गई है। यहां देवनी, हरियाणा, कांकरेज और थारपारकर जैसे कुछ दोहरे उद्देश्य वाली नस्लों के बैल को उत्पादन के लिए रखा जाता है। भारतीय कृषि के क्षेत्र में कृषि के आधुनिकीकरण के कारण बैल उत्पादन अपना महत्त्व खो रहा है। किसी भी अच्छी नस्ल के बैलों की एक बढ़िया जोड़ी बनाने में 50,000 से 60,000 रुपए की आवश्यकता होती है। इन बैलों को अक्सर मालिकों द्वारा संकट के समय में बेचा जाता है। एक स्पष्ट नीति और संरक्षण के लिए कार्यक्रम के अभाव में इन नस्लों में भारी आनुवंशिक क्षरण की संभावना है।

आहार और चारे की उपलब्धता

आहार और चारे की उपलब्धता देश में डेयरी पशुपालन को बढ़ावा देने में एक बड़ी बाधा है। यह अनुमान लगाया गया है कि सूखे चारे की उपलब्धता केवल 88.0 करोड़ टन है, जो मांग का केवल 30-40 प्रतिशत ही पूरा कर पाता है। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि पशुओं को अल्प पोषित रखा जाता है जबकि वे बेहतर प्रदर्शन करने में समर्थ हैं। उपलब्ध शुष्क पदार्थों में से 55 प्रतिशत से अधिक चारा कृषि द्वारा उत्पादों के रूप में उपलब्ध है और लगभग 15-20 प्रतिशत, सामुदायिक बंजर भूमि और जंगलों से सूखी घास के रूप में एकत्र किया जाता है। इसी तरह, पशुधन के पोषण के लिए आवश्यक ध्यान भी नहीं दिया जाता है। नतीजतन, अधिक उपज देने वाले पशु भी असंतुलित पोषण से पीड़ित हैं। वर्तमान में भारत के केवल 3-4 प्रतिशत भू-भाग में ही चारा उत्पादन किया जाता है। यह भी ऐसे क्षेत्रों में जहां डेरी व्यवसाय विकसित है। इन क्षेत्रों का विकास और प्रोत्साहन तभी संभव है जब पशुओं की गुणवत्ता में और किसानों की सोच में बदलाव लाया जाए। सौभाग्य से पशुपालन क्षेत्र छोटे किसानों के लिए एक अनूठा अवसर प्रदान करता है। विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों में निम्नलिखित कारणों की वजह से पशुपालन टिकाऊ आजीविका के लिए अवसर प्रदान करता है:-

- वर्तमान में छोटे धारक पशुपालन के जरिए ही नियमित और अधिक आय प्राप्त करते हैं।
- लगातार फसल नष्ट होने के बाबजूद, पशुधन का वर्तमान उत्पादन स्तर अच्छी क्षमता के साथ मौजूद है।
- पशुधन कृषि के लिए सतत जैविक खाद आपूर्ति सुनिश्चित करता है। विशेष रूप से वर्षा आधारित फसल, जहां रासायनिक उर्वरकों की अधिक मात्रा में इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं, इसलिए पशुपालन के जरिए कृषि उत्पादन को बढ़ावा दिया जा सकता है।
- पशुपालन छोटे धारकों के मौसमी पलायन को कम कर देता है।
- डेयरी किसानों को उनकी उपज के लिए लाभकारी मूल्य मिल जाता है।
- दूध, भारत में प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की समृद्धि जैसे-जैसे बढ़ती है, वैसे-वैसे उनकी दूध की मांग और खपत भी बढ़ती है। इसी प्रकार, सुदूर पूर्व और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में मांस की भारी कमी की वजह से मांस और उनके उत्पाद, निर्यात के लिए एक उत्कृष्ट अवसर पैदा कर रहा है।
- विभिन्न उत्पादों के लिए बढ़ती मांग के साथ, पशुपालन विशेष रूप से भूमिहीन, छोटे और सीमांत किसानों और उनकी अर्थव्यवस्था में सुधार करने के लिए अच्छा अवसर प्रदान करता है।
- पशुपालन एक श्रम गहन गतिविधि है। यह छोटे और भूमिहीन किसानों के लिए जो ज्यादातर बेरोजगार हैं, श्रम प्रदान करने में सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार, पशुपालन को देश के वर्षा आधारित क्षेत्रों में एक प्रमुख गतिविधि के रूप में प्रोत्साहित किया जा सकता है।
- वर्तमान स्थिति को बदलने के लिए विशेष रूप से समाज के कमजोर वर्गों के लाभ के लिए, यहां पशुपालन नीति में भारी परिवर्तन तथा निजी क्षेत्र और स्थानीय समुदायों की अधिक से अधिक भागीदारी की जरूरत है।

किसानों की आजीविका में सुधार के तरीके और साधन

आमतौर पर आजीविका, आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से घर की बुनियादी जरूरतों को पूरा करती है और कुछ नकद आय भी बनाती है। आजीविका, लोगों में भोजन, आय और संपत्ति की क्षमताओं और जीने के साधन का विकास करती है। आजीविका पर्यावरण की दृष्टि एवं सामाजिक रूप से भी स्थाई होनी चाहिए। भारत में किसानों की आजीविका काफी हद तक कृषि और कृषि संबंधित गतिविधियों (जैसे कि कृषि भूमि, जल, कृषि आदान, बाजार, सरकार की नीति और ज्ञान) पर निर्भर करती है। वर्तमान में, गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले किसानों की आबादी कुल आबादी का लगभग चार प्रतिशत है, जिसका आजीविका सुरक्षा के साथ भरण पोषण करना, भारत के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। ग्रामीण जनसंख्या के बाहुल्य क्षेत्रों में लोग अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर करते हैं। समाज के गरीब और कमजोर वर्गों की सक्रिय भागीदारी के माध्यम से कृषि उत्पादन बढ़ रहा है। भारत में, छोटी और खंडित भूमि जोत, मिट्टी का कटाव, मिट्टी की उत्पादकता की कमी, जल संसाधनों का अकुशल प्रयोग, कृषि उत्पादन प्रौद्योगिकी का कम प्रयोग, फसल कटाई के बाद प्रबंधन में कमी, कृषि उत्पादों के विपणन के लिए बुनियादी सुविधाओं की कमी और कृषि ऋण की कमी के परिणामस्वरूप यहां के खेतों से कम उपज और आय प्राप्त होती है।

पशुधन छोटे किसानों के लिए आय का प्रमुख स्रोत है। हालांकि, 75 प्रतिशत मवेशी, गंभीर आनुवंशिक क्षरण, अपर्याप्त भोजन और घटिया स्वास्थ्य देखभाल के कारण अलाभकारी हैं। किसानों और मज़दूरों के प्रवास के कारण कृषि में खेत मजदूरों की कमी, मौसमी रोजगार और अन्य संबंधित क्षेत्रों में रोजगार के अवसर कम प्राप्त हो रहे हैं। पशुधन भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था और विकास में हस्तक्षेप करके रोजगार और आय सृजन, गरीबी उन्मूलन, प्रवास में कमी और सामाजिक-आर्थिक विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पशुधन भारत के विभिन्न राज्यों में छोटे निर्वाह के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। समुचित प्रबंधन, पशुधन प्रणाली पोषक तत्वों की कमी को कम करने और पर्यावरण क्षरण टिकाऊ आजीविका का प्रतिकार करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। टिकाऊ आजीविका के लिए कृषि और पशुधन की उत्पादन क्षमता निरंतर गिरावट में है क्योंकि उत्पादन की वर्तमान समग्र निधि, उत्पादक परिसंपत्तियों और उत्पादक क्षमताओं का वितरण संरेखण से बाहर है। नीति-निर्माताओं और विकास सिद्धांत के लोगों के लिए मुख्य फसलों के अलावा उच्च मूल्य के कृषि उत्पाद, फल, सब्जियां और पशुस्रोत खाद्य पदार्थ को प्राथमिकता देनी चाहिए।

कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए महिलाओं की सहभागिता

कृषि में महिलाओं का योगदान काफी अहम है। कृषि क्षेत्र में कुल श्रम की 60 से 80 प्रतिशत तक हिस्सेदारी महिलाओं की होती है। कृषि कार्यों के साथ ही महिलाएं मछली पालन, कृषि वानिकी और पशुपालन में भी अपना योगदान दे रही है। भाकृअनुप-केंद्रीय कृषिरत महिला संस्थान, भुवनेश्वर की ओर से नौ राज्यों में किए गए अनुसंधान परिणामों से पता चलता है कि महिलाओं की प्रमुख फसलों के उत्पादन में 75 प्रतिशत, बागवानी में 79 प्रतिशत और कटाई उपरांत कार्यों में 51 प्रतिशत भागीदारी होती है। पशुपालन कार्यों में महिलाएं 58 प्रतिशत और

मछली उत्पादन कार्यों में 95 प्रतिशत भागीदारी निभाती है। पशु उत्पादन और प्रबंधन के क्षेत्र में महिलाएं प्रमुख योगदान दे रही हैं। गाय और भैंसों के पालन में महिलाएं रोजाना तीन से छह घंटे तक कार्य करती हैं। इसमें दुधारू पशुओं को चारा खिलाना, दूध निकालना और पशु आवास की साफ-सफाई शामिल है। पशुओं का चारा एकत्रित करने और उन्हें खिलाने में भी महिलाओं का काफी योगदान रहता है। पशु उत्पादन और प्रबंधन के लिए जरूरी तकनीकी ज्ञान, कौशल और पशुपालन हेतु वित्तीय व्यवस्था जैसे बिंदु महिलाओं से जुड़े हैं। मछली उत्पादन में प्रमुखतः तटीय और गैरतटीय क्रियाएं शामिल हैं। तटीय कार्यों में मछली पकड़ना मुख्य कार्य है जबकि गैर-तटीय कार्यों में मछलियों के लिए जाल बनाना मुख्य कार्य माना जाता है। मछली उत्पादन में महिलाओं से संबंधित दो मुद्दे शामिल हैं, पहला संसाधन और उत्पादों में उनकी सहभागिता और दूसरा मछली उत्पादन से महिलाओं के जीविकोपार्जन की व्यवस्था करना। इस क्षेत्र में कार्य करने वाले अधिकतर श्रमिक गैरसंगठित हैं।

पशुधन से प्राप्त जैविक खादों द्वारा मिट्टी की उर्वरकता बढ़ाना और पोषक तत्वों की पूर्ति

देश में मवेशियों की संख्या लगभग 29 करोड़ है जिससे गोबर और मूत्र प्राप्त हो जाता है। यदि संपूर्ण मलमूत्र का उपयोग और संरक्षण सही ढंग से किया जाए तो इससे 0.3442 करोड़ टन नाइट्रोजन, 0.1307 करोड़ टन फास्फोरस और 0.2214 करोड़ टन पोटाश की वार्षिक पूर्ति हो सकती है। परंतु ऐसा व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। जाड़े में अनुमानतः 40 प्रतिशत गोबर का उपयोग उपले बनाने में और 58 प्रतिशत गोबर का उपयोग कंपोस्ट बनाने या गोबर का ढेर लगाकर खाद तैयार करने में किया जाता है। इसके विपरीत बरसात के मौसम में 13 प्रतिशत गोबर के उपले बनाने में, 85 प्रतिशत खाद के रूप में और शेष 2 प्रतिशत भाग घर की लिपाई -पुताई के काम आता है। एक अनुमान के अनुसार 70 के दशक के प्रारंभ में केवल 30 प्रतिशत गोबर का उपयोग ईंधन के रूप में होता था जबकि 90 के दशक के प्रारंभ में 75 प्रतिशत उपयोग ईंधन के रूप में होने लगा है। यदि किसी तरह 50 प्रतिशत गोबर का इस्तेमाल खाद के रूप में कर दिया जाए तो इससे प्रतिवर्ष 0.1721 करोड़ टन नाइट्रोजन, 0.0654 करोड़ टन फास्फोरस और 0.1107 करोड़ टन पोटाश की पूर्ति हो सकती है।

पशु पोषण में फसल अपशिष्ट का उपयोग

देश में प्रतिवर्ष बहुतायत में फसलों के अवशिष्ट उपलब्ध हैं। उल्लेखनीय है कि केवल पांच फसलों अर्थात धान, गेहूं, ज्वार, बाजरा और मक्का से लगभग 23.60 करोड़ टन भूसा प्राप्त हो जाता है, जिनमें औसतन 0.5 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.6 प्रतिशत फास्फोरस एवं 1.5 प्रतिशत पोटाश पाया जाता है। इस प्रकार केवल इन पांच प्रमुख फसलों से 0.113 करोड़ टन नाइट्रोजन, 0.141 करोड़ टन फास्फोरस और 0.354 करोड़ टन पोटाश की पूर्ति हो सकती है। यदि इनके कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत जानवरों को चारे के रूप में खिला दिया जाए तो भी शेष मात्रा का उपयोग पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए किया जा सकता है।

कृषि प्रधान भारत के सांस्कृतिक और सामाजिक दायरे में पशुधन की परिकल्पना प्राचीन समय से ही रही है। किसी भी समाज में खाद्य सुरक्षा के लिए कृषि उत्पाद और पशुधन उत्पाद की उपलब्धता आवश्यक मानी जाती है। इस चीज को अगर हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो

पता चलता है कि ग्रामीण भारत में कृषि के साथ-साथ पशुपालन की परंपरा भी समानांतर ढ़ंग से चलती रही है। ग्रामीण जीवन में पशुपालन एक माध्यम है जो किसानों के लिए नियमित आय का साधन बनता है और यही वजह है कि कृषि के साथ-साथ लगभग 72 प्रतिशत ग्रामीण घरों में पशुपालन किया जा रहा है। पूरे देश में पशुपालन ने उन लोगों के लिए संजीवनी का काम किया है जो भूमिहीन या बेरोजगार हैं। ऐसे में यह सवाल विचारणीय हो जाता है कि आखिर वजह क्या है कि पशुधन का विकास निराशाजनक है और कृषि विकास दर भी लगातार नकारात्मक बिंदु की ओर अग्रसर है।

जलवायु परिवर्तन और पशुधन कृषि में जीविकोपार्जन

कृषि पर जलवायु परिवर्तन के संभावित दुष्प्रभावों पर विश्व बैंक द्वारा जारी रिपोर्ट में चेतावनी दी गई है कि वैश्विक तापमान में हो रही वृद्धि का दुष्परिणाम दक्षिण एशियाई देशों में भारत को सर्वाधिक भुगतना पड़ सकता है और यहां की कृषि पर इसका बुरा असर पड़ेगा। विश्व बैंक ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से आंध्र प्रदेश और तेलंगाना के किसानों की आय बीस प्रतिशत तक घटने की संभावना है, महाराष्ट्र में गन्ना उत्पादन में पच्चीस से तीस प्रतिशत की गिरावट संभव है तथा ओडिशा में चावल उत्पादन में बारह प्रतिशत तक की गिरावट संभावित है। फसल उत्पादन में गिरावट का सीधा असर निश्चित रूप से हमारी अर्थव्यवस्था पर होगा जिससे देश में गरीबी बढ़ना संभावित है। जलवायु परिवर्तन के साथ-साथ देश में बड़ी मात्रा में कृषि योग्य भूमि अनुपयोगी होती जा रही हैं जिससे उत्पादन स्तर लगातार घटता जा रहा है। हमारे देश की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान है तथा देश की सत्तर प्रतिशत आबादी इस पर आधारित है, ऐसी स्थिति में कृषि के रुख में यह परिवर्तन देश को संकट में ला देगा। लेकिन न तो जलवायु परिवर्तन का यह दौर आसानी से समाप्त होने वाला है और न ही वर्तमान की आधुनिक कृषि पद्धति से बढ़ता भूमि का बंजरीकरण रुकने वाला है। ऐसे में हमारी खेती संकट में है। अगर हमें देश की खेती पर अवस्थित संकट से निपटना है तो कृषि में उन पद्धतियों को अपनाना होगा जो इसे रोकने में सक्षम हो।

इसके लिए हमें गौ-आधारित कृषि अपनानी होगी। वैसे हमारे देश में पिछले दस हजार वर्षो से गौ-आधारित कृषि की व्यवस्था रही है। जिसमें गोवत्स बैल बनकर भूमि सुधार और बुआई का कार्य संपन्न कराते थे तथा गौमय अर्थात गोबर का खाद भूमि को जीवंत रख उसे उर्वर बनाए रखते थे। गौमूत्र और मठा जैसे तत्व फसलों की हानिकारक कीटों से सुरक्षा करने में सहायक होते थे। चूंकि फसलों की वृद्धि और उत्पादन के लिए जिन तत्वों की आवश्यकता होती है वो भूमि में र्प्याप्त मात्रा में होते हैं, लेकिन उन्हें पौधों की जड़ों में पहुंचाने का कार्य सूक्ष्म जीवाणु करते हैं। रसायनिक खेती में प्रयुक्त तेज रसायन इन सूक्ष्म जीवाणुओं को नष्ट कर देतें हैं जिससे भूमि की उर्वरकता कम हो रही है। लेकिन देशी नस्ल की गाय का गोबर इन जीवाणुओं को पोषित करता है। देशी गाय के एक ग्राम गोबर में कम से कम 300 से 500 करोड़ तक सूक्ष्म जीवाणु होते हैं जो भूमि के पोषक तत्वों को पौधो के लिए आहार में बदल देते है। केंचुए प्राकृतिक हल का काम करते हैं। लेकिन रसायनिक खेती ने इन्हें नष्ट कर दिया जिससे भूमि कठोर हो जाती है लेकिन गोबर की खाद इन केचुओं को पनपने का उपयुक्त माहौल तैयार करता है। गोबर युक्त खाद खेत का तापमान 25 से 32 डिग्री सेल्सियस तक बनाए रखता है तथा नमी की मात्रा 65

से 72 प्रतिशत कर देता है जो कि सूक्ष्म जीवों के निर्माण के लिए उपयुक्त होता है। कृषि कार्य में बीजोपचार महत्त्वपूर्ण होता है। यदि हम बुआई के पूर्व बीज उपचार नहीं करते हैं तो बीजों को नुकसान पहुंचाने वाले फफूंद सक्रिय रहते हैं और भूमि में इनकी मात्रा बढ़ती रहती है जो कि जड़ों के माध्यम से पौधों में प्रवेश कर उन्हें नष्ट कर देती है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार बीजोपचार के लिए देशी नस्ल की गाय के गौमूत्र से अच्छा कोई रसायन नहीं है। इसमें नीम और मठा आदि का मिश्रण बनाकर बीज उपचार के लिए मुफ्त में एक अच्छा और सशक्त रसायन तैयार किया जा सकता है। फसल उपज में वृद्धि के लिए उर्वरक जरूरी होते हैं और ये रासायनिक खादों के जरिए दिए जाते हैं लेकिन ये रासायनिक खाद वायुमंडल में कार्बनडाईआक्साइड और नाइट्रस-आक्साइड का अवक्षेपण बढ़ाती है जो कि ग्लोबल वार्मिंग की समस्या को बढ़ा रही है। वैश्विक स्तर पर प्रति वर्ष 9.0 करोड़ टन खनिज तेल का उपयोग नाइट्रोजन उर्वरक तैयार करने में किया जाता है जिससे 25.0 करोड़ टन कार्बनडाईआक्साइड वायुमंडल में घुलती है। रसायनिक खाद कृषि उत्पादन लागत को बढ़ाती है। देशी गाय का गौमूत्र एक अच्छा फसल रक्षक है, जिसमें नीम, कनेर, लहसुन और मिर्च आदि मिलाकर अति तीक्ष्ण बनाया जा सकता है। वास्तव में गौ आधारित खेती शून्य बजट की होती है जिसमें खेत में पैदा होने वाले संसाधनों और अपशिष्टों को पुनः चक्रित करके लागत खर्च को बचाया जा सकता है। यह पर्यावरण हितैषी और ग्लोबल वार्मिंग को रोकने वाली है। गौ आधारित खेती भूमि की उर्वरकता और उत्पादकता को बढ़ाने में सहयोगी है।

पशुपालन द्वारा गरीबी उन्मूलन की अपार संभावनाएं

पशुधन भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत के पास एक विशाल पशु संपदा है जो कुल सकल घरेलू उत्पाद का 4.5 प्रतिशत और कृषि सकल घरेलू उत्पाद का 25.6 प्रतिशत योगदान देता है। पशुपालन के द्वारा गरीबी उन्मूलन संभव है। दुनिया के दो तिहाई लोगों, ग्रामीण गरीब और शहरी गरीबों की आजीविका के लिए पशुधन एक महत्वपूर्ण योगदान देता है। गरीब से गरीब व्यक्ति के लिए, अगर वे जानवर पाल सकते हैं, तो पशुओं द्वारा गरीबी से बाहर आने का एक मार्ग खुल सकता है। पशुधन रखने से खाद्य और पोषण सुरक्षा, परिवहन, खाद, बिजली और गैस उत्पादन, घरेलू आजीविका, पशु के रूप में धन भंडारण इत्यादि फायदे हो सकते हैं। पशुधन उत्पादन आय का एक निरंतर प्रवाह प्रदान करता है और कृषि उत्पादन के जोखिम को कम करता है। देश के कुछ हिस्सों में तेजी से संरचनात्मक परिवर्तन के बावजूद, छोटे किसान अभी भी कई विकासशील देशों में उत्पादन में अग्रणीय है। पशु आधारित खाद्य पदार्थ, जटिल प्रसंस्करण और विपणन प्रणाली में हर स्तर पर विकास, रोजगार के नए अवसर पैदा करता है और गरीबी उन्मूलन के लिए महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है।

भारत में फसल और मवेशी एक उद्यम में संयोजित रहते हैं तथा इसे मिश्रित खेती प्रणाली के रूप में उपयोग में लाया जाता है। हालांकि भारतीय कृषकों को इनकी संसाधन क्षमता का एहसास नहीं है। मिश्रित खेती प्रणाली एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अंतर्गत कोई निवेश या उपज की बर्बादी नहीं होती है और उद्यम के भीतर ही सभी वस्तुओं का प्रयोग हो जाता है। भेड़ और बकरी आपात स्थिति के दौरान जैसे विवाह, बीमार व्यक्तियों के इलाज, बच्चों की शिक्षा, मकान, आदि परिस्थितियों में आय के स्रोतों के रूप में भी आर्थिक सुरक्षा प्रदान करते हैं और मालिकों

को तात्कालिक आवश्यकता पूरा करने में सक्षम बनाते हैं। विशेष रूप से भूमिहीन परिवारों के लिए पशु से अच्छा दूसरा कोई विकल्प ही नहीं है जिसके तहत किसान कृषि अवशिष्ट एवं जनसाधारण चारा का उपयोग करके अपने जानवर को पाल सकता है और घर के लिए उत्तम दूध और मांस के साथ-साथ कुछ पैसे भी जुटा सकता है।

भारत में विवाह के दौरान जानवरों का उपहार देना देश के विभिन्न भागों में एक बहुत ही आम प्रथा है। जानवरों का पालन भारतीय संस्कृति का एक हिस्सा है। पशुओं का उपयोग विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों के लिए किया जाता है। आज के युग में भी बैल भारतीय कृषि की रीढ़ है। विशेषकर छोटे और सीमांत किसानों के लिए आज भी कृषि का सभी कार्य बैलों की मदद से संपन्न किया जाता है। वर्षा आधारित कृषि में अकेला पशुधन 60 प्रतिशत आबादी का समर्थन करता है। कम उत्पादकता और फसल उत्पादन में उच्च अनिश्चितता को देखते हुए, वर्षा आधारित क्षेत्रों में लोग पशुओं पर निर्भर करते हैं। यह कई मायनों में गरीबों की आजीविका के लिए योगदान देता है जैसे कि उत्पादों से होने वाली आय, सूखे के खिलाफ बीमा, आपातकालीन नकदी आवश्यकताओं की पूर्ति, घरेलू पोषण, खाना पकाने के लिए ईंधन, फसलों के लिए खाद इत्यादि। छोटे और सीमांत किसानों की आधी आय सिर्फ पशुओं से प्राप्त होती है। छोटे और सीमांत किसान देश के पशुधन संसाधनों का 75 प्रतिशत से अधिक नियंत्रित करते हैं।

चूंकि पशुधन, काफी हद तक, भारत में सीमांत और छोटे किसानों के बीच में केंद्रित है, इसलिए यह उम्मीद की जाती है कि पशुधन क्षेत्र में किसी भी प्रकार का विकास छोटे धारकों में समृद्धि लाएगा। भूमिहीन किसान छोटे जुगाली करने वाले पशुओं, सूअर और मुर्गी पालन के संबंध में तेजी से जागरूक होते जा रहे हैं। कृषि प्रबंधन के साथ-साथ पशुओं को कृषि पद्धति में जोड़ने से खेत के कुल उत्पादन में काफी वृद्धि प्राप्त की जा सकती है। छोटे जानवरों का रख-रखाव भी साल भर में एक नियमित रूप से नकद आय के लिए अवसर प्रदान कर सकता है।

स्थाई एकीकृत कृषि प्रणाली

आज की परंपरागत कृषि में प्रमुख ध्यानाकर्षण उत्पादन की प्रक्रिया को सरल बनाने और अंतिम उत्पाद की उपज को अधिकतम करने पर किया जाता है, चाहे वह अनाज, मांस या दूध हो। वर्तमान में गहन पालन की प्रक्रिया में, बाहरी आदानों की एक बढ़ती हुई राशि उत्पादन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल की जाती है। अनाज अकार्बनिक उर्वरक के साथ उगाया जाता है और पशुओं को इस अनाज पर खिलाया जाता है। इस तरह, पशुधन उत्पादन के लिए एक पूरक और कृषि के लिए समर्थन के रूप में अपनी भूमिका को खो दिया है और अनाज जो अन्यथा मनुष्य द्वारा सेवन किया जा सकता है के लिए एक प्रतियोगी बन गया है। कृषि और पशुधन प्रणाली में अन्योनाश्रय संबंध है जिसमें इनको एकीकृत करके संसाधन उपयोग को बेहतर बनाया जा सकता है। पशुधन, फसलों और फसल के अवशेष के लिए जैविक खाद का एक स्रोत बन जाता है जबकि पशुओं के लिए फसल और फसल के अवशेष चारा का स्रोत बन जाते हैं। जमीनी अनुभव बताता है कि एकीकृत कृषि प्रणाली ऐसी उत्पादन प्रणाली है जो दोनों फसलों और पशुओं के लिए बेहद टिकाऊ है। उदाहरण के लिए, रत्नागिरी में युवा किसान पशुपालन कृषि के संयोजन के द्वारा एक सभ्य आजीविका बना रहे हैं। पश्चिमी भारत के शुष्क भूमि, दक्कन

के पठार और हिमालय के पहाड़ी इलाकों में लाखों गरीब लोग अपनी आजीविका के लिए केवल पशुओं पर ही निर्भर रहते हैं। ये चरवाहे जंगलों और पशुपालन लिए आम भूमि जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करते हैं। अपनी पारंपरिक संस्थाओं के माध्यम से वर्षों से वे पशु जनसंख्या और प्राकृतिक संसाधनों के बीच एक अच्छा संतुलन बनाकर हमारे जैव भंडारों का संरक्षण कर रहे हैं। लेकिन आज प्राकृतिक जैव भंडारों की हालत बिगड़ी है और आम संसाधनों पर राज्य के नियंत्रण और समुदाय की भागीदारी के अभाव में वृद्धि के साथ ये उपेक्षित रहते हैं।

छोटे किसानों के मध्य पशुधन को बढ़ावा देने में सीमित जल संसाधन, कम उत्पादकता और स्वास्थ्य सेवाओं की सीमित उपलब्धता और प्रबंधन के सीमित तरीकों का ज्ञान इत्यादि कई चुनौतियां हैं। मुख्यधारा के अनुसंधान और विस्तार कार्य शायद ही छोटे किसानों तक आसानी से पहुंच पाते हैं। ऐसी जगहों पर कुछ गैर सरकारी संगठनों द्वारा किए गए प्रयास एवं उदाहरण अनुकरणीय हो सकते हैं।

नई नीति के प्रतिमान की आवश्यकता

भूमिहीन, छोटे और सीमांत किसान अक्सर आम संपत्ति संसाधनों के मामले में वन विभाग की नीतियों से प्रभावित हो जाते हैं। यही कारण है कि अधिकांश आम संपत्ति संसाधन अतिक्रमण और रूपांतरण के अधीन हैं। इसीलिए यह आवश्यक है कि आम संसाधन संपत्ति संबंधित नीति निर्धारण और संरक्षण कार्यक्रम में किसानों को भी शामिल किया जाना चाहिए ताकि इन नीतियों से स्थानीय किसान लाभान्वित हो सके। कृषक समुदाय भी सतत उपयोग से लाभ का हिस्सा होना चाहिए।

पशुधन आधारित किसानों की समस्याएं

किसानों को पशुधन विकास में अवसरों का लाभ देने के लिए निम्नलिखित समस्याओं को दूर करने की आवश्यकता है, जैसे कि

- खराब गुणवत्ता और आनुवंशिक उन्नयन वाले पशुओं के निष्कासन की आवश्यकता।
- प्रजनन संबंधी सेवाओं की कमी, जैसे खराब गुणवत्ता वाले पशु, कम गर्भधारण दर, कृत्रिम संरेचन की अनुपलब्धता आदि।
- पोषक तत्वों की कमी।
- चारे और दूध की कमी।
- निवारक टीकाकरण और स्वास्थ्य समस्याओं के समय पर निदान की कमी।
- आम बीमारियों के उन्मूलन के लिए समन्वित प्रयासों का अभाव।
- पशु चिकित्सा सेवाएं, बीमार पशुओं की उपेक्षा, चिकित्सा की उच्च लागत।
- ब्रुसेल्लोसिस, टी बी एवं अन्य संक्रामक रोगों का प्रसार।
- किसानों को उनके पशुपालन के तरीकों में सुधार करने के लिए तकनीकी मार्गदर्शन का अभाव।
- तकनीशियनों द्वारा किसानों के शोषण और बांझ पशुओं के लिए इलाज का अभाव।

- स्थानीय दूध की कीमत की कम वसूली और बिचौलियों एवं निजी डेयरियों द्वारा शोषण, जिसके परिणामस्वरूप बाजार की संतृप्ति।
- उपयुक्त नीतियों का अभाव और छोटे किसानों को शामिल करना।

उपयुक्त राष्ट्रीय पशुधन नीति की आवश्यकता

संशोधित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, पहले कदम में एक राष्ट्रीय नीति तैयार करने की आवश्यकता है। भारतीय पशुधन नीति का एक समग्र दृष्टिकोण प्राप्त करने के लिए, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अवसरों का अच्छा उपयोग करने के तरीकों को खोजना पड़ेगा। इस पृष्ठभूमि के साथ, राष्ट्रीय पशुधन विकास नीति का पालन करने के लिए निम्नांकित लक्ष्यों का पीछा करना चाहिए:-

- छोटे एवं सीमांत किसानों की पशुपालन दक्षता में चौतरफा विकास।
- पशुपालन द्वारा टिकाऊ आजीविका हेतु पर्याप्त संसाधनों का प्रयोग।
- वैश्विक बाजार के प्रतिस्पर्धा को पूरित करने के लिए पशुपालन में गुणवत्ता का विकास।
- छोटे एवं सीमांत किसानों के परिवार और महिलाओं को सक्षम बनाना।
- चारा संसाधनों का विकास।
- देशी नस्लों के संरक्षण और अनियोजित जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण के माध्यम से पारिस्थितिक स्थिरता सुनिश्चित करना।

पशुधन और आजीविका की लिंग संवेदनशीलता

कृषि उत्पादन में महिलाओं की भागीदारी की विधा खेत परिवारों के मालिक की स्थिति के साथ बदलती रहती है। कृषि उत्पादन में महिलाओं की भूमिका प्रबंधकों से भूमिहीन मजदूरों के रूप में कुल श्रम का 55-66 प्रतिशत तक होने का अनुमान है। प्राप्त रिपोर्टों से पता चलता है कि भारत में हिमालय के पहाड़ी क्षेत्रों में बैलों की एक जोड़ी 1064 घंटे, एक आदमी 1212 घंटे एवं एक महिला 3485 घंटे प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष कार्य करती हैं। यह आंकड़ा कृषि उत्पादन एवं पशुपालन क्षेत्र में महिलाओं के महत्वपूर्ण योगदान को दर्शाता है। सभी उम्र की महिलाएं, कृषि के क्षेत्र में काम करती हैं और कृषि कार्य के 75-80 प्रतिशत तक परिवार के स्वयं के खेत में किया जाता है, जबकि कृषि मजदूर में उनका योगदान 50-60 प्रतिशत है। पुरुष खेत मजदूर बेमौसम में कोई काम नहीं करते है, जबकि महिलाएं इन अवधियों के दौरान भी काम करती हैं। महिलाएं घर गृहस्थी के कार्यों के अलावा घर निर्माताओं के रूप में अपना प्राथमिक कार्य करती हैं। वृक्षारोपण के क्षेत्र में महिलाएं महत्वपूर्ण मजदूर हैं। महिलाएं चराई, चारा संग्रह, दूध निकालने और पशुओं की देखभाल, भोजन, पशु शेड, दूध प्रसंस्करण और पशुधन उत्पादों की सफाई आदि कार्य करती हैं, जबकि पुरुषों द्वारा जानवरों और चारा उत्पादन के प्रबंधन का कार्य किया जाता है। महिलाएं डेयरी उत्पादन में कुल रोजगार का 90 प्रतिशत से अधिक कार्य संपादित करती हैं। महिलाएं चारा इकट्ठा करने, गोबर के संग्रह और प्रसंस्करण, गोबर खाद, खेतों में खाद ले जाना, टहनियां और फसल के अवशेष के साथ गोबर के मिश्रण से खाना ईंधन पकाने का कार्य आदि करती हैं।

दूध गुणवत्ता एवं ग्रामीण आजीविका के लिए भैंस पालन

भैंस पालन का उपयोग तीन उद्देश्यों हेतु अर्थात् दूध, मांस और गोबर गैस बनाने के लिए किया जाता है। भैंस भारत में कुल दूध उत्पादन का 53 प्रतिशत योगदान करती हैं। भारत में विदेशी मुद्रा लाने में भैसों का योगदान मांस के निर्यात द्वारा लगभग 86 प्रतिशत है। इसके अलावा वे मानव शक्ति का एक प्रमुख स्रोत भी है। भैंस का दूध वसा, प्रोटीन और विटामिन में उच्च है। भैंस के दूध में भी टोकोफेरोल और कोलेस्ट्रॉल अधिक है, जो एक प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट होता है। भैंस के दूध में पीले रंग के कैरोटीन यानि 'विटामिन ए' का अभाव रहता है, लेकिन भैंस का दूध, गाय के दूध की तुलना में भी अधिक गाढ़ा और खनिज लवण से युक्त रहता है। हालांकि भैंस मांस प्राप्ति का एक प्रमुख स्रोत्र हैं परंतु आजकल मांस उत्पादन के लिए उनका पूर्ण उपयोग नहीं किया जा रहा। देश में भैंस पालन महिलाओं और डेयरी क्षेत्र के विकास के लिए गहन आजीविका समृद्धि हेतु एक संभावित उपाय है।

भेड़-बकरी पालन से आजीविका सुधार

बकरी पालन, दूध, मांस, त्वचा और फर (पश्मीना) प्रदान करने के साथ-साथ ठंड व रेगिस्तान की प्रतिकूल जलवायु और प्रबंधन की शर्तों के तहत जीवित रहने की क्षमता के रूप में अपनी उच्च मांग की वजह से भारत में घरेलू पशुओं के बीच अद्‌वितीय स्थान रखता है। भेड़ और बकरी से मांस उत्पादन वर्ष 1998-99 के दौरान 605 हजार टन और 2007-08 के दौरान 751 हजार टन हुआ है। बकरियां भारत में कुल दूध उत्पादन में 4 प्रतिशत योगदान करती हैं। छोटे जुगाली करने वाले पशुओं के लिए मांग मूल रूप से मांस, दूध, ऊन, खाल, आदि के लिए होती है। ग्रामीण विकास के लिए रणनीति अलग-अलग क्षेत्रों से संबंधित किसानों की जरूरतों के अनुरूप होनी चाहिए।

भाकृअनुप - क्रीडा, हैदराबाद के एक अनुसंधान कार्यक्रम में यह पाया गया कि भेड़ का जब वन एवं चारागाह प्रणाली के साथ एकीकृत पालन किया जाता है तो ईंधन की लकड़ी की उपलब्धता और मिट्टी की उर्वरता में सुधार के अलावा बंजर भूमि के एक हेक्टेयर से 25,000 से 30,000 रूपए का शुद्ध लाभ मिल सकता है (चित्र-1)। साथ ही भेड़ का जब बागवानी एवं चारागाह प्रणाली के साथ एकीकृत पालन किया जाता है तो एक हेक्टेयर से 4,000 से 5,000 रुपए की अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है (चित्र-2)।

चित्र-1 : भेड़ों का वन एवं चरागाह प्रणाली के साथ एकीकृत पालन

चित्र-2 : भेड़ों का बागवानी एवं चरागाह प्रणाली के साथ एकीकृत पालन

सारांश

पशुधन उत्पादन प्रणाली, शुष्क भूमि कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के ग्रामीण गरीब और विशेष रूप से भूमिहीन, छोटे और सीमांत किसानों, जहां फसल उत्पादन अनिश्चित वर्षा और लगातार सूखे की वजह से जोखिम भरा है, आजीविका के निर्वाह में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। छोटे धारकों के लिए पशुधन उत्पादन कम मूल्य अर्जित कर पाता है। इसके मुख्य कारण हैं:- कम जागरूकता, सौदेबाजी की कम शक्ति, बिक्री के लिए छोटे अधिशेष, बुनियादी सुविधाओं की कमी, बिचौलियों की विपणन में मुख्य भूमिका। भेड़ पालन किसानों की आर्थिक उन्नति के लिए जरूरी है। वर्तमान परिस्थितियों में यह परमावश्यक है कि सभी भेड़ पालकों को प्रेरित करते हुए ब्रीडर्स एसोसिएशन या किसान समूह जैसे समुदायों के रूप में एकजुट किया जाए जिससे कि उन्हें अपने उत्पाद का उचित लाभकारी मूल्य मिल सके। इस क्षेत्र की विशिष्ट प्रौद्योगिकियों और उचित प्रबंधन प्रथाओं को अपनाकर ही पशुओं की उत्पादकता और उत्पादन प्रणाली की लाभप्रदता को प्राप्त किया जा सकता है।

संदर्भ

अग्रवाल आर के, पलसानिया, डी आर एवं सिंह, जे पी. 2014. फोडर प्रोडक्शन सिनेरियो इन इंडिया : एन ओवरव्यू. इन नेशनल सेमिनार आन न्यू डायमेंशनल अप्प्रोचएस फार लाइवस्टाक प्रोडक्टिविटी एंड प्राफिटेबिलिटी एनहांसमेंट अंडर एरा आफ क्लाइमेट चेंज जनवरी 28-30, 2014. पीपी. 145-154.

इंटरनेशनल लाइवस्टाक रिसर्च इंस्टिट्यूट. 2003. लाइवस्टाक, ए पाथवे आउट आफ पावर्टी : इलरीस स्ट्रेटेजी टू 2010. नैरोबी.

कुमार के एवं पासवान, वी के. 2012. फीडिंग स्ट्रेटेजी फार लाइवस्टाक ड्यूरिंग नेचुरल डिजास्टर - ए रिव्यु. लिवेस्टाकलीने, 5:14-18.

नाटकम. 2004. इंडियाज इनिशियल नेशनल कम्युनिकेशन टू दी यूएनएफ़सीसी - एग्जीक्यूटिव समरी, मिनिस्ट्री आफ एनवायरनमेंट एंड फारेस्ट्स, गवर्नमेंट आफ इंडिया.

सिंह पी के एवं चंद्रमोनी. 2010. फीडिंग आफ फार्म एनिमल्स ड्यूरिंग स्कारसिटी. एस एम वी एस डेयरी ईयर बुक, पीपी. 93-95.

पंकज पी के एवं रमण, डी बी वी. 2013. क्लाइमेट रेसिलिएंट स्माल रूमिनंट प्रोडक्शन इन ड्राइलैंड्स. इन क्लाइमेट रेसिलिएंट स्माल रूमिनंट प्रोडक्शन (एडिटर्स साहू एट अल). पब्लिश्ड बाई नेशनल इन्नोवेशंस इन क्लाइमेट रेसिलिएंट एग्रीकल्चर एंड सी एस डब्ल्यू आर आई, पीपी. 69-74.

पंकज प्रभात कुमार, रमण, डी बी वी, निर्मला, जी एवं राव, सीएच श्रीनिवास. 2016. वर्षा आधारित ग्रामीण क्षेत्रों में अजैव तनाव काम करने के लिए उत्पादन प्रणाली. वार्षिक राजभाषा पत्रिका, कृषि वानिकी आलोक, 10: 64-69.

पटेल ए के. 2010. इफ़ेक्ट आफ एनवायरनमेंट स्ट्रेस आन एनिमल प्रोडक्टिविटी एंड इट्स अमेलियर्सनन थ्रू शेल्टर मैनेजमेंट. इन नेशनल सेमिनार आन स्ट्रेस मैनेजमेंट इन स्माल रूमिनंट प्रोडक्शन एंड प्रोडक्ट प्रोसेसिंग 29-31 जनवरी 2010. पीपी. 1.

★★★

13

कृषि मौसम परामर्श सेवा से प्रक्षेत्र उत्पादकता एवं लाभ पर मौसम विचलन का प्रभाव

- पी विजय कुमार, ए वी एम सुब्बा राव, एम ए शरत चंद्रन, ए पी दुबे एवं सीएच श्रीनिवास राव

परिचय

जलवायु एक सबसे प्रभावशाली प्राकृतिक आदानों में से एक है, जो कि आदमी के नियंत्रण से बाहर है। उपयुक्त मौसम के भिन्न-भिन्न कारक फसलों की अधिकतम बढ़वार, विकास और इष्टतम उपज के लिए बेहतर योगदान करते हैं। कीट और रोगों के प्रसार में भी इनकी अहम भूमिका है। जलवायुवीय स्थिति पर गौर करें तो स्थानीय स्तर पर मौसम कारकों में विविधता, दिए गए समय एवं स्थान पर साल-दर-साल अस्थाई बदलाव देखने को मिल रहा है।

दुनिया में मौसम एवं जलवायु की भिन्नता से कृषि में नई तकनीकी के आगमन के बाद भी उत्पादन में अत्यधिक अंतर मिल रहा है। जलवायुवीय परिवर्तनशीलता, बदलाव और इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से कृषि उत्पादन पर पड़ रहा है। भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत की कुल जनसंख्या में लगभग 54.6 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं कृषिगत कार्यो में लगी हुई है और इसका सकल घरेलू उत्पाद में 17.4 प्रतिशत योगदान है। भूमि उपयोग आंकड़ों के अनुसार देश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3287 लाख हेक्टेयर है। हाल ही के भूमि उपयोग आंकडों के अनुसार कुल बुवाई क्षेत्रफल 1944 लाख हेक्टेयर के सापेक्ष शुद्ध बुवाई का क्षेत्रफल मात्र 1399 लाख हेक्टेयर है और फसल सघनता 138.9 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त देश में बड़ी एवं मध्यम सिचाई परियोजनाओं के निर्माण के बावजूद अभी भी शुद्ध सिचिंत क्षेत्र 661 लाख हेक्टेयर है। जोत का औसत आकार लगातार जनसंख्या वृद्धि के कारण घट रहा है। वर्ष 1995-96 में जोत का आकार औसत 1.41 हेक्टेयर से घट कर वर्ष 2010-11 में 1.15 हेक्टेयर हो गया। इस प्रकार जोत के आकार में लगभग 18 प्रतिशत की कमी हुई। लगातार जनसंख्या एवं शहरीकरण में वृद्धि के चलते कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता, जो वर्ष 1950 में 0.48 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति थी, वह वर्ष 2005 में घटकर 0.15 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति हो गई जिसके वर्ष 2020 तक 0.08 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति उपलब्ध होने की संभावना है।

जलवायु परिवर्तन पर अंतर्राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन पैनल (आईपीसीसी) (2014) ने अपनी पांचवी मूल्यांकन रिर्पोट में कहा है कि पिछली सदी में दुनिया के औसत तापमान में 0.85 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि दर्ज हुई है। वैश्विक जलवायु वार्षिक अवधि से दशकीय प्रणाली में आंतरिक

भिन्नता में परिवर्तनशीलता का प्रमुख स्रोत एलनीनो और दक्षिणी दोलन रहा है। ऊष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में एलनीनो सूखे की स्थिति के लिए एक बडी भूमिका है। एलनीनो घटनाओं के समय ऊष्ण कटिबंध के बहुतायत क्षेत्रों में अत्यंत गंभीर सूखे की स्थिति प्रमुखता से विकसित हुई हैं। एलनीनो एक महत्वपूर्ण वैश्विक प्रणाली है, जो भारतीय जलवायु में प्रचूर भिन्नता विकसित कर मानसूनी वर्षा की शुरुआत एवं गर्मी को प्रभावित कर सकता है। आईपीसीसी-2007 के अनुसार इक्कीसवीं सदी के अंत तक वैश्विक तापक्रम में 1.8 से 4.0 डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि संभावित है। आईपीसीसी के अनुसार दक्षिण एशिया के अंतर्गत भारतीय क्षेत्रों में 0.5 से 1.2 डिग्री सेल्सियस तापक्रम 2020 तक, 0.88-3.16 डिग्री सेल्सियस 2050 तक एवं 1.56 से 5.44 डिग्री सेल्सियस 2080 तक वृद्धि की संभावना व्यक्त की गई है, जो भविष्य के परिणामों पर निर्भर है। उपर्युक्त विवेचना से देखा गया है कि सर्दियों (रबी) के तापक्रम में वर्षा ऋतु (खरीफ) के सापेक्ष अधिक वृद्धि पाई गई है।

मौसम एवं जलवायु की बढ़ती अनिश्चितताओं से देश की खाद्य सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा उत्पन्न हुआ है। कृषि में जोखिम को कम किए जाने हेतु किसानों को मौसम के अनुसार कृषि सलाह उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है ताकि कृषि प्रबंधन में उचित निर्णय लेकर फसलों में होने वाले नुकसान को कम किया जा सके। खाद्यान्न उत्पादन में सूखे से बड़ा नुकसान हुआ है (सारणी-1)। जलवायु परिवर्तन ने देश के कृषि क्षेत्रों में अप्रत्याशित रूप से खाद्यान्न उत्पादन में बड़ी चुनौती खड़ी की है। पिछले वर्षों में देश के कई हिस्सों में सूखा, अत्यधिक वर्षा, बाढ़, चक्रवात, पाला, गर्मी एवं शीत लहर से कृषि उत्पाद बुरी तरह प्रभावित हुआ है। इस प्रकार मौसम की इन चरम घटनाओं के घटने के कारण कृषि उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पडा है, जिससे लघु एवं सीमांत किसानों का जीवन यापन प्रभावित हुआ है।

सारणी-1 : मानसून के विचलन से खरीफ फसलों के उत्पादन पर प्रभाव

वर्ष	दक्षिण पश्चिम मानसून कुल वर्षा विचलन (प्रतिशत)	जुलाई महीने मे वर्षा विचलन (प्रतिशत)	खरीफ खादयान उत्पादन में गिरावट (प्रतिशत)
1972-73	-24	-31	-6.9
1974-75	-12	-4	-12.9
1979-80	-19	-16	-19
1982-83	-14	-23	-11.9
1986-87	-13	-14	-5.9
1987-88	-19	-29	-7.0
2002-03	-19	-49	-19.1
2009-10	-23	-4	-7.0

स्रोत: श्रीनिवास राव एवं अन्य, 2016

जलवायु परिवर्तन के संयोजन और मौसम कारकों की आवृत्ति में घट रही अधिकाधिक घटनाएं वर्तमान और भविष्य में देश की खाद्य सुरक्षा पर विपरीत असर डाल सकती है। मौसम कारकों की आवृत्ति में हो रहे तीव्र बदलाव के कारण कृषि से संबंधित समस्याएं बढी हैं, जिनसे निपटने के लिए यद्यपि पूर्वजों के अनुभव एवं ऐतिहासिक ज्ञान मौसम की चरम घटनाओं से बचाव में सहायक है, किंतु वर्तमान में अप्रभावी हो रही है। अधिकांश किसान मौसम की भविष्य वाणी के लिए स्वदेशी ज्ञान पर निर्भर ही नहीं बल्कि तद्नुसार ही फसलों का चुनाव एवं प्रबंधन की योजना तैयार करते है। लघु एवं सीमांत किसान, जो देश का प्रमुख हिस्सा हैं, उन तक मौसम पुर्वानुमान के अनुसार जारी की जा रही प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी से वंचित है। किसानों को कृषि मौसम सलाह के अंतर्गत फसलों का चयन, बुवाई का समय, कटाई, सिंचाई समय एवं क्रांतिक अवस्था में अत्यधिक वर्षा, फसल प्रबंधन हेतु उर्वरकों की उपयुक्त मात्रा, रोग एवं कीटनाशियों के माध्यम से समय पर फसल सुरक्षा, पशुओं के स्वास्थ्य, चारा एवं आश्रय आदि बाधाओं का शमन किया जाना शामिल है।

उपर्युक्त विषयों को ध्यान में रखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने देश के किसानों की वर्तमान जरूरतों को पूरा करने के लिए केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद के अंतर्गत कार्यरत राष्ट्रीय नवाचार जलवायुवीय समुत्थान कृषि अनुसंधान परियोजना द्वारा मौसम एवं जलवायु पूर्वानुमान की जानकारी छोटे क्षेत्रों तक किसानों को पहुंचाने की पहल की है। इस कार्यक्रम के तहत देश के अधिकांश प्रदेशों के भिन्न-भिन्न जनपदों में ब्लॉक स्तर की मौसम प्रतिकूलता/अनुकूलता पूर्वानुमान के अनुसार चयनित ग्राम के किसानों की फसल के विकास और उत्पादकता को बनाए रखने एवं उत्पादन में वृद्धि करने के लिए कृषि परामर्श सलाह सेवा को कार्यान्वित किया गया है।

सामग्रियां एवं विधियां

मौसम आधारित कृषि सलाह वर्तमान और भविष्य के मौसम की स्थिति के अनुसार प्रक्षेत्र पर खड़ी फसलों की सुरक्षा के उपायों को ध्यान में रखकर जारी की जाती है। कृषि प्रबंधन मौसम सलाह में वर्तमान फसल अवस्था, मौसम पूर्वानुमान, मौसम की गंभीर परिस्थितियों (सूखा, बाढ़, ठंडक एवं गर्म हवाएं) का आंकलन सहित कृषकों के प्रश्न एवं विशिष्ट प्रतिक्रियाओं के जवाबों को शामिल कर जारी किया जाता है।

भारतीय मौसम विज्ञान विभाग ने किसानों के लिए मौसम परामर्श सेवा वर्ष 1945 में आरंभ की थी। आल इंडिया रेडियो द्वारा किसानों के लिए मौसम की जानकारी, किसान मौसम सूचना सेवा के रूप में प्रसारित की गई थी। इसके बाद, वर्ष 1976 में भारत मौसम विज्ञान विभाग ने राष्ट्रीय मौसम केंद्रों के माध्यम से कृषि मौसम सेवा राज्य कृषि विभागों के सहयोग से प्रारंभ की। तकनीकी ज्ञान के अभाव के कारण यह कृषि सलाह मौसम की विपरीत परिस्थितियों में किसानों के कृषि प्रबंधन के लिए प्रायोगिक नहीं थी। बाद में भारतीय मौसम विज्ञान विभाग ने वर्ष 2007 से देश में कार्यरत विभिन्न संस्थाओं एवं संस्थानों के साथ मिलकर सघन कृषि परामर्श सेवा लागू की। पुनः मौसम पूर्वानुमान मॉडल में सुधार कर अधिक विश्लेषण करनोपरांत राज्य स्तर

से जिला स्तर की मौसम आधारित कृषि सलाह जारी की गई। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग अभी भी लगातार सटीक पूर्वानुमान में बेहतर सुधार की ओर प्रयासरत है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-राष्ट्रीय नवाचार कृषि अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत अखिल भारतीय समन्वित कृषि मौसमविज्ञान अनुसंधान परियोजना (एक्रीपाम), केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद ने एक वृहद परियोजना विकसित कर देश के अंतर्गत कार्यरत 25 सह केंद्रों के माध्यम से मौसम अनुसार कृषि सलाह ब्लॉक स्तर पर किसानों को पहुंचा कर मौसम की अनिश्चितता से होने वाली फसल उत्पाद हानि में कमी लाने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत ब्लॉक-विजयपुरा, जिला-बेलगाम (कर्नाटक) में अखिल भारतीय समन्वित कृषि अनुसंधान परियोजना मौसम सह केंद्र के माध्यम से ब्लॉक स्तर पर कृषि परामर्श सेवा प्रारंभ की गई। जबकि प्रारंभ में इस अध्ययन हेतु जिला स्तर का ही मौसम पूर्वानुमान ब्लॉक स्तर पर प्रयोग करके देखा गया था। तीन वर्षो के प्रयोग करने के बाद परिणाम में पाया गया कि जिला स्तर का मौसम पूर्वानुमान वास्तव में ब्लॉक स्तर पर उगाई जाने वाली फसल मार्गो का प्रति उत्तर और मौसम एक ही जिला के अंदर भिन्न-भिन्न था। भारतीय मौसमविज्ञान विभाग ने वर्ष 2014 से ब्लॉक स्तर पर प्रयोगों के लिए मौसम पूर्वानुमान उपलब्ध कराना प्रारंभ कर दिया। इसके दृष्टिगत अखिल भारतीय समन्वित कृषि मौसमविज्ञान अनुसंधान परियोजना ने देश भर में फैले सभी 25 सह केंद्रों से राष्ट्रीय नवाचार कृषि अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत अपने क्षेत्र के जिला से एक ब्लॉक के चयन हेतु प्रक्रिया शुरू की। चयनित जिला पर ब्लॉक को निम्न चित्र में दिखाया गया है।

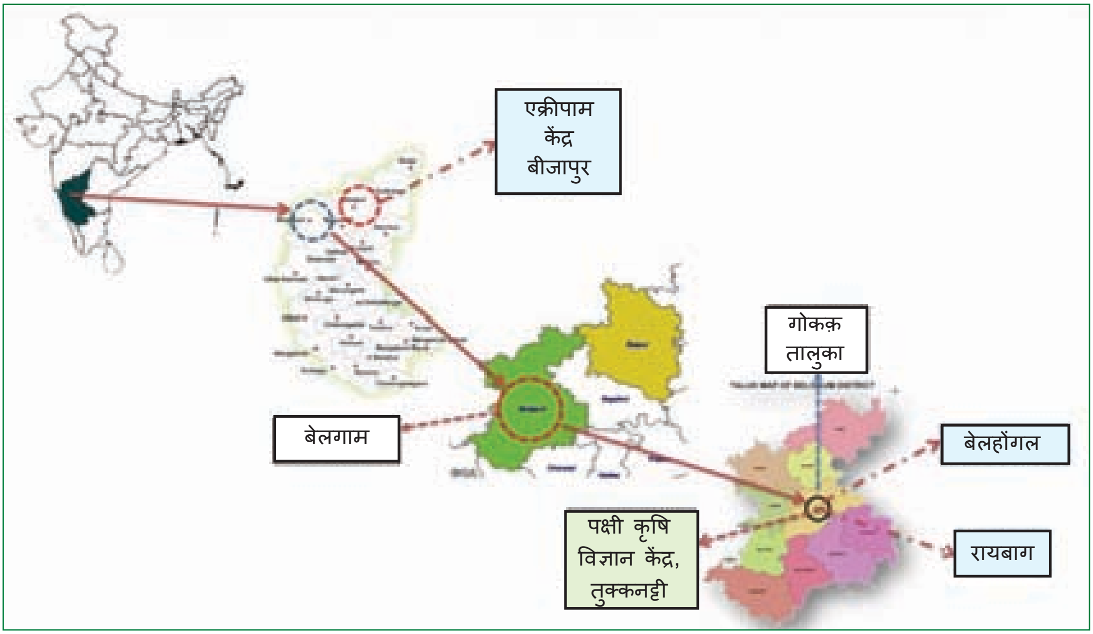

मौसम कृषि सलाह सेवा लाभ हेतु कृषि विज्ञान केंद्र के अंतर्गत जिला में ब्लॉक एवं ग्राम का चयन

अखिल भारतीय समन्वित कृषि मौसमविज्ञान अनुसंधान परियोजना के केंद्रों ने देश में राष्ट्रीय नवाचार कृषि अनुसंधान परियोजना के माध्यम से 50 गांवों का चयन पिछले दो वर्षों में सूक्ष्मस्तर पर किया। अखिल भारतीय समन्वित कृषि मौसमविज्ञान अनुसंधान परियोजना द्वारा विकसित कृषि परामर्श सेवा क्रियान्वयन नीचे चित्र मे प्रदर्शित किया गया है।

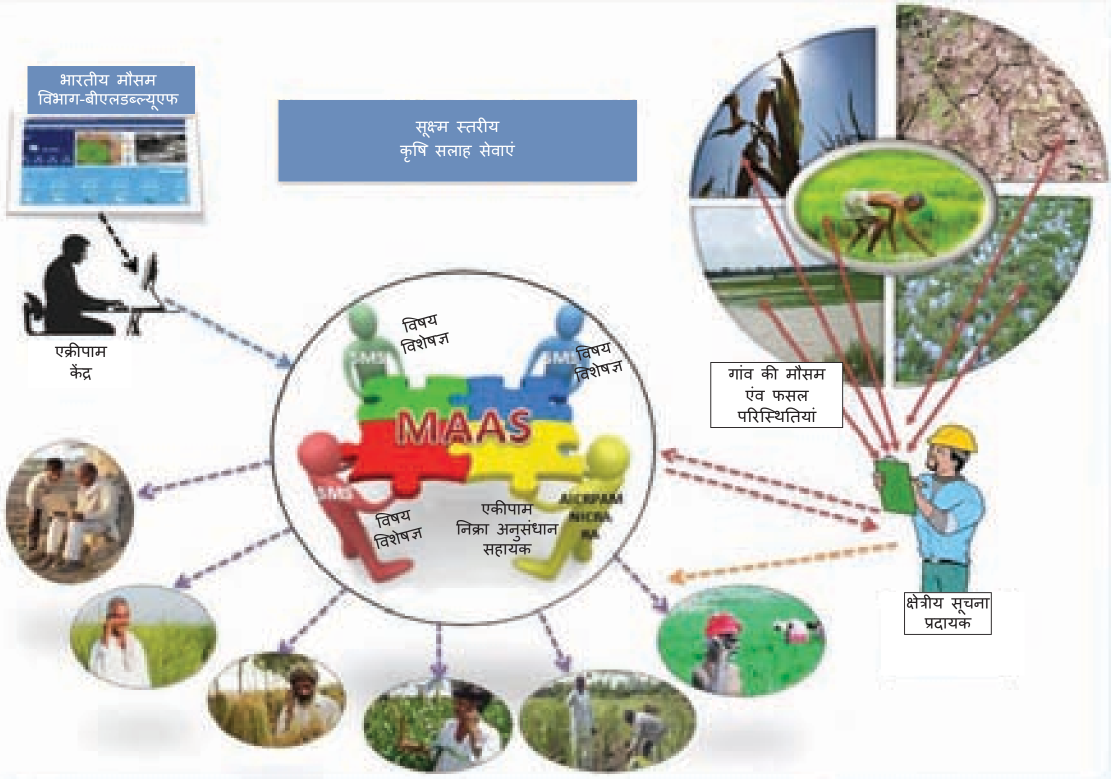

ब्लॉक स्तर मौसम पूर्वानुमान सेवा का क्रियान्वयन चित्र

ग्राम स्तर पर लागू करने की प्रक्रिया

अखिल भारतीय समन्वित कृषि मौसमविज्ञान अनुसंधान परियोजना (एक्रीपाम) का एक केंद्र विजयपुरा, उत्तरी कर्नाटक में है। जिलों के चयन में यह प्रक्रिया अपनाई गई कि जिस जिला में उक्त योजना (एक्रिपाम) कार्यरत है उस जिले को छोड़कर अन्य जिलों में राष्ट्रीय नवाचार कृषि अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत ब्लॉक का चयन किया जाए क्योंकि जिस जिले में उक्त परियोजना का केंद्र है उसमें जिला स्तर की कृषि मौसम सलाह पूर्व से जारी की जा रही है। उक्त प्रक्रिया के अनुसार जिला-बेलगाम के पास गोकक तालुका का चयन किया गया था, जहां

पर कृषि विज्ञान केंद्र-बीआईआरडीएस, तुकानट्टी के पास स्थित है। कृषि विज्ञान केंद्र की सहायता से दो ग्रामों को चिह्नित किया गया जिनके नाम क्रमशः बेलहोगंल और राइबाग हैं। प्रत्येक गांव में 10-10 किसानों का चयन कर इन किसानों को भारतीय मौसम विज्ञान विभाग द्वारा ब्लॉक स्तर पर जारी मौसम पूर्वानुमान के अनुसार कृषि मौसम सलाह उपलब्ध कराई गई। कृषि मौसम सलाह कृषि विज्ञान केंद्र में कार्यरत भिन्न-भिन्न विषय वस्तु विशेषज्ञों से चर्चा के उपरांत कृषि मौसम वैज्ञानिक द्वारा मौसम पूर्वानुमान के आधार पर तैयार की गई।

ब्लॉक स्तर की कृषि मौसम सलाह तैयार करनें के प्रथम चरण में अखिल भारतीय समन्वित कृषि मौसमविज्ञान अनुसंधान परियोजना में कार्यरत कृषि मौसम वैज्ञानिकों द्वारा भारतीय मौसम विज्ञान विभाग की वेबसाइट www.imd.gov.in से मौसम पूर्वानुमान प्राप्त कर कृषि विज्ञान केंद्र पर नियुक्त विषय वस्तु विशेषज्ञों को उपलब्ध कराई गई। ग्राम स्तर पर कार्यरत फील्ड इन्वेस्टीगेटर फैसिलिटेटर (एफआईएफ) द्वारा फसल की सूचना और किसानों के प्रश्न एवं विशिष्ट प्रतिक्रियाओं को शामिल कर अवगत कराया गया। एफआईएफ कृषकों एवं विषय वस्तु विशेषज्ञों/कृषि मौसम वैज्ञानिकों के मध्य सूचना तंत्र का कार्य करते हैं। पुनः एफआईएफ फसल सूचना (वर्तमान स्थानीय मौसम स्थित, फसल एवं फसल की अवस्था, बढ़वार, रोग एवं कीटों का प्रकोप इत्यादि) एकत्रित कर वैज्ञानिकों को अवगत कराने के उपरांत तैयार कृषि मौसम सलाह को कृषकों तक समय पर पहुंचाने का कार्य करता है।

सामान्यतया संबंधित गांव के युवा एवं प्रगतिशील किसानों को इस कार्यक्रम से जोड़ा गया। ग्राम स्तर की विशिष्ट प्रतिक्रियाओं, फसल एवं मौसम की वास्तविक स्थिति की सूचना और ब्लॉक-स्तर पूर्वानुमान एफआईएफ द्वारा कृषि विज्ञान केंद्र को उसी समय कृषि मौसम सलाह तैयार किए जाने के पूर्व पहुंचा दी जाती है और इसके पश्चात कृषि मौसम वैज्ञानिक कृषि विज्ञान केंद्र के विषय वस्तु विशेषज्ञों की सहायता से क्षेत्रीय फसल की स्थिति एवं किसानों द्वारा उपलब्ध कराई गई समस्याओं पर विचार कर अंतिम रूप से कृषि मौसम सलाह तैयार कर पुनः ईमेल के द्वारा एफआईएफ के माध्यम से चयनित किसानों तक पहुंचा दी जाती है। सूक्ष्म स्तर की यह कृषि मौसम सलाह परियोजना समन्वयक, कृषि विज्ञान केंद्र के नाम से तैयार कर कई वितरण माध्यमों यथा मोबाइल एसएमएस, सार्वजनिक स्थानों, व्यक्तिगत संपर्क आदि से प्रसारित की जाती है। किसानों की विशिष्ट प्रतिक्रियाओं पर विषय वस्तु विशेषज्ञों द्वारा मंथन और मूल्यांकन कर कृषकों के हित लाभ के लिए सेवा विस्तार किया जा रहा है।

कृषि मौसम सलाह का प्रभाव

कृषि मौसम सलाह का उद्देश्य मौसम के विपरीत प्रभाव को सस्य प्रबंधन क्रियाओं द्वारा कम कर किसानों के आर्थिक लाभ को बढ़ाने में किसानों की मदद करना है। प्रभाव आकलन कार्य, किसी भी गतिविधियों की व्यवहार्यता का आकलन किए जाने का एक निश्चित उपकरण है। राष्ट्रीय नवाचार कृषि अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत अपनाए गए गांवों के चिह्नित किसानों को जारी की जाने वाली कृषि मौसम सलाह, जो देश के विभिन्न केंद्रों द्वारा जारी की जाती है, के परिणामों यथाः आर्थिक लाभ, कृषि उत्पादक्ता, आय एवं कृषि लागत अनुपात का मूल्यांकन भी किया गया।

लागत में कमी

वर्तमान एवं पूर्वानुमानित मौसम के आधार पर जारी कृषि मौसम सलाह सेवाओं को जो किसान अपना रहे है उनके लिए यह सेवा आय बढ़ाने का एक उपयोगी साधन है। कृषि परामर्श सेवायुक्त किसान मौसम पूर्वानुमान आधारित सस्य प्रबंधन से प्रक्षेत्र पर उपलब्ध आदानों का इष्टतम उपयोग कृषि कार्यो के आलोक में प्राप्त कर रहे है। प्रक्षेत्र पर उपलब्ध आदानों का विवेकपूर्ण उपयोग (फसल की मांग के अनुसार) समय पर करने से किसानों की उत्पादन लागत कम हुई है। उपज का स्तर बढ़ने और खेती की लागत कम होने से शुद्ध आय में वृद्धि प्राप्त हुई। कृषि परामर्श सेवा की प्रभावशीलता का आकलन प्रत्येक परामर्श सेवा के आधार पर अथवा फसल उत्पादन के अंत में आर्थिक आधार पर किया जा सकता है। देश की विभिन्न अखिल भारतीय समन्वित कृषि अनुसंधान परियोजनाओं द्वारा अपनाए गए ग्रामों के अंतर्गत चिहि्नत किसानों को जारी की गई मौसम परामर्श सेवा का प्रभाव निम्नवत हैः-

- अनंतपुर केंद्र द्वारा ग्राम-यरागुडी एवं यगंतीपल्ली, जिला-कर्नूल (आंध्र प्रदेश) के लिए जारी की गई मौसम पूर्वानुमान सेवा से किसानों को 750-1000 रुपए प्रति हेक्टेयर की बचत प्राप्त हुई (सारणी-2)।
- कानपुर केंद्र द्वारा जारी की गई मौसम पूर्वानुमान सेवा से ग्राम-सैबसू, ब्लॉक-बिल्हौर, जिला-कानपुर देहात (उत्तर प्रदेश) के किसानों को 1200-1700 रुपए प्रति हेक्टेयर की बचत सिंचाई, रोग, कीटनाशी, शाकनाशी एवं मजदूरी से हुई (सारणी-3)।
- समस्तीपुर केंद्र द्वारा ग्राम-साहपुर, ब्लॉक-घोसी और बंधुगंज, ब्लॉक-मोदनगंज, जिला-जहानाबाद (बिहार) हेतु खरीफ फसल-धान के लिए मौसम परामर्श सेवा जारी की गई। इस सेवा से किसानों को 1500-1900 रुपए प्रति हेक्टेयर की बचत मजदूरी, सिंचाई, इष्टतम खाद उपयोग से हुई (सारणी-4)।
- अपनाए गए ग्राम-सेरपुर, छपाकी एवं धाली के लिए छाता केंद्र (जम्मू एवं कश्मीर) द्वारा जारी की गई मौसम परामर्श सेवा से धान, सरसों एवं गेहूं फसल आदि में चिहि्नत किसानों को कम से कम 2200 रुपए प्रति हेक्टेयर की बचत हुई (सारणी-5)।

सारणी-2 : आंध्र प्रदेश के कर्नूल जिले के दो गांवों हेतु जारी की गई पूर्वानुमान सेवा का प्रभाव

दिनांक	किसान का नाम	ग्राम	कार्रवाई योजना	पूर्वानुमान	कृषि मौसम सेवा	प्राप्त वर्षा	बचत
26.08.2012	रामचंद्र रेड्डी	यरागुड़ी	कीटनाशी का छिड़काव	26/08/2012 को 4.0 मिलीमीटर वर्षा का अनुमान	मक्का फसल में रोग एवं कीटनाशी का छिड़काव रोक दे	26/08/2012 को 38.0 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त हुई	रोग एवं कीटनाशी की कीमत से रू.-1000/हे.

दिनांक	किसान का नाम	ग्राम	कार्रवाई योजना	पूर्वानुमान	कृषि मौसम सेवा	प्राप्त वर्षा	बचत
16.02.2013	लक्ष्मी रेड्डी	यगंतीपल्ली	मक्का फसल की कटाई	16/02/2013 को 6.0 मिलीमीटर हल्की वर्षा का पूर्वानुमान	मक्का की कटाई रोक दे	16/02/2016 को 23.5 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त हुई	रोग एवं कीटनाशी की कीमत से रू.-750/हे.
27.02.2015	दस्तागिरी	यगंतीपल्ली	गर्मी की मूंग की बुवाई के पूर्व पलेवा	02/03/2015 को 4.0 मिलीमीटर हल्की वर्षा का पूर्वानुमान	पलेवा रोक दे	2/03/2015 को 25.6 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त हुई थी	बुवाई के पूर्व सिंचाई/पलेवा से रू.-1000 /हे.

सारणी-3 : ग्राम-सैबसू, ब्लाक-बिल्हौर, जिला-कानपुर देहात (उत्तर प्रदेश) के किसानों पर कृषि मौसम सलाह का प्रभाव

जारी दिनांक	सेवा युक्त कृषक संख्या	पूर्वानुमान	कृषि सलाह	प्राप्त वर्षा	बचत
13.06.14	35	हल्की से मध्यम वर्षा अगले चार दिनों में	सिंचाई रोक दे, नमी संरक्षण, खरीफ मक्का की बुवाई हेतु, खेत तैयार करें	24.1 मिलीमीटर वर्षा अगले चार दिनों में प्राप्त हुई	मक्का, गन्ना एवं खरीफ फसलों की बुवाई के पूर्व खेत की तैयारी की सिचाई से 960 रुपए प्रति हेक्टेयर
	25		कटी हुई उडद एवं मूंग को सुरक्षित स्थान पर रखें		बीज की सुरक्षा से उसकी कीमत में 450 प्रति क्विटंल की अधिक बचत
15.07.14	58	हल्की से मध्यम वर्षा	रोग, कीट एवं खरपतवार नाशी का छिड़काव और सिचाई न करे	16/07/2014 को 24.6 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त हुई	दवा की कीमत, मजदूरी एवं नलकूप की सिचाई कीमत से 960 रुपए प्रति हेक्टेयर
01.08.14	50	मध्यम से भारी वर्षा	रोग, कीट एवं खरपतवार नाशी का छिड़काव और सिचाई न करे	33.3 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त हुई	धान की क्रांतिक अवस्था (कल्ले निकलना) पर नलकूप सिचाई एवं दवा की कीमत, मजदूरी से 1000 रुपए प्रति हेक्टेयर

सारणी-4 : जिला-समस्तीपुर (बिहार) के मौसम परामर्श सेवा से युक्त किसानों को प्राप्त आर्थिक लाभ

ग्राम	दिनांक	कृषि मौसम सलाह	आर्थिक आय
बंधुगंज	16.08.2011	वर्षा की संभावना को देखते हुए सिंचाई का कार्य न करे।	मजदूरी व सिचाई की कीमत से 1500 रुपए प्रति हेक्टेयर
साहपुर	18.08.2011	अगले 3-4 दिनो में हल्की वर्षा के दृष्टिगत उर्वरक एवं कीटनाशी का प्रयोग न करें।	उर्वरक के नुकसान से बचाव पर 1900 रुपए प्रति हेक्टेयर

सारणी-5 : ग्राम-सेरपुर, छपाकी और धाली जिला-कठुआ (जम्मू एवं कश्मीर) के मौसम परामर्श सेवा योजित किसानों को प्राप्त आर्थिक लाभ

दिनांक	गांव का नाम	मौसम पूर्वानुमान	कृषि मौसम सलाह	आय (रू. प्रति हे.)
18,19 जनवरी, 2013	सेरपुर और छपाकी	मध्यम वर्षा की संभावना	गेहूं में सिचाई एवं खरपतवार नाशी का छिड़काव रोक दे	56.6 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त होने के कारण 5400 रुपए प्रति हेक्टेयर
5,6 फरवरी, 2013	सेरपुर और छपाकी	मध्यम वर्षा की संभावना	गेहूं में सिचाई एवं रसायन का छिड़काव सरसो में रोक दे	11.4 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त होने के कारण 5400 रुपए प्रति हेक्टेयर
13,14,15 व 16 जून, 2013	सेरपुर और छपाकी	हल्की से मध्यम वर्षा की संभावना	धान की रोपाई उपरहार में करे, मक्का की सिचाई रोक दे	57.0 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त होने के कारण 7900 रुपए प्रति हेक्टेयर
29, 30 जुलाई, 2013	सेरपुर और छपाकी	हल्की से मध्यम वर्षा की संभावना	बासमती धान की रोपाई में करे, मक्का में निकाई-गुड़ाई रोक दे	95.0 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त होने से 6900 रुपए प्रति हेक्टेयर
14,15 अगस्त, 2013	सेरपुर, धाली और छपाकी	हल्की से मध्यम वर्षा की संभावना	धान की सिचाई कीटनाशी का छिड़काव रोक दे, मक्का और दलहनी फसलों से जल निकासी करे	150.8 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त होने से 5400 रुपए प्रति हेक्टेयर
8,9 नवंबर, 2013	सेरपुर, धाली और छपाकी	हल्की से मध्यम वर्षा की संभावना	गेहूं और सरसो की बुवाई देर से करे	25.6 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त होने से 8900 रुपए प्रति हेक्टेयर
22. दिसंबर, 2013	सेरपुर, धाली और छपाकी	हल्की से मध्यम वर्षा की संभावना	गेहूं में खरपतवार एवं शाकनाशी का छिड़काव रोक दे	22.2 मिलीमीटर वर्षा प्राप्त होने से 5900 रुपए प्रति हेक्टेयर

कृषि उत्पादकता

कृषि मौसम सलाह सेवा के विभिन्न आयामों से कृषि उत्पादकता में आशातीत वृद्धि के परिणाम मिले हैं। खाद्यान्न की उपलब्धता बढ़ी है जिससे किसानों की आय में वृद्धि हुई है। इस सेवा से मात्र खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि ही नहीं बल्कि मौसम विचलन से होने वाली हानि सहित अन्य खाद्य उत्पादन में आने वाली समस्याओं में भी कमी के परिणाम प्राप्त हुए।

- ब्लॉक-गोटक, बेलगाम जिले के किसानों की कृषि उत्पादकता में वृद्धि की सफल कहानी का एक अच्छा उदाहरण है जो निम्नलिखित कृषि मौसम सलाहों से प्राप्त हुए। कृषि मौसम सलाह में रोग एवं कीटों के प्रबंधन सहित समय पर फसलों की कटाई सलाह से उत्पादन में वृद्धि पाई गई। विभिन्न फसलों के लिए वृहद रूप से जारी कृषि मौसम सलाह सेवा निम्नांकित है (सारणी-6)।
- मौसम परामर्श सेवा से योजित, जिला-राजसमंद के ग्राम-भागवांड़ा एवं नगली के किसानों को इस सेवा से अनियोजित किसानों के सापेक्ष अधिक लाभ प्राप्त हुआ (सारणी-7)।

सारणी-6: बेलगाम जिला (कर्नाटक) के विभिन्न तालुकात के किसानों को जारी की गई कृषि परामर्श सेवा

कृषक का नाम	फसल	कृषि सलाह उपयोग	कृषि सलाह का पालन	लाभ (रू./हे.)
मारूती गानाचारी	सोयावीन	पत्ती छेदक और फली छेदक कीट को हटाने की व्यवस्था करें।	कृषि सलाह का पालन किया।	कृषि सेवा परामर्श को मानने वाले किसानों को न मानने वाले किसानों की अपेक्षा 450 किलोग्राम/हेक्टेयर और अच्छी कीमत (3000 रुपए प्रति क्विंटल) और कुल उत्पादन 27.5 रुपए प्रति क्विंटल), लाभ 13500 रुपए प्रति हेक्टेयर।
	गन्ना	अगेती तना छेदक एवं सफेद पत्ती रोग प्रबंधन।		एक टन प्रति एकड़ उत्पादन अधिक, लाभ 3750 रुपए प्रति हेक्टेयर।
प्रवीन हिरमाथ	कपास	पत्तियो की लालिमा एवं फूलों के गिरने से सुरक्षा।	कृषि सलाह के अनुसार छिड़काव करना।	50 कि.ग्रा./एकड़ उत्पादन में वृद्धि, लाभ 4940 रुपए प्रति हेक्टेयर।
गोविंद दुदागनी	मक्का	तना छेदक का प्रबंधन।	कृषि सलाह के अनुसार छिड़काव करना।	50-60 किलोग्राम/एकड़ उत्पादन में वृद्धि, लाभ 3750 रुपए प्रति हेक्टेयर।

कृषक का नाम	फसल	कृषि सलाह उपयोग	कृषि सलाह का पालन	लाभ (रू./हे.)
मुत्तेप्पा कादकोल	पातगोभी	स्नेल कीट का प्रबंधन।	स्नेल मारक गोलियो का प्रयोग करने की सलाह	कीट के खत्म होने से उत्पादित फसल में सुधार होने से 500 रू./टन बचत से लाभ 3750 रुपए प्रति हेक्टेयर।
	मक्का	झुलसा रोग का प्रबंधन।	कृषि सलाह के अनुसार छिड़काव करना।	अच्छे बीज उत्पादन से 100 रुपए प्रति क्विंटल दरें कृषि सलाह सेवा को न मानने वाले किसानों से अधिक मिली। उत्पादन 8 क्विंटल प्रति एकड़, लाभ 2000 रुपए प्रति हेक्टेयर।

सारणी-7: ग्राम-नालगिरी एवं भागवाडा, जिला-राजसमंद (राजस्थान) के किसानों को जारी की गई कृषि परामर्श सेवा

दिनाक	फसल	मौसम पूर्वानुमान	कृषि परामर्श सेवा	लाभ
21.07.2015	मक्का	अगले तीन दिनों में भारी वर्षा की संभावना।	जल निकास की व्यवस्था एवं फसल से फालतू जल को निकाले।	जिन किसानों ने कृषि परामर्श सेवा का लाभ लिया है, उन्हे 25-35 क्विंटल प्रति हेक्टेयर का उत्पादन मिला और जिन किसानों ने कृषि परामर्श सेवा का लाभ नहीं लिया, उनके उत्पादन में कमी आई।
01.09.2015 और 04.09.2015	मक्का	आने वाले दिनों में वर्षा नहीं है।	सिंचाई करे।	जिन किसानों ने कृषि परामर्श सेवा का लाभ लेते हुए सिचाई की उन्हें 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर का उत्पादन मिला और जिन किसानों ने कृषि परामर्श सेवा का लाभ नहीं लिया उन्हे 15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर का उत्पादन प्राप्त हुआ।

शुद्ध आय और लागत व आय अनुपात

मौसम परामर्श सेवा से योजित किसान और अनियोजित किसान, जो इस सेवा को नहीं अपनाते हैं, दोनों प्रकार के किसानों के अनुभव दर्ज किए गए। उक्त दोनों तरह के किसानों की फसल लागत खर्च बुवाई के प्रारंभ से फसल की कटाई तक प्रत्येक फसल अवस्था के अनुभवों को दर्ज किया गया। नजदीक बोई गई एक समान फसलों की एक ही फसल अवस्था पर मौसम विचलन के अनुसार कृषि मौसम परामर्श सलाह सेवा में शामिल सस्य क्रियाएं, बुवाई से कटाई तक एक साथ फसल की अवस्थाओं में होने वाली आर्थिक हानि/लाभ बयानों के परिणाम की गणना प्रभाव लगातार अंकित किए गए। पुनः आर्थिक आय की गणना फसल की बुवाई से कटाई तक कृषि आदानों की लागत एवं आय पर की गई। प्रत्येक अखिल भारतीय समन्वित कृषि मौसमविज्ञान अनुसंधान परियोजना केंद्रों द्वारा उक्त प्रक्रिया के अंतर्गत कृषि परामर्श सेवा से

योजित किसान और जिन्होनें कृषि परामर्श सेवा को नहीं अपनाया दोनों किसानों की आय एवं लागत अनुपात की गणना की गई। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:-

- अकोला केंद्र द्वारा यलगांव एवं देवपुरा के सोयाबीन कृषकों, जिनमें कृषि परामर्श सेवा से योजित और अनियोजित दोनों प्रकार के थे, इन किसानों के मध्य तुलनात्मक आर्थिक अध्ययन किया गया परिणाम क्रमशः सारणी-8 एवं 9 से स्पष्ट है।
- कोविलपट्टी केंद्र द्वारा अली कुंदम ग्राम के कृषि परामर्श सेवा योजित किसानों, जिनके द्वारा 8 एकड़ कपास का उत्पादन किया गया, की तुलनात्मक आर्थिक गणना उन किसानों से की गई जिन्होंने कपास की खेती करने में कृषि परामर्श सेवा का लाभ नहीं लिया (सारणी-10)।
- अखिल भारतीय समन्वित कृषि मौसमविज्ञान अनुसंधान परियोजना, कानपुर द्वारा ग्राम सैबसू, जिला कानपुर देहात के कृषि परामर्श सेवा से योजित और कृषि परामर्श सेवा से अनयोजित मक्का किसानों के मध्य आय एवं लागत की तुलनात्मक गणना (2014-15) का परिणाम सारणी-11 में दर्शाया गया है।

सारणी-8 : ग्राम-यलगांव, जिला अकोला (महाराष्ट्र) के कृषि परामर्श सेवा से योजित और अनियोजित सोयाबीन किसानों के मध्य आय एवं लागत की तुलनात्मक गणना

आदानों का विवरण	कृषि परामर्श सेवा से योजित किसान	कृषि परामर्श सेवा से अनयोजित किसान
खेत की तैयारी (रुपए प्रति हेक्टेयर)	2500	2200
उर्वरक कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	4400	5150
बीज की कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	4400	4400
बीज उपचार (रुपए प्रति हेक्टेयर)	800	320
बिजाई की कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	2800	2800
खाली स्थानों की बिजाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	240	0
खरपतवार नियंत्रण (रुपए प्रति हेक्टेयर)	1800	1440
गुड़ाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	800	800
फसल सुरक्षा (रुपए प्रति हेक्टेयर)	2600	3200
सिंचाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	800	1250
2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव (रुपए प्रति हेक्टेयर)	300	0
अन्य खर्च (रुपए प्रति हेक्टेयर)	1500	1500
कटाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	4250	4000
मड़ाई/ओसाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	3546	2970

आदानों का विवरण	कृषि परामर्श सेवा से योजित किसान	कृषि परामर्श सेवा से अनयोजित किसान
खेती की कुल लागत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	30736	30030
बीज उत्पादन (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)	19.7	16.5
सोयाबीन की कुल कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	68950	57750
शुद्ध लाभ (रुपए प्रति हेक्टेयर)	38214	27720
आय एवं लागत अनुपात	2.24	1.92

सारणी-9: ग्राम-देवपुरा, जिला अकोला (महाराष्ट्र) के कृषि परामर्श सेवा से योजित और अनियोजित सोयाबीन किसानों के मध्य आय एवं लागत की तुलनात्मक गणना

आदानों का विवरण	कृषि परामर्श सेवा से योजित किसान	कृषि परामर्श सेवा से अनयोजित किसान
खेत की तैयारी (रुपए प्रति हेक्टेयर)	2400	2400
उर्वरक कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	4300	4900
बीज की कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	4000	4000
बीज उपचार (रुपए प्रति हेक्टेयर)	750	450
बिजाई की कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	2900	3100
विरलीकरण (रुपए प्रति हेक्टेयर)	360	0
खरपतवार नियंत्रण (रुपए प्रति हेक्टेयर)	1620	1800
गुड़ाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	800	0
फसल सुरक्षा (रुपए प्रति हेक्टेयर)	2200	3600
2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव (रुपए प्रति हेक्टेयर)	300	0
अन्य खर्चे (रुपए प्रति हेक्टेयर)	1500	1500
कटाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	3900	3750
मड़ाई/ओसाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	2628	2196
खेती की कुल लागत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	27658	27696
बीज उत्पादन (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)	14.6	12.2
सोयाबीन की कुल कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	51100	42700
शुद्ध लाभ (रुपए प्रति हेक्टेयर)	23442	15004
आय एवं लागत अनुपात	1.85	1.54

सारणी-10: ग्राम-अलिकुनदम, जिला कोविलपट्टी (तमिलनाडु) के कृषि परामर्श सेवा से योजित और अनियोजित सोयाबीन किसानों के मध्य आय एवं लागत की तुलनात्मक गणना

आदानों का विवरण	कृषि परामर्श सेवा से योजित किसान	कृषि परामर्श सेवा से अनयोजित किसान
खेत की तैयारी (रुपए प्रति हेक्टेयर)	1500	1500
बीज की कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	1900	1900
बीज उपचार (रुपए प्रति हेक्टेयर)	650	50
उर्वरक कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	4850	7300
मजदूरी कीमत (खरपतवार नियत्रंण, खुटाई, कीटनाशी दवाओं एवं उर्वरको का छिड़काव) (रुपए प्रति हेक्टेयर)	4750	4500
फसल सुरक्षा (रुपए प्रति हेक्टेयर)	9500	14000
कटाई (ढुलाई एवं कपास का चुनाव) (रुपए प्रति हेक्टेयर)	7500	5500
खेती की कुल लागत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	30650	34750
कपास उत्पादन (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)	25.5	21.25
कपास की कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	2800	2800
कुल आय (रुपए प्रति हेक्टेयर)	70,700	59,500
शुद्ध आय (रुपए प्रति हेक्टेयर)	40,050	24,750
आय एवं लागत अनुपात	2.3	1.71

सारणी-11: ग्राम-सैबसू, जिला-कानपुर देहात (उत्तर प्रदेश) के कृषि परामर्श सेवा से योजित और अनियोजित मक्का किसानों के मध्य आय एवं लागत की वर्ष 2014-15 में तुलनात्मक गणना

आदानों का विवरण	कृषि परामर्श सेवा से योजित किसान	कृषि परामर्श सेवा से अनयोजित किसान
खेत की तैयारी (रुपए प्रति हेक्टेयर)	1050	1750
उर्वरक कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	5630	7650
10 क्विंटल कंपोस्ट की कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	3000	0
बीज की कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	3000	3000
बीज बिजाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	1420	1420
खरपतवार नियंत्रण (रुपए प्रति हेक्टेयर)	1420	2840
खरपतवार नाशी दवा की कीमत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	447	0
फसल सुरक्षा (रुपए प्रति हेक्टेयर)	552	1104
सिंचाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	2772	4158

आदानों का विवरण	कृषि परामर्श सेवा से योजित किसान	कृषि परामर्श सेवा से अनयोजित किसान
कटाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	2130	2130
मड़ाई/ओसाई (रुपए प्रति हेक्टेयर)	2840	2840
भूमि का किराया (रुपए प्रति हेक्टेयर)	6000	6000
अन्य खर्चे (रुपए प्रति हेक्टेयर)	100	100
कार्यरत पूंजी पर व्याज (रुपए प्रति हेक्टेयर)	872	980
कुल लागत (रुपए प्रति हेक्टेयर)	31233	33972
कुल आय (रुपए प्रति हेक्टेयर)	58690	50578
शुद्ध आय (रुपए प्रति हेक्टेयर)	27457	16606
आय एवं लागत अनुपात	1:1.88	1:1.49

फसलों पर कृषि मौसम सलाह का अर्थिक प्रभाव

नयना हल्ली और पतरेनहल्ली ग्रामों के क्रमशः 57 एवं 50 बागवानी किसानों के मध्य कृषि मौसम सलाह के प्रभाव का उनकी लागत एवं लाभ अनुपात का अध्ययन किया गया। यहां की प्रमुख फसलों में सब्जियां, फल, फूल और कृषि फसलों की अलग-अलग लागत एवं लाभ की गणना की गई।

उक्त दोनों ग्रामों के मध्य लागत एवं लाभ अनुपात के तुलनात्मक अध्ययन में देखा गया कि नयना हल्ली ग्राम से प्राप्त संपूर्ण लाभ पतरेन्हल्ली ग्राम के सापेक्ष अधिक था। अखिल भारतीय समन्वित कृषि अनुसंधान परियोजना की राष्ट्रीय नवाचार कृषि अनुसंधान परियोजना लागू होने के बाद उत्पादन में वृद्धि के परिणाम योजना के लागू होने के पूर्व वर्षो से ज्यादा प्राप्त हुए। विभिन्न फसलों के मध्य नयना हल्ली ग्राम में सब्जी फसल से अधिक उत्पादन, जिसमें लागत और लाभ का अनुपात 1:3.89, इसके बाद फलों में 1:3.87, फूलों में 1:2.41 एवं कृषि फसलों में 1:2.43 योजना के लागू किए जाने के बाद प्राप्त हुए, जबकि उक्त फसलों में क्रमशः लागत एवं लाभ का अनुपात योजना के पूर्व तुलनात्मक रूप से सब्जियों में 1:1.10, फलों में 1:1.60, फूलों में 1:1.15 और कृषि फसलों में 1:1.10 था।

ग्राम पतरेनहल्ली के विषय में अखिल भारतीय समन्वित कृषि मौसमविज्ञान अनुसंधान परियोजना की राष्ट्रीय नवाचार कृषि अनुसंधान परियोजना लागू किए जाने के उपरांत संतोषजनक परिणाम प्राप्त हुए। इस गांव में उगाई जाने वाली भिन्न-भिन्न फसलों के मध्य लागत एवं लाभ के परिणाम कुछ इस प्रकार दर्ज हुए यथा कृषि फसलों में 1:2.03, फूलों में 1:1.90, सब्जियों में 1:1.86 और फलों में 1:1.33 परिणाम प्राप्त हुए। जबकि योजना लागू होने के पूर्व कृषि फसलों में 1:0.91, फूलों में 1:0.95, सब्जियों में 1:0.91 एवं फलों में 1:1.10 क्रमशः आय थी।

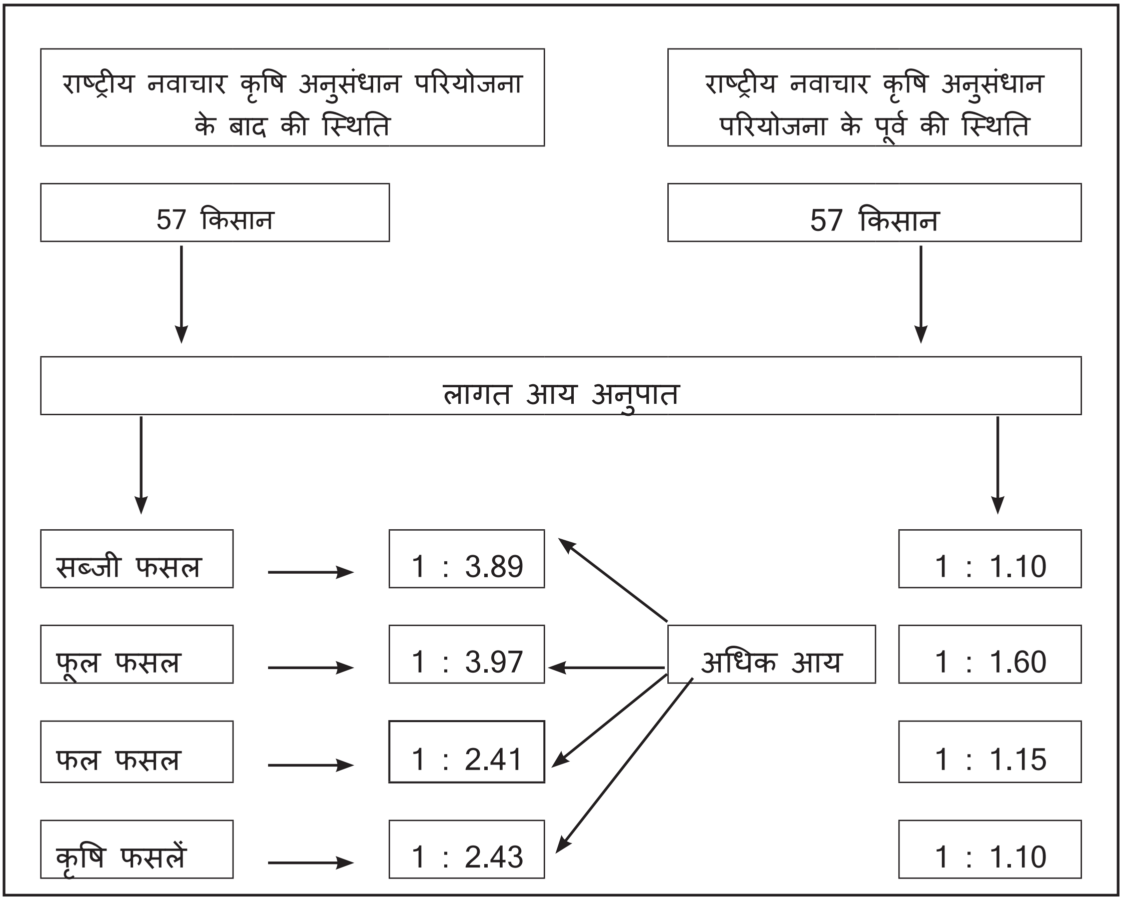

जलवायुवीय विचलन में कृषि मौसम सलाह का योगदान

यह देखा गया कि देश के विभिन्न जलवायुवीय क्षेत्रों पर स्थित ग्रामों में जलवायु विचलन (जिसमें मौसम कारकों की अति शामिल थी) पर अनुभव किया गया कि कृषि मौसम सलाह मौसम कारकों की अति से संघर्ष करने में एक महत्वपूर्ण तकनीक है, जो मौसम संबंधित जोखिम का मुकाबला करने में अधिक योगदान एवं प्रभावी रही। जलवायु विचलन में पुनः यह भी देखा गया कि यह तकनीकी फसल में उपयोगी आदानों में कमी लाने, आय में सुधार और फसल उत्पादन में होने वाली क्षति को कम करने में सहायक रही।

सारांश

मौसम और जलवायु में बढ़ती अनिश्चितताओं से देश की खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ा खतरा है। इसे ध्यान में रखते हुए कृषि मौसम सलाह सेवाओं का प्रावधान किया गया है ताकि किसान समय से कृषि प्रबंधन का उचित निर्णय लेकर मौसम के जोखिमों को कम कर सके। कृषि मौसम सलाह सेवा कृषकों को समयानुसार मौसम के आधार पर सस्य क्रियाओं से जुड़े

निर्णय लिए जाने में मददगार हैं। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी और उपलब्ध मौसम पूर्वानुमान मॉडलिंग की सहायता से मौसम विज्ञान विभाग कृषि जलवायु क्षेत्र के अनुसार जिला स्तर की कृषि परामर्श सेवा स्तर को सुधार कर जारी करता रहा है। जिला स्तर पर जारी की जा रही कृषि परामर्श का क्षेत्र वृहद है। इसकी तुलना में अखिल भारतीय समन्वित कृषि मौसमविज्ञान अनुसंधान परियोजना ने देश भर में फैले हुए अपने 25 सह केंद्रों की मदद से राष्ट्रीय नवाचार कृषि अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत सूक्ष्म स्तर पर मौसम आधारित कृषि सलाह सेवा को विकसित करने की जरूरत महसूस की। कृषि परामर्श सेवा की वाहक परीक्षण के लिए अखिल भारतीय समन्वित कृषि अनुसंधान परियोजना ने अपने सहयोगी केंद्रों के माध्यम से कृषि विज्ञान केंद्रों के सहयोग से अन्य जिलों के किसी नजदीक ब्लॉक के एक/दो गांवों का चयन किया। इसके पश्चात कृषि क्षेत्र की सूचना सुगमता से प्राप्त करने के लिए एफआईएफ कर्मी का विचार विकसित किया गया। यह एफआईएफ किसानों के खेत से फसल अवस्था और सूक्ष्म स्तर (ब्लॉक स्तर) मौसम की सूचना से कृषि मौसम विज्ञान एवं कृषि विज्ञान केंद्रों के विषय वस्तु विशेषज्ञों को उपलब्ध कराकर उनके द्वारा तैयार की गई कृषि मौसम सलाह को पुनः किसानों तक पहुंचा देता है। उपर्युक्त गणना एवं चर्चा से देखा गया कि इस तरह से तैयार की गई कृषि मौसम सलाह किसानों के कृषि कार्य के लिए बहुत ही उपयुक्त एवं कारगर हैं। लागत और लाभ अनुपात के आधार पर कृषि खेती एवं बागवानी पर कृषि परामर्श सेवा से योजित किसान अनियोजित किसानों की तुलना में अधिक उत्पादन प्राप्त कर रहे हैं। इस विश्वास के साथ जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल द्वारा व्यक्त मौसम कारकों के विचलन से बढ़ती चरम घटनाओं के विरूद्ध लचीलापन लाकर किसानों के आर्थिक स्थायित्व, फसल स्थिरता और क्षमता में सुधार के लिए कृषि मौसम सेवा का विस्तार देश के सभी क्षेत्रों में करने की जरूरत है।

आभार

लेखक भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली की राष्ट्रीय नवाचार कृषि अनुसंधान परियोजना का केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद के माध्यम से परिचालित करते हुए वित्त पोषण करने के लिए आभारी है। देश में फैले हुए सभी अखिल भारतीय समन्वित कृषि मौसमविज्ञान अनुसंधान परियोजना केंद्रों द्वारा राष्ट्रीय नवाचार कृषि अनुसंधान परियोजना को स्वीकार करते हुए उक्त कार्य को पूरा करने में महत्वपूर्ण योगदान देने एवं कृषि विज्ञान केंद्रों पर कार्यरत विषय वस्तु विशेषज्ञों, परियोजना समन्वयकों एवं भारत मौसमविज्ञान विभाग द्वारा मौसम पूर्वानुमान लगातार उपलब्ध कराए जाने में योगदान कर रहे हैं। उक्त सभी की सराहना करते हुए कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

संदर्भ

आईपीसीसी. (2007). समरी फार पालिसीमेकर्स. इन : क्लाइमेट चेंज 2007 : इम्पेक्ट्स, अडेप्टेशन एंड वुलनेरबिलिटी. कंटरीबीशन आफ वर्किंग ग्रुप-II टू दा फोर्थ असेस्मेंट रिपोर्ट आफ दी इंटरगवर्मेंट पैनल आन क्लाइमेट चेंज, एम एल पररी, ओ एफ कनज़ियानी, जे पी पलुटिकोफ, पी जे वन डार लिनडेन एंड सी ई हनसन, ऐडिटर्स, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, यूके, पी.पी. 7-22

आईपीसीसी. (2014). क्लाइमेट चेंज 2014: सिंथेसिस रिपोर्ट. कंट्रीब्यूशन आफ वर्किंग ग्रुप्स-I, II एंड III टू दा फिफ्थ असेसमेंट रिपोर्ट आफ दी इंटरगवर्मेंट पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज [कोर राइटिंग टीम, आर के पचौरी एंड एल ए मयेर (एडिटर्स)]. आईपीसीसी, जेनेवा, स्वीटजरलेंड, पीपी.151.

माल आरके, सिंह आर, गुप्ता ए, श्रीनिवासन जी एंड राठौड एल एस. (2006). इम्पेक्ट आफ क्लाइमेट चेंज ऑन इंडियन एग्रीकल्चर : ए रिव्यू. क्लाइमेट चेंज, 78 : 445-478.

श्रीनिवास राव सीएच, प्रसाद जेवीएनएस, वाई जी प्रसाद, प्रसन्ना कुमार, शैलेष बोरकर, सिंह ए के, एंड सिक्का ए के. (2016). क्लाइमेट रिज़ाइलेंट विलेज इन इंडिया. आईसीएआर - सेंट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, संतोषनगर, हैदराबाद 500059, पीपी. 20.

राजेगौड़ा एमबी, जनार्दन गौडा एन ए, राघवेंद्रा एस, थिम्मेगौड़ा पी आर, श्रीधर डी. (2013). इकोनामिक इम्पैक्ट आफ नेशनल इनिसिएटिव आन क्लाइमेट रिज़ाइलेंट, एआईसीआरपी आन एग्रीकल्चर - बेंगलुरु सेंटर, यूनिवर्सिटी आफ एग्रीकल्चर साइसेंस, जीकेवीके, बेंगलुरू - 560065, कर्नाटक, पीपी. 20.

★★★

14

वर्षा आधारित कृषि प्रौद्योगिकियों का हस्तांतरण

- जी निर्मला, के रविशंकर, प्रभात कुमार पंकज, के नागश्री, जागृति रोहित, अन्षिदा बीवी एवं जी प्रभाकर

परिचय

वर्तमान में वर्षा आधारित क्षेत्र देश के कुल बोए गए क्षेत्र का लगभग 55 प्रतिशत है। यह क्षेत्र सिंचाई क्षमता प्रयुक्त करने के बाद भी, भारत के कुल कृषि क्षेत्र का लगभग 50 प्रतिशत वर्षा आधारित ही बना रहेगा। भारत के वर्षा आधारित कृषि क्षेत्र की विशेषता यह है कि इन क्षेत्रों में देश के करीब दो-तिहाई पशु एवं 40 प्रतिशत लोग निवास करते हैं। देश में कृषि के संपूर्ण विकास हेतु, उत्पादन अंतराल को परिपूर्ण करने के लिए, वर्षा आधारित कृषि पर आश्रित लाखों लोगों के जीविकोपार्जन को सुधारना अति आवश्यक है। इससे न केवल कृषकों की उपज में ही वृद्धि होगी अपितु जलवायु संबंधी प्रकोपों से भी छुटकारा मिल सकेगा। हालांकि, राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली द्वारा तैयार की गई अनेक प्रौद्योगिकियां से किसानों के जीविकोपार्जन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और कृषि प्रौद्योगिकियों का हस्तांतरण यद्यपि एक साधारण सैद्धांतिक बात ही लगती है, फिर भी वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों में यह कार्य जटिल, भिन्न एवं जोखिम संभावित प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में बहुत ही निराला कार्य है। वर्षा आधारित कृषि के विकास के लिए कृषि प्रौद्योगिकियों के हस्तांतरण की पूरी प्रक्रिया में विभिन्न अवयवों का ध्यान रखा जाना चाहिए। अनुसंधान, प्रसार, किसान एवं सहायता नामक चारों उप-प्रणालियों का प्रभावी इंटरफेस कई संज्ञानामिक एवं संबंधित कारकों पर निर्भर करता है, जिनपर निरंतर नज़र रखना जरूरी है।

विशेषज्ञों द्वारा जैव-भौतिक कारणों का विवरण दिया गया है, जबकि, कम उत्पादन के लिए अनियमित वर्षा, लंबे समय तक का शुष्क दौर, अत्यधिक भारी वर्षा एवं अननुमेय ओलावृष्टि द्वारा कई बार निचले इलाकों में बाढ़ की स्थिति को मुख्य कारण बताया जाता है। भूमि विकृत्तिकरण की तीव्रता एवं निम्न मृदा उर्वरता स्तर से भी उत्पादकता में कमी आती है। जलवायु परिवर्तन ने संसाधनों की उपलब्धता, सुलभता एवं टिकाऊपन के मामले में वर्षा आधारित कृषि के परिदृश्य को बदल कर रख दिया है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में किसानों की सामाजिक-आर्थिक समस्याएं

वर्षा आधारित क्षेत्रों के अधिसंख्यक किसान संसाधनहीन होते हैं। ये किसान तीव्र रूप से हो रही विकृत भूमियों में रहते हैं। इनकी जीविका कृषि एवं प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक निर्भर करती है तथा ये कम साक्षर एवं अधिकतर किसान छोटे, सीमांत एवं जनजाति वर्ग के होते हैं। परिवार के बढ़ने पर विभाजन होने से इनके खेतों का क्षेत्रफल निरंतर कम होता जा रहा है। पोषकों की पुन:पूर्ति में कमी, तीव्र मृदा अपरदन, बढ़ती जल की तीव्रता, प्रतिकूल मौसम परिस्थितियां एवं वनस्पतिक आवरण में कमी के कारण कृषि की गुणवत्ता गिरती जा रही है। खेत की बेहतर भूमि वाले किसानों की तुलना में वर्षा आधारित किसानों के पास भूमिगत सुविधाओं एवं ढांचे की कमी है। दिन-प्रतिदिन प्राकृतिक संसाधनों में गिरावट और बढ़ती गरीबी के कारण वर्षा आधारित भूमि के विकास में निम्नलिखित बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

प्रौद्योगिकियों का हस्तांतरण

प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण शब्द का अर्थ प्रौद्योगिकी एवं अनुसंधान संबंधी सूचना या एक नई प्रणाली का प्रसार करना है। प्रसार प्रणालियों के माध्यम से इसे ग्राहक या प्रौद्योगिकी के अंतिम उपयोगकर्ता के रूप में किसान तक पहुंचाया जाता है और उससे यह आशा की जाती है कि वह वर्तमान प्रणाली एवं प्रकियाओं के स्थान पर नई प्रौद्योगिकी को अपनाए एवं उसे आत्मसात करे। प्रसार विशेषज्ञ लगातार इस बात को दोहरा रहे हैं कि प्रौद्योगिकी हस्तांतरण का प्रभाव बाज़ार मूल्य, कृषि परिस्थितियां एवं किसानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति जैसी सहायक प्रणालियों पर निर्भर करता है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाने में आने वाली बाधाएं

इन प्रौद्योगिकियों के प्रसार में आने वाली विभिन्न बाधाओं, समस्याओं एवं मुद्दों के बारे में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। प्रौद्योगिकी प्रसार के अस्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त करके या उनको कम करने के लिए उपयुक्त उपाय किए जाने चाहिए अन्यथा उनके नकारात्मक प्रभाव को पूरी तरह से खत्म किया जाना चाहिए। उत्पादकता में बढ़ोत्तरी के लिए, वर्षा आधारित कृषि प्रौद्योगिकियों के हस्तांतरण के समय आर्थिक, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक, स्थितिजन्य, ढांचागत, प्रबंधात्मक, संचार व्यवस्था, राजनीतिक एवं संगठनात्मक/प्रशासनिक प्रकृति के अंशों के अंतर्गत विभिन्न अड़चनों/ मुद्दों को सुलझाने की आवश्यकता है। कुछ कारकों का ब्यौरा नीचे दिया जा रहा है:-

- **प्रौद्योगिकी:** प्रौद्योगिकी अवयव के अंतर्गत दर्शाई गई अड़चनों में अधिक लागत के निवेश; श्रम शक्ति की उपलब्धता; समय पर प्रचालन एवं प्रबंधन की आवश्यकता; फसल-पशुधन संबंध पर ध्यान न देना; उदाहरण के लिए पशु चराई के लिए सूखी घास पर्याप्त नहीं है। दूध के अधिक उत्पादन के लिए पशुओं को हरे चारे के साथ-साथ खनिज एवं संपूरकों की भी आवश्यकता होती है।
- **आर्थिक:** मेंढ और तालाबों का निर्माण करते समय मृदा एवं जल संरक्षण उपायों को अपनाने से आरंभ में अधिक लागत, अधिक श्रमिकों की आवश्यकता एवं कृषि योग्य भूमि की हानि, प्रमुख बाधाएं हैं।

- **सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक:** किसानों में शिक्षा की कमी, निम्न आर्थिक स्थिति, किसी ख़ास जाति का एकाधिकार, महिलाओं की भागीदारी एवं निर्णय लेने की शक्ति में कमी, प्रसार अधिकारियों द्वारा प्रेरणा एवं अनुकरणात्मकता में कमी, वैज्ञानिकों एवं प्रसार अधिकारियों के बीच प्रौद्योगिकी की उपयोगिता अनुभूति पर मतैक्यता, आदि कारणों से प्रौद्योगिकी को कम अपनाया जा रहा है (सारणी-1)।

सारणी-1 : नई वर्षा आधारित कृषि प्रौद्योगिकियों की प्रयोज्यता/लागू करने पर प्रसार अधिकारियों की राय

अत्यधिक लागू	मध्यम लागू	कम लागू
अधिक उत्पादक लघु अवधि किस्में	व्यापक आधार गहराई	डिस्क हैरो
गर्मी में जुताई	कूंड प्रणाली	कंटूर मेंढ
अंतर सस्यन	समृद्ध गोबर की खाद	सतह सख्त होना
कवकनाशी से बीज का उपचार	मध्यावधि सुधार	रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण
रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग	पलवार	वर्षा आधारित वीडर
आवश्यकता आधारित समेकित नाशीजीव प्रबंधन	वर्षाजल का पुन:उपयोग	छैनी हल
जैव उर्वरकों से बीज उपचार	बंड फार्मर का उपयोग	कूपर हल
बीज ड्रिल का उपयोग	मौसम-पूर्व बोवाई	
पशुधन, कृषिवानिकी एवं बागवानी युक्त कृषि		

स्थितिजन्य कारक : कृषि पारिस्थितिक विषमता, भूमियों के लिए विशेष प्रौद्योगिकी की अनुपलब्धता, बाजारों का उपलब्ध न होना, प्रसार अधिकारियों द्वारा संपन्न किसानों से ही मिलने की प्रवृत्ति एवं यातायात की सुविधा उपलब्ध न होने के कारण किसानों में गतिशीलता की समस्या उत्पन्न होना आदि प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण में अवरोध उत्पन्न करने वाले स्थितिजन्य प्रमुख कारक हैं।

मूलभूत सुविधाओं की कमी : प्रसार अधिकारियों एवं क्षेत्रीय कर्मचारियों की अपर्याप्त संख्या, वर्षा आधारित प्रौद्योगिकियों के बारे में प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी, वीडियो सम्मेलन, टेबलेट जैसी अत्याधुनिक संचार प्रौद्योगिकी का न होना, उत्पादों के लिए लाभकारी मूल्य प्राप्त न होना, फलों एवं सब्जियों के लिए शीत संग्रहगारों एवं प्रसंस्करण सुविधाओं की कमी होना।

प्रबंधनात्मक : वर्षा के समय पर उपलब्धता पर निर्भरता, अत्यधिक गहन प्रबंधन की आवश्यकता एवं कर्षण, बोवाई, खाद डालना, खरपतवार निकालना, पादप संरक्षण एवं कटाई के समय पर प्राचलन, पर्याप्त फार्म पावर एवं फार्म उपकरणों की कमी, वर्षा आधारित कृषि विकास कार्यक्रमों से जुड़े विभिन्न संगठनों से अपर्याप्त संपर्क एवं समन्वयन।

संचारगत : किसी भी संगठन में प्रभावी संचार प्रणाली प्रभावोत्पादकता की निशानी है। यह सूचना को ऊपर से नीचे एवं नीचे से ऊपर तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण प्रबंधन में जुडे निम्न स्तरीय एवं उच्च स्तरीय अधिकारियों को सुविधा प्रदान करती है। किसानों को संचार संबंधी समस्याओं में अपर्याप्त मुद्रित विषय, श्रव्य एवं दृश्य

उपकरण एवं अनुपयुक्त मीडिया मिक्स शामिल हैं तथा कभी-कभी प्रसार अधिकारियों के संचार कौशलों में भी कमी पाई गई है।

राजनीतिक : विभिन्न योज़नाओं के निर्माण, आबंटन एवं कार्यान्वयन में राजनीतिक संस्थाओं की रचनात्मक सहायता में कमी एवं साथ ही साथ क्षेत्रीय प्रसार अधिकारी वर्षा आधारित कृषि के विकास में समस्याएं उत्पन्न करते हैं। हमारे देश में पंचायत राज संस्थाओं की मजबूती के द्वारा सत्ता के विकेंद्रीकरण से हमारे राजनीतिक नेता वर्षा आधारित कृषि के विकास को प्रोत्साहन दे सकते हैं।

संगठनात्मक/प्रशासनिक : सार्वजनिक वित्त पोषित प्रणाली के विकास कार्यान्वयन में प्रशासन की लगातार सहायता की आवश्यकता होती है, लेकिन अधिकतर मामलों में, परियोजना का लक्ष्यों की उचित जानकारी का न होना, कई तरह की प्रक्रियाएं एवं प्रोटोकॉल एवं कई बार सही समय पर निधियों का उपलब्ध न होना भी शामिल है। क्षेत्रीय कर्मचारियों के बुनियादी भत्ते एवं परिवहन भत्ता न मिलना भी कार्य में बाधा उत्पन्न करते हैं।

वर्षा आधारित कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाना : वर्षा आधारित कृषि के अंतर्गत दलहन, तिलहन, बाजरा, मोटे अनाज एवं कपास, मिर्च, मूंगफली जैसी व्यावसायिक फसलें आती हैं। इस प्रकार वर्षा आधारित क्षेत्रों में देश के खाद्यान्न उत्पादन की भरपूर संभावनाएं हैं। जब तक इन क्षेत्रों के उत्पादन में वृद्धि नहीं होगी, तब तक कृषि में सही सफलता प्राप्त नहीं हो सकेगी। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (क्रीडा), हैदराबाद द्वारा अनुमान लगाया गया है कि आने वाले दशक में लाल मृदाओं में 37 प्रतिशत एवं काली मृदाओं में 45 प्रतिशत कृषि प्रौद्योगिकियां अपनाई जाएंगी।

वर्षा आधारित फसलों की अधिक उत्पादकता एवं समग्र लाभ को कई कारकों ने प्रभावित किया है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में किए गए अध्ययनों के अनुसार संचार प्रणाली, बाज़ार अधिशेष एवं उन्नत संसाधन प्रबंधन प्रौद्योगिकी स्वीकार सूची (टेक्नोलॉजी एडॉप्शन इंडेक्स) को प्रभावित करते हैं (सारणी-2)। ज्वार क्षेत्र में किए गए इसी प्रकार के अध्ययनों ने स्पष्ट किया कि किसानों के पास बड़ी कृषि योग्य भूमि का होना एवं उनकी अच्छी वार्षिक आय तथा अच्छे शिक्षा स्तरों के बावजूद अधिकतम निवेशों का उपयोग करना जैसे कारकों के कारण आंध्र प्रदेश में ज्वार की खेती से अधिकतम प्रतिफल प्राप्त हुआ।

सारणी-2 : वर्षा आधारित कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाने की सीमा पर अध्ययन

प्रक्रिया	अपनाने की सीमा
मृदा एवं जल संरक्षण उपाय	मध्यम
नई वर्षा आधारित कृषि प्रौद्योगिकियां	मध्यम
ज्वार-नई वर्षा आधारित कृषि प्रौद्योगिकियां	मध्यम
मृदा एवं जल संरक्षण उपाय	मध्यम
पंक्ति अनुपात, अंतरसस्ययन, संरक्षण कुंड	मध्यम

कृषि प्रौद्योगिकी प्रसार के दृष्टिकोण एवं विधियां

जटिल एवं जोखिम की आशंका वाले वर्षा आधारित क्षेत्रों में किसानों हेतु वर्षा आधारित प्रौद्योगिकियों के प्रसार का प्रयास किया जा रहा है। जटिल क्षेत्रों में तेजी से नई प्रौद्योगिकी, सूचना एवं ज्ञान के प्रसार विशेषज्ञों के साथ-साथ किसानों को भी शिक्षा एवं कौशल प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान की प्रौद्योगिकी हस्तांतरण इकाई, कृषि विज्ञान केंद्र तथा एक्रीपडा की चालू अनुसंधान परियोजनाएं नामक नेटवर्क परियोजनाओं पर वर्षा आधारित प्रौद्योगिकियों के प्रसार की बड़ी जिम्मेदारी है। साधारणतया, इन संस्थानों द्वारा अपनाई जा रही कार्य प्रणाली एवं विधियां, प्रशिक्षण का भागीदारी दृष्टिकोण, फार्म पर प्रदर्शन, फार्म पर जांच एवं संचार मीडिया जैसी पारंपरिक पद्धत्ति है। कभी-कभी प्रौ़द्योगिकी मूल्यांकन व परिष्करण का नवीन भागीदारी दृष्टिकोण एवं सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकियों को भी अपनाया जा रहा है।

प्रशिक्षण

वर्तमान परिस्थितियों में मानव निष्पादन को उन्नत बनाने में प्रशिक्षण की प्रमुख भूमिका है। प्रशिक्षण, ज्ञान एवं कौशल में व्यवस्थित सुधार प्रदान करता है, जिससे प्रशिक्षण के बाद प्रशिक्षु को दिए गए कार्य को प्रभावपूर्ण एवं निपुणता से करने में सहायता प्राप्त होती है। प्रौद्योगिकी हस्तांतरण इकाइयों एवं कृषि विज्ञान केंद के प्रशिक्षणों में अधिकतर ग्राहक की समस्याओं एवं आवश्यकताओं पर आधारित विभिन्न स्तरों के कार्यक्रम तैयार किए गए हैं। प्रशिक्षण व्यवस्थित गतिविधि को इंगित करता है जिससे कि एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह सीखने के लिए प्रेरित होता है जो उनके वांछित व्यवहार को बदलता है जिससे उनके दैनिक जीवन या व्यवसाय में लाभ होता है। प्रशिक्षण का लक्ष्य कार्य में स्थाई सुधार लाना है।

प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रमुख विषयों का समावेश एवं पाठ्यक्रम का लक्ष्य

अतीत में संस्थान में अनेक व्यापक मुद्दों को ध्यान में रखते हुए कई प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में विकास व्यावसायिकों की मांग को पूरा करने के लिए प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के प्रशिक्षकों द्वारा जीविकोपार्जन का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। वर्तमान समस्या जलग्रहण विकास कार्यक्रमों, जलवायु परिवर्तन प्रभावों, वर्षा आधारित कृषि का यांत्रिकीकरण, जलवायु परिवर्तन के अनुकूल नीतियों का निर्माण एवं स्थिरता प्रदान करने के लिए श्रमशक्ति, कृषि प्रणाली अनुसंधान एवं प्रसार, जल उत्पादकता तथा कृषि प्रणाली में पशुधन का एकीकरण आदि की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रशिक्षित श्रमशक्ति को तैयार करने की आवश्यकता है। वर्तमान में देश एवं भारतीय कृषि द्वारा अनेकानेक समस्याओं का सामना करने हेतु संबंधित विषयों पर निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आधारित अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है।

समेकित जलग्रहण प्रबंधन कार्यक्रम

वर्षा आधारित क्षेत्रों में गंभीर अपरदन के कारण भूमि एवं जल संसाधन के विकृत्तिकरण से खाद्यान्न, पर्यावरण, सामाजिक-आर्थिक एवं जीविकोपार्जन सुरक्षा के लिए गंभीर समस्या

उत्पन्न हो गई है। जलग्रहण प्रबंधन भूमि, जल एवं बायोमास की योजना, प्रबंधन एवं विकास से मृदा अपरदन को रोकने एवं जीविकोपार्जन को सुरक्षा प्रदान करने में एक प्रभावी उपकरण के रूप में उभरा है, जिससे गरीब एवं सीमांत किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। समेकित जलग्रहण प्रबंधन के लिए संकल्पना एवं ढांचा, भागीदारी ग्रामीण मूल्यांकन, मानचित्रण एवं आधारभूत चित्रण युक्त मूलभूत संसाधन सर्वेक्षण; जलग्रहण योजना में भौगोलिक सूचना प्रणाली का प्रयोग; जलग्रहण प्रबंधन में आधुनिक उपकरणों एवं तकनीकियों का उपयोग; वर्षा आधारित क्षेत्रों से संबंधित मृदा एवं फसल प्रबंधन मुद्दे एवं नीतियां; बहाव, भूमि उपचार, जल सिंचाई प्रणालियां एवं भूमिजल रीचार्ज; जलग्रहण मॉनीटरी एवं प्रभावी मूल्यांकन; कृषिवानिकी प्रणाली एवं उनका प्रबंधन; जलग्रहण प्रबंधन के सामाजिक-आर्थिक पहलू; संस्थान विकास एवं प्रबंधन सहित कृष्य भूमि एवं अकृष्य भूमियों हेतु भूमि क्षमता वर्ग, प्रबंधन एवं मृदा और जल संरक्षण उपायों पर आधारित वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणालियां।

वर्षा आधारित कृषि नीति अपनाने पर उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

विश्व भर में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को महसूस किया जा रहा है एवं कृषि पर इसका प्रभाव लाखों लोगों की खाद्यान्न सुरक्षा एवं जीविकोपार्जन को प्रभावित कर सकता है। शीत लहर, लू, सूखा एवं बाढ़ जैसी जलवायुवीय घटनाओं ने फसलोत्पादन को प्रभावित किया है जिससे खाद्यान की कमी एवं उनके दाम काफी महंगे हो गए। अत: विभिन्न पणधारियों में जागरूकता एवं क्षमता बढ़ना अति आवश्यक है, जिससे जलवायु जोखिमों की संवेदनशीलता को कम किया जा सके एवं पर्यावरण के प्रति उनके अनुकूलन को बढाया जा सके। वर्षा आधारित कृषि में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव; जीएचजी उत्सर्जन एवं भारतीय कृषि के लिए कार्बन पदचिह्न; मौसमी विचलनों का सामना करने के लिए आकस्मिक फसल योजनाएं; कृषि में कार्बन वित्त प्रक्रिया; जलवायु परिवर्तन से वर्षा आधारित फसलों की प्रतिक्रिया; फसल-नाशीजीव अंत:क्रिया पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव; जलवायु समुत्थान फसल किस्मों का प्रजनन; नीतियां, दृष्टिकोण एवं क्षेत्र दौरे तथा जलवायु परिवर्तन से संबंधित सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं की श्रृंखला को भी शामिल किया गया है।

वर्षा आधारित कृषि का यांत्रिकीकरण

वर्षा आधारित कृषि में कई चुनौतियां हैं। उनमें से एक प्रमुख चुनौती है बोवाई प्राचलन के समय नमी उपलब्धता का न होना। 2-5 दिनों की सीमित नमी की उपलब्धता में ही बोवाई प्राचलन को पूरा करने पर ही वर्षा आधारित कृषि की सफलता निर्भर है। इसके अलावा, कृषि प्राचलनों के लिए उपयुक्त पशुओं की उपलब्धता न होना भी वर्षा आधारित कृषि प्राचलों को बाधित करता है। इन भूमियों के टिकाऊपन एवं किसानों की खुशहाली के लिए वर्षा आधारित कृषि का यांत्रिकीकरण बेहतर विकल्प है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में समेकित फार्म प्रणाली

वर्षा आधारित क्षेत्रों के किसान सीमित भूमि वाले हैं जो फसल उत्पादन के साथ-साथ पारंपरिक रूप से पशुपालन भी करते हैं। जनसंख्या में निरंतर वृद्धि, टिकाऊ ग्रामीण जीविकोपार्जन में फसल एवं पशु-पालन अहम भूमिका निभाते हैं और भूमि की इकाई से उत्पादकता में वृद्धि

एवं लाभ भी प्राप्त करते हैं। अत: कृषि प्रणाली उनके पास उपलब्ध छोटी सी भूमि में मछली पालन, सुअर पालन एवं बत्तख पालन, रेशम उत्पादन, छत्रक सहित फसल, वानिकी एवं फल के पेड़ों को उगाने की सलाह देता है जिससे उत्पादकता एवं लाभ के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधन आधार का उन्नयन हो एवं पर्यावरण के समग्र सुधार को प्राप्त किया जा सके।

कृषि प्रणालियों का दृष्टिकोण, अवधारणा, संभावना एवं प्रयोज्यता; वर्षा आधारित कृषि में मौसम संबंधी फसल योजना; एक्रीपडा केंद्रों में कृषि प्रणालियों का अनुसंधान, वर्षा आधारित कृषि में जलग्रहण आधारित कृषि प्रणालियां, भारत के वर्षा आधारित क्षेत्रों में कृषि प्रणालियों के लिए भूमि उपयुक्तता योजना; वर्षा आधारित कृषि में कृषि प्रणालियों पर आधारित फसल के लिए संरक्षण प्रौद्योगिकियां; वर्षा आधारित कृषि प्रणालियों में फसल विविधता; वर्षा आधारित कृषि प्रणालियों में कृषि वानिकी की भूमिका; वर्षा आधारित कृषि प्रणालियों पर आधारित बागवानी; कृषि प्रणालियां; कृषि प्रणालियों में जैविक कृषि की संभावनाएं एवं चुनौतियां; वर्षा आधारित कृषि प्रणालियों में डेयरी पशुओं का प्रबंधन; विभिन्न कृषि प्रणालियों के मूल्यांकन के लिए कृषि-मौसमविज्ञान की सलाह एवं सेवाएं; विभिन्न कृषि प्रणालियों के मूल्यांकन के लिए आर्थिक उपकरण एवं तकनीकियां; वर्षा आधारित कृषि प्रणालियों एवं क्षेत्र दौरों में स्वदेशी पारंपरिक ज्ञान (आईटीके) का उपयोग।

उन्नत जीविकोपार्जन के लिए वर्षा आधारित कृषि में जल उत्पादकता में वृद्धि

कृषि की उत्पादकता एवं जीविकोपार्जन विकास की वृद्धि में जल का प्रमुख स्थान है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जल की कमी है एवं नमी की कमी के कारण फसलों की उत्पादकता कम है। वर्षाजल ही जल का एक मात्र साधन है। इसे ध्यान में रखते हुए, उत्पादकता की वृद्धि के लिए वर्षाजल की हरेक बूंद को संरक्षित करना नितांत आवश्यक है। इस पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य जल उत्पादकता की वृद्धि है। यह पाठ्यक्रम निकास भूमि उपचार, जल सिंचाई प्रणालियां एवं भूमिजल रीचार्ज सहित कृष्य एवं अकृष्य भूमियों के लिए स्व-स्थाने नमी संरक्षण प्रक्रियाओं, पलवार का उपयोग एवं संरक्षण कृषि प्रौद्योगिकियां, सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियां, जीविकोपार्जन विकास के लिए उन्नत फसल प्रणालियों, मृदा एवं जल संरक्षण जैसे वर्षाजल तकनीकियों को प्रमुखता प्रदान करते हुए विभिन्न उन्नत उपकरणों, तकनीकियों एवं मृदा तथा जल संरक्षण पद्धत्तियों के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए पशुधन उत्पादन वृद्धि की नीतियां

पशुपालन वर्षा आधारित कृषि का एक अभिन्न अंग है क्योंकि इस क्षेत्र के किसानों के पास सीमित भूमि, गरीब सामाजिक-आर्थिक स्थिति एवं फसल नष्ट होने का जोखिम बना रहता है। पशु पालन की नियमित आय के अलावा छोटे पशुओं एवं कुक्कुट पालन से भी आय प्राप्त होती है। अधिक लाभ एवं गुणता के लिए पशुओं का प्रबंधन भी वर्षा आधारित क्षेत्रों की प्रमुख समस्या है। यह पाठ्यक्रम पशुओं से अधिकतम आय प्राप्त करने के लिए प्रौद्योगिकी अग्रिमों एवं आधुनिक प्रबंधन प्रक्रियाओं पर जोर देता है संस्थान के प्रौद्योगिकी हस्तांतरण अनुभाग द्वारा आयोजित विषयवार प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विवरण सारणी-3 में दिया गया है।

सारणी-3 : प्रौद्योगिकी हस्तांतरण अनुभाग (1978-2016) द्वारा आयोजित विषयवार प्रशिक्षण कार्यक्रम

विषय	1978-1980	1981-1985	1986-1990	1991-1995	1996-2000	2001-2005	2006-2012	2013-2016	कुल
वर्षा आधारित कृषि तकनीक(फसल उत्पादन, समेकित नाशीजीव प्रबंधन, समेकित पोषक प्रबंधन, कृषि उपकरण आदि)	5	15	12	12	10	23	19	2	98
मृदा एवं जल संरक्षण उपाय	5	8	14	15	15	4	5		66
समेकित जलग्रहण प्रबंधन	4	9	15	18	18	15	10	2	91
वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणालियां	2	5	6	5	3	3	-		24
संचार तकनीकियां	-	2	3	8	6	4	-		23
विशेष कार्यशालाएं	3	10	15	20	15	5	-		68
कुल	**19**	**49**	**65**	**78**	**67**	**54**	**34**	**04**	**370**

कृषि प्रौद्योगिकियों का प्रदर्शन

कृषि प्रदर्शन एक ऐसी गतिविधि, प्रक्रिया या माध्यम है जिसमें किसानों के समूह और ग्राहकों के समक्ष प्रौद्योगिकियों का साक्षात प्रदर्शन किया जाता है। यहां किसानों को अनाज उत्पादन, लाभ पर सबूत प्रदर्शित किया जाता है। कृषि प्रसार में, अधिकतर नई प्रक्रिया की उपयोगिता एवं लाभ के बारे में किसानों को बताया जाता है। फसलों के प्रदर्शन के समय किसानों से बातचीत करने के अवसर होते हैं एवं प्रौद्योगिकी के बारे में जागरूकता एवं महत्व के बारे बताया जा सकता है। 'देखकर विश्वास करना' एवं 'काम करके सीखना' के सिद्धांतों को प्रदर्शनों के माध्यम से पूरा किया जाता है, जिसे कृषि विज्ञान केंद्र अपनी प्रसार प्रकिया में आमतौर पर अपनाते है। यह प्रक्रिया नवीन प्रौद्योगिकियां अपनाने की क्रिया में रुचि एवं सुधार लाती है। कैसे कार्य होता है, कैसे कार्य किया जाए एवं अंतिम लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जाए आदि को दर्शाने हेतु अत्यंत प्रभावी मार्ग है प्रौद्योगिकी प्रदर्शन। प्रदर्शनों द्वारा उत्पादन अवयव; मृदा का प्रभाव; मृदा नियंत्रण उपाय तथा जल संरक्षण उपायों जैसे मृदा जल संरक्षण उपायों का प्रभाव; स्थानीय किस्मों से उन्नत किस्मों की तुलना; संकर गाय एवं भेड़ की अधिक दुग्ध उत्पादन क्षमता एवं उन्नत उपकरण तथा कृषि यंत्रों के समुचित उपयोग के विषय में किसानों को परिचित कराया जा सकता है।

क्षेत्र प्रदर्शन में अग्रिम प्रदर्शन की संकल्पना भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा विकसित की गई है जिसे वैज्ञानिकों के मार्गदर्शन में प्रयोग में लाया जाना चाहिए एवं खेत पर जांच में मूल्यांकन एवं परिष्करण के बाद पहली बार प्रौद्योगिकी का प्रदर्शन किया जाना चाहिए।

अग्रिम प्रदर्शन का मुख्य उद्देश्य विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों एवं कृषि परिस्थितियों के अंतर्गत किसानों के खेतों में अत्याधुनिक फसल उत्पादन प्रौद्योगिकियों एवं उनकी प्रबंधन प्रक्रियाओं का प्रदर्शन करना है। वैज्ञानिक प्रदर्शन के पर्यवेक्षण के दौरान अधिक उत्पादन देने वाले कारकों, उत्पादन में आने वाली बाधाओं तथा किसानों की प्रतिक्रिया का अध्ययन करते हैं। वैज्ञानिकों द्वारा सीधे पर्यवेक्षण में होने के कारण यह साधारण प्रदर्शनों से भिन्न होता है। इसमें केवल महत्वपूर्ण जानकारी एवं प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है एवं शेष निवेश किसानों द्वारा स्वयं वहन किया जाता है।

इलैक्ट्रानिक एवं प्रिंट मीडिया का उपयोग

वर्षा आधारित प्रौद्योगिकियों के प्रसार के लिए रेडियो, टेलिविजन, समाचार पत्र, पत्रिकाएं एवं प्रदर्शन जैसे संचार मीडिया का भरपूर उपयोग हो रहा है। वैज्ञानिकों की रेडियो वार्ताएं प्रसारित हो रही हैं तथा टी वी के सीधे प्रसारणों में भाग ले रहे है। राज्य एवं जिला स्तरों पर किसान दिवस एवं किसान मेलों का नियमित रूप से आयोजन किया जा रहा है। दैनिक समाचार पत्रों, ब्रोशर, पत्रक एवं बुलेटिन जैसे प्रिंट मीडिया में प्रौद्योगिकियों का प्रसार किया जा रहा है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने दुनिया भर के कृषि प्रसार में क्रांति लाई है। कम समय में स्थानीय विषय को दूर तक पहुंचाना जैसे लाभों के कारण सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी चर्चा का विषय बन गई है। विभिन्न सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी पहल जैसेकि ई-चौपाल, आई किसान, पोर्टल में वर्ना (WARNA) वायरड़ परियोजना, एम किसान एवं इफको मोबाइल सेवा, वीडियो उत्पादन में डिजिटल ग्रीन परियोजना आदि ने किसानों की परिस्थिति को सुधारने में भरपूर योगदान दिया है। भारत सरकार द्वारा प्रायोजित एम कृषि से लघु संदेश सेवा, कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके), आईसीएआर द्वारा मोबाइल सलाह सेवाएं एवं इफको द्वारा ध्वनि संदेश इस क्षेत्र के सफल उदाहरण हैं। पारंपरिक प्रसार दृष्टिकोण की तुलना में डिजिटल ग्रीन परियोजना की कुछ कृषि प्रक्रियाओं से नई प्रौद्योगिकी को अपनाने की प्रक्रिया में सात गुना वृद्धि हुई है। डिजिटल ग्रीन परियोजना पर खर्च किए गए एक रुपए से 10 गुना प्रभाव देखा गया। इसके अलावा, पारंपरिक प्रसार पद्धत्तियों द्वारा अपनाई गई 11 प्रतिशत की तुलना में डिजिटल ग्रीन परियोजना से 85 प्रतिशत उन्नत प्रौद्योगिकियों को अपनाया गया। पश्चिमी अफ्रीका में, इक्रीसेट ने अफ्रीका राइस सेंटर (अफ्रीकी चावल केंद्र) द्वारा विकसित की गई दस फार्मर-टू-फार्मर वीडियो की श्रंखला से अनुभव प्राप्त किया। अफ्रीका के अत्यंत विनाशकारी खरपतवार-स्ट्रीगा के व्यावहारिक एवं सस्ते नियंत्रण मार्गों के बारे में ग्रामीण लोगों को जानकारी प्रदान करने के लिए इन दस फिल्मों को व्यापक रूप से दिखाया जा रहा है।

प्रौद्योगिकी के प्रसार के लिए अपनाया गया भागीदारी दृष्टिकोण

वर्षा आधारित क्षेत्रों के संसाधनहीन किसानों द्वारा कम प्रौद्योगिकी को अपनाया गया। वर्षा आधारित क्षेत्रों की कृषि प्रणालियां एवं सस्यधन प्रणालियां जटिल सामाजिक व्यवस्थाओं में चलाई जा रही हैं, जहां किसानों की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां एवं किसानों की निर्णय प्रक्रिया पर प्रौद्योगिकी अपनाना निर्भर करता है। इसके फलस्वरूप, किसान भागीदारी दृष्टिकोण

का विकास किया गया है। भागीदारी दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं: संसाधनों का लक्षण, समस्याओं एवं उनकी प्राथमिकताओं की पहचान, उपयुक्त हस्तक्षेपों का निर्माण करना, परिणामों का प्रयोग एवं मूल्यांकन। यहां मुख्यत: किसानों का ज्ञान एवं देशी प्रक्रियाओं को वैज्ञानिक ज्ञान के साथ संजोया जा रहा है ताकि प्रौद्योगिकी को अपनाकर उसे प्रयोग करना जिससे कि वे और अधिक प्रभावी एवं टिकाऊ हो सके।

'प्रसार अपनाने की प्रणाली' की पारंपरिक प्रसार प्रणाली के ऊपर से नीचे उपागम की तुलना में यह दृष्टिकोण बेहतर पाया गया जहां किसानों के खेतों का लघु दौरा किया जाता है एवं सड़क के किनारे वाले खेतों में प्रदर्शन किया जाता है तथा किसानों की आवश्यकताएं, प्राथमिकताएं एवं पसंद का अध्ययन एवं मूल्यांकन किए बिना, प्रौद्योगिकी के प्रसार के लिए चुने हुए कुछ संपन्न किसानों से संपर्क कर किया जाता है।

भागीदारी प्रौद्योगिकी के विकास की अवधारणा ने कई क्षेत्रीय पद्धतियों को तैयार किया है, उन्हीं में से एक है भागीदारी ग्रामीण मूल्यांकन (पीआरए)। इसमें किसानों की अवधारणा को मानचित्रण तकनीकियों, अर्ध संरचित साक्षात्कारों एवं सीधे अवलोकन से चित्रित किया जाता है। यह दृष्टिकोण न केवल आंकड़ों के संग्रहण को आसान बनाता है बल्कि स्थानीय लोगों को उनके अपने विश्लेषण तैयार करने में भी सहायता करता है।

किसानों के खेतों पर पाठशाला (एफएफएस)

किसानों के खेतों पर पाठशाला नामक कार्यक्रम में स्कूल भागीदारी पद्धत्तियों का उपयोग किया जाता है, ताकि किसान अपने विश्लेषणात्मक कौशल, गहन सोच एवं रचनात्मकता का विकास कर सकें तथा वैज्ञानिक उन्हें बेहतर निर्णय लेने में सहायता प्रदान कर सके। किसान खेत स्कूल कार्यक्रम के अंतर्गत फसल या पशुचक्र के दौरान किसानों का दल नियमित अंतराल पर अपने सहायकों से संपर्क करता रहता है। इस तरह के दृष्टिकोण में, एक प्रशिक्षक, प्रशिक्षक से कहीं ज्यादा सहायता प्रदान करने वाला बन जाता है। यह प्रसार कार्य में बदलाव को दर्शाता है। प्रसार दृष्टिकोण के अंतर्गत किसानों के खेत पर पाठशाला के तहत स्कूल की अवधारणा में सभी किसानों को प्रशिक्षण देने की आवश्यकता नहीं होती अपितु प्रशिक्षण में भाग लेने वाले किसानों को प्रोत्साहित किया जाता है जिससे कि वे अपने समुदाय के अन्य किसानों के साथ अपने ज्ञान एवं अनुभव को बांटते हुए उन्हें हरसंभव सहायता प्रदान कर सकें।

एक उदाहरण में, कृषि महिलाओं की प्राथमिकताएं एवं किस्म प्रौद्योगिकी को अपनाने के मानदंड को समझने के लिए भागीदारी ग्रामीण मूल्यांकन(पीआरए) का उपयोग कर अरहर किस्म का मूल्यांकन करनोपरांत निम्नलिखित परिवर्तन एवं भूमिकाओं में उलटफेर देखा गया:

किसान	वैज्ञानिक
निदान, विश्लेषण	उत्प्रेरित, सलाह
चुनना	जांच एवं आपूर्ति
प्रयोग	जांच एवं आपूर्ति
मूल्यांकन	सुविधा

यह देखा गया कि कृषि महिलाओं ने अरहर की इस किस्म को अस्वीकार कर दिया क्योंकि यह अधिक पैदावार देने वाली एवं रोग सहिष्णु होने के बावजूद खाने में स्वादिष्ट नहीं थी। उपरोक्त से यह अनुमान लगाया गया कि किसान अधिकतर अपनी आवश्यकताओं एवं अवधारणाओं के आधार पर प्रौद्योगिकी को अपनाने या न अपनाने के बारे में विश्लेषण कर निर्णय लेते हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत एनएटीपी ने अधिक से अधिक किसान - वैज्ञानिक संपर्कों को सुनिश्चित करने के लिए नवीन भागीदारी प्रसार दृष्टिकोण के रूप में संस्थान गांव जोड़ कार्यक्रम का आरंभ किया था। टिकाऊ वर्षा आधारित कृषि के लिए पूर्व शर्त यह है कि प्रौद्योगिकी प्रसार के समय किसानों को स्वयं प्रौद्योगिकी का मूल्यांकन एवं कार्यान्वयन करने देना चाहिए न कि ये बातें वैज्ञानिकों द्वारा उन पर थोपी जानी चाहिए।

वर्षा आधारित प्रौद्योगिकियों के प्रसार के लिए अत्याधुनिक पद्धत्तियों का उपयोग

वर्षा आधारित क्षेत्रों में, प्रौद्योगिकियों का उद्देश्य मृदा, जल, वर्षा, पोषक तत्व ग्रहण जैसे प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना एवं जल, मृदा पोषकों की हानि को दूर करना, ऊपरी मृदा के विकृत्तिकरण पर अंकुश लगाना तथा पर्यावरण विकृत्तिकरण को रोकना होना चाहिए। यह संसाधनों को समृद्ध एवं संरक्षित करेगा एवं सस्ययन प्रणालियों को स्थिरता प्रदान करेगा।

वर्षा आधारित क्षेत्रों की प्रौद्योगिकियों का संबंध मृदा संरक्षण, जल प्रबंधन, कर्षण पद्धत्तियां, फार्म यांत्रिकीकरण, फसल एवं अंतर फसल प्रणालियां, पोषक प्रबंधन एवं वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणालियों से है। प्रौद्योगिकियों की क्षमता एवं उपयोग में सुधार लाने के लिए निम्नलिखित शर्तों को पूरा करने की आवश्यकता है :-

- चुनी गई प्रौद्योगिकियों हेतु स्थान विशेष होना आवश्यक है एवं भूमि तथा जल संसाधन, वर्षा पद्धत्ति तथा किसानों के सामाजिक-आर्थिक स्तर के संबंध में सजातीय आवश्यकता वाली होनी चाहिए।
- फसल एवं उद्यमों की विविधता, संसाधनों की स्थिरता, आय एवं कृषक समुदाय को जीविकोपार्जन प्रदान करते हैं।
- किसानों द्वारा अपनाई गई प्रौद्योगिकियां उत्पादन लाभ के अलावा संसाधन क्षमता एवं आर्थिक लाभ प्रदान करने वाली होनी चाहिए।
- प्रौद्योगिकी प्रदर्शन और सही समय पर किसानों का क्षमता निर्माण पणधारियों में भरोसा एवं विश्वास जगाता है।
- प्रौद्योगिकियां प्रदर्शन लागत, मात्रा एवं गुणता के मामले में किसानों के लिए सुलभ होना चाहिए।

प्रसार प्रणाली किसानों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तैयार है। इसलिए भागीदारी प्रौद्योगिकी विकास एवं कार्य अनुसंधान कार्यक्रमों के द्वारा प्रौद्योगिकियों के प्रसार में नीचे से ऊपर का दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। इसका विवरण निम्नानुसार है:-

भागीदारी प्रौद्योगिकी मूल्यांकन एवं परिष्करण

यह एक नवीन प्रसार पद्धत्ति है। यह विभिन्न सूक्ष्म कृषि परिस्थितियों की भागीदारी पद्धत्ति पर जोखिम की आशंका वाले क्षेत्रों एवं किसानों की कम आय वर्गों के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी मॉडलों का मूल्यांकन एवं परिष्करण प्रक्रिया है। इस पद्धत्ति का संपूर्ण उद्देश्य उपयुक्त प्रौद्योगिकी मॉडलों का एकीकरण है, जिसमें स्थिरता, टिकाऊपन एवं समता की समस्याओं का समाधान किया जा रहा है।

किसानों के साथ तालमेल बैठने के बाद, गांव में उपलब्ध संसाधनों एवं क्षमता की समस्याओं के बारे में जागरूकता लाने के लिए सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन (पीआरए) तकनीकियों से कृषि-पारिस्थितिकी विश्लेषण तैयार किया गया। इसके बाद किसानों की समस्याओं को प्राथमिकता दी गई एवं संभावित कारणों की जांच की गई। मुद्दा सामूहिक चर्चा (एफजीडी) के द्वारा मृदा परिस्थितियों के आंकड़े, मौसम, सस्यन पद्धत्ति, पसंद एवं आवश्यकताओं का मूल्यांकन किया गया। उसके बाद, विभिन्न सूक्ष्म कृषि परिस्थितियों के लिए कार्य योजना तैयार की गई। प्रौद्योगिकियों का मूल्यांकन सत्यापन जांचों द्वारा एवं परिष्करण फार्म जांचों द्वारा किया गया। बहु-विषयक वैज्ञानिकों के मुख्य दल एवं किसानों ने मिलकर हस्तक्षेपों के स्वरूप का निर्णय लिया। कृषि परिस्थितियों के अंतर्गत सजातीय समूहों की पहचान के बाद, किसानों से मिलकर फसलों से जुड़े प्रौद्योगिकी मॉडलों, कृषि वानिकी एवं पशुधन आधारित हस्तक्षेपों का कार्यान्वयन किया गया।

उपयोगकर्ताओं पर भागीदारी प्रौद्योगिकी मूल्यांकन एवं परिष्करण के प्रभाव

उपयोगकर्ताओं पर भागीदारी प्रौद्योगिकी मूल्यांकन एवं परिष्करण के प्रभाव के रूप में अंतर्गत फसलों के उत्पादन में 15-20 प्रतिशत तथा दुग्ध उत्पादन में 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अपनाई गई मुख्य प्रौद्योगिकियां उन्नत फसल एवं चारा किस्म, संरक्षण कूंड, समेकित नाशीजीव प्रबंधन मॉडल, पशुओं के लिए संतुलित पोषण थे।

समूह दृष्टिकोण विधि

भारत में अधिसंख्यक (85 प्रतिशत) किसान छोटे एवं सीमांत हैं। वे गरीब, बिखरे हुए एवं उनमें खरीदने की शक्ति नहीं है। यह अच्छी तरह से जाना जाता है कि गरीब सबसे सशक्त हो सकते हैं यदि वह एक व्यक्ति के रूप में कार्य करने के बजाय एक दल के रूप कार्य करे। अत: अर्थव्यवस्था का भरपूर लाभ उठाने एवं प्रभावी किसान बनने के लिए गरीब पुरूष एवं महिलाओं में दल दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। किसानों की सहकारिता का सफलतम उदाहरण महाराष्ट्र का महाग्रेप्स का मामला है। कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन संस्था - आत्मा (ATMA) के अंतर्गत, किसान हित समूह (FIGs), उत्पाद हित समूह (CIGs), किसानों की पंजीकृत सोसाइटी (FOs) शामिल हैं। इस पद्धति को गरीब कृषि महिलाएं, जिनके पास थोड़ी सी भूमि एवं संसाधन के नाम पर ऋण है, जो कम आय के अंतर्गत आते हैं उन्हें संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) महिला समूहों की महिला सशक्तिकरण परियोजना के अंतर्गत चुना गया। इन महिलाओं को भूमि स्वामित्व के लाभों के बारे में जानकारी दी गई एवं बैंकों से ऋण

दिलाया गया। महिला समूह, पर्याप्त जानकारी एवं प्रोत्साहन के बाद भूमि पट्टे पर लेकर मृदा एवं जल संरक्षण की वर्षा आधारित प्रौद्योगिकियों का प्रयोग, सिफारिश की गई प्रक्रियाओं का पैकेज (मृदा एवं जल संरक्षण प्रक्रियाएं तथा समेकित नाशीजीव प्रबंधन मॉडल) सहित अंतरसस्यन प्रणाली अपनाकर ज्वार, चना जैसी वर्षा आधारित फसलों की खेती कर रहे हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रमों में बाज़ार संपर्क एवं बाज़ार से जुड़े पर्याप्त कौशलों के बारे में भी जानकारी दी गई।

उपयोगकर्ताओं पर सामूहिक दृष्टिकोण का प्रभाव

यह देखा गया कि महिला सशक्तिकरण से भूमि उपयोग, संसाधन एवं प्रसार सेवाओं के बीच की दूरी कम हो गई। पट्टे पर भूमि लेने, संसाधन एवं ऋण लेकर पर्याप्त भूमि का उपयोग किया गया। प्रसार सेवाओं का उपयोग करने एवं सिफारिश की गई प्रक्रियाओं को अपनाने से उन्नत उत्पादन भी प्राप्त हुआ। उत्पादन से अच्छा लाभ प्राप्त करने के अलावा महिलाएं अन्य साथी किसानों की तुलना में पट्टे पर ली गई भूमि की लागत भी सही समय पर लौटा रही है। यह देखा गया कि पट्टे पर ली गई भूमि से, फल की फसलें, कृषि-वानिकी हस्तक्षेप से होने वाले लंबी अवधि के लाभ सीमित थे। महिला किसानों की ओर से यह महसूस किया गया कि भूमि का स्थाई स्वामित्व उनके जीविकोपार्जन में बड़ा परिवर्तन ला सकता है।

ज्ञान केंद्र

ग्रामीण समुदायों विशेषकर छोटे, सीमांत किसानों एवं कृषि महिलाएं जिन्हें उपयुक्त प्रौद्योगिकियों की सूचना, बाज़ार नेटवर्क, कृषि सलाहों पर आधारित मौसम का उपयोग करना नहीं आता, उन्हें सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग के बारे में जानकारी प्रदान करने वाली परियोजनाओं में शामिल करने का प्रयास किया गया। इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से वर्षा आधारित क्षेत्रों के किसानों एवं पिछड़े लोगों को ज्ञान सशक्तिकरण की प्रकिया प्रदान करना है। इस परियोजना की विशिष्टता जमीनी किसानों को सूचना आवश्यकता मूल्यांकन के आधार पर फसल नैदानिक कीट, प्रबंधन समय सूची, प्रक्रियाओं का पैकेज एवं फसल कैलेंडर जैसी ज्ञान सहायक प्रणाली का विकास करना था।

उपयोगकर्ताओं पर ज्ञान केंद्र का प्रभाव

उपयोगकर्ताओं पर ज्ञान केंद्र के प्रभाव का मूल्यांकन करने से स्पष्ट हुआ कि ज्ञान केंद्र आंध्र प्रदेश राज्य के 8 जिलों के 4754 घरों में शामिल 17297 हेक्टेयर के भौगोलिक क्षेत्र में फैले 51 गांवों के किसानों को स्थान विशेष के समय के अनुसार, आवश्यकता आधारित सलाह एवं नैदानिक सेवाएं प्रदान करने में सफल रहा। ज्ञान केंद्र ने ग्राहकों को कृषि के बारे में सूचना एवं ज्ञान संसाधन के सुदूर उपयोग के लक्ष्य को प्राप्त किया। वर्षा आधारित ज्ञान केंद्रों में प्रचालक का निष्पादन, सामुदायिक एकीकरण, संपर्क, केंद्र के कर्मचारियों की सहायता, विद्युत समस्याएं एवं आर्थिक स्थिरता जैसी कुछ प्रचालन बाधाएं भी देखी गई हैं।

एक्रीपडा द्वारा अब तक प्रभावी रूप से प्रसार की गई वर्षा आधारित कृषि प्रौद्योगिकियां

एक्रीपडा की चालू अनुसंधान परियोजनाओं (ओआरपी) द्वारा मूल्यांकित वर्षा आधारित प्रौद्योगिकियों से पाया गया कि अनुसंधान संस्थाओं द्वारा तैयार की गई प्रौद्योगिकियों का

दो-तिहाई भाग आर्थिक रूप से व्यवहार्य हैं एवं करीब आधी प्रक्रियाओं ने अधिक से मध्यम लाभ दर्शाया। ये प्रक्रियाएं व्यवहार्य, विभिन्न मौसम परिस्थितियों के अंतर्गत उपयुक्त पाई गई एवं केंद्रों के निकटवर्ती गांवों में इन्हें ऊंचा दर्जा दिया गया है। कुछ प्रौद्योगिकी क्षेत्र एवं प्रौद्योगिकियां नीचे दी जा रही हैं:-

उन्नत फसल उत्पादन प्रौद्योगिकियां

- आंध्र प्रदेश के कम वर्षा वाले क्षेत्र के लिए उन्नत मूंगफली किस्म (के-6, नारायणी, आईसीजीवी-91114)
- रागी किस्म जीपीयु-28: दक्षिण कर्नाटक के लाल मृदाओं में मानसून में देरी के अंतर्गत उपयुक्त किस्म।
- समृद्धी: कर्नाटक के अर्ध-शुष्क लाल मृदाओं के लिए अधिक उत्पादन देने वाली मिर्च किस्म।
- आंध्र प्रदेश के कम वर्षा वाले क्षेत्र के लिए मूंगफली + अरहर (7:1) का अंतर सस्ययन प्रणाली।
- दक्षिणी कर्नाटक की लाल मृदाओं में वर्षा आधारित फसलों में उन्नत उत्पादन के लिए सूक्ष्मपोषकों का प्रयोग।
- राजस्थान के दक्षिणी क्षेत्र में मक्का की बेहतर स्थापना एवं उत्पादकता के लिए बीज प्राइमिंग।
- एचएचबी-67: हरियाणा के दक्षिण-पश्चिम सूखा क्षेत्र के लिए बाजरा संकर।

कृषि उपकरण व यंत्र

- आंध्र प्रदेश के कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए ट्रैक्टर चालित अनंत मूंगफली रोपक।
- आंध्र प्रदेश के कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए ट्रैक्टर चालित अनंत निराई-गुडाई उपकरण।
- आंध्र प्रदेश के अनंतपुर क्षेत्र के लिए ट्रैक्टर चालित ब्लेड गुंटक।
- दक्षिणी तेलंगाना क्षेत्र के लिए ट्रैक्टर द्वारा चालित बहु-फसल रोपक।
- दक्षिणी तेलंगाना क्षेत्र के लिए बारानी वीडर।
- दक्षिणी कर्नाटक की अल्फीसोल्स मृदाओं में स्व-स्थाने हरी खाद की स्थापना के लिए ट्रैक्टर चालित रोटावेटर।

मृदा जल संरक्षण प्रक्रियाएं

- कर्नाटक के उत्तरी सूखाग्रस्त क्षेत्र में निष्प्रयोजित कुओं से भूमिजल का रीचार्ज।
- कर्नाटक के उत्तरी सूखाग्रस्त क्षेत्र में अंतर खेत वर्षाजल सिंचाई।
- कर्नाटक के दक्षिणी सूखाग्रस्त क्षेत्रों में संरक्षण कूंड रागी + अरहर (8:2) की अंतर सस्ययन प्रणाली।

- उत्तरी गुजरात में नमी संरक्षण के लिए खंड मेंढ़ एवं बाजरा की अधिक उत्पादकता।
- उत्तर प्रदेश के पूर्वी मैदानी क्षेत्र में स्व-स्थाने नमी संरक्षण के लिए ग्रीष्म कर्षण।

प्रभावी प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण के लिए संस्थागत सहायता

कृषि विज्ञान केंद्र

देश में वर्षा आधारित प्रौद्योगिकियों का प्रसार आमतौर पर राज्यों के कृषि विभाग एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा किया जाता है। परिषद, शीर्ष निकाय के रूप में अपनी प्रौद्योगिकी हस्तांतरण इकाइयों, कृषि विज्ञान केंद्रों एवं संस्थानों के माध्यम से प्रौद्योगिकियों का प्रसार कर रही है। वर्ष 1964 से परिषद ने राष्ट्रीय प्रदर्शन कार्यक्रम, 1974 से चालू अनुसंधान कार्यक्रम, 1979 से प्रयोगशाला से खेतों तक जैसे कार्यक्रमों का प्रसार करना आरंभ किया था जिसे वर्ष 1992 में कृषि विज्ञान केंद्र के साथ जोड़ दिया गया।

वर्षा आधारित क्षेत्रों की उत्पादकता की वृद्धि में कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा चलाए जा रहे कृषि प्रसार प्रयासों का प्रमुख योगदान है। यह एक बुनियादी संगठन है जो गरीबी से लड़ने, ग्रामीण लोगों को शिक्षा प्रदान करने एवं प्राकृतिक संसाधनों को टिकाऊ बनाकर अधिक उत्पादकता की और ले जाने वाले व्यवहार एवं प्रौद्योगिकी को प्रदान करता है। आज, कृषि विज्ञान केंद्र वर्षा आधारित एवं सिंचित कृषि संबंधी सभी विकास गतिविधियों के लिए मूल्यांकन, परिष्करण एवं आधुनिक प्रौद्योगिकियों के प्रदर्शन का केंद्र बिंदु है।

एक्रीपडा की चालू अनुसंधान परियोजनाएं

चालू अनुसंधान परियोजनाओं का मुख्य उद्देश्य संपूर्ण गांव के किसानों के खेतों या केंद्र से मिले हुए कुछ गांवों/जलग्रहण क्षेत्रों पर नई कृषि प्रौद्योगिकियों की जांच करना व उन्हें अपनाना एवं प्रदर्शन करना है, जिससे नई प्रौद्योगिकियों से होने वाले लाभ एवं किसानों के बीच प्रसार की सीमा एवं कृषि समुदाय से प्रतिक्रियाएं ली जाती हैं। चालू अनुसंधान कृषि परियोजनाओं में मूल्यवान एवं उपयोगी प्रतिक्रियाओं में अनुसंधान खोजों को उन्नत बनाने और प्रौद्योगिकी के त्वरित हस्तांतरण की क्षमता है।

अनंतपुर जिले में चालू अनुसंधान परियोजना के मुख्य परिणाम

- उन्नत उपकरणों से खरपतवार नियंत्रण में श्रम लागत में कटौती।
- स्व-स्थाने एवं बहि-स्थाने वर्षाजल संरक्षण तकनीकियों का प्रदर्शन।
- सूखा सहिष्णु किस्मों की आवश्यकता।
- वर्षा जल सिंचाई एवं पुन:उपयोग के लिए नाड़ी प्रणाली में सुधार।
- कंपोस्ट की तैयारी एवं कस्टम हायरिंग सेवाओं में प्रशिक्षण की आवश्यकता।
- ड्रिप एवं छिड़काव सिंचाई प्रणालियों को अपनाने की आवश्यकता।

सारांश

कृषि विज्ञान केंद्र एवं चालू अनुसंधान परियोजना के प्रसार प्रयासों से ज्ञात हुआ है कि छोटे किसानों के लिए संस्थागत सहायता की नितांत आवश्यकता है। इसके साथ ही कुछ प्रौद्योगिकियों और मृदा एवं जल संरक्षण प्रक्रियाओं के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों से बाह्य सहायता भी जरूरी है। यह सुझाव दिया जाता है कि वर्षा आधारित प्रौद्योगिकियों के सफल कार्यान्वयन के लिए कस्टम हायरिंग, आवश्यक निवेशों की आपूर्ति के लिए संस्थागत वित्त पोषण, किसानों के लिए प्रशिक्षण एवं किसानों के खेतों पर प्रदर्शन की आवश्यकता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों के किसान अकसर सही मात्रा तथा सही समय में बीज एवं उर्वरकों की अनुपलब्धता का शिकार होते हैं। उन्नत प्रौद्योगिकियों का अधिकतम लाभ उठाने के लिए किसानों को बीज, उर्वरक एवं कीटनाशकों को उपलब्ध कराया जाना चाहिए। गांवों में बीज एवं चारा बैंकों की स्थापना की जानी चाहिए एवं इनका 'आतमा', राष्ट्रीय खाद्यान्न सुरक्षा मिशन आदि निधिबद्ध कार्यक्रमों में सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया जाना चाहिए। किसानों के खेतों तक प्रभावी रूप से प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए वैज्ञानिक-किसानों के बीच पारस्परिक बातचीत की आवश्यकता है। सुदूर क्षेत्रों के किसानों तक प्रभावी वितरण प्रणाली को ले जाने के लिए प्रसार अधिकारियों को कृषि प्रसार की नई पद्धतियों के निरंतर प्रशिक्षण एवं उचित मार्गदर्शन की नितांत आवश्यकता है।

संदर्भ

एनआरएए. (2012). परारीटाइजेशन आफ रेनफेड एरिआज इन इंडिया, स्टडी रिपोर्ट, एनआरएए, नई दिल्ली, पीपी-10.

चारी रविंद्रा जी, दीक्षित श्रीनाथ, सुरवे एसपी, शर्मा एसके, पद्मलता वाई, रानाडे डीएच, यादव एमएस, सिंह सुखविंदर, मीढा एलके, मरिराजू एच, रमण डीबीवी, मिश्रा पीके, वेंकटेश्वर्लू बी एवं विट्ठल केपीआर. (2009). ऑपरेशनल रीसर्च इन रेनफेड एग्रो इकोसिसटम-रीडिफाइनिंग ए न्यू विजन थ्रु एक्शन रिसर्च-आल इंडिया कोआरडिनेटेड रिसर्च प्रोजेक्ट आन रेनफेड एग्रीकल्चर - क्रीडा, हैदराबाद-500 059, पीपी-98.

सरोज पी, जिरली बी, राय ए, सिंह एम एवं कुमार ए. (2012). कागनीशन लेवल आफ स्टेकहोल्डर्स आन वाटरशेड डेवलपमेंट प्रोग्राम : ए मीन्स फार पीपुल, 3(2)।

सिंह एचपी, विट्ठल केपीआर, वेंकटेश्वर्लू जे, राजागोपालन वी. (1999). इंस्टीटुशनल एंड टेकनोलॉजिकल इशूस इन सेटिंग द रिसर्च एजेंडा फार ससटेनेबुल रेनफेड एग्रीकल्चर। रिपोर्ट सबमिटेड टू वर्ल्ड बैंक, क्रीडा, हैदराबाद-59.

सिंह एच पी, रामकृष्णा वाई एस, शर्मा के एल एवं वेंकटेश्वर्लू बी. (1999). फिफटी इयर्स आफ ड्राइलेंड एग्रीकल्चर इन इंडिया। सेंट्रल रिसर्च इंस्टीट्युट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद-500059, पीपी1-629.

श्रीनिवास राव सीएच, चारी रविंद्रा जी, मिश्रा पीके, सुब्बा रेड्डी जी, संकर जीआरएम, वेंकटेश्वरर्लू बी एंड सिक्का एके. (2014). रेनफेड फार्मिंग - ए कंपेंडियम आफ डुएबुल टेकनोलोजीस। आल इंडिया कोआरडिनेटेड रिसर्च प्रोजेक्ट आन रेनफेड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, 500059, पीपी-194.

★★★

15

वर्षा आधारित फसल उत्पादन हेतु एकीकृत रोग प्रबंधन माड्यूल

- सुशीलेंद्र देसाई, अब्दुल समद, सुशील कुमार यादव एवं संतराम यादव

परिचय

एकीकृत रोग प्रबंधन (आईडीएम) नाशीजीवों के नियंत्रण की सस्ती और वृहद आधार वाली विधि है जो नाशीजीवों के नियंत्रण की सभी विधियों के समुचित तालमेल पर आधारित है। इसका लक्ष्य नाशीजीवों की संख्या को एक सीमा के नीचे बनाए रखना है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें फसलों को हानिकारक कीड़ों तथा बीमारियों से बचाने के लिए किसानों को एक से अधिक तरीकों, जैसे - व्यवहारिक, यांत्रिक, जैविक तथा रासायनिक नियंत्रण, को इस तरह से क्रमानुसार प्रयोग में लाना चाहिए ताकि फसलों को हानि पहुंचाने वाले रोगों एवं कीटों की संख्या आर्थिक हानिस्तर से नीचे बनी रहे। आईडीएम एक पर्यावरण अनुकूल पहल है। इसका उद्देश्य लाक्षणिक, मशीनी और जैवकीय जैसी सभी उपलब्ध वैकल्पिक कीट एवं रोग नियंत्रण प्रक्रियाओं और प्रौद्योगिकीयों का प्रयोग करके कीटों एवं रोगों की संख्या को एक आर्थिक सीमा के नीचे तक कम रखना और नीम से बनी दवाओं जैसे जैवकीय कीटनाशकों और पादप आधारित कीटनाशकों के प्रयोग पर जोर देना है। इसके तहत केवल एक ही पद्धति, जैसे कि रासायनिक दवाओं की अपेक्षा अन्य उपलब्ध पद्धतियों, का उपयोग किया जाना चाहिए। इसमें सस्य क्रियाएं, अवरोधी किस्मों के प्रयोग, यांत्रिक क्रियाएं, तकनीकी क्रियाएं व जैविक साधनों के साथ-साथ जरूरत पड़ने पर रसायनों का प्रयोग करना चाहिए।

यह कटु सत्य है कि वर्तमान परिवेश में फसलों में रोगों व कीटों की रोकथाम के लिए अत्याधिक रासायनिक दवाओं का उपयोग बढ़ गया है। इससे जहां एक ओर पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है वहीं दूसरी ओर विभिन्न प्राणियों की सेहत पर भी इसका विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। कीटों और रोगकारकों ने ज्यादातर प्रचलित रासायनिक दवाओं के प्रति अपने अंदर प्रतिरोधकता पैदा कर ली है। इसका परिणाम यह निकला है कि आजकल इन रासायनिक दवाओं का असर इनके ऊपर लगातार घट रहा है जिसके परिणामस्वरूप किसानों को इनका प्रयोग कई बार एवं अधिक मात्रा में करना पड़ रहा है। इसका सीधा असर फसल लागत पर पड़ रहा है और किसानों के लिए खेती करना अब दिन-प्रतिदिन घाटे का सौदा साबित होता जा रहा है। इन परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए हानिकारक कीटों और बीमारियों की रोकथाम के लिए वैज्ञानिकों ने एक नया तरीका खोज निकाला है। इसमें कीटों व बीमारियों से छुटकारा पाने के लिए एक से

अधिक तरीकों को अपनाया जाता है तथा कीटों, रोगों और खरपतवारों आदि का विनाश करने के अतिरिक्त उनके उचित प्रबंधन की बात की जाती है। वास्तव में इस प्रक्रिया में किसी जीव को हमेशा के लिए खत्म करना नहीं होता अपितु ऐसे उपाय करने होते हैं जिससे कि फसल को हानि न पहुंच सके। जब फसल में कीटों की संख्या एक आर्थिक सीमा रेखा के स्तर को पार कर जाती है तो वैज्ञानिकों द्वारा किसानों को अंतिम उपाय के रूप में ही रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग की सलाह दी जाती है।

एकीकृत रोग प्रबंधन के अंतर्गत आर्थिक दृष्टिकोण को मद्देनजर रखते हुए फसलों के रोग प्रबंधन का संयोजित रूप अपनाने पर बल दिया जाता है। यह प्रक्रिया चयन की एक विशेष अवधारणा है। इसमें स्थान का चयन, प्रतिरोधी किस्मों का विकास, रोपण प्रथाओं में फेरबदल, जल निकासी, सिंचाई, छंटाई, विरल आदि के माध्यम से पर्यावरण को ध्यान में रखकर कार्य करना पड़ता है। इस पद्धति में पारंपरिक उपायों के साथ-साथ पर्यावरणीय कारकों, जिसमें तापमान, नमी, मृदा पीएच, पोषक तत्व आदि सम्मिलित हैं, रोग चेतावनी तथा आर्थिक सीमा की स्थापना जैसे कार्यों के लिए निगरानी या मानिटरिंग योजना अति महत्वपूर्ण है। इन उपायों से प्रत्येक घटक से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए एक समन्वित एकीकृत योजना बनाकर उसे सुचारू रूप से लागू किया जाना चाहिए। एकीकृत रोग प्रबंधन विभिन्न कृषि जलवायुवीय घटनाओं और रोगों के महत्व के आधार पर क्षेत्र विशेष हेतु रोग प्रबंधन का व्यावहारिक और आर्थिक रूप से व्यवहार्य विकल्पों में से एक इष्टतम मिश्रण है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि एक आईडीएम माड्यूल में विभिन्न घटक होते हैं। अत: इन घटकों का विस्तृत विवरण अधोलिखित है।

एकीकृत रोग प्रबंधन के साधन

रोग प्रतिरोधी किस्मों का चयन

रोग प्रतिरोधी पौधों का उपयोग, उचित रोग प्रबंधन करने का एक आदर्श तरीका है। यद्यपि, पौधों की संतोषजनक गुणवत्ता और उनकी टिकाऊ प्रतिरोधकता कायम रहना अति आवश्यक है। रोग प्रतिरोधी, जहां एक ओर पौधों के उपयोग घाटे को कम करता है वहीं दूसरी ओर इसके अतिरिक्त प्रयास की आवश्यकता को भी समाप्त कर देता है। आमतौर पर प्रतिरोधी पौधों का चयन, संकरण प्रक्रिया या म्यूटेशन के माध्यम से मानक प्रजनन प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है। प्रतिरोधी पौधों का चयन, रोग दबाव के उच्च स्तर पर जीवित रोग प्रतिरोधी पौधों के स्रोत के रूप में उपयोग करना शामिल है। पौधों पर रोग के दबाव से उनके जीवित रहने पर अक्सर आनुवंशिक प्रतिरोध उत्पन्न होने पर या प्रतिरोध के स्रोतों से प्रतिरोधी पौधों के लिए अपेक्षित गुण विकसित करने के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

रोग से बचाव तब होता है जब अति संवेदनशील पौधे किसी कारणवश रोगग्रस्त नहीं हो पाते है। पत्ती के रोग, उपत्वचा या संशोधित रंध्र के रूप में कुछ संरचनात्मक बदलाव भी देखे गए हैं। इस दौरान परिस्थितियां इन रोगों के विकास के लिए अनुकूल नहीं होती हैं। रोग प्रतिरोधी पौधों का विकास वार्षिक और द्विवार्षिक पौधों के साथ अपेक्षाकृत सफल है, लेकिन बहुऋतु

पौधों के साथ ऐसा संभव नही है। पौधों में प्रतिरोधकता का विकास रस्ट, स्मट, कवक, खस्ता फफुंदी कवक और वायरस आदि में सबसे सफल रहा है। इस तरह तुषार, नासूर, जड़ विगलन और पत्ता चित्ती सामान्य रोगजनकों की अपेक्षा बहुत कम हो गए हैं।

पौधों में रोग प्रतिरोधिता विकसित करने के लिए हाल ही में एक नई तकनीक द्वारा पौधों में अन्य जीवों के जीन प्रवेश कराकर इनमें प्रतिरोधकता बढ़ाई जा सकती है। उदाहरण के रूप में जीवाणु बेसिलस थुरंजिआंसिस का जीन कीट हमलों के विरूद्ध रक्षा कवच के रूप में पौधों में प्रविष्ट कराया गया। इन अंत: स्थापित जीन वाले पौधो को आनुवंशिक रूप से संशोधित जीव (जीएमओ) कहा जाता है। पौधों में रोग प्रतिरोधिता बढ़ाने में आनुवंशिकी इंजीनियरिंग बहुत महत्वपूर्ण है। इससे कई महत्वपूर्ण वायरस रोगों के खिलाफ सफलता प्राप्त हुई है। रोग प्रबंधन के लिए यह दृष्टिकोण व्यापक रूप से उगाई जाने वाली फसलों गेहूं, मक्का, सोयाबीन, चावल आदि में बढ़ाने हेतु कारगर सिद्ध हो रहा है।

पारंपरिक तरीके

रोग तीव्रता के प्रबंधन हेतु कई पारंपरिक तरीकों में आवश्यक परिवर्तन करके उन्हें अपनाया जा सकता है। ये पद्धतियां सामान्य रूप से कम लागत वाली होती हैं। इस तरह के उपाय वर्षा आधारित उत्पादन प्रणालियों में आमतौर पर उन किसानों हेतु कारगर सिद्ध हुए हैं जिनके पास संसाधन सीमित हैं। इनमें मुख्य रूप से रोगजनक मुक्त रोपण समाग्री का चयन, रोपण के उन्मुखीकरण, सूर्य दिशा और हवा के बहाव, छंटाई, फसल के लिए उपयुक्त बढ रही साइटों, पर्याप्त जुताई, गैर अतिसंवेदनशील फसलों के लिए रोगजनक पीड़ित संयंत्र के अवशेषों, फसलचक्र प्रक्रिया द्वारा चयन में शामिल संक्रमण के स्रोतों को खत्म करने में और अतिसंवेदनशील पौधें, पर पानी के प्रबधंन, मिट्टी, पर्याप्त पोषण में सुधार करने के लिए वेंटिलेशन, जड़ विकास में सुधार करने और पौधो पर चोट से बचाव और स्वच्छता प्रक्रियाओं से इनोकुलुम के स्रोतों को समाप्त करने के लिए है। पारंपरिक प्रथाओं में फसलावशेषों को गहरा दफनाना, जला कर फसल के मलबे का विनाश करना, अनैच्छिक पौधों को हटाना आदि शामिल है।

रोग रोकथाम हेतु कुछ सुखाव

- चूने या जिप्सम के प्रयोग द्वारा मृदा पीएच में संशोधन से कुछ रोगों का प्रबंधन या रोकथाम करना।
- खनिज पोषणों, मुख्यतः सूक्ष्मपोषक तत्वों जिनकी वजह से फसलों पर रोग आता है, में संशोधन द्वारा रोकथाम करना।
- अंतरफसल के समय होने वाली गहरी बुवाई (न्यून्तम 2 इंच) और इससे होने वाले घावों से बचना चाहिए।
- गर्द रहित कृषि, खेतों में जैविक पदार्थो और फसलों के अवशेषो को 8 से 10 इंच गहरी जुताई के बाद दबा देना चाहिए।

- मृदा द्वारा होने वाले रोगजनकों के प्रबंधन के लिए गहरी जुताई करनी चाहिए।
- मिट्टी जनित रोगजनकों के खिलाफ 500 से 1000 किग्रा प्रति हेक्टेयर में सरसों केक, अरंडी केक या नीम केक का मृदा में प्रयोग करना चाहिए।
- फसल चक्रीकरण, अंतरफसल और मिश्रित कृषि अपनाना।

जैव कीटनाशक और जैव नियंत्रण

जैव नियंत्रण में एक हानिकारक सूक्ष्मजीव को दूसरे लाभदायक सूक्ष्मजीव द्वारा रोका जाता है। यह तकनीक कई क्षेत्रों में अनुसंधान और विकास को प्रेरित करने के लिए की जा रही है। इस प्रकार का परस्पर अंतर संबंध पर्यावरण के कई बिंदुओं पर निर्भर करता है और इसमें से कुछ जैव नियंत्रण को बढावा देते हैं। इसके अलावा प्राकृतिक उत्पादों और रसायनिक यौगिकों की खोज से बुनियादी अनुसंधान का रोगजनक और जैविक नियंत्रण के आणविक तंत्र से बायोरेशनल कीटनाशको का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। कुछ सूक्ष्म जीवाणु समूह (माइक्रोबियल ग्रुप), जो सफलतापूर्वक बाजार में विपणन के लिए प्रयोग किए जा रहे है, उनमें से कुछ प्रमुख जीवाणु (इस्टेप्टोमाइसिस, एग्रो बैक्टीरियम, बैसीलस) और फफूंद (एपलोमाइसिस केनडीडा माइक्रोडर्मी, कोनियोथिरियम) हैं। जैविक नियंत्रण में प्रयोग किए जाने वाले लाभदायक जीवाणुजनक प्रजातियों या बैक्टीरियल स्ट्रेन्स पर अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि ये सभी प्राकृतिक उत्पाद बनाते हैं, जिनका उपयोग रसायनिक नियंत्रण से संभव है। इसका एक प्रमुख उदाहरण पायरोलनिट्रिन है, जो कि स्यूडोमोनास जीवाणु से प्राप्त होता है। इसी यौगिक का उपयोग फ्लयूडीआक्सोनिल को बनाने में किया जाता है जो एक ब्राडस्प्रेक्ट्रम फफूंदनाशक है। इसका उपयोग छिड़काव और मृदा एवं बीज उपचार में होता है। जैवनियंत्रण उत्पाद या तो अकेले या मिश्रण में प्रयोग किए जाते हैं, जैसे जैविक हाइस्टिक एन/टी, कृत्रिम कोडीयका जैविक नियंत्रण की सफलता गहन अध्ययन पर निर्भर करती है। इसका अभिप्राय यह है कि कृषकों को जैव नियंत्रण से होने वाले लाभ और इसकी लागत की जानकारी होनी चाहिए। जैव नियंत्रण का प्रयोग कब कहां और किस तरह से लाभदायक होता है, इसकी जानकारी अवश्य होनी चाहिए। कई जैव नियंत्रण एजेंट (घटक) पौधों की रक्षा प्रणाली को उत्प्रेरित करते हैं, जिसे प्रणालीगत अधिग्रहण प्रतिरोधकता (सिस्टेमिक एक्वार्यड रेजीस्टेन्स) या स्थानीय अधिग्रहण प्रतिरोधकता (इंडयूज्ड सिस्टेमिक रेजिस्टेन्स) या प्रेरित अधिग्रहण प्रतिरोधकता (लोकेलाइज्ड एक्वायर्ड रेजिस्टेन्स) कहते हैं। रोग कारक प्रोटीन, सूक्ष्मजीव द्वारा स्रवित होती है, जो पादप रक्षा प्रणाली को नियंत्रित करती है। इसके अलावा कुछ सूक्ष्मजीव पादप रोगों से सुरक्षा के साथ-साथ पादप वृद्धि में सहायक भी होते हैं। इसलिए यह तकनीकी एकीकृत रोग प्रबंध कार्यक्रमो (आईडीएम) में बहुमूल्य है।

आवश्यकता आधारित रसायनिक तरीकों का प्रयोग

कृत्रिम रसायनो का उपयोग, रोगजनकों और कीटों के नियंत्रण हेतु किया जा सकता है। स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संबंधित सुरक्षा चिंताओ के कारण वर्तमान समय में विषैले, कैंसर कारक

और पर्यावरण के लिए हानिकारक रसायनो के प्रयोग को हतोत्साहित किया जा रहा है। इन कार्यक्रमो के संबंध में, प्रबंधन के सुरक्षित विकल्पों के असफल होने के उपरांत ही इस तरह के रसायनो का प्रयोग करना चाहिए। इन कार्यक्रमों में फफूंद नाशक का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। जमीनी छिड़काव, हवाई जहाज या सिंचाई प्रणाली का आवश्यकतानुसार उपयोग करना आवश्यक है। सबसे पहले फफूंदी नाशक कानूनी तौर पर इस बात के लिए पंजीकृत होना चाहिए कि वो किन-किन पौधों पर होने वाली बीमारियों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न रसायन एक ही फसल या बीमारी के लिए पंजीकृत किए जा सकते हैं। विभिन्न फफूंदनाशक या कवक नाशी प्रभावशीलता, लागत प्रयोग और रोग सुरक्षा प्रदान करने में एक समान हैं। इनके प्रयोग के समय का चयन निर्धारण करना अतिआवश्यक है। समय से पहले प्रयोग किए जाने वाले रसायन प्रभावी होने से पहले बर्बाद हो जाते हैं और यदि समय के बाद इनका प्रयोग किया जाए तो ये अप्रभावी रहते हैं। ठीक समय पर फफूंद नाशक का प्रयोग काफी लाभदायक होता है। छिड़काव की जाने वाली बूंदें छिड़काव की प्रभावशीलता निर्धारित करती है। जितनी महीन बूंदें छिड़काव में प्रयोग की जाती हैं, छिड़काव उतना ही प्रभावशील होता है किंतु बहुत छोटी बूंदें हवा से विस्थापित हो जाती हैं और छिड़काव को अप्रभावशील बनाती है।

मौसम आधारित चेतावनी प्रणाली का प्रयोग

उपयुक्त वैध चेतावनी प्रणाली आई डी एम पैकेज में अहम भूमिका अदा करती है। उपयुक्त मौसम के आधार पर आई डी एम के काकटेल संश्लेषित और प्रशासित किए जा सकते हैं। एक पूर्व चेतावनी प्रणाली न केवल किसानों के लिए रोग प्रबंधन की लागत को कम कर देती है, बल्कि यह कृषि के मुनाफे को भी बढ़ा देती है। इसके अलावा पर्यावरण पर प्रभाव डालने वाले अनावश्यक परिनियोजन को कम करके कृषि की भी लाभप्रदता को बढ़ाया जा सकता है।

एकीकृत रोग प्रबंधन माड्यूल का विन्यास

उत्पादन प्रणालियों का पूरी तरह से अध्ययन करने के बाद, आई डी एम माड्यूल की सरंचना की जाती है। आई डी एम करते समय, किसान की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती है। वर्षा आधारित उत्पादन प्रणालियों में अरंडी, चारा, ज्वार, बाजरा, मक्का, मूंगफली, सूरजमुखी, अरहर, चना, मूंग और कपास प्रमुख फसलें हैं। रोग परिदृश्य उसकी समग्रता में उत्पन्न प्रणाली पर निर्भर करता है। अधिकांश फसल एक समय में एक या एक से अधिक रोगो से संक्रमित होते हैं। इसके अलावा, एक ही रोगजनक उत्पादन प्रणाली में अन्य फसलों को भी संक्रमित कर सकता है, जब उनकी पोषित श्रृंखला (होस्ट रेंज़) व्यापक होती है।

प्रबंधन विकल्प सिफारिश करने से पहले उचित ध्यान दिया जाता है जिससे कि उपायों द्वारा उत्पादन प्रणाली पर होने वाले जैविक तनाव का असर कम से कम हो। यह आई डी एम माड्यूल के अनुकूलन के अलावा ओर कुछ भी नहीं है।

मूंगफली में आई डी एम मामले का एक अध्ययन

रोग प्रतिरोधी किस्म

रोग	प्रतिरोधी किस्में
प्रारंभिक पत्ती के चकत्ते, विलंबित पत्ती चकत्ते रस्ट	एएलआर-1, एएलआर-2, एएलआर-3, गिरनार-1, आईसीजीवी-86590, आईसीजीएस (एफडीआरएस)-10, आईसीजीवी-86325, सीएसएमजी-84-1, ओजी-52-1, आरएसएचवाई-1, डीआरजी-12, डीआरजी-17, टीएजी-24, बीएसआर-1, वीआरआई-5, सीओ-4
कालर सड़ांध	जे-11, जेसीजी-88 और ओजी-52-1
तना सड़ांध	ओजी-52-1, डीएच-8, और आईसीजीवी-86590
मूंगफली कली गलन रोग (पीबीएनडी)	आईसीजीएस-11, आईसीजीएस-44, आईसीजीएस-37, कादीरी-3, आईसीजीवी-86325, के-134, डीआरजी-12, आर-8808, जेसीजी-88, सीएसएमजी-884, चंद्रा

पारंपरिक तरीके

प्रारंभिक पत्ती के चकत्ते, विलंबित पत्ती के चकत्ते और रस्ट के प्रबंधन के लिए फसल के अवशेषों को जलाना, फसल के मलबे का विनाश, फालतू मूंगफली पौधों को हटाना, पंक्ति रिक्ति में व्यापक अंतर; (40-45 सेंटीमीटर) के साथ जल्दी रोपण का उपयोग करते हैं। कालर सड़ांध से बचने के लिए, गहरी बुवाई (2 इंच से अधिक नहीं) करनी चाहिए और बीजपत्र की क्षति और इंटरकल्चरल आपरेशनों के दौरान बीजपत्रों पर मिट्टी के कणों को जमा नहीं होने देना चाहिए। साफ सुथरी खेती के साथ-साथ पत्ती के चकत्ते (लीफ स्पाट) के कारण होने वाले पतझड़ को कम करना, सतह के कार्बनिक पदार्थ और फसल के मलबे को 8.10 इंच की गहराई तक जुताई करके दफन करना, जल्दी बुवाई और तना सड़ांध रोग ज़नक प्रबंधन करने के लिए पास-पास रोपण करना चाहिए।

मिट्टी जनित रोग जनकों के प्रबंधन के लिए गहरी जुताई

- मिट्टी जनित रोगजनकों के खिलाफ अरंडी केक या सरसों केक या नीम की खली को मिट्टी में मिलाना 500 से 1000 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से तना सड़ांध को रोकने के लिए कपास, गेहूं, मक्का, प्याज, लहसुन का फसलचक्रण।
- जल्दी बुवाई (जून के पहले पखवाड़े) प्रायद्वीप और मध्य भारत में, देर से बुवाई (जुलाई के पहले पखवाड़े) उत्तरी भारत के लिए, और पीबीएनडी के प्रबंधन के लिए घनिष्ट अंतराल (20x10 सेंटीमीटर) या (30x7 सेंटीमीटर)।
- बाजरा, ज्वार, अरहर और मक्का में प्रारंभिक पत्ती के चकत्तो के प्रबंधन के लिए अंत:फसलीकरण।
- कालर सड़ांध के प्रबंधन हेतु वैकल्पिक पंक्तियों में फलीदार फसलों के साथ मिश्रित फसल।

कीटनाशक और जैव नियंत्रण घटक

- पत्ती धब्बे और रस्ट के प्रबंधन के लिए नीम के पतों के रस (2.5 प्रतिशत) का छिड़काव करें।
- पत्ती रोग जनक के खिलाफ, नीम के बीज की गिरी का रस (5 प्रतिशत) या कच्चे नीम का तेल (2 प्रतिशत) का छिड़काव करें।
- पीएनबीडी के प्रबंधन के लिए, अंकुरण के बाद और 40 दिनों के भीतर 1 प्रतिशत ऑक के पत्ते के पानी का रस निकाल कर दो बार छिड़काव करें।
- बीज और मिट्टी जनित रोग जनक बीज के लिए 4 ग्राम/किलोग्राम ट्राइकोडेरमा विरीडे या टी हरजीयानम का उपयोग करें।
- बीज और मिट्टी जनित रोगों के खिलाफ ट्राईकोडरमा विरीडे या टी हरजीयानम का मिट्टी में प्रयोग 25 से 62.5 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से अरंडी केक या गोबर की खाद के साथ संयोजन के रूप में प्रयोग करें।

रासायनिक तरीकों का जरूरत के आधार पर प्रयोग

रोग	सप्रे अनुसूची
प्रारंभिक पत्ती के चकत्ते, विलंबित पत्ती चकत्ते, रस्ट	अंकुरण के बाद 35 और 70 दिनों के भीतर मैनकोजेब के दो स्प्रे 0.2 के दो स्प्रे 0.2 प्रतिशत और अंकुरण के बाद 60 दिनों में कार्बेंडाजिम 0.025 प्रतिशत का एक स्प्रे या कार्बेंडाजिम 0.025 प्रतिशत + ट्रइटमोर्फ 0.04 प्रतिशत के आवेदन के पांचवें अंतराल पर गर्मी के मौसम के दौरान बुवाई के 35 दिनों के बाद पांच बार या कार्बेंडाजिम 0.05 प्रतिशत + मैनकोजेब 0.2 प्रतिशत 2-3 सप्ताह के अंतराल पर, 2 या 3 बार 4-5 सप्ताह के बाद रोपण के बाद छिड़काव या क्लोरोथोनिलिन का पर्णसमूह पर छिड़काव (0.1 प्रतिशत)
कालर सड़ांध	कार्बेंडाजिम @ 2 ग्रा/किग्रा बीज या मैनकोजेब 2.3 ग्रा/किग्रा बीज के साथ बीज उपचार या क्लोरोथोनिल या कन्फेफॉल @2 ग्राम प्रति किलो बीज
तना सड़ांध	कार्बेंडाज़िम 2 ग्रा/किग्रा बीजों के साथ बीज उपचार या मैनकोज़ेब 3 ग्रा/किग्रा बीज और 0.02 प्रतिशत कारबेंडाजिम के साथ मृदा भरे, यदि आवश्यक हो
मूंगफली कली गलन	डायमिथोएट या क्विनल्फास का पर्णसमूह पर 0.02 प्रतिशत की दर से छिड़काव

सारांश

एकीकृत रोग प्रबंधन उपरोक्त दर्शाई गई उत्पादन प्रणाली के लिए एक गतिशील मॉड्यूल प्रणाली है। इसे बदलती उत्पादन प्रणालियों के अनुरूप समय-समय पर अद्यतन और परिष्कृत किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण के माध्यम से वर्षा आधारित उत्पादन प्रणालियों में फसल के नुकसान को कम करने तथा (विशेष रूप से छोटे और सीमांत किसानों को जो मुख्य रूप से संसाधन के अभाव में गरीब हैं) कृषि की लाभ प्रदता बढ़ने की अच्छी संभावना है। विस्तार पादप

रोग विशेषज्ञ की भूमिका न केवल किसानों के लिए जागरूकता कार्यक्रमों की योजना बनाने हेतु महत्वपूर्ण है अपितु यह कंप्यूटर वैज्ञानिकों के साथ मिलकर काम करके अनुकूलन की आसानी के लिए भी आईसीटी मॉड्यूल विकसित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

बेकर के एफ एंड कूक आर जे. 1974. बायोलॉजिकल कंट्रोल आफ प्लांट पेथोजेन्स. फ्रीमेन डब्ल्यु एच एंड को सेन फ्रेनसिसको, यूएसए

सियानसिओ ए एंड मुखर्जी के जी. 2007. जनरल कानसेप्टस इन इनटिग्रेटेड पेस्ट एंड डिसीसेस मैनेजमेंट. द निदरलैंडस : स्प्रिंजर 359 पी.

हेविट एच जी. 1998. फंगीसाइडस इन क्राप प्रोटेक्शन. सीएबी इंटरनेशनल, वेल्लिंगफोर्ड, यू के

रेड्डी डी वी आर. 1998. कंट्रोल मेजर्स फार द इकोनोमिकल्ली इंपारटेंट पीनट वाइरससे इन : हदीदी ए, खेतरपाल आर के, कोगानेज़ावा एच (इडीएस). प्लांट वाइरस डिसीसेस कंट्रोल, पीपी. 541-546. एपीएस प्रेस, सेंट पाल, एमएन, यूएसए.

सुलेमान आर एंड हाल ए. 2002. बियांड टेक्नालाजी डेसिमिनेशन : रीइनवेटिंग एग्रीकल्चर एक्सटेंशन. ऑटलुक आन एग्रीकल्चर 31 : 225-223.

थिंड टी एस. 2005. डिसीसेस आफ फील्ड क्राप्स. : दया पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली

★★★

16

वास्तविक समय कृषि सूखा प्रबंधन की आकस्मिक योजनाओं का कार्यान्वयन

- जी रविंद्रा चारी, सीएच श्रीनिवास राव, के ए गोपीनाथ, एस भास्कर, एम पी जैन, बोड़नी नरसिम्लू एवं देवेंद्र पाटिल

परिचय

भारत में अधिकतर कृषि मानसून पर आधारित है। प्रत्येक वर्ष में देश के किसी एक या दूसरे भाग में मानसून असामान्य रहता है। इतना ही नही देश के कुछ भागों में तो कभी-कभी मानसून विफल भी रहता है। देश के अधिकांश राज्यों को तीन से चार वर्षों में एक बार सूखे का सामना करना ही पड़ता है। भारत में दक्षिणी-पश्चिमी मानसून से 75 प्रतिशत तक वर्षा प्राप्त होती है। यही वर्षा देश में खाद्यान उत्पादन व अर्थ व्यवस्था को प्रभावित करती है। जलवायु परिवर्तनों का किसानों की आय व कृषि उत्पादों के मूल्यों पर प्रभाव देश के विभिन्न हिस्सों में देखा जा रहा है। वर्षा आधारित खेती में वर्षा एक प्रमुख घटक है जो कि फसल उत्पादकता को प्रभावित करती है। फसल बढ़वार के समय, बार-बार मध्यवर्ती व लंबे समय का सूखाकाल वर्षा आधारित खेती में उपज की कमी का मुख्य कारण है। खेती के लिए जल उपलब्धता व बुवाई का समय वर्षा ही निश्चित करती है। वर्षा व तापमान में विभिन्नता रहने से सर्वाधिक वर्षा अधारित फसलें ही प्रभावित होती हैं। अत: यह कहने में कतई संकोच नहीं करना चाहिए कि वर्षा आधारित कृषि में कृषकों के लिए बहुत ही सीमित विकल्प बचते हैं।

जलवायु परिवर्तन पर अनुसंधान कार्यों हेतु देश में राष्ट्रीय स्तर पर अनेक पहल शुरू की गई हैं। इनमें सर्वप्रथम भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) की जलवायु परिवर्तन नेटवर्क परियोजना (नेटवर्क प्रोजेक्ट आन क्लाईमेट चेंज), संक्षिप्त में एनपीसीसी 2004 का नाम आता है। नेशनल एक्शन प्लान आन क्लाइमेट चेंज, 2010 के अंतर्गत 8 मिशन आते हैं। ये आठों मिशन विभिन्न रणनीतियों के माध्यम से जलवायु संबंधी बहुआयामी लंबी अवधि व समन्वित कृषि द्वारा लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपरोक्त आठ मिशनों में से नेशनल मिशन फार सस्टेनेबल एग्रीकल्चर (एनएमएसए) भी एक प्रमुख मिशन है। इसका उद्देश्य भारतीय कृषि को जलवायु परिवर्तन की दशा में भी अनुकूल बनाए रखने की रणनीति तैयार करना है। ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने राष्ट्रीय जलवायु समुत्थान कृषि पहल (नेशनल इनिशियेटिव आन क्लाइमेट रिजिलियंट एग्रीकल्चर - निक्रा) हेतु

2011 में एक नेटवर्क परियोजना आरंभ की। इस परियोजना में सामरिक अनुसंधान करने तथा स्थान विशेष के अनुसार कृषकों के खेतों पर जोखिम भरे जलवायु में भी जलवायु अनुकूलन कृषि तकनीकों को कृषको की भागीदारी से देश के 130 संवेदनशील जिलों में लागू किया गया था।

आकस्मिक योजना के वास्तविक समय की संकल्पना

1972-73 में बडे पैमाने पर देश में वर्षा की कमी महसूस की गई। इस दौरान विशेष रूप से महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश राज्यों के वर्षा की कमी वाले क्षेत्रों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा विभिन्न स्थानों पर घुमंतु परिसंवाद कार्यक्रम आयोजित किए गए। इन परिसंवादो के अंत में आकस्मिक फसल योजना और मध्य मौसम सह सुधार जैसे नए वाक्यांशों का प्रादुर्भाव हुआ तथा इन दोनों पहलुओं पर आंकडे एकत्र किए गए। वर्षा आधारित कृषि अनुसंधान केंद्रों द्वारा पिछले सौ वर्षों के मौसम आंकडों को विभिन्न स्तरों पर विश्लेषण करनोपरांत मौसमी विचलनों को निम्नानुसार सूचीबद्ध किया गया है:-

- मानसून की देरी से शुरूआत।
- मानसून की जल्दी वापसी।
- विभिन्न अवधियों में बार-बार मध्यवर्ती सूखा पड़ना।
- लंबी अवधि के सूखों के समय की रणनीति में परिवर्तन करना और लंबे समय तक मानसून रहने की रणनीति बनाना।

प्रत्येक क्षेत्र के लिए आकस्मिक योजनाओं को अखिल भारतीय समन्वित बारानी कृषि अनुसंधान परियोजना (एक्रीपडा) द्वारा विकसित किया गया। इस दौरान स्थान विशेषानुसार फसलोत्पादन हेतु आकस्मिक कार्यों की रणनीतियां तैयार की गई। इनका प्रथम प्रकाशन इंडियन फार्मिंग नामक पत्रिका में 1977 में हुआ।

वर्षा आधारित क्षेत्रों में विभिन्न परिस्थितियों हेतु फसल व किस्मों में परिवर्तन के आधार पर अखिल भारतीय समन्वित बारानी कृषि अनुसंधान परियोजना (एक्रीपडा) द्वारा सन् 1983 में 'कंटीजेंट क्राप प्रोडक्शन स्ट्रेटेजी इन रेनफेड एरीया अंडर डिफरेंट वेदर कंडीशन' में प्रकाशित किया गया। एक्रीपडा नेटवर्क परियोजना के रूप में देश के बारानी कृषि अनुसंधान केंद्रों ने उनके क्षेत्र के तहत फसलों हेतु आकस्मिक योजनाओं को विकसित किया। इसके अतिरिक्त 2009-10 में एक्रीपडा केंद्रों द्वारा मौसम विचलन ऋतु में खरीफ व रबी फसलों हेतु उचित प्रबंधन रणनीतियां तैयार की गई। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (क्रीडा), राज्य कृषि विश्वविद्यालय (एसएयू), कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके), एक्रीपडा केंद्रों, कृषि विभाग, कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) और राज्यों के अन्य सहयोगी विभागों के सहयोग से विभिन्न जिलों के लिए 623 जिला कृषि आकस्मिक योजनाएं बनाई गईं। ये योजनाएं मुख्यतः कृषि क्षेत्रों व इससे संबंधित अन्य क्षेत्रों में मौसम विचलन की स्थितियां, जिनमें मानसून का देरी से आना, फसल ऋतु मध्य/अंत में सूखा पड़ने की रणनीतियों से संबंधित हैं।

21वीं सदी की शुरूआत से ही भारत में सूखे की स्थितियां पनपती नजर आ रही हैं तथा वर्ष 2009 के सूखे से खरीफ फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ा। मध्य भारत में पिछले 50 वर्षो में भारी वर्षा की घटनाओं की आवृत्ति में वृद्धि हुई जो कि भारत की जलवायु में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन की ओर इशारा करते हैं। प्राप्त आंकडों से पता चलता है कि भारी वर्षा (>10 सेंमी) और बहुत भारी वर्षा (>15 सेंमी) की घटनाओं में वृद्धि हुई। हलकी व मध्यम वर्षा की घटनाओं में कमी हुई है। देश के एक या दूसरे हिस्से में वर्षा के बारंबार मौसमी विचलन अकसर कृषि उत्पादन पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। कृषि एवं संबंधित क्षेत्रों में हानि को न्यूनतम स्तर पर लाने और उत्पादन प्रणाली को दक्ष बनाने में अधिक उत्पादन व आय बढ़ाने के दृष्टिकोण से यह महसूस किया गया कि वास्तविक समय के आधार पर आकस्मिक उपायों को लागू किया जाए। इस प्रकार वास्तविक समय आकस्मिक योजना में किसी भी प्रकार के आकस्मिक उपाय तैयार किए जो कि तकनीकों से संबंधित (भूमि, मिट्टी, पानी, फसल) या संख्यागत एवं नीति आधारित होते हैं।

वास्तविक समय की आकस्मिक योजना: विधि एवं संस्थाएं

वर्ष 2011 में निक्रा परियोजना के 23 तकनीकी आधारित प्रदर्शन के तहत, अखिल भारतीय समन्वित बारानी कृषि अनुसंधान परियोजना के 23 केंद्रों पर कृषि तकनीकी आधारित प्रदर्शन प्रारंभ किए गए जिनमें भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी भी सम्मिलित था। अनेक कृषि संस्थानों सहित 23 एक्रीपडा-निक्रा केंद्रों की कृषि पारिस्थितिकी स्थितियां सारणी-1 में दी गई है। इस कार्यक्रम में जलवायु अनुकूलन कृषि तकनीकों का केवल प्रदर्शन करना ही शामिल नही है अपितु संस्थागत तरीकों को गांवो के स्तर तक क्रियान्वित भी करना है। इस प्रकार के प्रदर्शनों को विभिन्न केंद्रों और किसानों के खेतों पर शुरू किया गया जिससे कि कृषि रणनीतियों को स्थाई रूप से स्वीकार करते हुए अपनाया जा सके।

सारणी-1 : एक्रीपडा नेटवर्क केंद्रों की पारिस्थितिकी स्थिति

केंद्र का नाम	राज्य कृषि विश्वविद्यालय/ ईसीएआर/अन्य संस्थान	कृषि जलवायु क्षेत्र निक्रा/ कृषि परिस्थितिकी उपक्षेत्र	जलवायु	औसत वार्षिक वर्षा (मिमी.)	प्रमुख मृदा प्रकार	वर्षा आधारित उत्पादन प्रणाली
आगरा	आरबीएस, आगरा	उत्तर प्रदेश में दक्षिणी पश्चिमी अर्धशुष्क क्षेत्र (4.1)	अर्धशुष्क	665	जलोढ मृदा	बाजरा
अकोला	पीडीकेवी, अकोला	महाराष्ट्र में पश्चिमी विदर्भ क्षेत्र (6.3)	अर्धशुष्क	824	काली मृदा	कपास
अनंतपुर	एएनजीआरएयू, गुंटूर	आंध्र प्रदेश में दुर्लभ वर्षा क्षेत्र (रायलसीमा) (3.0)	अर्धशुष्क (गर्म)	445	लाल मृदा	मूंगफली
अरजीया	एमपीयूएटी, उदयपुर	राजस्थान में दक्षिणी क्षेत्र (4.2)	अर्धशुष्क	656	काली मृदा	मक्का

केंद्र का नाम	राज्य कृषि विश्वविद्यालय/ ईसीएआर/अन्य संस्थान	कृषि जलवायु क्षेत्र निक्रा/ कृषि परिस्थितिकी उपक्षेत्र	जलवायु	औसत वार्षिक वर्षा (मिमी.)	प्रमुख मृदा प्रकार	वर्षा आधारित उत्पादन प्रणाली
बलोवल सोनखरी	पीएयू, लुधियाना	पंजाब में कंडी क्षेत्र (9.1)	उप-आर्द (गर्म-सूखा)	1011	जलोढ मृदा	मक्का
बेंगलुरू	युएएस, बेंगलुरू	कर्नाटक में मध्य, पूर्वी और दक्षिणी शुष्क क्षेत्र (8.2)	अर्धशुष्क (गर्म-नम)	926	लाल मृदा	रागी
विजयापुरा (बीजापुर)	युएएस, धारवाड़	कर्नाटक में उत्तरी शुष्क क्षेत्र (6.1)	अर्धशुष्क (गर्म-सूखा)	595	काली मृदा	रबी ज्वार
विश्वनाथ चारेली	एएयू, जोरहाट	असम में उत्तर बैक क्षेत्र (15.2)	आर्द्र (गर्म)	1990	लाल मृदा	धान
चियांकी	बीएयू, रांची	झारखंड में पश्चिमी पठार क्षेत्र (11.0)	उप-आर्द्र (गर्म-नम)	1179	जलोढ मृदा	धान
फैजाबाद	एनडीयुएटी, फैजाबाद	उत्तरी प्रदेश में पूर्वी क्षेत्र (9.2)	उप-आर्द्र (गर्म-सूखा)	1051	जलोढ मृदा	धान
हिसार	सीसीएसएचएयू, हिसार	हरियाणा में दक्षिणी-पश्चिमी शुष्क क्षेत्र (2.3)	शुष्क	412	जलोढ मृदा	बाजरा
इंदौर	आरवीएसकेवीवी, ग्वालियर	मध्यप्रदेश का मालवा पठार (5.2)	अर्धशुष्क (गर्म-नम)	958	काली मृदा	सोयाबीन
जगदलपुर	आईजीएवी, रायपुर	छत्तीसगढ का बस्तर पठार क्षेत्र (12.1)	उप-आर्द्र (गर्म-नम)	1297	जलोढ मृदा	धान
कोवलपट्टी	टीएनएयू, कोयंबतूर	तमिलनाडु का दक्षिणी क्षेत्र (8.1)	अर्धशुष्क (गर्म-सूखा)	723	काली मृदा	कपास
परभनी	वीएनएमकेवी, परभनी	महाराष्ट्र का मध्य पठार क्षेत्र (6.2)	अर्धशुष्क (गर्म-नम)	901	काली मृदा	कपास
फूलबनी	ओयूएटी, भुवनेश्वर	ओडिशा का पूर्वी क्षेत्र (12.1)	उप-आर्द्र (गर्म-नम)	1580	पहाड़ी मृदा	धान
राजकोट	जेएवी, जूनागढ़	गुजरात का उत्तर सौराष्ट्र क्षेत्र (5.1)	अर्धशुष्क (गर्म-सूखा)	590	काली मृदा	मूंगफली
रख ध्यानसर	एसकेयूएएस, जम्मू	जम्मू-कश्मीर में कम ऊंचाई वाले उष्ण कंटिबंधीय	अर्धशुष्क (गर्म-नम)	860	जलोढ मृदा	मक्का
रीवा	जेएनकेवीवीए, जबलपुर	मध्य प्रदेश का कैमूर पठार और सतपुड़ा पर्वतीय क्षेत्र (10.3)	उप-आर्द्र (गर्म-सूखा)	1088	काली मृदा	सोयाबीन

केंद्र का नाम	राज्य कृषि विश्वविद्यालय/ ईसीएआर/अन्य संस्थान	कृषि जलवायु क्षेत्र निक्रा/ कृषि परिस्थितिकी उपक्षेत्र	जलवायु	औसत वार्षिक वर्षा (मिमी.)	प्रमुख मृदा प्रकार	वर्षा आधारित उत्पादन प्रणाली
एसके नगर	एसडीएवी, दंतेवाड़ा	उत्तरी गुजरात क्षेत्र (2.3)	अर्धशुष्क (गर्म-सूखा)	670	नवीन जलोढ मृदा	बाजरा
सोलापुर	एमपीकेवी, राहोरी	महाराष्ट्र का अर्धशुष्क क्षेत्र (6.1)	अर्धशुष्क (शुष्क-नम)	732	काली मृदा	रबी ज्वार
वाराणसी	बीएचयू, वाराणसी	उत्तर प्रदेश का पूर्वी और विंध्य क्षेत्र (9.2)	उप-आर्द्र (गर्म-सूखा)	1049	जलोढ मृदा	धान
झांसी	आईजीएफआरआई, झांसी	उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र (4.4)	अर्धशुष्क (गर्म-नम)	870	जलोढ मृदा	खरीफ ज्वार

ये कार्यक्रम 15 राज्यों के 26 जिलों के 32 गांवों में किसानों के खेतों पर क्रियान्वित किए जा रहे हैं। फसल बढवार ऋतु में समयानुसार मौसम पद्धति आधारित (उच्च स्तरीय घटनाओं को मिलाकर) रणनीतियों का क्रियान्वयन किया जा रहा है। एक्रीपडा-निक्रा कार्यक्रम में अनुकूल उपायों एवं तकनीकियों को क्षेत्रों में चिह्नित/प्रदर्शित करने पर बल दिया जा रहा है।

- वास्तविक समय आकस्मिक फसल योजना कार्यक्रम (आरटीसीपी);
- वर्षा जल एकत्रीकरण (मूलस्थान व बाहरी स्थान) एवं इसका दक्षपूर्ण उपयोग;
- ऊर्जा का दक्षतापूर्ण उपयोग एवं प्रबंधन, भूमि का वैकल्पिक उपयोग/समन्वित खेती प्रणाली तथा वर्षा आधारित खेती वाले किसानों को ग्राह्य करने की क्षमता, नवाचार संस्थागत तरीकों से सहायता प्रदान करना : जैसे ग्राम जलवायु जोखिम प्रबंधन समितियां;
- कस्टम हायरिंग सेंटर, बीज बैंक, चारा बैंक, पोषण तत्व बैंक आदि की स्थापना।

वास्तविक समय आकस्मिक योजना दो दीर्घकालीन दृष्टिकोणों पर केंद्रित होती है तथा प्रारंभिक तैयारी एवं वास्तविक समय आकस्मिक तरीकों (आरटीसीपी) का मूल उद्देश्य है:-

- मानसून की देरी होने पर फसल की इष्टतम पौध संख्या स्थापित करना।
- ऋतु में सूखे के दौरान, फसल जल्दी मध्य व अंत सूखा स्थितियों एवं विपरीत मौसमी विचलन में उपयुक्त फसल उगाना।

वास्तविक समय आकस्मिक योजना क्रियान्वयन की तैयारियां

वर्षा आधारित क्षेत्रों में कृषि परिस्थितिकीय एवं सामाजिक आर्थिक विन्यास जैसे कि : जलवायु, मृदा प्रकार, उत्पादन प्रणाली के गुण समाहित होते हैं। यहां के किसान कम संसाधित एवं कम अंगीकृत दक्षता वाले होते है। वर्षा आधारित कृषि को मौसम विचलन, अत्याधिक

असुरक्षित जोखिम भरी एवं सामान्यतः अलाभकारी बनाते है और इस प्रकार लघु कृषकों की जीविका को प्रभावित करते हैं। मौसम विचलन की परिस्थिति में सूखा पड़ने से पहले तथा सूखे के दौरान प्रशासकीय एवं तकनीकी तरीकों को श्रृखंलागत लागू करने की आवश्यकता होती है।

सूखे से निबटने हेतु तैयारी

सूखा जोखिम प्रबंधन चार चरणों को मिलाकर किया जा सकता है : तैयारियां, मौसम विचलन के वास्तविक समय की प्रतिक्रिया, राहत एवं बहाली। देरी से मानसून आगमन, मध्य ऋतु सूखा और ऋतु के अंतिम चरण में सूखा या किसी भी प्रकार का सूखा एवं परम घटनाएं आदि परिस्थितियों में आकस्मिक योजनाओं के क्रियान्वयन करने की आवश्यकता पडती है (चित्र-1)।

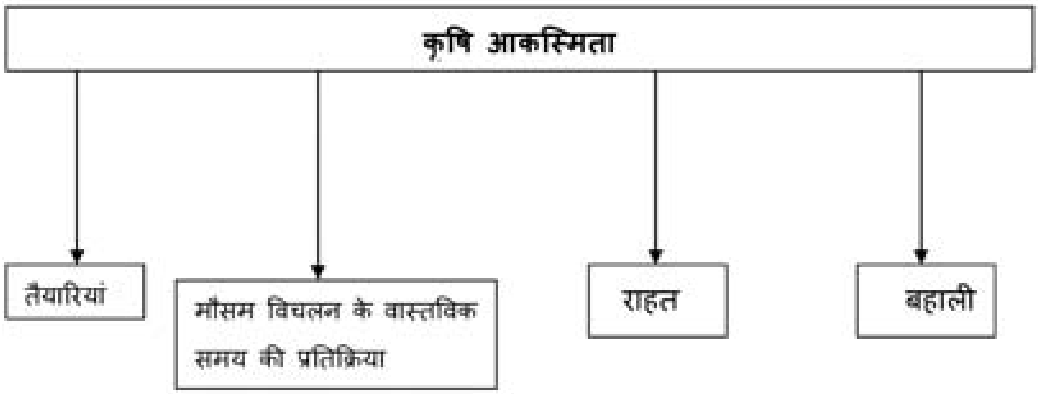

चित्र-1 : वास्तविक समय की आकस्मिक योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान सूखे से निबटने हेतु विभिन्न चरण

इनके लिए ग्राम स्तरीय संस्थाएं निवेश, जैसे कि उर्वरक, बीज, कृषि यंत्र उपलब्ध कराने इत्यादि, में बड़ी भूमिका निभाती है। लगातार सूखाग्रस्त क्षेत्रों में आकस्मिक योजना को क्रियान्वित करने के लिए प्रारंभ में ही तैयारियां करना आवश्यक है। आकस्मिक कृषि योजना में सहनशील फसलें/प्रणाली, किस्में, मृदा एवं पोषण तत्व प्रबंधन का समन्वय होता है। इन मध्यवर्तीय क्रियाओं को सुविधाजनक बनाने के लिए उपयुक्त प्रक्षेत्र यंत्र, आदान एवं आवश्यकतानुसार चारा प्रणाली आवश्यक है। प्रारंभिक तैयारियों हेतु की जाने वाली आवश्यक कृषि क्रियाएं भी वास्तविक समय की आकस्मिक योजनाओं (आरटीसीपी) के क्रियान्वयन का अभिन्न भाग है (चित्र 2)।

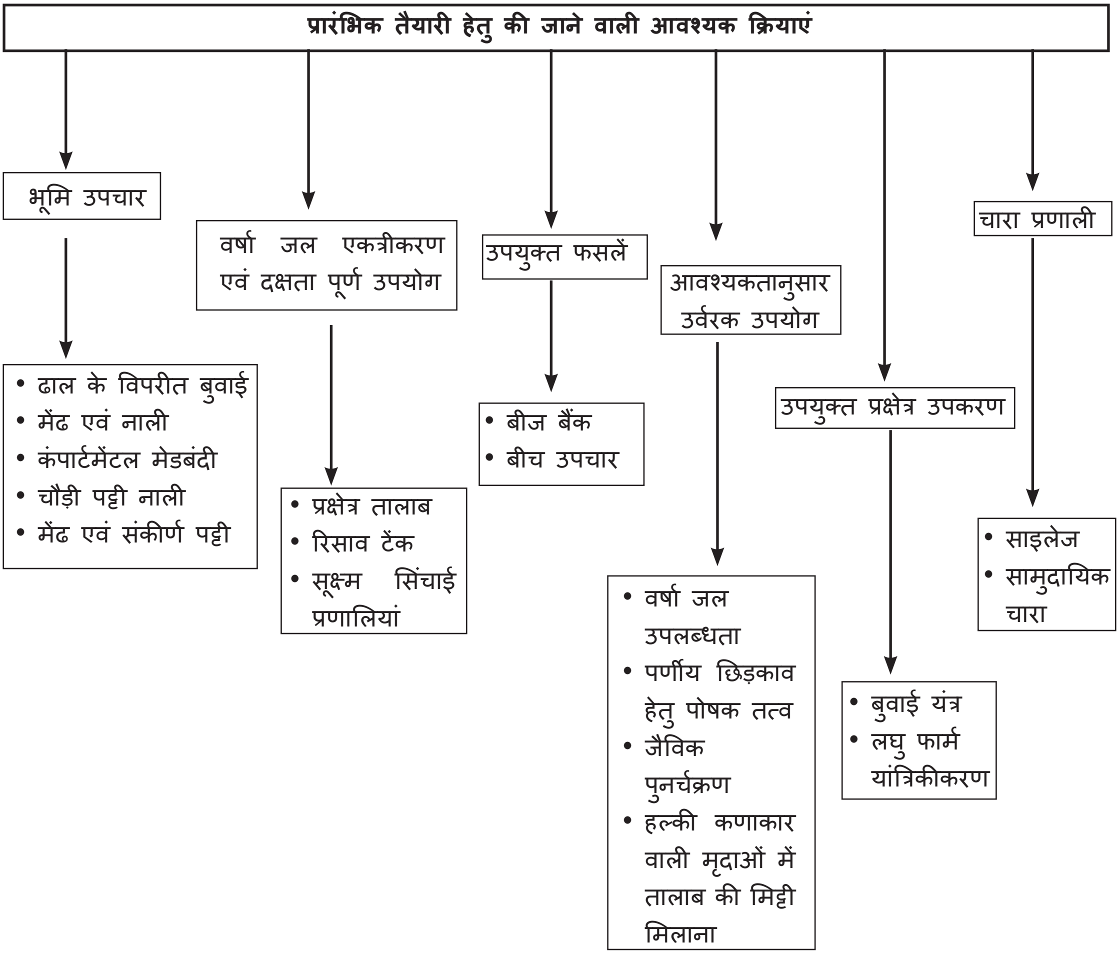

चित्र-2 : प्रारंभिक तैयारी हेतु की जाने वाली आवश्यक कृषि क्रियाएं

तैयारियों का मध्यवर्त

मौसम विचलन का सामना करने हेतु फसल के प्रारंभ एवं फसल अवधि के दौरान जोखिम कम करने की तकनीकियां/क्रियाएं जैसी पूरक मेंढबंदी, चौडी पट्टी एवं नाली अंतरासस्यन प्रणाली, वर्षा जल एकत्रीकरण, पूरक सिंचाई के लिए प्रक्षेत्र तालाब इत्यादि की प्रदर्शनी द्वारा किसानों को प्रशिक्षित किया जाता है। ग्राम स्तर की संस्थाओं, जैसे-ग्राम मौसम जोखिम प्रबंधन समिति (वीसीआरएमएस), कस्टम हायरिंग संटर (सीएचसी) बीज बैंक, चारा बैंक आदि की स्थापना की गई।

फसल प्रबंधन हस्तक्षेप

गुजरात के बांसकांठा जिले में पूरक मेंढबंदी के साथ मूल स्थान नमी संरक्षण से बाजरा फसल में सार्थक अधिकतम दाना उपज (1348 किलोग्राम/हेक्टेयर) एवं चारा उपज (3640

किलोग्राम/हेक्टेयर) के साथ शुद्ध लाभ 18,222 रू./हेक्टेयर प्राप्त हुआ। लाभ लागत अनुपात 1.87 एवं वर्षा जल उपयोग दक्षता 1.39 किलोग्राम/हेक्टेयर/मिलीमीटर प्राप्त हुआ। जबकि पूरक मेंढबंदी विहीन के साथ दाना उपज 870 किलोग्राम/हेक्टेयर रही। इसी प्रकार मध्य सूख स्थिति में मध्य प्रदेश के इंदौर जिले में मध्य सूखा की अवधि में चौडी पट्टी नाली विधि अपनाने पर सोयाबीन की उपज 600 किलोग्राम/हेक्टेयर व शुद्ध आय 3200 रू./हेक्टेयर प्राप्त हुई जबकि समतल बुवाई विधि से उपज 560 किलोग्राम/हेक्टेयर ही प्राप्त हुई। लखीमपुर जिला (असम) तिल+मुंग (2:2) अंतरवर्तीय फसल प्रणाली जिसमें की आगामी सूखा स्थिति में अधिक धान समतुल्य उपज 7902 किलोग्राम/हेक्टेयर शुद्ध लाभ 67610 रू./हेक्टेयर तथा लाभ व लागत अनुपात 6.9 प्राप्त हुए जबकि धान फसल से 1200 किलोग्राम/हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई। इसी प्रकार राजस्थान के भीलवाडा जिले में मक्का+उडद (2:2) अंतरवर्तीय फसल पद्धति में मध्यम सूखे की स्थिति में भी अधिकतम मक्का समतुल्य उपज 1145 किलोग्राम/हेक्टेयर शुद्ध लाभ 578 रू./हेक्टेयर एवं लाभ व लागत अनुपात 4.35 प्राप्त हुए। इसकी तुलना में मक्का+उडद की मिश्रित फसल से 725 किलोग्राम/हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई।

गुजरात के जामनगर जिले में आगामी सूखे की स्थिति में मूंगफली + अरंडी (3:1) अंतरवर्तीय फसल पद्धति से अधिक मूंगफली समतुल्य उपज (2022 किलोग्राम/हेक्टेयर) के साथ अधिक शुद्ध आय (62990 रू./हे), लाभ लागत अनुपात (2.33) एवं वर्षा जल उपयोग दक्षता (2.9 किलोग्राम/हेक्टेयर मिलीमीटर) दर्ज किए गए जबकि मूंगफली की शुद्ध उपज 1869 किलोग्राम/हेक्टेयर आंकी गई।

जिला अकोला (महाराष्ट्र) में दक्षपूर्ण वर्षा जल एकत्रीकरण के लिए प्रक्षेत्रों, तालाबों का पुनः उपयोग (बाएं), जिला बनासकांठा (गुजरात) में अंरडी का मेड़ नाली पद्धति से रोपण (मध्य) एवं जिला बेंगलुरू (कर्नाटक) में अरहर (बीआरजी-2 + मटर (1:1) बिजाई पद्धति (दाएं) का प्रदर्शन

ग्राम स्तर संस्थागत सहभागिता

अनुसंधान संगठन, किसान समुह, कृषि विस्तार अधिकारी, कृषि वितरण केंद्र, संबंधित विभाग, जिला अधिकारी आदि अधिकारियों को सम्मिलित रूप से प्रक्षेत्र स्तर पर वास्तविक समय पर आकस्मिक क्रियाओं को क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। सामूहिक कार्य, मौसम विचलन के नकारात्मक प्रभावों को कम करने में सहायक होते हैं, जो कि अंततः प्रक्षेत्र स्थान पर खाद्यान्न उत्पादन एवं राष्ट्रीय स्तर पर खाद्य सुरक्षा को निश्चित करते हैं। ग्राम स्तर संस्था

एक औपचारिक ढांचा होता है जो कि भारत में टिकाऊ कृषि एवं ग्रामीण विकास में सहायक होते हैं।

ग्राम स्तर संस्थाओं को बनाने का उद्देश्य परियोजनाओं में जनता का स्वामित्व, निर्णय लेने में उनकी जीवंत भूमिका, संसाधनों पर उनका नियंत्रण प्रदान करना, सहभागिता से परियोजना को चलाना एवं परियोजना समाप्ति पर भी उसको चलायमान रखने का दायित्व रहता है। भारतीय संविधान की मान्यता है कि एक ग्राम स्तर संस्था को एक साथ आने हेतु आम विकासात्मक उद्धेश्यों को पूरा करने के लिए कम से कम सात ग्रामीणों को एक समूह के रूप में तैयार किया जा सकता है। ग्राम जलवायु जोखिम प्रबंधन समिति, कस्टम हायरिंग संटर (सीएचसी), बीज बैंक, चारा बैंक, सलाह समिति एवं सामग्री समूह सम्मिलित आदि ग्राम संस्थाएं कार्यरत हैं। एनएटीपी, एनएआईपी, डीएफआईडी, निक्रा, ओआरपी परियोजना में केंद्र व किसानों के खेतों पर कई ग्राम स्तर संस्थाएं, क्रीडा, हैदराबाद द्वारा बनाई गई है। इसके साथ ही साथ वर्षा आधारित उत्पादन पद्धति में टिकाऊ उत्पादकता का सफलतापूर्वक प्रदर्शन भी किया गया है।

ग्राम जलवायु जोखिम प्रबंधन समिति (वीसीआरएमसी)

निक्रा अंगीकृत गांव में इस प्रकार की समितियां आवश्यकतानुसार जलवायु अनुकूल संबंधित क्रियाओं के अंतर्गत फसल भूमि व मृदा आधारित क्रियाओं के कस्टम हायरिंग संटर का दक्षपूर्ण कार्य इत्यादि भलीभांति पूर्ण करती हैं।

ग्राम जलवायु जोखिम प्रबंधन समिति की बैठक, ग्राम कावालागी, जिला विजयापुरा, कर्नाटक (बाएं) एवं यमुना, जिला लखीमपुर, असम (दाएं)

कस्टम हायरिंग संटर

यह केंद्र संसाधन विहीन किसानों को कम किराए पर औजार एवं मशीने उपलब्ध कराते हैं, जो कि किसान को समय पर भूमि की तैयारी, सही समय पर बुवाई तथा कम समय में अधिक क्षेत्र में बुवाई व ऊर्जा का दक्षतापूर्ण उपयोग कर अन्य कृषि कार्य करने में सहायक होते हैं। निक्रा अंगीकृत गांव में एक प्रबंधन समिति केंद्र के कार्य को सुविधापुर्वक करने व किराए से प्राप्त आय के माध्यम से कृषि मशीनरी एवं औजारों की देखभाल करती है। निश्चय ही अधिक मजदूरों की आवश्यकता के समय कस्टम हायरिंग संटरों का अधिक योगदान रहा है। कर्नाटक राज्य के बेंगलुरू जिला में परिवर्तित बैल चलित सीडड्रील द्वारा रागी की बुवाई से

अधिक दाना उपज (2500 किलोग्राम/हेक्टेयर), शुद्ध आय (33072 रू/हेक्टेयर) एवं लाभ लागत अनुपात (2.31) प्राप्त हुए जबकि इसकी तुलना में किसान पद्धति से अच्छी दाना उपज (2356 किलोग्राम/हेक्टेयर) प्राप्त हुई।

जिला सोलापुर,महाराष्ट्र में कस्टम हायरिंग सेंटर (बाएं), जिला बस्तर,छत्तीसगढ (मध्य) एवं जिला लखीमपुर, असम (दाएं) में किसानों द्वारा अलग-अलग कृषि उपकरणों का उपयोग

ग्राम बीज बैंक

कम अवधि वाली व सूखा सहनशील किस्म का बीज उत्पादन करने में मानसून के देरी से आगमन पर भी निक्रा गांव में कम अवधि की फसल, वैकल्पिक फसल की बुवाई की जा सकती है। इससे किसानों को बीजोत्पादन की तकनीक का ज्ञान गांव में ही प्रदान करने में सहायता मिलती है।

जिला लखीमपुर (असम) में धान की परंपरागत किस्में (बाएं) एवं धान का बीज उत्पादन भूखंड (दाएं)

चारा बैंक

वर्षा आधारित उत्पादन प्रणाली में पशुओं के लिए चारा उत्पादन एक मुख्य घटक है। मौसम विचलन के दौरान चारा की कमी को दूर करने के लिए सामुदायिक भूमि व कुछ किसानों की भूमि पर अंगीकृत निक्रा गांव में चारा उत्पादन किया गया। सूखे वर्ष में सूखे चारे की एक गंभीर समस्या होती है। ऐसे समय में यदि चारा उपलब्ध भी रहता है, तो भी गरीब किसान अधिक कीमत के कारण इसे खरीद नही पाता है। राजस्थान की चरागाह की संकल्पना जिससे गांव की

सामुदायिक भूमि घास व चारा को किसानों का समूह उत्पादन करता है। यह ग्राम स्तर संस्था का एक बहुत अच्छा उदाहरण है। इसमें स्थानीय स्तर पर चारे की मांग की पूर्ति व पशु प्रबंधन कर कृषकों को आय भी प्राप्त होती है। इस संकल्पना को मृदा एवं जल संरक्षण उत्पादों के साथ चारा प्रणाली का प्रदर्शन एक्रीपडा-निक्रा गांव में किया गया। इसी प्रकार का कार्य चिकमशनाली (बेंगलुरू) ग्रामीण जिला में स्टाइलोसेंथीस हमाटा बहुपर्णीय घास को स्त्रोत के रूप में प्रक्षेत्र में मेंढ पर स्थापित किया गया। ललितपुर जिले के निक्रा अंगीकृत गांव में हरे चारे का बैंक स्थापित किया गया जो कि केवल हरी घास ही उपलब्ध नही कराता बल्कि युवा किसानों की जीविका का भी साधन है। इसी प्रकार संकर नेपियर को भी लगाया गया जिससे हरी घास की उपलब्धता में भी वृद्धि हुई। स्टाइलोसिथस, नेपियर, बरसीम व ज्वार आधारित चारा प्रणाली को भी किसानों के खेतों पर स्थापित किया गया। बहुवर्षीय घास की 3 प्रजातियां संकर नेपियर (सीओ-28 सीओ-4), कोग्नोसिल और सिटेरिया का असम के लखीमपुर जिले में प्रदर्शन किया गया।

जिला लखीमपुर (असम) में जई की खेती (दाएं) एवं जिला ललितपुर (उत्तर प्रदेश) में संकर नेपियर की खेती का प्रदर्शन (बाएं)

कृषि परामर्श

समय पर कृषि कार्य करने के लिए मौसम एवं वास्तविक समय के आकस्मिक तरीकों की जानकारी की विशेष भूमिका रहती है। कृषि परामर्श में मौसम की जानकारी शिक्षण पटल पर लिखकर, संदेश, मोबाइल एवं आकाशवाणी के माध्यम से दी जाती हैं।

मृदा स्वास्थ्य पत्रक

निक्रा अंगीकृत गांव के किसानों को मृदा स्वास्थ्य पत्रक दिए गए। इनका उपयोग स्थान विशेष पोषण तत्व प्रबंधन, पोषक तत्वों के छिड़काव एवं मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने हेतु किया गया।

मौसम विचलन से जूझने हेतु आकस्मिक उपाय

मौसम विचलन के समय सामना करने के लिए आकस्मिक उपाय विलंबित मानसून के आगमन, जल्द, मध्य अवधि एवं अंतकालीन सूखे की स्थिति एवं अधिक तीव्रता वाली वर्षा की

घटना को कुछ आधार आकस्मिक उपायों से सामना किया जा सकता है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है:-

मानसून का विलंब से आगमन

वर्षा आधारित क्षेत्रों में सामान्यतः नियम है कि मानसून आगमन पर जल्दी बुवाई करना सर्वोत्तम प्रक्रिया है जिससे अधिक उपज प्राप्त होती है। देरी से मानसून आगमन पर वे फसलें अत्याधिक प्रभावित होती है जिनकी बुवाई अवधि बहुत कम होती है। इन फसलों को एक सुनिश्चित समय के बाद मानसून विलंब होने पर नही लिया जा सकता। जिन फसलों का बुवाई समय अधिक अवधि का होता है, उन फसलों के निश्चित समय के बाद में बिना किसी उपज हानि के देरी से भी बोया जा सकता है। इस परिस्थिति में कम अवधि वाली किस्मों का चयन करना एक अतिरिक्त विकल्प होता है। बुवाई की समय अवधि बीतने के पश्चात वैकल्पिक फसल व किस्म का चुनाव, मुख्यत: खेती परिस्थिति, मृदा वर्षा एवं फसल पद्धति व मानसून का आगमन कितनी देरी से स्थापित हुआ है, पर निर्भर करता है।

प्रारंभिक सूखा

प्रारंभिक सूखे की स्थिति में पौध मृत्यु अत्याधिक होती है जिससे पुनः बुवाई की आवश्यकता अथवा कम पौध संख्या व पौध बढ़वार होती है। देरी से बुवाई से जल उपलब्धता अवधि कम हो जाती है तथा मानसून की जल्द वापसी से फसल की प्रजनन अवस्था पर जल की अत्याधिक कमी उत्पन्न हो सकती है। अन्य सस्य क्रियाओं में सूखे के बाद वर्षा की स्थिति में 7-10 दिन में पुनः बुवाई करना, (यदि अंकुरण 30 प्रतिशत से कम हो) व बीज वाली फसलों में विरलीकरण, अंतरकृषि क्रियाओं में मृदा पपड़ी को तोड़ना, खरपतवार को हटाना तथा मृदा पलवार से नमी संरक्षण करना इत्यादि शामिल हैं। ये क्रियाएं उस समय तक आवश्यक हैं जब तक भूमि में उपयुक्त नमी न हो। इसके अतिरिक्त 10-15 मीटर के अंतराल पर जल संरक्षण नालियां बनाना, प्रणाली नमी संरक्षण एवं कतार से कतार की अधिक दूरी वाली (>30 सेंटीमीटर) वाली फसलों में वर्षा जल प्रबंधन हेतु ढाल के विपरीत दिशा में मेंढ नाली बनाना, यदि पौध संख्या 75 प्रतिशत से कम हो तो रिक्त स्थानों में पौध लगाने के साथ मटका पद्धति का उपयोग करना इत्यादि भी बहुत जरूरी है। जहां पर अधोभूमि अथवा सतही जल उपलब्ध हो वहां पर लंबे सूखे की अवधि में 2 प्रतिशत यूरिया घोल का छिड़काव करना लाभदायक सिद्ध होता है जिससे फसल में बलकृत परिपक्वता आती है।

मध्य सूखा स्थिति

बार-बार अंतर कर्षण क्रियाएं कर सतह पपड़ी को खत्म करना एवं मृदा नमी के संरक्षण के लिए मृदा पलवार करना, विरलीकरण, वर्षा जल जब तक प्राप्त न हो जाए तब तक रसायनिक उर्वरको का उपयोग नहीं करना, नमी संरक्षण हेतु खुली नालियां बनाना, सूखे में 2 प्रतिशत सोडियम नाइट्रेट या 2 प्रतिशत यूरिया घोल या 1 प्रतिशत पानी में घुलनशील उर्वरक जैसे 19-19-19, 20-20-20, 21-21-21 द्वारा पोषक तत्व की पूर्ति करना, एकांत्रित खुली नालियां बनाना, फसल अवशेष से समय पर पलवार व पूरक सिंचाई देना आदि क्रियाएं वास्तविक समय आकस्मिक योजनाओं के अंतर्गत आती है।

अंतकालीन सूखा

अंत अवधि का सूखा फसल दाना उपज के लिए बहुत क्रांतिक होता है क्योंकि इसका गहरा संबंध प्रजनन अवस्था के दौरान जल उपलब्धता से रहता है। इसके अतिरिक्त इन परिस्थितियों में वातावरण का तापमान भी अधिक रहता है जिससे फसल शीघ्र परिपक्वता में पहुंच जाती है। अंतकालीन सूखे की स्थिति में फसल प्रबंधन रणनीतियां जैसे अंतरवर्तीय कर्षण क्रियाएं, पौध संरक्षण एवं यदि उपलब्ध हो तो एकत्रित किए गए वर्षाजल से सिंचाई करके सूखे के असर को कम किया जा सकता है।

अतितीव्र वर्षा की घटनाएं

आकस्मिक तरीकों के सुझाव के अंतर्गत पुनः बुवाई, फल झड़ना आदि की रोकथाम के लिए सतही जल निकास एवं रसायनों का छिडकाव करना, आवश्यकतानुसार कीट बीमारियों या प्रकोप की रोकथाम के लिए रोगनिरोधी/उपचारात्मक मध्यवर्ती क्रिया करना। वानस्पतिक अवस्था पर वर्षा होने की स्थिति में अधिक जल का जल्दी से जल्दी निकास करना एवं जल निकास पश्चात 50 किलोग्राम नाइट्रोजन तथा 25 किलोग्राम पोटाशियम प्रति हेक्टेयर देने से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। धान में रिक्त स्थानों की पूर्ति नर्सरी के पौधो से अथवा जीवित पौधों के कंसो को अलग-अलग कर लगाएं, खरपतवार नियंत्रण कीट रोग के प्रकोप की अग्रिम चेतावनी की दशा में उपयुक्त पौध संरक्षण तरीकों को अपनाकर तथा पोषण तत्व पूर्ति हेतु एक प्रतिशत पोटाशियम नाइट्रेट या जल घुलनशील उर्वरक जैसे 19-19-19, 20-20-20 एवं 21-21-21 का छिडकाव करके मौसमी विचलन के आघात को कम किया जा सकता है। मृदा को ढीली करने, वायु संचार अच्छा करने, नीदा नियंत्रण करने एवं फसल की मजबूती के लिए मिट्टी चढ़ाने हेतु उच्चतम मृदा नमी पर अंतरवर्तीय कर्षण क्रियाएं सुझावित है।

वास्तविक समय आकस्मिक योजनाएं

एक्रीपडा का अनुभव

मुख्य वास्तविक समय की आकस्मिक योजनाएं जो कि देरी से मानसून के आगमन, जल्दी मध्य व अंत अवधि में सूखा, अचानक बाढ के पानी का सामना करने हेतु वर्षा प्रबंधन (मूल स्थान एवं बाहरी स्थान), वैकल्पिक फसलें एवं किस्मों में बदलाव, फसल प्रणाली, फसल विविधिकरण, पोषक तत्व प्रबंधन व ऊर्जा प्रबंधन इत्यादी प्रमुख वास्तविक समय की आकस्मिक योजनाएं हैं। पंजाब के अर्धशुष्क कंडी क्षेत्र में जलोढ़ मृदा में मानसून के 10 दिन देरी से आगमन पर (जुलाई का दूसरा पखवाड़ा) संकर मक्का पीएम 4-2 अधिकतम उपज (3389 किलोग्राम/हेक्टेयर), शुद्ध आय (28543 रू/हेक्टेयर) एवं लाभ लागत अनुपात (2.01) प्राप्त हुए जो कि स्थानीय किस्म (1856 किलोग्राम/हेक्टेयर), से 45 प्रतिशत अधिक है। आंध्र प्रदेश के कमी वाले आंचल में मानसून की देरी से आगमन पर (9 दिन) लाल मृदाओं में जल संरक्षण नालियां बनाने पर मूंगफली की 17 प्रतिशत तक उपज में बढ़ोतरी होकर (462 किलोग्राम/हेक्टेयर), 3591 रुपए/हेक्टेयर शुद्ध लाभ, 1.2 लाभ-लागत अनुपात तथा 1.0 किलोग्राम/हेक्टेयर मिलीमीटर वर्षा जल उपयोग क्षमता प्राप्त हुई। इसकी तुलना में बिना जल संरक्षण नाली में 396 किलोग्राम/हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई।

जिला गारहवा (झारखंड) में धान किस्म एराइज तेज (बाएं), तथा तिल किस्म शेखर (मध्य) एवं जिला अनंतपुर (आंध्र प्रदेश) में सेटारीया किस्म सुर्यनंदी (दाएं) का प्रदर्शन

प्रारंभिक अवस्था में सूखा

असम के लखीपुर जिले में आलू की फसल को वर्षा जल एकत्रीकरण से पूरक सिंचाई देने पर आलू की उपज 26750 किलोग्राम/हेक्टेयर एवं लाभ-लागत अनुपात 3.87 प्राप्त हुआ जबकि असिंचित फसल से उपज 12100 किलोग्राम/हेक्टेयर प्राप्त हुई। रागी+अरहर (8:2) अंतरवर्तीय फसल प्रणाली में बुवाई के 35 दिन बाद संरक्षण नालियां बनाने से 3807 किलोग्राम/हेक्टेयर अधिक रागी समतुल्य उपज व शुद्ध लाभ 55875 रू/हेक्टेयर प्राप्त हुआ। इसकी तुलना में कृषक पद्धति से उपज मात्र 2356 किलोग्राम/हेक्टेयर प्राप्त हुई। इसी प्रकार आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले में नमी संरक्षण हेतु संरक्षण नालियां 20 दिन पर बनाने से मूंगफली (5 प्रतिशत), अरंडी (4 प्रतिशत), अरहर (9 प्रतिशत) कपास (6 प्रतिशत) उपज में सुधार प्राप्त हुआ। इनकी तुलना में बिना संरक्षण नाली में क्रमश: 1510, 460, 676, व 470 किलोग्राम/हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई। छत्तीसगढ राज्य के बस्तर जिले में धान में देशी हल से खुली नाली बनाने से दाना उपज 2030 किलोग्राम/हेक्टेयर और वर्षा जल उपयोग क्षमता 3.26 किलोग्राम/हेक्टेयर मिलीमीटर प्राप्त हुई। जबकि बिना खुली नालियों से धान की उपज 1202 किलोग्राम/हेक्टेयर आंकी गई। इसी प्रकार गुजरात के जामनगर जिले में बुवाई के 20 दिन बाद मूल स्थान नमी संरक्षण की हल्की खुली नालियों (45 सेंटीमीटर चौड़ी) से कपास की उपज 1850 किलोग्राम/हेक्टेयर, प्राप्त होकर 17 प्रतिशत तक वृद्धि हुई एवं बिना नालियों की तुलना में अधिक शुद्ध लाभ 58575 रू/हेक्टेयर व लाभ-लागत अनुपात 2.00 और वर्षा जल उपयोग क्षमता 3.15 किलोग्राम/हेक्टेयर मिलीमीटर प्राप्त हुई।

पाटा नेगापर जिला जामनगर (गुजरात) में कपास की खुली नालियों में बिजाई (बाएं), वन्नेदोदीपल्ली, जिला कर्नूल (आंध्र प्रदेश) में संरक्षण नालियों में बिजाई (मध्य) एवं ग्राम तहकपाल जिला बस्तर (छत्तीसगढ़) में कतारों में कढछीनुमा संरचना के साथ मूल स्थान नमी संरक्षण (दाएं) का प्रदर्शन

मध्य अवधि सूखा

दक्षिणी तमिलनाडु के अर्धशुष्क क्षेत्र में मेथेनोट्रोफास 5 मिलीलीटर/हेक्टेयर का सूखे की स्थिति में पर्णीय छिड़काव करने पर कपास की उपज 296 किलोग्राम/हेक्टेयर प्राप्त हुई, जबकि अनुपचारित (बिना छिड़काव) के 255 किलोग्राम/हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई। इस प्रकार छिड़काव से 16 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त होती है। अर्धशुष्क गुजरात के उत्तरी सौराष्ट्र में 2 प्रतिशत पोटेशियम नाइट्रेट का फूल एवं गुलर बनने की अवस्था पर छिड़काव करने से कपास की उपज 2646 किलोग्राम/हेक्टेयर एवं शुद्ध लाभ 88650 रू/हेक्टेयर आंका गया जो कि किसान पद्धति से 18.2 एवं 18 प्रतिशत अधिक प्राप्त हुआ। छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले में धान में एकत्रीकरण वर्षा जल से फूल निकलते समय पूरक सिंचाई (2 सेंटीमीटर गहराई) करने से दाना उपज 1530 किलोग्राम/हेक्टेयर के साथ शुद्ध लाभ 42208 रू/हेक्टेयर व लाभ-लागत अनुपात 3.22 एवं वर्षा जल उपयोग दक्षता 2.24 किलोग्राम/हेक्टेयर मिलीमीटर प्राप्त हुए, जबकि बिना सिंचाई किए धान की दाना उपज 1023 किलोग्राम/हेक्टेयर प्राप्त हुई।

मध्य प्रदेश के इंदौर जिले में सोयाबीन में क्लोरोमेक्वाट क्लोराइड (वीएएम-सी) 5052 की 375 मिलीमीटर/हेक्टेयर एवं थायोयूरिया की 250 ग्राम/हेक्टेयर मात्रा 400 लीटर पानी/हेक्टेयर के हिसाब से पर्णीय छिड़काव करने पर सोयाबीन की दाना उपज में बढ़ोतरी दर्ज की गई। राजस्थान के भीलवाड़ा जिले में मक्का फसल में 2 प्रतिशत पोटेशियम नाइट्रेट का पर्णीय छिड़काव करने पर 25 प्रतिशत अधिक क्षमता उपज 878 किलोग्राम/हेक्टेयर के साथ शुद्ध लाभ 14600 रू/हेक्टेयर एवं लाभ-लागत अनुपात 1.2 प्रतिशत प्राप्त हुए जबकि किसान पद्धति में मक्का की दाना उपज 704 किलोग्राम/हेक्टेयर पाई गई।

ग्राम कोचारिया जिला भीलवाड़ा (राजस्थान) में मध्य ऋतु सूखा स्थिति के दौरान पोटेशियम नाइट्रेट की 2 प्रतिशत मात्रानुसार पर्णीय छिड़काव (बाएं), ग्राम बाभुलगांव जिला परभणी (महाराष्ट्र) में कपास में मूल स्थान नमी संरक्षण के लिए खुली नालियां (मध्य) एवं ग्राम तहकापाल जिला बस्तर (छत्तीसगढ) में वर्षाजल एकत्रीकरण से मूंगफली में पूरक सिंचाई (दाएं) का प्रदर्शन

अंत कालीन सूखा

बनासकांठा जिले में अरंड़ी में पूरक सिंचाई करने पर अधिक दाना उपज 1350 एवं भूसा (डंठल) 2265 किलोग्राम/हेक्टेयर प्राप्त हुआ जो कि बिना सिंचाई की तुलना में अधिक पाया गया। इसके अलावा पूरक सिंचाई शुद्ध लाभ 35833 रू/हेक्टेयर, लाभ-लागत अनुपात 2.86 एवं वर्षा जल उपयोग से क्षमता 1.87 किलोग्राम/हेक्टेयर मिलीमीटर प्राप्त हुए। भीलवाड़ा जिले, में

मक्का में टपक सिंचाई में दाना उपज 4375 किलोग्राम/हेक्टेयर एवं सूखे की स्थिति के दौरान एक दस सेंटीमीटर सिंचाई करने से लाभ-लागत अनुपात अधिक प्राप्त हुए।

ग्राम कालीमाटी/धोलीया जिला बनासकांठा (गुजरात) में अंतकालीन सूखा के साथ अंरडी में (टपक) पूरक सिंचाई (बाएं) एवं बिना सिंचाई की फसल (दाएं) का प्रदर्शन

परभनी जिले में अरहर में एकत्रित वर्षा जल से पूरक सिंचाई बौछारी विधि से करने पर अरहर की दाना उपज में 78 प्रतिशत अर्थात् 494 किलोग्राम/हेक्टेयर बढ़ोतरी के साथ शुद्ध लाभ 17016 रू/हेक्टेयर लाभ-लागत अनुपात 1.97 एवं वर्षा जल उपयोग दक्षता 1.73 किलोग्राम/हेक्टेयर मिलीमीटर प्राप्त हुए। जबकि बिना सिंचाई के साथ दाना उपज 290 किलोग्राम/हेक्टेयर आंकी गई। इसी प्रकार कपास में पूरक सिंचाई करने पर उपज 1124 किलोग्राम/हेक्टेयर, शुद्ध आय 2531 किलोग्राम/हेक्टेयर तथा लाभ-लागत 2.00 एवं वर्षा जल उपयोग क्षमता 3.94 किलोग्राम/हेक्टेयर मिलीमीटर, प्राप्त हुए जबकि बिना सिंचाई में 632 किलोग्राम/हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई।

अचानक आई बाढ

असम के उत्तरी क्षेत्र में अचानक बाढ़ आने के कारण धान की रोपाई देरी से हुई। उस स्थिति में बाढ़ को सहन करने वाली प्रजातियों जैसे-गितेष और प्रफुल्ला का प्रदर्शन अच्छा रहा। अचानक बाढ़ आने की स्थिति में रणजीत जैसी स्थानीय प्रजाति का प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा। गितेष एवं प्रफुल्ला की उपज स्थानीय किस्म की तुलना में 100 प्रतिशत अधिक प्राप्त हुई, जबकि गितेष-3102 किलोग्राम/हेक्टेयर एवं लाभ व लागत अनुपात 1.90 रहा। जलश्री जैसी बाढ़ सहनशील धान की किस्म को अपनाकर एवं आवश्यकता से अधिक जल को खेत से बाहर निकालने के फलस्वरूप धान की बढवार अच्छी देखी गई। धान की लगभग सभी किस्में एवं जल कुवारी भी बाढ़ से प्रभावित रही परंतु जलश्री किस्म का प्रदर्शन अच्छा रहा। धान की जलश्री किस्म की दाना उपज 900 किलोग्राम/हेक्टेयर एवं शुद्ध लाभ 11400 रू/हेक्टेयर प्राप्त हुआ। जबकि स्थानीय किस्म असफल रही। यद्वपि जलश्री किस्म की उपज बहुत कम (सामान्य वर्ष की तुलना में) थी तथापि किसान की स्थानीय किस्म की तुलना में जलश्री किस्म से 100 प्रतिशत लाभ हुआ।

जिला लखीमपुर (असम) में अचानक आई बाढ़ में धान की जलश्री किस्म का प्रदर्शन

वास्तविक समय आकस्मिक योजनाओं का कार्यान्वयन : बाधाएं एवं अवसर

प्रारंभिक तैयारी के लिए बाधाएं

- उच्च श्रम लागत एवं समयानुसार उपयुक्त उपकरणों की उपलब्धता।
- मध्यवर्त के लिए जैसे प्रक्षेत्र तालाब, कृत्रिम रूप से भूमिगत जल को पुनर्भरण (रीचार्ज) करना एवं सीडड्रील पर आर्थिक निवेश करना।
- व्यक्तिगत खेत पर प्रक्षेत्र तालाब को अपनाने में प्रतिबंध।
- सूखा सहनशील करने वाली किस्मों के बीज की उपलब्धता।
- अंतरवर्तीय फसल प्रणाली के लिए उपयुक्त उपकरण।
- ग्राम संस्थाओं के कार्य एवं निरंतरता जैसे - कस्टम हायरिंग सेंटर, बीज बैंक, पोषक तत्व बैंक एवं चारा बैंक।
- पर्णीय छिड़काव के लिए सामग्री/रसायन की उपलब्धता।

अवसर

- मूल स्थान एवं बाहरी स्थान वर्षा जल प्रबंधन।
- राज्य/केंद्र सरकार की योजनाओं के साथ अभिमुख होना।
- कस्टम हायरिंग सेंटर के लिए कार्य करना।
- बीज बैंक, चारा बैंक, पोषक तत्व (वर्मी कम्पोस्ट आदि) बैंक को बढ़ावा देना।

मानसून के देरी से आगमन पर बाधाएं एवं अवसर

बाधाएं

- वास्तविक समय पर वर्षा का पूर्वानुमान।
- सीमित अनुकूल मृदा नमी अवधि।

- वैकल्पिक फसल/किस्म के बीज एवं मात्रा आपूर्ति की अनुपलब्धता।
- सीमित मृदा नमी अवधि में बुवाई के लिए उपयुक्त उपकरणों की उपलब्धता जिससे अधिक क्षेत्र में बुवाई हो सके।
- बार-बार बुवाई के लिए बीज एवं उच्च श्रम लागत।

अवसर

- कृषि परामर्श की गुणवत्ता।
- मानसून की देरी से होने की घटना के दौरान सूखा सहनशील एवं कम अवधि वाली किस्म को तैयार करने में राज्य बीज निगम, कृषि विश्वविद्यालय एवं कृषि विज्ञान केंद्र आदि की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। राज्य बीज निगम, कृषि विश्वविद्यालय एवं कृषि विज्ञान केंद्र आदि बीज गुणन योजना के तहत वैकल्पिक फसल/किस्म का बीज उत्पादन करते हैं।
- गुणवत्ता युक्त बीज का उत्पादन एवं वितरण के लिए ग्राम/समुदायिक बीज बैंक स्थापित करना।
- सही समय पर एवं परिशुद्ध बुवाई, खरपतवार निकालना, अंतरकर्षण क्रियाएं, मूल स्थान नमी संरक्षण क्रियाएं आदि के लिए प्रक्षेत्र उपकरणों के लिए कस्टम हायरिंग सेंटर स्थापित एवं क्रियान्वित करना।
- कुछ मध्यवर्त जैसे मेढ़बंदी, भूमि समतलीकरण, अंतछत भूमि प्रबंधन आदि क्रियाएं मनरेगा के माध्यम से करना।

अग्रिम ऋतु सूखे से निबटने हेतु बाधाएं एवं अवसर

बाधाएं

- उपयुक्त मात्रा में वैकल्पिक फसल/किस्म के बीज की उपलब्धता।
- पुनः बुवाई के लिए अधिक बीज लागत एवं श्रम।
- अलग-अलग फसलों में बुवाई, कर्षण क्रियाएं, नीदा नियंत्रण एवं नालियां बनाने के लिए उपयुक्त यंत्रो की कमी।
- पूरक सिंचाई के लिए एकत्रित जल, अधिक दूरी चाहने वाली फसलों में मटका सिंचाई एवं पर्णीय छिड़काव की उपलब्धता।
- सूखा अवधि के दौरान या उपरांत पर्णीय छिड़काव के लिए सामग्री/रसायन उपलब्धता।
- नीदा नियंत्रण के लिए अधिक श्रम लागत।

अवसर

- राज्य बीज निगम, राज्य कृषि विश्वविद्यालय एवं ग्राम स्तर बीज बैंक द्वारा वैकल्पिक फसल/किस्म का बीज उत्पादन करना।

- बुवाई एवं अन्य क्रियाओं के लिए उपयुक्त प्रक्षेत्र उपकरणों को कस्टम हायरिंग सेंटर या सरकारी योजनाओं के द्वारा छोटी मशीनों के उपयोग को बढ़ावा देना।
- प्रक्षेत्र तालाब के द्वारा जल संपत्ति को बढ़ाना/वर्षा जल एकत्रीकरण एवं पूरक सिंचाई के स्त्रोत को पीएमकेएसवाई आदि के साथ बढ़ावा देना।
- मनरेगा आदि के साथ कुछ क्रियाओं के साथ अभिमुख होना।

मध्य सूखे की स्थिति से निबटने हेतु बाधाएं एवं अवसर

बाधाएं

- अलग-अलग फसलों के लिए अंतरकर्षण क्रियाएं, नीदा नियंत्रण एवं पर्णीय छिड़काव के लिए उपयुक्त यंत्रो की कमी।
- पूरक सिंचाई, मटक सिंचाई एवं पर्णीय छिड़काव के लिए, जल एकत्रीकरण या अन्य स्त्रोतो से जल आदि की उपलब्धता।
- पर्णीय छिड़काव के लिए सामग्री/रसायन आदि की समय पर उपलब्धता।
- पलवार के लिए फसल अवशेष एवं क्रियान्वन की अधिक लागत की उपलब्धता।
- खुली संरक्षण नालियां बनाने से अधिकतर काली मृदाओं में खड़ी फसलों में नमी की समस्या का बढ़ जाना।
- बड़े पैमाने पर एवं समय पर कृषि परामर्श की आवश्यकता।

अवसर

- विभिन्न कृषि क्रियाओं जैसे-उर्वरक अनुप्रयोग, मूलस्थान नमी संरक्षण क्रियाएं, पर्णीय छिड़काव, पानी चढ़ाने के साथ उच्च दक्षता वाले पंप एवं सुक्ष्म सिंचाई प्रणाली के द्वारा दक्ष अनुप्रयोग, पलवार आदि के लिए कस्टम हायरिंग सेंटर के द्वारा व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्तर पर उपयुक्त उपकरणों को बढ़ावा देना।
- प्रक्षेत्र तालाब आदि के द्वारा जल के एकत्रीकरण की रचना करना, वर्षा जल एकत्रीकरण एवं पूरक सिंचाई के स्त्रोत को पीएमकेएसवाई, एनएचएम एवं एसएचएम आदि के साथ अभिमुख होकर प्रक्षेत्र तालाब में संग्रहित जल का सुक्ष्म सिंचाई प्रणाली जैसे-टपक, बौछार आदि के साथ दक्षपूर्ण उपयोग करना।
- कृषि अदान जैसे-पोटेशियम नाइट्रेट, थायोयूरिया, पोटेशियम क्लोराइड आदि, समय पर उपलब्ध कराना।
- फसलों की कतारों के बीच पलवार के लिए फसल अवशेष का पुनर्चक्रण दक्ष रूप से करना।

अंतकालीन सूखे से निबटने हेतु अवसर एवं बाधाएं

अवसर

- कर्षण क्रियाएं/पर्णीय छिड़काव के लिए प्रक्षेत्र उपकरणों के उपयोग को बढ़ावा देना।
- पीएमकेएसवाई आदि के साथ अभिषरण से प्रक्षेत्र तालाब में कुशल तरीके से वर्षा जल का एकत्रीकरण एवं पुनः उपयोग के साथ सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली जैसे टपक, बौछार आदि का अनुप्रयोग करना।
- कृषि अदान जैसे पोटेशियम नाइट्रेट, थायोयूरिया, पोटेशियम क्लोराइड आदि को समय पर उपलब्ध कराना।
- रबी ऋतु में अग्रिम बुवाई हेतु बीज आदि की समय पर उपलब्धि एवं प्राप्ति करना।
- रबी ऋतु में बची हुई नमी की स्थिति के अंतर्गत जल्द बुवाई हेतु रबी फसलों, जैसे-चना आदि के लिए उपयुक्त किस्मों को बढ़ावा देना।

बाधाएं

- अलग-अलग फसलों में कर्षण क्रियाएं एवं पर्णीय छिड़काव के लिए उपयुक्त मात्रा में उपकरणों की उपलब्धता।
- पूरक सिंचाई, मटक सिंचाई एवं पर्णीय छिड़काव के लिए जल एकत्रीकरण या अन्य स्त्रोतों से जल की उपलब्धता।

शासकीय कार्यक्रम एवं परिवर्तन की आवश्यकता

प्रक्षेत्र स्तरीय निर्णय, जैसे उत्पादन, भू-स्थलाकृति, सिंचाई, क्रियान्वयन करने का समय आदि, प्रक्षेत्र उत्पादन के अंतर्गत आते हैं। प्रक्षेत्र क्रियाओं को बदलने एवं रूपांतरित करने की क्रियाओं में यह क्षमता होती है कि मौसम विचलन/दशा द्वारा जलवायु संबधी जोखिम को कम करने एवं प्रक्षेत्र उत्पादन की बढ़ोतरी में लचीलापन ला सकती है। इन रूपांतरणों में शासकीय योजनाओ में अनेक घटक, जैसे-टिकाऊ कृषि हेतु राष्ट्रीय मिशन, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, मेगा बीज परियोजना, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, मुदा स्वास्थ्य मिशन, प्रक्षेत्र उपकरण एवं मशीनीकरण आदि केंद्रीय योजनाएं वास्तविक समय आकस्मिक योजना के तहत मौसम विचलन की दशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वर्षा जल प्रबंधन मध्यवर्त जैसे-जल एकत्रीकरण संरचनाएं बनाने में अत्याधिक पूंजी एवं श्रमिक लगते है। अतः इनको आरकेवीवाई, पीएमकेएसवाई, मनरेगा, एनएचएम, आर डब्ल्यू एम पी, के अलावा मूल स्थान पर जल संरक्षण करना चाहिए तथा भूमि आधारित क्रियाओं को मनरेगा एवं डी ए आर डी जिले के कार्यक्रम आदि से अभिषरित होना चाहिए। प्रक्षेत्र तालाब के संग्रहित वर्षा जल को सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों, जैसे -टपक बौछार इत्यादि, के लिए शासकीय योजनाएं, जैसे-आंध्र प्रदेश, तेलगांना आदि में सूक्ष्म सिंचाई परियोजना, एनएचएम एवं एसएसएम इत्यादि पर बल देना।

सारांश

देश के प्रत्येक हिस्से में मौसम में प्रतिवर्ष बदलाव, जैसे सूखा/बाढ/चक्रवात, गर्म हवाएं एवं ओला वृष्टि का अनुभव किया जा रहा है। प्रायः पकी फसल कटाई अवस्था के दौरान खराब हो जाती है जिससे उपज में गिरावट आ जाती है। वास्तविक समय पर कृषि आकस्मिकताओं के लिए राज्य स्तर पर एक मजबूत रणनीति और सुचारू व्यवस्था की जरूरत है। बहुत सारे वर्षा आधारित क्षेत्रों में प्रायः फसल बोने के लिए समय बहुत ही कम मिलता है। लघु एवं सीमांत कृषकों हेतु बैल एवं मशीन चलित यंत्रों की उपलब्धता बहुत आवश्यक है। छोटे कृषि यंत्रों के प्रारूपों को अंगीकृत करने हेतु सही एवं प्रोत्साहन योजनाएं राज्य स्तर पर लागू करने की आवश्यकता है। जरूरत पड़ने पर आकस्मिक फसलों, जैसे-दलहन, मोटे अनाज एवं तिलहन, के बीज एवं सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित करने की जरूरत है। कृषि संबंधी नीतियां, जैसे-आपदा, भूमि एवं जल, खाद्य सुरक्षा आदि, निचले स्तर पर एक साथ अभिषरित होनी चाहिए। इसके अलावा छोटे एवं सीमांत किसानों को सुरक्षा कवच एवं जोखिम बीमा को अपनाने की क्षमता को स्थानीय प्रशासन द्वारा बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

आभार

लेखक क्रीडा एवं निक्रा योजना की वित्तीय सहायता एवं एक्रीपडा केंद्रों के वैज्ञानिक एवं निक्रा अंगीकृत गांव के किसानों, वास्तविक समय पर आकस्मिक तरीकों को क्रियान्वित करने के लिए सभी संगठनों तथा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से इस लेख को तैयार करने में सहयोग प्रदान करने वाले सभी शुभचिंतकों व सहयोगियों का आभार व्यक्त करता है।

संदर्भ

एक्रीपडा -निक्रा एन्युवल रिपोर्ट 2013-14. आल इंडिया कोआर्डिनेटेड रिसर्च प्रोजेक्ट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद. पी.पी. 241.

एक्रीपडा - निक्रा एन्युवल रिपोर्ट 2014-15. मैनेजिंग वेदर एबेरेसन्स थ्रो रियल टाईम कंटीजेंसी प्लानिंग. आल इंडिया कोआर्डिनेटेड रिसर्च प्रोजेक्ट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद. पी.पी. 226

एक्रीपडा - निक्रा एन्युवल रिपोर्ट 2015-16. मेनेजिंग वेदर एबेरेसन्स थ्रो रियल टाईम कंटीजेंसी प्लानिंग. आल इंडिया कोआर्डिनेटेड रिसर्च प्रोजेक्ट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद. पी.पी. 226

एक्रीपडा - 1983. इम्प्रुव्ड एग्रोनामिक प्रेक्टिस फार रेनफेड क्राप्स इन इंडिया. आल इंडिया कोआर्डिनेटेड रिसर्च प्रोजेक्ट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद. पी.1.63

प्रसाद, वाई,जी; महेश्वरी,एम; दीक्षित,एस; श्रीनिवास राव, सीएच; सिक्का,ए के ; वेंकटेश्वर्लू,बी; सुधाकर,एन; प्रभु कुमार,एस; सिंह,ए के; गोगोई,ए के; सिंह,एके; सिंह,वाई वी एंड मिश्रा,ए. 2014. स्मार्ट प्रैक्टिस एंड टेक्नोलॉजी फार क्लाइमेट रिसाइलेन्ट एग्रीकल्चर, सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद. पी.पी.76.

रविंद्रा चारी,जी; राव,के वी; प्रसाद,वाई जी; श्रीनिवासराव,सीएच; रमण, डी बी वी; शर्मा,एन के; राव,वी यू एम एंड वेंकटेश्वर्लू बी. 2013. डिस्ट्रीक लेवल कंटीनजेंसी प्लान्स फार वेदर एबेरेसन्स इन

हिमाचल प्रदेश, सीएसकेएचपीकेवी, पालमपुर, हिमाचल प्रदेश एंड क्रीडा, हैदराबाद-500059. पी.पी.222.

रविंद्रा चारी,जी; वेंकटेश्वर्लू,बी; शर्मा,एस के; मिश्रा,जे एस; राणा,डी एस एंड गणेश कुटे. 2012. एग्रोनामिक रिसर्च इन ड्राइलैंड फार्मिंग इन इंडिया एंड ओवरव्यूह, इंडियन जनरल आफ एग्रोनामी, 57 पी.पी.157-167.

रविंद्रा चारी,जी; श्रीनिवासराव, सीएच; गोपीनाथ,के ए; सिक्का,ए के; बसंत कंदपाल एंड एस. भास्कर. 2016. इम्प्रूव्ड एग्रोनामिक प्रेक्टिस फार रेनफेड क्राप इन इंडिया. आल इंडिया कोआर्डिनेटेड रिसर्च प्रोजेक्ट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, क्रीडा, हैदराबाद. पी.292.

रविंद्रा चारी,जी; बसंत,के; कंदपाल, गोपीनाथ,के ए; रंजना,जी ए; एस भास्कर,एस एंड वी रामामुर्थी. 2016. क्लाइमेट रिजाइलेन्ट क्राप्स एंड क्रापिंग सिस्टम. इन क्लाइमेट रिजाइलेन्ट एग्रोनॉमी (एडिटर्स) बी वेकटेश्वर्लु, जी रविंद्रा चारी, गुरूबचन सिंह, एंड वाईएस शिवाय, पब्लिशड बाइ इंडियन सोसायटी आफ एग्रोनामी, आईएआरआई, नई दिल्ली. पी.पी. 88-119.

श्रीनिवास राव, सीएच; रविंद्रा चारी,जी; मिश्रा,पी के; नागार्जुन कुमार,आर; मारुति शंकर,जी आर; वेकटेश्वर्लु,बी एंड सिक्का,ए के. 2013. रियल टाइम कंटीनजेन्सी प्लानिंग : इनिशियल एक्सपीरियन्स फ्राम एक्रीपडा, आल इंडिया कोआर्डिनेटेड रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, क्रीडा, हैदराबाद - 500 059. पी.पी.63.

श्रीनिवास राव, सीएच; वेकटेश्वर्लु,बी; सिक्का,ए के; प्रसाद,वाई जी; रविंद्रा चारी,जी; राव,के वी; गोपीनाथ,के ए; उस्मान,एम; रमण,डी बी वी एंड राव,वी यू एम. 2015. डिस्ट्रिक एग्रीकल्चरल कंटीनजेन्सी प्लान टू एड्रेस वेदर एबेरेसन्स एंड फार सस्टेनेबल फूड सिक्युरिटी इन इंडिया, आई सी ए आर - सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट डिविजन, हैदराबाद 500059, पी.पी.22.

श्रीनिवास राव,सीएच; प्रसाद,वाई जी; रविंद्रा चारी,जी; रामाराव,सी ए; राव,के वी; रमणा,डी बी वी; सुब्बाराव,ए वी एम; सिंह,राजबीर; राव,वी यू एम.; महेश्वरी,एम. एंड सिक्का,ए के. 2014. कंपेनसेंट्री प्रोडक्शन प्लान फार रबी 2014, क्रीडा टेक्निकल बुलेटिन/02/2014 सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, नेचरल रिसोर्स मैनेजमेंट डिविजन, हैदराबाद 500059, पी.पी.80.

श्रीनिवास राव, सीएच; प्रसाद,वाई जी; रविंद्रा चारी,जी; रानी,एन एंड वी एस भास्कर. 2016. रियल टाइम इंप्लीमेंटेशन आफ एग्रीकल्चर कंटीजेंसी प्लान टू कोप विद वेदर एबेरेशन इन इंडियन एग्रीकल्चर मौसम 67.1 (जनवरी 2016), 183-194.

सुब्बा रेड्डी,जी; रामकृष्णा,वाई एस; रविंद्रा चारी,जी एंड मारुति शंकर,जी आर. 2008. क्राप एंड कंटीजेंसी प्लानिंग फार रेनफेड रिजन आफ इंडिया, ए कंपोडियम बाइ एक्रीपडा, आल इंडिया कार्डिनेट रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, इंडियन काउंसिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, हैदराबाद-500059, पी.पी.174.

वेकटेश्वर्लु,बी; सिंह,ए के; प्रसाद,वाई जी; रविंद्रा चारी,जी; श्रीनिवास राव,सीएच, राव,के वी; रमण, डी बी वी एंड राव,वी यू एम. 2011. डिस्ट्रिक कंटीजेंसी प्लान टू एड्रेस फार एबेरेशन इंडिया, सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, नेचरल रिसोर्स मैनेजमेंट डिविजन, इंडियन काउंसिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, हैदराबाद-500059. पी.पी.136.

वेकटेश्वर्लु,जे; विष्णुमूर्ति,टी वी एंड पद्मनाभन,एम वी. 1983. कंटिजेंट क्राप प्रोडक्शन स्ट्रेटेजी इन रेनफेड एरिया अंडर डिफरेंट वेदर कंडिशन, क्रीडा प्रोजेक्ट बुलेटिन नंबर-5, क्रीडा, हैदराबाद, पी.पी.76.

★★★

17

शुष्क बागवानी

- ए जी के रेड्डी, अशोक कुमार इंदोरिया, वी सुब्बैया,
सीएच श्रीनिवास राव, संतराम यादव एवं जी प्रभाकर

परिचय

भारतीय कृषि मानसून का जुआ है। वर्तमान में कृषि के कुल क्षेत्रफल के 35 प्रतिशत भाग पर ही सिंचित खेती होती है, बाकि 65 प्रतिशत भाग पर शुष्क एवं वर्षा आधारित खेती होती है। शुष्क एवं वर्षा आधारित क्षेत्रों में वर्षा ही एक मात्र जल का स्रोत है। इन क्षेत्रों में जारी जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थितियां, फसल उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। शुष्क एवं वर्षा आधारित कृषि में फसल चयन, उत्पादन लागत एवं लाभ तथा फसल से संबंधित जैविक और अजैविक कारकों के प्रभाव का अच्छी तरह मूल्यांकन कर लेना चाहिए। इस आंकलन से किसान को शुष्क भूमि में कौन सी फसल उत्पादित करनी है, के बारे में ठोस योजना बनाने में सहायता मिलेगी। सामान्यत: किसान शुष्क भूमि में लघु अवधि वाली फसलों का चयन करते हैं। शुष्क कृषि भूमि की आधुनिक परिकल्पना के अनुसार इन क्षेत्रों में प्राय: वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल की हानि वर्षा से प्राप्त जल से अधिक होती है। यद्यपि हमारे देश में वार्षिक वर्षा का औसत 1200 मिलीमीटर है, परंतु इसका वितरण असमान होता है। जैसे कि राजस्थान के मरूस्थल में औसत वार्षिक वर्षा 100 मिलीमीटर है, वहीं उत्तर-पूर्वी भागों में 3600 मिलीमीटर तक है। शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में व्याप्त पानी की अनुपलब्धता गंभीर समस्या है। इन क्षेत्रों में व्याप्त किसानों की आजीविका और जीविकोपार्जन में सुधार करने के लिए बागवानी एक विकल्प के रूप में देखी जा सकती है। इन क्षेत्रों में बहुवर्षीय उद्यान की फल-फसलों एवं सब्जियों को उपयुक्त वैज्ञानिक तकनीकियों के साथ उगाकर किसानों की आर्थिक-सामाजिक हालत को सुधारा जा सकता है। अत: इस बात पर जोर देने की आवश्यकता है कि उपयुक्त बागवानी एवं सब्जियों की फसलें, शुष्क एवं अर्ध-शुष्क भूमि की फसल प्रणालियों में शामिल की जाएं।

देश में छोटे किसानों द्वारा लघु स्तर पर सब्जियों की खेती करना एक पुरानी परंपरा है। सब्जियों की ज्यादातर फसलें तीव्र बढ़ने वाली तथा लघु अवधि की होती है। अत: इनको आसानी से शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में जारी फसल प्रणाली में बृहत स्तर पर शामिल किया जा सकता है। इसी प्रकार इन क्षेत्रों में जारी फसल प्रणालियों में बारहमासी फलदार वृक्षों को शामिल करके किसान अपनी आय में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं। चूंकि इन फलदार वृक्षों की जड़े मिट्टी में गहराई तक जाती हैं जिससे मिट्टी की निचली सतहों में विद्यमान मृदा नमी का उपयोग कर सकती है।

इसके अलावा फलदार वृक्षों को ऊबड-खाबड़ जमीन, गहरी नालियों तथा कुछ हद तक औद्योगिक कचरे से ग्रस्ति जमीन पर भी उगाया जा सकता है। अगर इन वृक्षों को वैज्ञानिक तरीकों से लगाया जाए तो निश्चित ही किसानों की आय में वृद्धि होगी क्योंकि इनसे प्राप्त फल, लकड़ी, चारा इत्यादि अति मूल्यवान होते हैं।

बागवानी में बाधाएं

- पानी की अनुपलब्धता एवं अधिक तापमान।
- कम उपजाऊ मिट्टी।
- जंगली जानवर, मूषक, पक्षी, कीट और बिमारियां।
- फसल कटाई के बाद उचित भंडारण का अभाव।
- उचित विपणन ढांचे का न होना।
- कृषि तकनीकियों का सुचारु रूप से लागू न होना।
- असक्षम परिवहन व्यवस्था।

सफल बागवानी की रणनीतियां

बागवानी वृक्षों का चयन

इन क्षेत्रों में बागवानी वृक्षों का चुनाव करते समय यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि वृक्ष अधिकतम पानी की उपलब्धता (वर्षा अवधि) के दौरान अधिक से अधिक वानस्पतिक वृद्धि और प्रजनन काल पूरा करने में सक्षम हो। इसके अलावा इन वृक्षों का स्वभाव शुष्क प्रवृत्ति का होना चाहिए। इनमे गहरा जड़ तंत्र (आम, बेर, अखरोट), गर्मी के मौसम में सुसुप्ता (बेर), उत्तको में अधिक पानी रखने की क्षमता (कैक्टस, नाशपाती, अंजीर), पत्तियों का छोटा आकार (करौंदा), पत्तियों पर सिकुडे हुए रंध्र एवं उन पर मोम की परत (अंजरी, बेर, फालसा, इमली), उथली, कंकरिली एवं एवं कमजोर मृदा के प्रति अनुकूलन क्षमता (अनार, आंवला, काजू) इत्यादि गुण होने चाहिए। वर्षा वितरण के आधार पर सारणी-1 में मैदानी एवं पठारों और उप पहाडी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त बागवानी वृक्षों के बारे में दर्शाया गया है।

सारणी-1: विभिन्न वर्षा क्षेत्रों के लिए बागवानी फसलें

वर्षा (मि.मी.)	मैदानी क्षेत्र	पठार एवं उप-पहाड़ी क्षेत्र
>500	खेजडी, बेर, फालसा, भारतीय अंजीर, करोंदा, केर, गोंडा या लसोड़ा	शरीफा, बेल, करोंदा, बेर, केर, जामुन, पिलु
500-1000	बेर, आंवला, जामून, लकड़ी सेब, शरीफा, महुआ, जंगली खजूर, भारतीय बादाम, अमरूद, खट्टे नींबू, नींबू, आम, इमली	बाख, बेर, शरीफा, चिरोंजी, सेब, करोंदा, भारतीय बादाम, आम, खट्टे नींबू, अंगूर फल, अनार
>1000	आम, लीची, कटहल, मंदारिन (नारंगी, संतरा), एवोकाडो, इमली, जामुन, महुआ	आम, कटहल, अमरूद, इमली, महुआ, काजू, चेरी, अनार

किस्मों का चुनाव

कृषि जलवायु एवं मृदा के प्रकार के अनुसार किस्मों का चयन करना चाहिए। इन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फल एवं सब्जियों की फसलों की उन्नत किस्मों का वर्णन सारणी-2 में दिया गया है, जैसे-बेर की किस्में, गोला, मुडिया और सेब अत्यंत शुष्क क्षेत्रों की लिए उपयुक्त है। बनारसी, कारका, कैथली, उपरान और महारावाली अपेक्षाकृत कम शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इसी प्रकार शुष्क क्षेत्रों के लिए आंवला की कंचन, कृष्णा, एनए-6 तथा एनए-7 उपयुक्त है। कुछ बागवानी वृक्षों की किस्मों में सूखा सहन करने की क्षमता ज्यादा होती है जैसे कि अमरूद की कोहिनूर, सफेदा एवं सफेद जाम; बेर की गोला, सेव एवं मुंडिया; आंवला की चिकाइया; अनार की मस्कट, गणेश; सीताफल की बालानगर इत्यादि।

सारणी-2: भारत के शुष्क भूमि में फल और सब्जियों की लोकप्रिय किस्में

फसल	किस्में
फल	
बेर	गोला, मूंदिया, कैथी, बनारसी करका, अर्ली उमरन
आंवला	कंचन, कृष्णा, बलवंत, एनए-6
अनार	पी-23, पी-26, मृदुला
शरीफा (सीताफल)	बालानगर, मऊमोथ, लाल सीताफल, अर्का साहन
अमरूद	इलाहाबाद सफेद, सरदार, कोहिर सफेदा, सफेद जाम
पपीता	पूसा डिलिसियस, हनी डयू, पूसा मेजेस्टी, पूसा बौना, पूसा जेयंट
बेल	एनबी-5, एनबी-9
चीकू	कलिपत्ति, क्रिकेट बॉल
अंजीर	पूना, ब्लेक्यूचिक्यू
आम	बंगलोरा, नीलम, केसर, बॉम्बे ग्रीन
मीठी नारंगी	मौसंबी, कोडर, सतगुडी, वालेंसिया, ब्ल्ड रेड, माल्टा
लाइम/मौसमी	तेनाली, प्रोमालिनी
इमली	पीकेएम-1, प्रतिष्ठान, योगेश्वरी
सब्जियां	
टमाटर	पूसा रूबी, पूसाअर्ली बौना, पूसा-120, मीठा-72, एस-12, मंगला
मिर्च	पूसा ज्वाला, सिंदूर, पंत सी-1, अर्का मोहिनी, अर्का गौरव, अर्का बसंत, भरत, इंदिरा
लोबिया	पूसा दोफसली, पूसा फाल्गुनी, पूसा बरसाती, पूसा ऋतुराज
ग्वार	पूसा सदाबहार, पूसा मौसमी, पूसा नवबहार, दुर्गा बहार
बैंगनी	पूसा परपल, लौंग, पूसा परपल राडऊंड, पूसा क्राति, पूसा अनमोल, अर्का शील, अर्का कुसमाकर, अर्का नवनित
मूली	अर्का निशांत
कद्दू	अर्का चंदन, सीओ-1, सीओ-2
चौलाई	छोटी चौलाई, बड़ी चौलाई
भिंडी	पूसा मखमली, पंजाबी मद्मनी, परबनी क्रांति, अर्का अनामिका
खरबूजा	पूसा शरबजी, पूसा मधुरस, करा मधु, पंजाब सुनहरी, दुर्गापुर मधी
तरबूज	शुगर बेबी, अर्का मानिक, अर्का ज्योति, केसर, दुर्गापुर मीठा

रोपण

शुष्क भूमि में उपयुक्त रोपण प्रणाली अपनाना काफी हद तक भूमि की स्थालाकृति, फसलों की किस्में एवं मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। मैदानी इलाकों में आमतौर पर रोपण चौकोर या आयताकार प्रणाली में किया जाता है। ढलानों वाली भूमि पर फलों के वृक्ष सम्मोच्चय सीढ़ी, खाइयों और बांधों तथा छोटे-छोटे जलग्रहण प्रक्षेत्र बनाकर करना चाहिए। खाइयों एवं बांधों को ढलान के विपरीत दिशा में बनाना चाहिए। छोटे-छोटे जलग्रहण प्रक्षेत्र तिकोणे एवं आयताकार हो सकते हैं तथा वृक्षों को इनके सबसे निचले भाग में लगाना चाहिए।

जल प्रबंधन

इन क्षेत्रों में प्रभावी जल प्रबंधन अति आवश्यक है। यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि मृदा में उचित नमी बनी रहे, खासकर फसल विकास की अवधि के दौरान, अन्यथा उत्पादकता प्रभावित हो सकती है। इन क्षेत्रों में उचित मृदा नमी बनाए रखने के लिए स्व-स्थाने नमी संरक्षण पद्धतियां, वर्षा जल का अन्यत्र संचयन कर इसका पुन:चक्रण, पलवार बिठाना और खरपतवारों पर नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है। ढलानों वाली भूमि की सतह द्‌वारा उत्पन्न वर्षा जल प्रवाह को खेत तालाब में इकट्ठा करके, पुन: सब्जियों एवं बागवानी वृक्षों की क्रांतिक अवस्थाओं पर उपयोग किया जा सकता है। इन क्षेत्रों में अधिक तापमान/सूखे की वजह से वाष्पीकरण दर अधिक होती है। इसको रोकने के लिए जैविक सामग्री, जैसे-फसल भूसा, वृक्षों की सूखी पत्तियां, खरपतवार इत्यादि, को वृक्षों के जड़ क्षेत्र में बिछाकर वाष्पीकरण की दर को कम किया जा सकता है। जैविक सामग्री के साथ पलवार करने से न केवल वाष्पीकरण दर कम होगी बल्कि ये जल बहाव एवं मृदा कटाव को अवरुद्ध करने के साथ ही साथ मृदा में जैविक अंश में भी बढ़ोत्तरी करेंगे। परिणामस्वरूप पलवार से मृदा नमी में बढ़ोत्तरी एवं आवश्यक पोषक तत्व भी उपलब्ध होते हैं।

उपरोक्त लाभों के अलावा पलवार बिछाने से हानिकारक खरपतवारों से भी कुछ हद तक छुटकारा पाया जा सकता है। पॉलीथिन की पलवार भी इन क्षेत्रों में कारगर साबित हुई है, परंतु ये जैविक पलवार के मुकाबले महंगी होती है। जैविक पलवार द्‌वारा कर्नाटक, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश में चीकू के बगीचों में सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है, जिससे मृदा नमी संरक्षण में आशातीत बढ़ोत्तरी हुई। इसी प्रकार महाराष्ट्र में अनार, अंजीर एवं सीताफल के बगीचों में गन्ने की पत्तियों से पलवार करने पर इन वृक्षों की फल उपज में बढ़ोत्तरी देखी गई है। भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरू के अनुसंधान दर्शाते हैं कि लीची के वृक्षों के जड़ क्षेत्र में पलवार करने से लीची फलों के फटने की दर में कमी देखी गई।

आजकल वृक्षों की पत्तियों द्‌वारा वाष्पोत्सर्जन दर को कम करने के लिए विभिन्न प्रकार के रसायनों का भी प्रयोग किया जा रहा है। इससे वृक्ष की कुल जल मांग को कम किया जा सकता है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि केओलिन का 4-5 प्रतिशत की दर से या तरल पैराफीन का 0.5 से 1 प्रतिशत की दर से छिड़काव करने से पादप द्‌वारा जल हानि में गिरावट आती है। इसी

प्रकार कई तरह के रसायन पत्तियों पर उपस्थित रंध्रों को बंद करके वाष्पोत्सर्जन की दर को कम करते हैं। इन रसायनों में प्रमुख रूप से फिनाइल मरक्यूरिक एसीटेट, डीसिनाइल स्क्सीनीक एसिड, एबसिक एसिड, एसीटाइल एल्कोहल प्रमुख हैं। इन क्षेत्रों में नमी संरक्षण के लिए पहली वर्षा के बाद पेड़ पंक्तियों के बीच जुताई (हैरो चलाना) करना भी लाभप्रद पाया गया है। इसके अलावा खरपतवारों पर नियंत्रण करके भी मृदा नमी संरक्षित की जा सकती है।

पोषक तत्व प्रबंधन

समुचित एवं समय पर पोषक तत्व प्रबंधन किसी भी फसलोत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन क्षेत्रों में रसायनिक खादों के साथ गोबर की खाद का प्रयोग करना अत्यंत अनिवार्य है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में गोबर की खाद वर्षा के समय डालनी चाहिए तथा जहां तक संभव हो रासायनिक नत्रजन उर्वरकों का प्रयोग दो-तीन चरणों में पूरा करना चाहिए। उर्वरकों का चयन, मात्रा, मिट्टी का परीक्षण तथा पौधे की अवस्था एवं उम्र के अनुसार करना अति आवश्यक है। सामान्यत: बेर के बगीचे में 10-15 किलोग्राम गोबर की खाद + 100 ग्राम नत्रजन + 50 ग्राम फासफोरस + 50 ग्राम पोटाश प्रति पेड़ प्रति वर्ष के अनुसार डालना चाहिए। छः से सात साल पुराने अंजीर के पेड़ में 900 ग्राम नत्रजन + 250 ग्राम पोटाश की मात्रा प्रति वृक्ष प्रति वर्ष फल उत्पादन को बढ़ाती है। इन क्षेत्रों में पोषक तत्वों के पर्णीय छिड़काव से भी उपज में बढ़ोत्तरी होती है। एक अनुसंधान के अनुसार नत्रजन (0.5 से 1 प्रतिशत), जिंक (0.05 से 1 प्रतिशत) और बोरान (0.05 से 1 प्रतिशत) का पर्णीय छिड़काव करने से विभिन्न फलदार वृक्षों की उपज में बढ़ोत्तरी देखी गई। उत्तर प्रदेश के मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में गोबर की खाद, तालाब की गाद, जिप्सम तथा पाइराइट के प्रयोग से इन क्षेत्रों में विद्यमान क्षारीय मृदाओं में आंवला एवं नील की उपज में आशातीत बढ़ोत्तरी देखी गई।

अंत:फसलीकरण

इन क्षेत्रों के बागानों के मध्य खाली स्थानों पर कम अवधि की फसलें उगाकर किसान अपनी आय में बढ़ोत्तरी कर सकता है। इन क्षेत्रों में मूंग, मोठ, ग्वार, लोबिया इत्यादि फसलें कृषि-बागवानी संयोजन के लिए उपयुक्त होती हैं। गुजरात के मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में अमरूद एवं बेर के बगीचों में ग्वार, भिंडी और लोबिया आसानी से लगाई जा सकती है। इसी प्रकार हैदराबाद के वर्षा आधारित क्षेत्रों में बेर के बगीचों में लोबिया, मूंग एवं कुल्थी की फसल तथा नींबू के बगीचों में करेला, टमाटर और भिंडी को आसानी से लगाया जा सकता है। शुष्क क्षेत्रों में खेजडी+बेर+सेवल घास भी एक सफल खेत प्रणाली है। इसके अलावा अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में बारहमासी पेड़ (आम, महुआ, इमली, चीकू, कटहल) के बागानों में सफलता से चारा/फसलों का उत्पादन संभव है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि कम वर्षा वाले क्षेत्रों (300-500 मिलीमीटर) में खेजड़ी या बेर या सहजन के साथ सब्जियां लगाई जा सकती हैं। इसी प्रकार 500-700 मिलीमीटर वर्षा वाले क्षेत्रों में आम/बेर/आंवला/अमरूद के बागानों एवं अनार/नीबू/सहजन के बगीचों में आलू प्रजातियों/फलीदार फसल एवं सब्जियां आसानी से उगाई जा सकती है।

कीट एवं रोग प्रबंधन

बागानों में जंगली जानवर, मूषक, पक्षी, दीमक, हानिकारक कीट तथा बीमारियां प्रचूर मात्रा में हानि पहुंचाते हैं। अत: इनका प्रभावी नियंत्रण अवश्य करना चाहिए। बेर में फल मक्खी के प्रबंधन के लिए बेर की पी अवस्था (पी-अवस्था) पर मोनोक्रोटोफॉस 0.03 प्रतिशत की दर से पहला छिड़काव करें तथा फैनाथिअन (0.05 प्रतिशत) की दर से फल बनने के 15 दिनों के बाद दूसरा छिड़काव करना चाहिए। अगर संभव हो तो फल पकने की अवस्था पर 0.05 प्रतिशत की दर से मैलाथिआन को 0.5 प्रतिशत गुड या चीनी के साथ मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। अनार में बटर फ्लाई (मक्खी) के नियंत्रण हेतु फलों को बटर पेपर में लपेटकर संरक्षित कर सकते हैं। उसके अलावा फल बनने की अवस्था पर 0.002 प्रतिशत की दर से डेल्टानेपरिन तथा 0.2 प्रतिशत कोर्बोरिल 50 डब्ल्यू पी का छिड़काव 21 दिनों के अंतराल पर करें। बेर में चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिलड्यु) की रोकथाम के लिए 0.01 प्रतिशत डनोकेप या काबैन्डाजिम या थायोफिनेट मिथाइल तथा 0.2 प्रतिशत वैटेबल सल्फर का 2-4 बार 15-20 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें। पर्ण काला धब्बा बीमारी की रोकथाम के लिए 2 से 3 छिड़काव 0.2 प्रति केप्टाफाल या कॉपर आक्सिल क्लोराइड या मैन्कोजेब तथा 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डोजिम का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करें। अनार में फल एवं पत्तियों पर काले धब्बे की रोकथाम के लिए 0.25 प्रतिशत जिंक तथा 1 प्रतिशत बोर्डेक्स मिश्रण का 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें। आंवला में गोल रतुआ (रिंग रस्ट) की रोकथाम के लिए 15 दिनों के अंतराल पर चार बार 0.2 प्रतिशत क्लोरोथालोनिक का छिड़काव रोग के लक्षण की शुरूआत से करें।

सारांश

इन क्षेत्रों में शुष्क बागवानी को सफल बनाने के लिए जलवायुवीय परिस्थितियों तथा मृदा के अनुसार उचित किस्मों का चयन करना, उचित जल प्रबंधन, रोग एवं कीट प्रबंधन करके निश्चित ही किसान वर्ग अपनी उपज में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं। बगीचों में वृक्षों के मध्य खाली स्थानों पर उपयुक्त फसलें (सब्जियां, फलीदार, औषधीय) उगाकर उपलब्ध संसाधनों का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सकता है। जहां पर पशुधन आधारित प्रणाली है, उन स्थानों पर किसान बागानों के मध्य खाली स्थानों पर घास प्रजाति की उचित किस्में उगाकर पशुओं के लिए चारा उत्पादन कर सकते हैं। यद्यपि इन क्षेत्रों में जारी विपरीत जलवायुवीय परिस्थितियां, कमजोर मृदा स्वास्थ्य तथा निम्न स्तर की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां आशातीत परिणामों में रुकावट पैदा करती है, फिर भी यदि शुष्क बागवानी को क्षेत्र विशेष के लिए जारी वैज्ञानिक तकनीकी एवं अनुसंधान परिणामों को प्रभावी रूप से अपनाने से निश्चित ही किसानों की आय में बढ़ोत्तरी प्राप्त की जा सकती है।

संदर्भ

एनोनिमस (1989). प्रोसीडिंग, V नेश्नल वर्कशाप विद एरिड ज़ोन फ्रूट रिसर्च, गुजरात एर्गीकलचरल यूनिवर्सिटी सरदार कृषिनगर, जुलाई 6-9, 1989

एनोनिमस (1991). प्रोसीडिंग, ग्रूप मीटिंग आफ रिसर्च वर्कस आन एरिड जोन फ्रूट, आईआईएचआर, बेंगलुरू, दिसंबर 18-20, 1991

चुंदावत, बी सी (1990). एरिड फ्रूट कल्चर, न्यू दिल्ली। आक्सफर्ड एंड आईबीएच पब्लिकेशन कंपनी प्राइवेट लिमिटेड। इवेनरी, एम, एल शानान एंड आईटेडमोर (1971) : द नेगेव ; द चालेंज आफ ए डेसर्ट, केमब्रिडज, हस्साचूस्सेट्टस, यूएसए : हाडवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

गुप्ता, एस पी (1995). वाटर लासेस एंड देन कंट्रोल इन रेनफेड एग्रीकल्चर। पीपी. 169-176 इन : ससटेनाबुल डेवलपमेंट आफ ड्राइलेंड एग्रीकल्चर इन इंडिया, (एडीटर्स) सिंह, आर पी एट आल, साइंटिफिक पब्लिशर्स, जोधपुर।

कटियाल, जे सी, दास, एस के, कोरवार, जी आर एंड उस्मान एम (1994). टेक्नालजी फार मिटिगेशन स्ट्रेसस : आल्टरनेट लेंड यूसेस। स्ट्रेस्सड ईकोसिस्टमस एंड एग्रीकल्चर, एडीटर्स. पीपी. 291-305 (विरमानी एस एम, कटियाल जे सी, ईस्वरन एच एंड एब्राल आई पी, पब्लिशर्स).

पारीक, ओ पी (1999). ड्राईलेंड हार्टिकल्चर इन फिफ्टी इयर्स आफ ड्राइलेंड एग्रीकल्चर रिसर्च इन इंडिया (ईडीएस) एच पी सिंह एट आल, क्रीडा, हैदराबाद. पीपी. 75-84.

पारीक, ओ पी एंड एस शर्मा (1991). फ्रूट ट्रीस फार एरिड एंड सेमी एरिड लैंड्स. इंडियन फार्मिंग 41: 25-30.

रामकृष्णा, वाई एस (1997). क्लाइमेट फीचर्स आफ द इंडियन एरिड जोन. इन डेसर्टिफिकेशन कंट्रोल इन द एरिड ईको-सिस्टम आफ इंडिया फार सस्टेनबल डेवलपमेंट (एडीटर्स. सिंह एस एंड कर ए), एग्रो-बोटानिकल पब्लिशर्स, बीकानेर, पीपी. 27-35.

रतुरी, जी बी एंड एसएस हिवाले (1988). हार्टिकल्चर बेसड क्रप्पिंग सिस्टम फार ड्राइलेंड्स। इन नेशनल सेमिनार आन ड्राइलेंड हार्टिकल्चर, 2;-22 जुलाई, 1998, क्रीडा, हैदराबाद।

शर्मा, के डी, ओ पी पारीक एंड एच पी सिंह (1986). माइक्रो-केचमेंट्स वाटर हारवेस्टिंग फार राइजिंग जुजुबे आरचड्स इन एरिड क्लाइमेट ट्रांस एसएसई 29 : पीपी. 112-118

सिंह, आर पी (1988). ड्राइलेंड एग्रीकल्चर रिसर्च इन इंडिया पीपी. 136-164 40 इयर्स आफ रिसर्च एंड एजुकेशन इन इंडिया, नई दिल्ली।

★ ★ ★

18

सूखा प्रबंधन के लिए आकस्मिक योजनाएं

- के वी राव, सीएच श्रीनिवास राव एवं प्रभात कुमार पंकज

परिचय

फसल के शुरूआती समय में अपर्याप्त बारिश, वर्षा का अनुचित वितरण और अनावृष्टि इत्यादि मौसम संबंधी सूखे का कारण बन सकती है और निरंतर सूखे के कारण कृषि उत्पादन में काफी कमी आती है। वर्षा आधारित फसलों पर सिंचित क्षेत्रों में फसलों की तुलना में सूखे का असर बहुत अधिक होता है। जिला आकस्मिक योजनाएं, सहिष्णु फसलें/प्रणालियां उपयुक्त बीज की किस्में, कृषि विज्ञान और जल प्रबंधन आदि से संबंधित ऐसे तकनीकी हस्तक्षेप हैं जिन्हें भा.कृ.अनु.प. द्वारा विभिन्न राज्यों के लिए राज्य कृषि विश्वविद्यालयों (एसएयू) और कृषि विज्ञान केंद्र (के.वि.के.) के सहयोग से तैयार किया गया है। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (क्रीडा), हैदराबाद द्वारा शुरुआती मानसून में देरी से जूझने के उपाय, मानसून की शिथिलता, और मध्य-मौसमी और मौसम के अंत में सूखे से निपटने के लिए फसलों और बागवानी फसलों के लिए वर्षा आधारित एवं सिंचित क्षेत्रों के लिए आकस्मिक योजनाएं तैयार की गई हैं। अब तक 623 आकस्मिक योजनाएं विभिन्न ग्रामीण जिलों के लिए तैयार की गई हैं। 2014-15, 2015-16 और 2016-17 के दौरान, भाकृअनुप-क्रीडा ने संबंधित सरकारी विभागों के साथ मिलकर, राष्ट्रीय और राज्य स्तर की संयोजित बैठकों के जरिए मानसून की कमी की स्थिति का सामना करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं, ताकि विभिन्न प्रकार के सूखों के लिए वास्तविक समय की प्रतिक्रिया योजना तैयार की जा सके।

निरंतर किए जा रहे प्रयासों के कारण, ऐसे क्षेत्रों में जहां मानसून का आगमन देरी से हुआ वहां किसानों को वैकल्पिक आकस्मिक फसलों के बीज बुआई के लिए उपलब्ध कराए गए जिससे कृषि भूमि को उपयोग में लाया जा सका, अन्यथा भूमि का बहुत बड़ा अंश बिना बुआई के ही रह जाता। प्रमुख सूखा प्रबंधन विकल्प तैयार किए गए जैसे कि भूमि उपचार, जल संचयन संरचनाएं, तालाब गाद का प्रयोग और वास्तविक समय आधारित आकस्मिक उपाय, जैसे-मानसून की शुरुआत में देरी के मामले में उपयुक्त बीज की व्यवस्था आदि शामिल हैं। मानसून के आगमन में देरी के समय सूखे से सहिष्णु, कम अवधि की किस्म, वैकल्पिक फसल, अंतर-फसल, पौधों की संख्या आदि में परिवर्तन इत्यादि प्रमुख हैं। मध्य-मौसम में सूखे के दौरान टहनियों की कटाई-छटाई, पत्तों पर छिड़काव, कटाई वाली फसलों पर वर्षा जल द्वारा जीवन रक्षा सिंचाई, इत्यादि सुझाव दिए जाते हैं। मौसम के अंत में सूखे से निपटने के लिए जीवन रक्षा सिंचाई,

पानी की उपलब्धता के आधार पर उपयुक्त रबी की कार्य योजना, चारा फसलों की कटाई, अगर ठीक से लागू किया जाए तो इन आकस्मिक योजनाओं द्वारा वर्षा रहित शुष्क क्षेत्रों में टिकाऊ उत्पादन के साथ-साथ हानि में कमी और देश की खाद्य सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान सुनिश्चित किया जा सकता है।

सूखा, चक्रवात, चरम वर्षा घटनाओं और गर्मी में अनुमानित वृद्धि के परिणामस्वरूप भोज्य पदार्थों के उत्पादन में अस्थिरता आने की संभावना बनी हुई है। यद्यपि, जलवायु परिवर्तनशीलता एक प्राकृतिक प्रक्रिया है फिर भी बड़े पैमाने पर वर्षा में अंतराल और कई जिलों में मौसमी वर्षा में निरंतर गिरावट, लंबे समय तक सूखा, बरसात के दिनों की संख्या में कमी, भारी बारिश वाली घटनाएं, देर से मानसून की शुरुआत इत्यादि देश के खाद्यान्न उत्पादन (खाद्यान्न, अनाज, दलहन, तिलहन और पौष्टिक अनाज) में महत्वपूर्ण बदलाव ला रहे है, जिसका प्रभाव तिलहन, दलहन और पौष्टिक अनाज पर अधिक स्पष्ट है।

देश में पिछले 15 वर्षों में, 7 वर्ष सामान्य बारिश से कम, 6 वर्ष सामान्य बारिश से अधिक और 2 साल औसत बारिश वाले व्यतीत हुए हैं, जिसमें 2009 में अधिकतम कमी (23 प्रतिशत), 2002 के दौरान 19 प्रतिशत और शेष वर्षों (2001, 2002, 2004, 2009, 2014 और 2015) में 10 प्रतिशत से अधिक की कमी पाई गई। हाल ही में देखी गई चरम मौसम की घटनाओं की वृद्धि की घटनाओं के कारण कृषि की उत्पादकता को बनाए रखने के लिए गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है और इसके लिए जलवायु परिवर्तन को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। 2002 से 2015 तक देश में अनाज, पौष्टिक अनाज, तिलहन और दलहन के उत्पादन में परिवर्तन को दर्शाता है (चित्र-1)। हालांकि, कुल खाद्य उत्पादन पिछले 15 वर्षों के

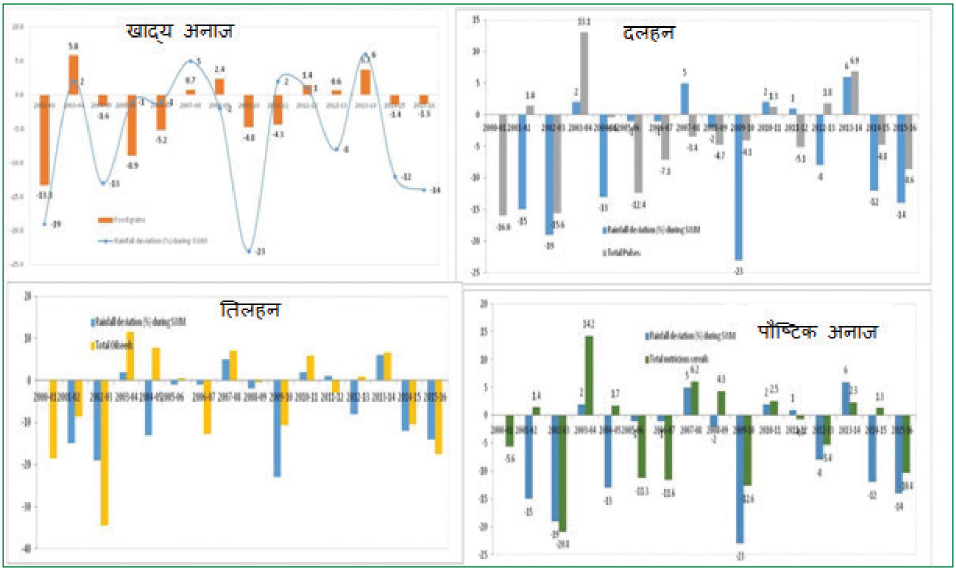

चित्र-1: अनाज, दलहन, तिलहन और पौष्टिक अनाज के उत्पादन में परिवर्तन के रूप में वर्षा से प्रभावित - राष्ट्रीय परिदृश्य

दौरान लचीलेपन के प्रमाणन स्तर पर प्राप्त हुआ है फिर भी तिलहनों का उत्पादन अभी भी काफी हद तक मौसमी वर्षा पर निर्भर है। इसके अलावा, 2009, 2012 और 2015 के सूखे के वर्षों में बड़े क्षेत्रों में खाद्य उत्पादन में गिरावट के साथ साथ खाद्य से प्राप्त होने वाली आय में भी भारी गिरावट दर्ज की गई है।

जिला कृषि आकस्मिक योजना (डीएसीपी)

वर्षा और सिंचाई प्रणाली दोनों में वर्षा में परिवर्तनशीलता के प्रभाव को कम करने के लिए, जिला स्तर की कृषि आकस्मिक योजना तैयार की जाती है। जिला स्तर की आकस्मिक योजनाएं ऐसे तकनीकी दस्तावेज हैं जिनमें कृषि और संबंधित क्षेत्रों (बागवानी, पशुधन, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन) पर समेकित सूचनाएं शामिल हैं और सभी प्रमुख मौसम संबंधी अप्रासंगिकताओं के लिए तकनीकी समाधान हैं, जैसे सूखे, बाढ़, गर्म हवाएं शीत लहर, असाधारण और उच्च तीव्रता वाली वर्षा, ठंड, कीट और रोग के प्रकोप और इनसे बचने के उपाय शामिल हैं। विभिन्न जिलों में मौजूदा कृषि-पारिस्थितिक स्थितियों के अंतर्गत सभी हितधारकों के साथ परामर्श करके एक मानक नमूना विकसित किया गया था, इनमें कृषि कार्यों के अनुकूल संभावित आकस्मिकताएं और सुझावयुक्त रणनीतियां शामिल थीं। एक ही मानक नमूने के माध्यम से विभिन्न जलवायु और फसल प्रणालियों के लिए एवं क्षेत्रीय विविधताओं को समायोजित करने के लिए अंकरूपण एक बहुत बड़ी चुनौती थी। दो हिस्सों से युक्त नमूने (अ) जिला कृषि जिले के संसाधनों की जानकारी जैसे कि बारिश, मिट्टी के प्रकार, भूमि उपयोग, सिंचाई स्रोत, अधिक प्रभावी फसलों और फसल प्रणालियों के साथ उनकी बुवाई की विधियों; पशुधन, मुर्गी पालन और मत्स्य पालन की जानकारी; उत्पादन और उत्पादकता आंकड़े; जिला और डिजिटल मिट्टी और बारिश के नक्शे, का सामना करने वाली प्रमुख आकस्मिकताओं और (आ) फसलों/ फसल प्रणालियों में अनुमानित मौसम संबंधी आकस्मिकताओं के लिए विस्तृत रणनीतियां जैसे विभिन्न अवधि के मानसून की शुरुआत में देरी; बारिश और सिंचित स्थितियों और मौसम से संबंधित चरम घटनाओं के लिए अनुकूलन रणनीतियां हैं। इन आकस्मिकताओं में मानसून की शुरूआत में होने वाली देरी या शुरुआती मौसम में सूखे और मध्य तथा मौसम के अंत में सूखे के लिए कृषि संबंधी उपायों पर वैकल्पिक फसल किस्मों/फसल की जानकारी शामिल होती है। इसके अलावा, पशुओं, कुक्कुट और मत्स्य पालन में आकस्मिक स्थितियों के लिए रणनीतियों को भी शामिल किया गया है। जिला आकस्मिक योजना के विभिन्न घटक और फसल प्रणालियों के मानक संलेखों के घटकों को सारणी-1 तथा आकस्मिकताओं के दौरान विभिन्न प्रकार के परिवर्तन के मामलों में आकस्मिक उपायों का एक उदाहरण सारणी-2 में दिया गया है। इसी प्रकार, वर्षा और सिंचाई के लिए सूखे प्रबंधन की जानकारी सारणी-3 में दी गई है।

सारणी-1 : जिला कृषि आकस्मिक योजना (डीएसीपी) मानक संलेख के घटक

भाग 1 एक नज़र में जिला कृषि प्रोफाइल	भाग 2 मौसम संबंधी आकस्मिकताओं के लिए रणनीतियां
• कृषि-जलवायु/पर्यावरण संबंधी क्षेत्र • वर्षा-ऋतु, कुल बरसात के दिन • भूमि उपयोग • मृदा • सकल और शुद्ध बोया क्षेत्र • सिंचाई - सकल क्षेत्र, शुद्ध क्षेत्र • प्रमुख क्षेत्र और बागवानी फसल • पशुधन - बड़े और छोटे रुमिनेन्ट्स • मुर्गी पालन • मछली पालन • प्रमुख फसलों का उत्पादन और उत्पादकता • बुआई का अंतराल • जिले में प्रमुख आकस्मिकताएं • जिला का स्थान मानचित्र और मृदा नक्शा	• सूखा-बारिशयुक्त स्थिति * प्रारंभिक मौसम सूखा शुरुआत में 2, 4, 6 और 8 सप्ताह की देरी * मानसून की शुरुआत सामान्य रूप से शुरू * मौसम के मध्य और अंत में सूखा • सूखा-सिंचित स्थिति * कम वर्षा के कारण पानी की कमी * निम्न वर्षा के कारण पानी की सीमित उत्सर्जन * नहरों में पानी को नहीं छोड़ना * तालाब में पर्याप्त पानी का अभाव * अपर्याप्त भूजल पुनर्भरण • बारिश और सिंचित स्थिति दोनों क्षेत्रों के लिए असामान्य बारिश (असाधारण/बेमौसमी) • बाढ़ • ओलावृष्टि • गर्म हवाएं/शीत लहर

सारणी-2 : तेलंगाना के वर्षा आधारित महबूबनगर जिले की लाल मृदाओं में देर से मानसून आगमन पर संभावित आकस्मिक उपाय

सामान्यतः प्रस्तावित आकस्मिक फसल/फसल प्रणालियां और किस्में				
मानसून की सामान्य शुरुआत (जून का दूसरा सप्ताह)	**2 सप्ताह तक की देरी (जून का चौथा सप्ताह)**	**4 सप्ताह तक की देरी (जुलाई का दूसरा सप्ताह)**	**6 सप्ताह तक की देरी (जुलाई का चौथा सप्ताह)**	**8 सप्ताह तक की देरी (अगस्त का दूसरा सप्ताह)**
मक्का (डीएचएम-103, 105, 113)	मक्का (डीएचएम-103, 105, 113)	मक्का (डीएचएम-109, 115, प्रकाश)	अरहर (पीआरजी-158, लक्ष्मी, मारुती)	बाजरा : (आईसीटीपी-8203, आईसीएमवी-221, एचएचबी-67)
अरंडी	अरंडी (क्रांति, ज्योति, जीसीएच-4, 6, डीसीएच-519)	अरंडी + अरहर (1:1) अरंडी:जीसीएच-4,6, डीसीएच-519; अरहर : मारुती, लक्ष्मी, पीआरजी-158	अरंडी + अरहर (1:1) अरंडी: क्रांति, ज्योति, किरण; अरहर: दुर्गा, पीआरजी-100	अरंडी + अरहर (1:1) अरंडी: क्रांति, ज्योति, किरण; अरहर: दुर्गा, पीआरजी-100
अरहर	अरहर एलआरजी-41, मारुती, अभय	अरहर (मारुती, पीआरजी-100)	अरहर	अरहर (मारुती, लक्ष्मी, पीआरजी-158)
मूंगफली	मूंगफली (वमन, प्रसुन, आईसीजीवी-91114)	अरंडी + बाजरा/रागी (1:1)	अरहर	अरंडी + अरहर (1:1)
चारा	ज्वार/ज्वार + अरहर : ज्वार (पीएसवी-1, पालेम-2, सीएसवी-15, सीएस-4, 18)	बाजरा : (आईसीटीपी-8203, आईसीएमवी-221, एचएचबी-67, आरएचबी-121)	बाजरा (आईसीएमएच-67, आरएचबी-121)	अरंडी + अरहर (1:1)/कुलथी: पीजेएम-1, वीएचजी-62, वीएचजी-9

सारणी-3 : आंध्र प्रदेश के अनंतपुर जिले में विभिन्न परिस्थितियों के लिए सूखा प्रबंधन एवं आकस्मिक उपायों की तैयारी

परिस्थितियां	आकस्मिक उपाय
1. वर्षा आधारित क्षेत्र में सूखे की स्थिति	
(अ) प्रारंभिक मौसमी सूखा (मानसून में शुरुआती देरी)-वर्षा आधारित लाल मिट्टी: सामान्य फसल/फसल प्रणाली: मूंगफली+अरहर अंतर-फसल (7:1/11:1/15:1)	**मानसून में 2 सप्ताह तक की देरी** • फसल तंत्र में बदलाव - कोई बदलाव की आवश्यकता नहीं • अरहर और अरंड की फसल **मानसून में 4 सप्ताह तक की देरी** • फसल/फसल पद्धति में परिवर्तन: मूंगफली जैसी वैकल्पिक फसलें, जैसे-अरहर, अरंड और कोरा **मानसून में 6 सप्ताह तक की देरी** • फसल/फसल पद्धति में परिवर्तन: आकस्मिक फसल, जैसे-ज्वार, बाजरा, कुलथी और कोरा • ज्वार की फसल : सीएसएच-9, सीएसएच-13, सीएसएच-14, सीएसएच-16, सीएसएच-18, सीएसवी-12, सीएसवी-13, सी-43, पीएसवी-15, पीएसवी-19, एनटीजे-1 , एनटीजे-2, एनटीजे-3 • बाजरा : आईसीटीपी 8203, राज-171, आईसीएमएस-7703, आईसीएमवी-221, आईसीएमएच-356, आईसीएमएच-420, आईसीएमएच-423, आईसीएमएच -451, एबीएच-1, एचएचबी-67, आरएचबी-121 • सिटेरिया : लेपक्षी, प्रसाद, कृष्णादेवराय, एसआईए-3085, नरसिंहराय, श्रीक्ष्मी, सूर्यनंदी, एसआईए-3156 • कुलथी : पीडीएम-1, वीजीएम-1, पीएचजी-9, और पीएचजी-62, पालम-1, पालम-2, एटीपीएचजी-11 • ज्वार/बाजरा : डीएएस-45 और डीएएस-65 किस्में चारा के लिए काटी जाती हैं और बारिश जारी रहने पर अनाज के लिए छोड़ दी जाती हैं।
	मानसून में 8 सप्ताह तक की देरी
	फसल/फसल पद्धति में परिवर्तन:
	• बाजरा : आईसीटीपी-8203, राज-171, आईसीएमएस-7703, आरएचबी-121

परिस्थितियां	आकस्मिक उपाय
	• ज्वार (चारा) की फसल : पीजीएच-1, पीजीएच-2, एसएसजी-59-3, एसएसजी-988, पीसी-23, पीसी-106, आईसीएमवी-221, आईसीएमएच-356, आईसीएमएच-420, आईसीएमएच-423, आईसीएमएच-451, एबीएच-1, एचएचबी-67, • बाजरा (चारा) : जैनट बाजरा, एपीएफबी-2, राज बजरी-2 • कुलथी : पीडीएम-1, वीजीएम-1, पीएचजी-9, और पीएचजी-62, पालम-1, पालम-2, एटीपीएचजी-11 • ग्वार : एचजीएस-563, आरजीएम-112, जीजी-1, एचजी-365, आरजीसी-936, आरजीसी-965, आरजीसी-1025 • बाजरा के लिए यूरिया का टॉप ड्रेसिंग • ज्वार/बाजरा की डीएएस-45 और डीएएस-65 किस्म को चारे के लिए काट लिया जाता है और बारिश जारी रहने पर अनाज के लिए छोड़ दिया जाता है।
(आ) प्रारंभिक मौसमी सूखा (सामान्य शुरुआत)	• बुआई के बाद 15-20 दिनों का सूखा होने से खराब अंकुरण/फसल में कुछ पौधे मृत हो सकते हैं जिनका पुनः रोपण किया जा सकता है।
(इ) मध्य मौसमी सूखा	• वनस्पति के चरण पर - मूंगफली के बाह्य आवरण से मृदा को ढकने की सलाह दी जाती है। • प्रजनन अवस्था में - तालाब में बारिश के पानी के साथ पूरक सिंचाई की व्यवस्था की जाती है।
(ई) मौसम के अंत में सूखा	• तालाबों में बारिश के पानी के साथ-साथ अनुपूरक सिंचाई (10 मिमी की गहराई)
2. सिंचित क्षेत्र में सूखे की स्थिति	
(अ) कम वर्षा के कारण नहरों में पानी की कमी	• लाल मिट्टी, काली मिट्टी एवं तालाब से सिंचित क्षेत्रों में धान की खेती। • मूंगफली की फसलें (15-31 नवंबर), मक्का, सूरजमुखी • धान (लघु अवधि किस्में), एसआरआई, अर्ध शुष्क चावल • सूरजमुखी (1 सितंबर - 30 जनवरी): एपीएसएच-1, एपीएसएच-66, केबीएसएच-1, केबीएसएच-44, एनडीएसएच-1, डीआरएसएच-1, डीआरएसएच-108
(आ) मानसून के शुरूआती दौर में कम रहने से नहरों में पानी की अनुपलब्धता	• नहर के अंतिम भाग में मूंगफली, सूरजमुखी के पौधे उगाये जा सकते हैं। • सितंबर के दौरान ज्वार/मूंग/कुलथी जैसी वर्षायुक्त फसलों की सिफारिश की जा सकती है।
(इ) मानसून में देरी से/अपर्याप्त वर्षा के कारण जलाशय के प्रवाह में कमी	लाल मिट्टी एवं काली मिट्टी में धान, सूरजमुखी और ज्वार की सिफारिश की जाती है क्योंकि वे लवणता के लिए सहिष्णु हैं।

परिस्थितियां	आकस्मिक उपाय
(ई) कम वर्षा के कारण अपर्याप्त भूजल पुनर्भरण	सिंचित लाल मिट्टी और काली मिट्टी में • सामान्य फसल मूंगफली, सूरजमुखी • फसल/फसल प्रणाली में परिवर्तन- मक्का, ज्वार, मूंग, उड़द, कोरा। • आकस्मिक फसलों की समय पर बुआई की सलाह। • लघु सिंचाई प्रणाली के माध्यम से महत्वपूर्ण चरणों में सिंचाई। • सिंचाई का प्रयोग सीमित संख्या में करने का सुझाव।

जिला कृषि आकस्मिक योजना (डीएसीपी) तैयार करने की प्रक्रिया

कृषि और सहकारिता विभाग (डीएसी), कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) से आईसीएआर-डीएसी की संयोजित बैठक में यह अनुरोध किया था कि वह सभी 126 कृषि-जलवायु क्षेत्रों के लिए जिला स्तर पर आकस्मिक योजना तैयार करने की जिम्मेदारी उठाए।

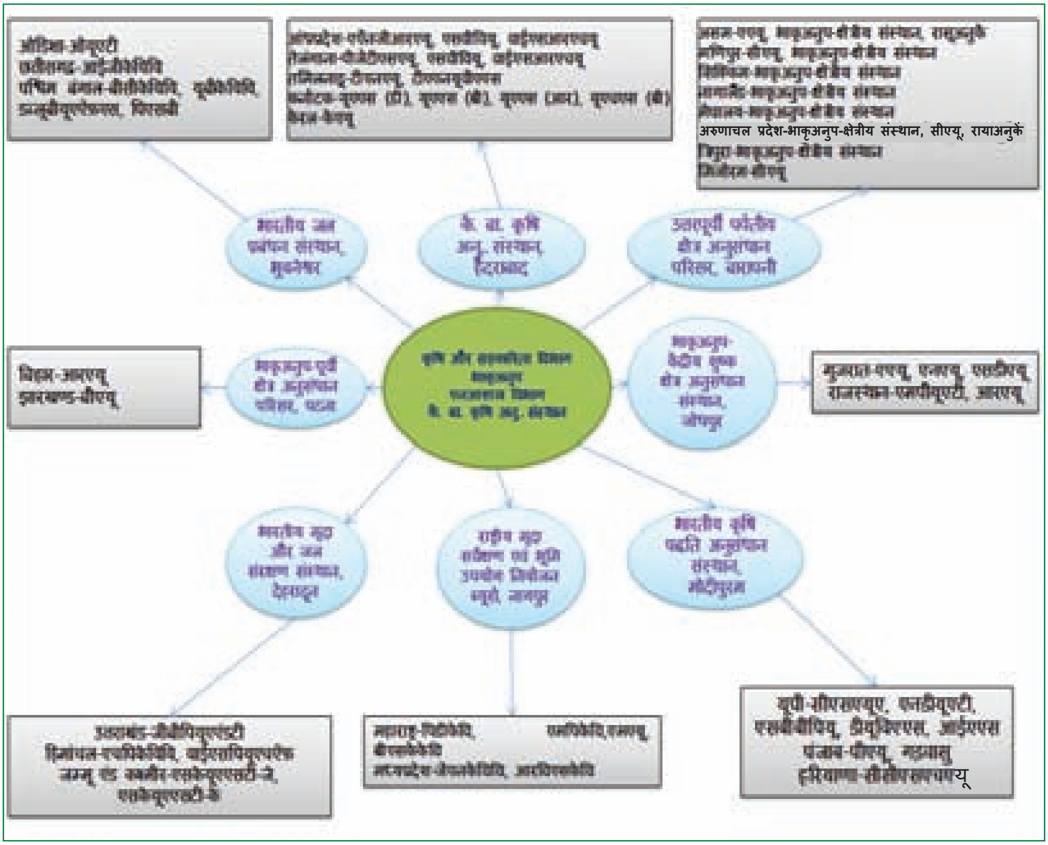

चित्र-2. जिला कृषि आकस्मिक योजना (डीएसीपी) के लिए तैयारी की प्रक्रिया

मौसम संबंधी अनियमितताओं से निपटने के लिए भाकृअनुप के प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन (एनआरएम) विभाग का इस कार्य के लिए चयन किया गया और भाकृअनुप-सीआरआईडीए, हैदराबाद को जिला स्तर की योजनाओं के समन्वयन और प्रस्तुत करने की समग्र जिम्मेदारी के साथ नोडल संस्थान के रूप में कार्य करने के लिए पहचाना गया। क्षेत्रीय स्तर पर समन्वय भाकृअनुप-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो (एनबीएसएसएलयूपी), नागपुर (पश्चिमी क्षेत्र) द्वारा किया गया। भाकृअनुप-भारतीय जल प्रबंधन संस्थान (आईआईडब्ल्यूएम), भुवनेश्वर (पूर्वी क्षेत्र); भाकृअनुप-भारतीय कृषि पद्धति अनुसंधान संस्थान (आईआईएफएसआर), मोदीपुरम (उत्तरी क्षेत्र) और भाकृअनुप-उत्तरपूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, बारापनी (उत्तर-पूर्वी क्षेत्र) और भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद ने दक्षिणी क्षेत्र के लिए एक अतिरिक्त जिम्मेदारी के साथ कार्य करना आरंभ किया। इसके अलावा, भाकृअनुप-केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (सीएजेडआरआई), जोधपुर; भाकृअनुप-भारतीय मृदा और जल संरक्षण संस्थान (आईआईएसडब्ल्यूसी), देहरादून और भाकृअनुप-पूर्वी क्षेत्र अनुसंधान परिसर (भाकृअनुप-आरसीईआर), पटना को कुछ योजनाओं की जांच के लिए गतिविधि में शामिल किया गया। सभी राज्यों के राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के नोडल अधिकारियों के लिए पांच क्षेत्रीय अभिविन्यास कार्यशालाएं आयोजित की गईं।

वर्ष 2010 के दौरान क्षेत्रीय अभिविन्यास कार्यशालाओं के बाद, कृषि विज्ञान केंद्रों (केवीके) के साथ संबंधित राज्य कृषि विश्वविद्यालयों (एसएयू) ने जिला आकस्मिक योजनाएं तैयार की। भाकृअनुप के संस्थानों और संबंधित विश्वविद्यालय प्राधिकरणों की उपस्थिति में योजनाओं की छानबीन और उन्हे अंतिम रूप देने के लिए विभिन्न राज्यों में कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। जिला आधारित आकस्मिक योजनाएं देश के 623 जिलों के लिए तैयार की गई हैं और इन्हें भाकृअनुप/ डीएसी की वेबसाइटों पर उपलब्ध कराया गया हैं (http://farmer.gov.in/, http://agricoop.nic.in/acp.html, http://crida.in)।

कृषि आकस्मिक योजना का कार्यान्वयन

आकस्मिक योजना के क्रियान्वयन के लिए जिला और राज्य स्तर पर व्यापक योजना बनाने की आवश्यकता है ताकि इनका भारत सरकार की योजनाओं के साथ समन्वय स्थापित किया जा सके और केंद्र सरकार से पर्याप्त अनुदान मिल सके। वर्तमान में, भारत सरकार के स्तर पर, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत फसल मौसम निगरानी दल मौसम की स्थिति पर नजर रखता है और सूखा और अन्य आकस्मिक व्यय के लिए तैयारियों में समन्वय के लिए मंत्रालय में मदद करता है। राज्य स्तर पर, आयुक्त, कृषि विभाग मौसम की स्थिति पर नजर रखता है। ब्लॉक स्तर पर, विभिन्न जलाशयों में पानी की स्थिति को देखते हुए बीजों का भंडारण और बुआई की प्रगति सुनिश्चित की जाती है साथ-ही-साथ जिला स्तर पर स्थित राज्य योजना विभाग की विभिन्न इकाइयों के माध्यम से एक साप्ताहिक रिपोर्ट भी तैयार की जाती है। ज्यादातर राज्यों में सरकार के राहत आयुक्तों द्वारा अधिसूचना के बाद सूखा, बाढ़ और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के दौरान आकस्मिक योजना के समग्र कार्यान्वयन समन्वय किया जाता है। वर्तमान में, मौसम फसल को बचाने और कृषि जलवायु क्षेत्र या जिला स्तर पर कुछ व्यापक उपायों के साथ घाटे को कम करने के लिए मूल रूप से प्रयासों कर रहे हैं। सरकार सूखे

की घोषणा से पहले कुछ समय के लिए इंतजार कर सकते हैं लेकिन, जिला टीम को पूरे मौसम के दौरान लगातार वर्षा और बुआई की प्रगति के बारे में जानकारी एकत्र करने की जरूरत है। इसी तरह, सिंचाई नीति के मामले में जल के निकास में देरी के समय जलाशयों में अन्तर्वाह और बहिर्वाह के आधार पर मूल्यांकन किया जा सकता है। बाढ़ के मामले में जिला टीम फसल भूमि के जलमग्न होने के लिए अग्रणी जलाशयों से अतिरिक्त बहाव से बचने के लिए सिंचाई के अधिकारियों के साथ समन्वय स्थापित करने की जरूरत है। चक्रवात के मामले में प्रतिक्रिया के लिए उपलब्ध समय कम होगा और बाढ़ से बचने के लिए सावधानियों को समय पर शुरू किए जाने की जरूरत है। अग्रिम योजना और समय पर आदानों के आयोजन द्वारा इन आकस्मिक योजनाओं से किसानों की मदद और आपदा प्रभावित क्षेत्रों में फसलों से होने वाले घाटे को कम किया जा सकता है।

कृषि आकस्मिक योजना के वास्तविक समय पर कार्यान्वयन के लिए सबसे महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकी एवं सहयोगी विधि निम्नलिखित हैं :-

1) तनाव (सूखा, बाढ़, गर्मी और शीत लहर) सहिष्णु किस्में ।
2) लघु अवधि किस्में।
3) लचीली फसल और फसल प्रणाली।
4) यथावत और गैर स्थलीय वर्षा जल प्रबंधन।
5) उर्वरक और कीटनाशकों की उपलब्धता।
6) पशुओं के लिए चारा, दवा और टीके।
7) सूखे के दौरान शुष्क बागवानी का संरक्षण।

2014 के दौरान आकस्मिक योजना के वास्तविक कार्यान्वयन के लिए योजनाओं को आवश्यकतानुसार लागू करने के लिए कई संयोजित बैठकें पटना (बिहार), अहमदाबाद (गुजरात), जयपुर (राजस्थान) और बेंगलुरू (कर्नाटक) में आयोजित की गई।

अप्रैल, 2015 में भारत के मौसम विज्ञान विभाग के पूर्वानुमान के अनुसार, दक्षिण-पश्चिम मानसून के दौरान संभावित वर्षा की कमी के बारे में, तत्काल एक उच्च स्तर की राष्ट्रीय परामर्श बैठक भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद में 24 मई, 2015 को आयोजित की गई। इसके बाद राज्यवार विभिन्न राज्यों में कृषि और सहकारिता विभाग और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा संयुक्त रूप से कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केंद्रों, बीज संस्थाओं और अन्य हितधारकों के साथ देश के 12 राज्यों में संयोजित बैठकें आयोजित की गई। विचार-विमर्श में सूखा प्रबंधन के साथ-साथ वैकल्पिक क्षेत्रों, बीज उपलब्धता और संबंधित विभागों की तैयारियों की रणनीति का सुझाव दिया गया।

वर्ष 2016 के दौरान, हालांकि भारतीय मौसम विज्ञान विभाग ने देश के लिए सामान्य वर्षा से ऊपर की भविष्यवाणी की थी परंतु राज्यों में मौसमी भविष्यवाणी से पूर्वी क्षेत्र में वर्षा

सामान्य से कम प्राप्त हुई और पश्चिमी क्षेत्र में वर्षा सामान्य से अधिक रही। इन परिस्थितियों से निपटने के लिए विशेष तैयारी की आवश्यकता महसूस की गई इनमें फसल की सघनता बढ़ने की संभावना, मध्य-मौसम/मौसम के अंत में सूखे से निपटने की तैयारी, उच्च वर्षा की घटनाओं और फसलों के क्षेत्र को बढ़ाने के उपाय शामिल हैं। जिला कृषि आकस्मिक योजनाएं, क्षेत्रों और मौसम संबंधी विधियों के संदर्भ में व्यापक कार्य क्षेत्र होने के कारण, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना/प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, जैसे विभिन्न विकास पहल के माध्यम से और राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान और विस्तार प्रणाली के समर्थन के साथ इन सभी योजनाओं को कार्यान्वित करने में सक्षम हैं।

कृषि योजनाओं को अधिकाधिक गतिशील बनाने के लिए, बारिश के मौसम के बाद एक योजना तैयार की जाती है, जिसमें दलहन, तिलहन आदि जैसे वैकल्पिक फसलों के सुझाव के माध्यम से मौसम में फसल उत्पादन को बढ़ाने के लिए एक खाका तैयार किया जाता है। साप्ताहिक बारिश के आधार पर भूजल पुनर्भरण का आकलन करने के लिए प्रक्रिया को विकसित किया गया है और सामान्य से उनके विचलन होने से उपयुक्त सुझावों का पालन किया जा रहा है।

चित्र-4 : कृषि आकस्मिकताओं के लिए तैयारियों को बढ़ाने के लिए इंटरफेस मीटिंग।

आकस्मिक योजना कार्यान्वयन के प्रभाव

वर्ष 2014-15 के दौरान आकस्मिक योजनाओं की प्रक्रिया और प्रभाव का आंकलन करने के लिए एक प्रयास किया गया। भारत में सूखा सबसे व्यापक और सामान्य मौसमी विचलन है। देश के स्तर पर, पिछले 15 वर्षों में, 7 वर्ष सामान्य बारिश से कम, 6 वर्ष सामान्य बारिश से अधिक और 2 वर्ष औसत बारिश वाले दर्ज किए गए हैं। इसमें से 4 वर्षों (2002, 2004, 2009 और 2014) में सामान्य बारिश से 10 प्रतिशत अधिक तथा 2002 में 22 प्रतिशत कम और 2009 के दौरान 21 प्रतिशत कम वर्षा प्राप्त हुई। 2004 और 2014 में दोनों ही वर्षों में बारिश सामान्य से 12 प्रतिशत कम थी। वर्षा की प्रक्रिया में इस तरह के बदलाव, विशेष रूप से फसल के मौसम के दौरान, वर्षा का वितरण, देश के कई हिस्सों में सूखे की स्थिति और उसी समय कई हिस्सों में बाढ़ की स्थिति पैदा करता है। 2014 में, मानसून की शुरुआत में देरी हो रही थी और देश भर में इसकी प्रगति अनिश्चित थी, जिसने 2.5 लाख हेक्टेयर तक खाद्यान्न फसलों

की बुआई को प्रभावित किया। सूखा वर्षों में, दक्षिण-पश्चिमी मानसून में महत्वपूर्ण नकारात्मक प्रस्थान आने वाले खरीफ कृषि उत्पादन को प्रभावित करते हैं। वर्ष 2014 के दौरान, हालांकि घाटा 12 प्रतिशत था, 2013-14 की तुलना में उत्पादन में क्षेत्रवार अनुमानित कमी अनाज में 5.3 प्रतिशत, तिलहनों में 16.5 प्रतिशत, दलहन में 9.7 प्रतिशत और पौष्टिक अनाज में 6.6 प्रतिशत थी।

आकस्मिक फसल योजनाओं को लागू करने में कुछ राज्यों के अनुभवों और उनके प्रभावों को राज्य कृषि विश्वविद्यालयों और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के परामर्श से नीचे दर्शाया गया है:-

- मध्य प्रदेश के 51 जिलों में से 30 जिलों में वर्षा की कमी (सामान्य से -20 से -59 प्रतिशत कम) के बावजूद राज्य में कुल बोया गया क्षेत्र 4.65 करोड़ हेक्टेयर से बढ़कर 5.47 करोड़ हेक्टेयर हो गया। जिसके परिणामस्वरूप कुल अनाज उत्पादन 8.35 करोड़ मीट्रिक टन से बढ़कर 9.60 करोड़ मीट्रिक टन हो गया। मध्य प्रदेश में सोयाबीन, कुल तिलहन और कुल दालों की उत्पादकता बढ़कर क्रमशः 0.73 से 0.94 टन/हेक्टेयर, 0.52 से 0.6 टन/हेक्टेयर और 0.75 से 0.94 टन/हेक्टेयर हो गई।
- यद्यपि पूर्वी गुजरात, मध्य गुजरात, कच्छ और दक्षिण गुजरात में 2014-15 के दौरान सामान्य से 77 से 88 प्रतिशत कम बारिश हुई है, आकस्मिक फसल योजनाओं को लागू करने के कारण यहां मूंगफली, ज्वार और बाजरा की फसलों में कम बारिश का असर न्यूनतम पाया गया।
- वर्ष 2014-15 के दौरान सूखे का प्रबंधन कर्नाटक में निम्नलिखित तरीकों से किया गया:- (अ) पारंपरिक रूप से मक्का, कपास, बाजरा बोने वाले क्षेत्रों में ज्वार, अरहर, मूंगफली और सूरजमुखी की खेती को प्रोत्साहित करना; (आ) भूमि संसाधन, मिट्टी प्रबंधन प्रथाओं को लाने के लिए कृषि समुदाय को प्रोत्साहित करना; (इ) चारा उत्पादन और सूखा सुरक्षा निवारक कार्यक्रमों के लिए आमतौर पर उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करना अर्थात्, फसल बीमा को प्रोत्साहित करना। गांवों की आवश्यकता के आधार पर चावल के पौधों के लिए सामुदायिक नर्सरी को बढ़ावा दिया गया ताकि ग्रामीण स्तर पर धान की मांग देरी से आने वाले मानसून के समय पूरी की जा सके।
- इसी तरह, झारखंड में तालाबों के ढांचे और बांधों को मजबूत बनाने के लिए प्रभावी जल भंडारण को प्रोत्साहित किया गया।
- 2014-15 के दौरान तेलंगाना में देर से आने वाली मानसून के लिए कुछ प्रमुख हस्तक्षेप किए गए जिनमे से वारंगल जिले में मक्का की फसल के लिए सिंचाई के लिए महत्वपूर्ण विकास चरणों पर अतिरिक्त बिजली आपूर्ति, यथावत संरक्षण उपायों को बढ़ावा देना, मानसून में देरी के मामले में छोटी अवधि वाली चावल की किस्में (एमटीयू-1011 के बजाय सोना मसूरी) को बढ़ावा देना, चावल की बुआई पद्धतियों में बदलाव अर्थात् प्रत्यक्ष बीज रोपण और ड्रम बीज क्रिया विधि का इस्तेमाल, कपास उगाए जाने वाले क्षेत्रों में सोयाबीन, मूंग, मूंगफली एवं एकीकृत खेती प्रणालियों को वर्षा आधारित क्षेत्रों में एक प्रमुख कार्यक्रम के रूप में प्रोत्साहित करना और सूक्ष्म सिंचाई के साथ फसल विविधीकरण आदि प्रमुख थे। इस प्रकार की त्वरित

कार्रवाई और वास्तविक समय की प्रतिक्रियाओं को लागू करने से मौजूदा वास्तविक फसल की सुरक्षा सकारात्मक रूप से प्रभावित होती है और कृषि उत्पादन प्रणालियों में समग्र स्थिरता लाती है।

- महाराष्ट्र में 2014-15 के दौरान देरी से होने वाले मानसून के प्रतिकूल प्रभावों को दूर करने के लिए बड़े पैमाने पर सूक्ष्म सिंचाई प्रौद्योगिकियों, कपास की देसी किस्मों के उच्च घनत्व रोपण, वृहत क्यारी तकनीकी द्वारा सोयाबीन की बिजाई, सोयाबीन के लिए छिड़काव सिंचाई, संकर अरहर का प्रचार और सोयाबीन के विकल्प के रूप में मूंग का उपयोग आदि प्रमुख उपायों को बढ़ावा दिया गया।
- आंध्र प्रदेश में, 2014-15 में सूखे के दौरान:- (अ) सभी स्थानीय टी.वी. चैनलों (संख्या 14) में न्यूज स्क्रॉल के माध्यम से आकस्मिक फसल योजना के बारे में व्यापक प्रचार किया गया। (आ) मिट्टी के गीली होते ही, अर्थात् बारिश होने के बाद ही, फसल बोने के लिए प्रोत्साहित करना। (इ) चावल की खेती वाले कुल 1.6 करोड़ हेक्टेयर में से 4 लाख हेक्टेयर पर प्रत्यक्ष बीज रोपण/ड्रम बीज रोपण चावल की खेती का प्रचार एक मिशन मोड के रूप में किया गया। (ई) अनंतपूर जिले के उन क्षेत्रों में जहां मूंगफली की फसल की बुवाई ना होने पर वहां पर कुलथी की फसल बोना। (उ) बागवानी के अंतरालों में चारा फसल उगाना।

आंध्र प्रदेश के रायलसीमा क्षेत्र में आकस्मिक फसल योजनाओं का ही यह परिणाम था कि वहां के किसानों ने वैज्ञानिकों की सलाह से खरीफ मौसम में वर्षा की शुरुआत में अपर्याप्त बारिश के कारण वैकल्पिक फसलों का रोपण किया (सारणी-4)।

सारणी-4 : आंध्र प्रदेश में आकस्मिक योजनाओं के क्रियान्वयन से प्राप्त हुई वैकल्पिक फसलों का जिला स्तर का आकलन (खरीफ-2015)

जिला	खरीफ में लगाई गई आकस्मिक फसल एवं उनका वास्तविक क्षेत्र (हेक्टेयर)		क्षेत्र में मूल फसल
	2015	सामान्य	
बाजरा			
कर्नूल	8273	7095	कपास, अरंडी, चावल
वाईएसआर कड़पा	2377	2035	चावल
चित्तूर	2403	2134	मूंगफली
अनंतपुर	2421	1782	मूंगफली
उड़द			
गुंटूर	1066	359	कपास और चावल
प्रकाशम	5181	1466	कपास और चावल
कड़पा	1279	327	चावल
मूँग			
अनंतपुर	12380	618	मूंगफली

जिला	खरीफ में लगाई गई आकस्मिक फसल एवं उनका वास्तविक क्षेत्र (हेक्टेयर)		क्षेत्र में मूल फसल
	2015	सामान्य	
वाईएसआर कड़पा	2069	342	चावल
अरहर			
प्रकाशम	67103	54038	कपास और चावल
गुंटूर	19560	15351	कपास और चावल
रायलसीमा	1200	1200	
चना			
अनंतपुर	6280	1614	मूंगफली
चित्तूर	5892	1642	मूंगफली
कड़पा	1227	78	चावल
मोटे अनाज और बाजरा			
कर्नूल	29000	20000	कपास, अरंडी, चावल
कर्नूल	19519		कपास, अरंडी, चावल

अगला कदम

भारत में विभिन्न राज्यों में पिछले कुछ वर्षों के दौरान यह महसूस किया गया कि जलवायु परिवर्तन के साथ, बड़ी संख्या में निम्न योजनाओं को गतिशील बनाने की गहन आवश्यकता है: (अ) नई प्रौद्योगिकियों का विकास, (आ) बेहतर बीज किस्में, (इ) नए विकास कार्यक्रमों के साथ संयोजन और (ई) राज्यों में हाल के मौसम विचलनों को संभालने का अनुभव। भविष्य में उठाए जाने वाले कदम अनुसंधान और विकास (आर एंड डी) और नीति मोर्चों के तहत समायोजित किए जाने चाहिए।

अग्रसर नीति

- राज्य कृषि विश्वविद्यालयों में आकस्मिकताओं का अनुकरण करके और किसानों के लाभों को प्रदर्शित करने के लिए अनुकूलन रणनीतियों का विकास करके अनुसंधान शुरू किया जाना चाहिए।
- कुशल और लागत प्रभावी तकनीकों को विकसित करने के लिए अनुसंधान एवं विकास के प्रयासों के साथ अन्य अनुसंधान क्षेत्रों में प्रौद्योगिकीय प्रगति की आवश्यकता है।
- एक पूरी तरह से अलग विस्तार दृष्टिकोण के साथ आकस्मिकता अनुकूलन उपायों के प्रसार पर केंद्रित प्रसार उपकरणों पर शोध किया जाना चाहिए।
- कार्यक्रमों का संचालन संबंधित एजेंसियों की तकनीकी आवश्यकताओं की जरूरतों के तहत राज्य कृषि विश्वविद्यालयों में बहु-अनुशासनात्मक टीमों का गठन होना चाहिए।

- ओलावृष्टि, ठंढ, असमय बारिश के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए विभिन्न राज्यों में उन्नत नवीन शोध प्रयास किए जाने चाहिए।
- अनुकूलन रणनीतियों के लिए योजना और उनका कार्यान्वयन करने के लिए आकस्मिक स्थिति की प्रकृति और सीमा को समझने के लिए उपग्रह से प्राप्त जानकारी के उपयोग पर अनुसंधान होना चाहिए।
- फिलहाल, सामान्य मानसून के उदाहरण को देखते हुए जिला स्तर पर वार्षिक कृषि योजना तैयार की जाती है। ऐसी योजनाएं गतिशील प्रकृति की होनी चाहिए और राज्य कृषि विश्वविद्यालयों और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों के साथ परामर्श के उपरांत तैयार किए जाने चाहिए ताकि नई तकनीकों का समय-समय पर समावेश किया जा सके। उन्हें मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए और समय-समय पर जिला कृषि आकस्मिक फसल योजनाओं का अद्यतनीकरण करने के लिए लागत आवश्यकताएं और इनकी पहचान के लिए आधार का निर्माण होना चाहिए।
- फसल के मौसम में अलग-अलग समय पर होने वाले सूखे के लिए हस्तक्षेप की शुरुआत के लिए रूपरेखा तैयार करना आवश्यक है।
- कृषि योजना तैयार करने, कार्यान्वयन की प्रक्रिया और जिला/राज्य प्राधिकरणों द्वारा प्रभावी ढंग से निगरानी करने के लिए विशेष जोर दिया जाना चाहिए। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थान/स्थानीय कृषि विश्वविद्यालयों को योजना तैयार करने और निगरानी में भागीदार बनाया जा सकता है, जबकि विभिन्न विभागों को कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार बनाया जा सकता है।
- कृषि योजना तैयार करने में मौसम का पूर्वानुमान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फिलहाल भारतीय मौसम विभाग, केवल देश/क्षेत्रीय स्तर पर मानसून (अप्रैल/मई) के शुरू होने से पहले पूर्वानुमान प्रदान करता है और यह केवल सीमित प्रयोजन के लिए ही काम करता है। अग्रिम पूर्वानुमान को सुधारने और इसे जिला/ब्लाक स्तर पर फैलाने के लिए ठोस प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। पूर्वानुमान के लिए प्रवर्धित पूर्वानुमान और मूल्यवर्धित सेवाएं, कृषि योजना के लिए जानकारी का कुशल उपयोग करने हेतु राज्य कृषि विश्वविद्यालयों एवं संबंधित अनुभाग दोनों की मदद करेंगे।
- भारतीय मौसम विभाग द्वारा जिला स्तर पर बनाए गए साप्ताहिक पूर्वानुमान का बेहतर इस्तेमाल करने और कृषक समुदायों के लिए सलाह देने के लिए क्षेत्रीय भारतीय मौसम विभाग केंद्रों के साथ जिला स्तर पर तंत्र के बीच अंतरण की आवश्यकता है। चिह्नित सूखाग्रस्त जिलों में, प्रस्तावित आकस्मिकता इकाई, कृषि सलाहकारों की तैयारी और प्रसार के लिए क्षेत्रीय मौसम विभागीय केंद्रों के साथ बेहतर तालमेल के लिए तंत्र हो सकता है। वर्षा में बड़े पैमाने पर स्थानिक परिवर्तनशीलता (विशेषकर कम से मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में) के साथ, भारतीय मौसम विभाग को उप-जिला मौसम पूर्वानुमान प्रदान करने की जरूरत है जो प्रखंड स्तर की बारिश की जानकारी के साथ एकीकृत हो सकती है।
- राज्य सरकार द्वारा एकत्र की जा रही प्रचलित मौसम स्थितियों पर कृषि समुदायों को सूचना प्रसारित करना और राज्य और केंद्र सरकारों द्वारा प्रदान किया जाने वाला समर्थन

भी बहुत महत्वपूर्ण है। खेती समुदाय तक पहुंचने के लिए आवश्यक जानकारी के बिना कृषि समुदाय को लाभ नहीं होगा। इसलिए मीडिया, जैसे-टीवी (स्थानीय भाषा), रेडियो, इंटरनेट, पत्रक/विवरणिका, का उपयोग कृषि समुदाय तक सूचना का प्रसार करने के लिए किया जाना चाहिए।

- किसानों को कृषि बीमा के लिए जागरूक करने की आवश्यकता है जो प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में किसानों के लिए बहुत ही लाभकारी सिद्ध हो सकता है।
- सूचना प्रौद्योगिकी का व्यापक रूप से दो-तरफा संचार के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए। एक तो जमीनी-सच्चाई जानकारी संग्रह के लिए प्रयोग और दूसरा रूपांतरित अनुकूलन रणनीतियों को वापस भेजना। ऐसी परिस्थितियों में जानकारी एकत्र करने के लिए प्रौद्योगिकी का भी उपयोग किया जा सकता है।
- पूरे देश में फसली क्षेत्र का अंकीय रूप में परिवर्तन वास्तविक समय के आधार पर किया जाना चाहिए। इस तरह के प्रयास न केवल समस्या के प्रसार के आधार पर अनुसंधान एवं विकास गतिविधियों के प्राथमिकताकरण में मदद करेंगे बल्कि मौसम विसंगतियों के प्रभावों से निपटने के लिए कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रीय स्तर की नीतियों का विकास करने में भी लाभकारी सिद्ध होंगे।

भविष्य में आकस्मिकता से निपटने की योजना

- जिला स्तर पर योजना प्रक्रिया में बदलाव लाने की आवश्यकता है। योजना तैयार करने की वर्तमान व्यवस्था जलवायु परिवर्तनशीलता/परिवर्तन के मुद्दों को हल नहीं करती है। नई पद्धति आकस्मिक क्रियान्वयन, आवश्यक आदानों की आवश्यकता, विशेष रूप से आकस्मिक फसल बीजों के लिए, अलग-अलग अवधियों द्वारा शुरू होने में देरी, पत्तों पर अन्य पोषक तत्वों के लिए छिड़काव, रसायनों आदि जैसे अन्य आदानों, उनकी उपलब्धता और मूल्य निर्धारण, वितरण के लिए लक्षित क्षेत्र को प्रतिबिंबित करना चाहिए। सूखा, बाढ़, असुविधाजनक बारिश आदि से निपटने के लिए जिला एवं गांव/तालुक स्तर पर कृषि प्रणाली, डीजल पंप सेट, महत्वपूर्ण सिंचाई के साधन, पानी के स्रोत आदि की जानकारी न्यूनतम आवश्यकताएं हैं।

- आकस्मिक समूहों/स्व-सहायता समूहों/किसान संघ आदि के लिए बीज गुणन हेतु दीर्घकालिक रणनीति की आवश्यकता है।

- कृषि विभाग में जिला स्तर पर कृषि आकस्मिक प्रकोष्ठों की स्थापना के साथ-साथ डेयरी, बागवानी, भूजल आदि जैसे अन्य क्षेत्रों के कर्मचारियों विभिन्न मौसमों में उभरते कृषि परिदृश्यों पर नजर रखने और योजनाओं की शुरूआत करने के लिए इन प्रकोष्ठों की जिम्मेदारी निहित है। जब आवश्यक हो तब योजना के कार्यान्वयन में संबंधित विभागीय प्रमुखों को निविष्टियां प्रदान करनी चाहिए।

- डीएसीपी की विकास परियोजनाओं/योजनाओं को भी इंगित करना चाहिए, जो आकस्मिक योजनाओं के क्रियान्वयन प्रक्रिया के दौरान विभिन्न हस्तक्षेपों के लिए धन उपलब्ध कराने के लिए फायदा उठा सके। यह एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि एकीकृत जल प्रबंधन

कार्यक्रम, मनरेगा, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना आदि परियोजनाएं/योजनाएं ग्रामीण विकास, जल संसाधन आदि विभागों द्वारा लागू की जाती हैं और प्रत्येक राज्य में कार्यान्वयन की एक अलग प्रक्रिया है।

- मौसम में हुए बदलाव के दौरान यह देखा गया है कि बाढ़, बेमौसम बारिश, ओलावृष्टि, इत्यादि के समय राहत उपायों को अपनाने के लिए बहुत कम समय मिलता है। इन घटनाओं के प्रभाव पर काबू पाने के लिए संबंधित सरकारी विभागों और कृषि समुदाय को संभालने के लिए, प्रभावित क्षेत्रों में प्रतिक्रिया के उपाय तुरंत शुरू करने के लिए इन विभागों को एक लचीले कोष के साथ सशक्त बनाने की आवश्यकता है। जिलों को इन उद्देश्यों के लिए प्राथमिकता दी जा सकती है और तदनुसार निधि प्रदान की जा सकती है।

सारांश

जलवायु परिवर्तनशीलता/परिवर्तन को संबोधित करने के लिए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के द्वारा एक समन्वित प्रयास, राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली (एनएआरएस) के माध्यम से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के मार्गदर्शन में क्रीडा, हैदराबाद द्वारा सूखा प्रबंधन हेतु आकस्मिक योजनाएं बनाकर 623 जिलों मे लागू की गई हैं। आकस्मिक योजना की तैयारी और कार्यान्वयन को देश में कृषि क्षेत्र को अधिक लचीला बनाने के लिए एक महत्वपूर्ण अनुकूलन उपाय के रूप में दोनों संघीय और राज्य सरकारों द्वारा चुना गया है। शुष्क मौसम, उच्च वर्षा, ओलों जैसी मौसम विकृतियों से निपटने के लिए लगातार शोध की आवश्यकता है। इसी प्रकार, बहुत सारी रसद सामग्री की व्यवस्था की जाती है (बीज नियमावली योजना बनाने की दृष्टि से, पत्ते के छिड़काव के रूप में उपलब्धता, पंप सेट, वैकल्पिक फसल बीज आदि) जो एक स्थाई योजना के विकास और दोनों संघीय और राज्य सरकारों से समर्थन की आवश्यकता होती है। समय-समय पर पूरी तरह से तैयार इस रूपरेखा को ऐसी जगह पर रखना होगा जहां मौसम विज्ञान विभाग और कृषि अनुसंधान प्रणाली द्वारा किसानों को वास्तविक समय पर संग्रह के माध्यम से और सूक्ष्म स्तर पर मौसम के आंकड़ों के विश्लेषण के माध्यम से तथा सलाह के कार्यान्वयन के लिए समर्थन के जरिए विस्तार एजेंसियों द्वारा मूल्यवान निविष्टियां प्रदान की जाएंगी।

संदर्भ

वेंक्टेश्वर्लु, बी, ए के सिंह, वाई जी प्रसाद, जी रविंद्रा चारी, सीएच श्रीनिवास राव, के वी राव, डी बी वी रमण एवं वि यू एम् राव. 2011. डिस्ट्रिक्ट लेवल कंटीजेंसी प्लान्स फार वेदर अबेरशंस इन इंडिया. सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट डिवीज़न, इंडियन काउन्सिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, हैदराबाद-500 059, पीपी-136.

उमटे, एम जी, जी आर मोरे, वाई जी प्रसाद, जी रविंद्रा चारी, डी के मंडल, डी बी वी रमण, दीपक सरकार एवं वेंक्टेश्वर्लु, बी. 2011. डिस्ट्रिक्ट लेवल कंटीजेंसी प्लान्स फार वेदर अबेरशंस इन मराठवाड़ा रीजन, महाराष्ट्र. मराठवाड़ा कृषि विद्यापीठ, परभणी-431 402 एवं सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद-500 059, पीपी-272.

वाई जी प्रसाद, वेंक्टेश्वर्लु,बी, जी रविंद्रा चारी, सीएच श्रीनिवास राव, के वी राव, डी बी वी रमण, वी यू एम् राव, जी सुब्बा रेड्डी एवं ऐ के सिंह. 2012. कंटीजेंसी क्राप प्लानिंग फार 100 डिस्ट्रिक्स इन पेनिन्सुलर इंडिया. सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद-500 059, पीपी-302.

राजेंद्र प्रसाद, जी रविंद्रा चारी, के वी राव, वाई जी प्रसाद, सीएच श्रीनिवास राव, डी बी वी रमण, एन के शर्मा, वी यू एम् राव एवं वेंक्टेश्वर्लु, बी. 2013. डिस्ट्रिक्ट लेवल कंटीजेंसी प्लान्स फार वेदर अबेरशंस इन हिमाचल प्रदेश. सीएसकेएचपीकेवी, पालमपुर, हिमाचल प्रदेश और सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद-500 059, पीपी--222.

श्रीनिवास राव, सीएच, वाई जी प्रसाद, जी रविंद्रा चारी, सी ए रामा राव, के वी राव, डी बी वी रमण, ए वी एम् सुब्बा राव, राजबीर सिंह, वी यू एम् राव, एम् महेश्वरी एवं ए के सिक्का. 2014. नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट डिवीज़न, इंडियन काउन्सिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, हैदराबाद-500 059, पीपी--80.

श्रीनिवास राव, सीएच, जी रविंद्रा चारी, पी के मिश्रा, एन के कुमार, आर जी एम शंकर, वेंक्टेश्वर्लु, बी एवं ए के सिक्का. 2013. रियल टाइम कंटीजेंसी प्लानिंग. इनिशियल एक्सपेरिएंसेस फ्राम एक्रीपडा. नेशनल इनीसिएटिवे फार क्लाइमेट रेसिलिएंट एग्रीकल्चर, आल इंडिया कोआर्डिनेटेड रिसर्च प्रोजेक्ट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद-500 059, पीपी--63.

श्रीनिवास राव, सीएच, के वी राव, जी रविंद्रा चारी, वाई जी प्रसाद, ए वी एम सुब्बा राव, डी बी वी रमण, जे वी एन एस प्रसाद, सी ए रामा राव, पी के पंकज, के ए गोपीनाथ, बी के कांडपाल, एम महेश्वरी, वी यू एम राव एवं ए के सिक्का. 2015. कंपेन्सेटरी रबी प्रोडक्शन प्लान-2015. टेक्निकल बुलेटिन 1/2015. सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद एवं नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट डिवीज़न, इंडियन काउन्सिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, हैदराबाद - 500 059, पीपी--66.

श्रीनिवास राव, सीएच, वेंक्टेश्वर्लु, बी,ए के सिक्का, वाई जी प्रसाद, जी रविंद्रा चारी, के वी राव, के ए गोपीनाथ, एम ओस्मान, डी बी वी रमण, एम. महेश्वरी एवं वी यू एम राव. 2015. डिस्ट्रिक्ट एग्रीकल्चर कंटीजेंसी प्लान्स टू एड्रेस वेदर अबेरशंस एंड फार सस्टेनेबल फ़ूड सिक्योरिटी इन इंडिया. क्रीड़ा-निक्रा बुलेटिन 3/2015. भाकृअनूप- सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट डिवीज़न, इंडियन काउन्सिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च, हैदराबाद-500 059, पीपी--22.

श्रीनिवास राव, सीएच एवं के वी राव. 2016. डिस्ट्रिक्ट एग्रीकल्चरल कंटीजेंसी प्लान्स फार मैनेजिंग वेदर अबेरशंस एंड सस्टेनेबल एग्रीकल्चर. क्रीड़ा ब्रोचर 2016. भाकृअनूप- सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राइलेंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद, नेचुरल रिसोर्स मैनेजमेंट डिवीज़न, हैदराबाद-500 059,पीपी-8.

श्रीनिवास राव, सीएच, आर लाल, जे वी एन एस प्रसाद, के ए गोपीनाथ, आर. सिंह, वी एस जक्कूला, के एल सहरावत, वेंक्टेश्वर्लु, बी, ए के सिक्का एवं एस एम वीरमाणी. 2015. पोटेंशियल एंड चैलेंजेज आफ रेनफेड फार्मिंग इन इंडिया. एडवांसेज इन एग्रोनोमी, 133: पीपी-113-181.

श्रीनिवास राव, सीएच, वेंक्टेश्वर्लु, बी, दीक्षित श्रीनाथ, आर वीरैया, एस राममोहन, बी संजीव रेड्डी, कुंडू सुमंता एवं के गायत्री देवी. 2010. इंप्लीमेंटेशन आफ कंटीजेंसी क्राप प्लानिंग फार ड्राउट इन ट्राइबल विलेजिज इन आंध्र प्रदेश: इम्पैक्टस आन फ़ूड एंड फोडर सिक्योरिटी एंड लिवेलीहुड्स. इंडियन जर्नल आफ ड्राइलेंड एग्रीकल्चरल रिसर्च एंड डेवलपमेंट. 25(1): पीपी-23-30.

★★★

19

जलवायु समुत्थान प्रौद्योगिकियों का ग्रामीण स्तर पर प्रदर्शन

- जे वी एन एस प्रसाद, एम उस्मान, सीएच श्रीनिवास राव, अशोक कुमार इंदोरिया, एस बोरकर, संतराम यादव एवं नितिन सोनी

परिचय

विश्व में सभी जगह जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव दिखाई पड़ रहा है परंतु भारत जैसे विकासशील देश में यह समस्या ओर भी जटिल होती जा रही है क्योंकि यहां की जनसंख्या का एक बड़ा भाग सदैव कृषि पर ही निर्भर रहता है। प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव तथा अनुपयुक्त फसल प्रणाली का चयन इसे ओर भी गंभीर बना देता है। निम्नलिखित कुछ ऐसे कारण हैं जिनसे जलवायु परिवर्तन का प्रभाव सर्वाधिक कृषि फसलों पर पड़ता है :-

- कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्रों में तापक्रम एवं वर्षा वितरण में परिवर्तन होना।
- वाष्पोत्सर्जन बढ़ने से शुष्क कृषि जलवायुवीय क्षेत्रों के औसत तापमान एवं वर्षा के वितरण में परिवर्तन होना।
- उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वाष्पोत्सर्जन की दर में वृद्धि के फलस्वरूप लगातार सूखे की तीव्रता में वृद्धि होना।
- कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा बढ़ने से फसलों की प्रकाश संश्लेषण तथा जल उपयोग करने की क्षमता में वृद्धि होना।
- वर्षा की अवधि एवं दिनों में कमी तथा तीव्र चक्रवात एवं तूफानों का आना।
- सूखा, बाढ़, पाला एवं वर्षा जैसी चरम मौसमी दशाओं में परिवर्तन और तापमान में असमानता आना।

अतीत में देश को प्रतिवर्ष एक से दो बार असामान्य मौसम का सामना करना पड़ा है। वर्ष 2002 में सूखा एवं शीत लहर और गर्म हवाएं चलना, वर्ष 2003 में अधिक तापमान एवं लू चलना, वर्ष 2004 में अधिक तापमान, वर्ष 2014 में सूखा एवं चक्रवात आदि मौसमी आपदाओं ने देश के एक या अधिक भागों में कृषि उत्पादन को प्रभावित किया है। भारत के विभिन्न भागों में तापमान में वृद्धि, सूखा तथा वर्षा अवधि कम होने पर गेहूं एवं चावल के उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव के पर्याप्त प्रमाण हैं।

जलवायु परिर्वतन सदियों से चले आ रहे मौसमी स्वरूप में आने वाला अवांछनीय एवं स्थाई बदलाव होता है। यह परिवर्तन वैसे तो वैश्विक होता है परंतु इसका दुष्प्रभाव विकासशील देशों में अधिक दिखाई पड़ता है। यहां 11 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होती है जिससे सकल घरेलू उत्पाद में 16 प्रतिशत तक कमी हो सकती है।

मध्यम अवधि (2010-2039) में जलवायु परिवर्तन की दर नकारात्मक आंकी गई है जिसमें तापमान वृद्धि से उत्पादन में 4.5 से 9 प्रतिशत तक कमी का अनुमान है। वर्तमान में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 15 प्रतिशत है। उत्पादन में 4.5 से 9 प्रतिशत नकारात्मक दर होने पर यह लगभग 1.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की कमी को दर्शाता है। सभी के लिए पोषण सुरक्षा के निर्धारण हेतु यह आवश्यक है कि कृषि के उत्पादन तथा उत्पादकता को बढ़ाया जाए, यह विशेषकर गरीब, छोटे तथा सीमांत कृषकों हेतु अति आवश्यक है जिनके पास संसाधनों की कमी है।

जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु सक्षम कार्य योजना के अभाव में लंबी अवधि में लघु और सीमांत किसानों के लिए यह एक अति गंभीर समस्या बन सकती है। इन सभी तथ्यों को लेकर भारत सरकार ने जलवायु परिवर्तन से निपटने हेतु कृषि क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास को प्राथमिकता प्रदान करते हुए, इसे अपने विशेष क्रियान्वयन कार्यक्रम में शामिल किया है। प्रधानमंत्री राष्ट्रीय कार्य योजना के आठ मुख्य बिंदुओं में कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव एक मुख्य बिंदु के रूप में शामिल किया गया है।

कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

कृषि पर जलवायु परिवर्तन के विपरीत प्रभाव के कारण खाद्य सुरक्षा की समस्या खड़ी हो सकती है तथा कृषि पर आश्रित बड़ी जनसंख्या की आजीविका पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ सकता है। भारत में खाद्यान उत्पादन, जलवायु परिवर्तन जैसे तापमान में परिवर्तन एवं मानसूनी वर्षा से काफी प्रभावित होता है। उदाहरण के रूप में रबी मौसम की फसलों में एक डिग्री सेंटीग्रेट तापमान की वृद्धि होने पर भारत में गेहूं का उत्पादन 4 से 5 मिलियन टन तक गिर सकता है। तापमान तथा वर्षा में होने वाला छोटे से छोटा परिवर्तन फल, सब्जी, चावल, सुगंधित एवं औषधीय पौधों के उत्पादन एवं गुणवत्ता पर सीधा प्रभाव डालता है। खरीफ या वर्षा कालीन फसलों पर तापमान का असर कम देखा गया है परंतु चरम मौसमी दशाओं जैसे वर्षा की अवधि में परिवर्तन, वर्षा की तीव्रता, सूखा एवं बाढ़ की आवृति एवं अवधि, तापमान की असमानता, वातावरणीय आर्द्रता में परिवर्तन एवं कीट व्याधियों का प्रकोप आदि खरीफ फसलों पर गहरा प्रभाव डालते है। शीतकालीन फसलों के संदर्भ में जलवायु परिवर्तन तुलनात्मक रूप से ओर भी बड़ी समस्या है, जिसमें तापमान का अधिक होना, दिन एवं रात के तापमान में अधिक असमानता, वर्षा की अनिश्चितता, पाला आदि प्रमुख हैं।

ये कारक कृषि एवं कृषि प्रधान उद्योगों विशेषकर पशुपालन के उत्पादन, उत्पादकता एवं खाद्य सुरक्षा पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं। भारत में पशुपालन को मुख्यतः

फसल उत्पादन के रूप में अपनाया जाता है जिसमें फसल के अवशेषों को पशुओं के आहार के रूप में उपयोग में लाया जाता है। फसल क्षेत्र या उत्पादन में किसी भी प्रकार की कमी पशु आहार में कमी लाती है जिसका सीधा प्रभाव दुग्ध उत्पादन पर दिखाई पड़ता है। इसके साथ ही साथ अधिक तापमान पशुओं की आहार क्षमता को भी कम करता है। अधिक तापमान तथा वर्षा की अनिश्चितता कीट जनित रोग व्याधियों तथा परजीवियों की संख्या को बढ़ाने में मदद करती है। इसके साथ ही बीमारियों के चक्र में परिवर्तन आ सकता है जिससे बीमारियों की आवृति बढ़ जाती है और नई बीमारियों के अनुकूलन से पशुओं की उत्पादन क्षमता घट जाती है।

कार्य योजना की आवश्यकता

खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु कृषि उत्पादन बढ़ाना अति आवश्यक है, विशेषकर लघु एवं सीमांत कृषकों को लेकर जिनके पास संसाधनों का अभाव होता है। कार्य योजना के अभाव में लंबी अवधि में छोटे एवं सीमांत कृषकों की आजीविका पर जलवायु परिवर्तन के कारण संकट पैदा हो सकता है। इसी कारण यह अत्यावश्यक है कि भारतीय कृषि को जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशील/समुत्थानशील बनाया जाए।

कृषि तंत्र का वातावरण के विक्षेपण के विरुद्ध सामान्य स्थिति में आने की क्षमता को सहनशीलता/समुत्थानशीलता कहते हैं। जलवायु परिवर्तन की कार्य योजना के लिए यह आवश्यक है कि इसमें कृषि की सहनशीलता/समुत्थानशीलता को बढ़ाया जाए। प्रबंधन तकनीकें, विपरीत मौसमी परिस्थितियों में कृषि उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होती है क्योंकि ये तकनीकें विपरीत मौसमी परिस्थितियों में भी फसलों की सहनशीलता/समुत्थानशीलता क्षमता बढ़ाकर उपज कम करने वाले कारकों के प्रभाव को घटाती है। भारतीय कृषि की जलवायु परिवर्तन परिस्थितियों का सामना करने हेतु कुछ तकनीकें निम्नलिखित हैं :-

- मृदा में जैविक कार्बन को बढ़ाना।
- मृदा में स्वस्थान नमी संरक्षण।
- फसल अवशेषों को मृदा में मिलाना।
- पूरक सिंचाई हेतु जल एकत्रीकरण एवं इसका पुनः उपयोग करना।
- सूखा अवरोधी एवं बाढ़ के प्रति सहनशील फसलों एवं फसल किस्मों का विकास।
- जल संरक्षण तकनीकियां।
- स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कर्षण क्रियाएं एवं पशु पोषण प्रबंधन।
- पशुपालन में उन्नत चारे एवं खाद्य प्रणाली का प्रयोग।
- संस्थागत अनुसंधानों को प्रोत्साहित कर कृषकों तक लाभ पहुचाना।
- स्थानीय प्रदर्शनों में व्यापक सहभागिता सुनिचित करने हेतु कृषकों की क्षमता का विकास करना ताकि वे विपरीत मौसमी परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन लेने में सक्षम हो सकें।

इस परियोजना में अति संवेदनशील जिलों का चयन कर वहां उपलब्ध उन्नत कृषि तकनीकों के प्रदर्शनों को कृषकों तक पहुंचाया जाता है। राष्ट्रीय जलवायु समुत्थान कृषि पहल (निक्रा) नामक परियोजना भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की एक नेटवर्क परियोजना है जिसका शुभारंभ फरवरी 2011 में बारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत किया गया। बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) में इसे निम्ननिखित उदेश्यों के साथ संचालित किया गया :-

- भारतीय कृषि को उन्नत उत्पादन एवं जोखिम प्रबंधन तकनीकों द्‌वारा जलवायु भिन्नता तथा परिवर्तन के प्रति सहनशील बनाना जिसमें फसल उत्पादन, पशुपालन, मत्स्य उत्पादन आदि सम्मिलित है।
- स्थान विशेष की तकनीकों का कृषकों के खेतों में प्रदर्शन करना ताकि कृषक वर्तमान परिस्थिति में जलवायु जोखिम तकनीकों को सरलता से अपना सकें।
- वैज्ञानिकों एवं सहभागियों की कृषि की जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशील/समुत्थानशील क्षमता के अनुसंधान एवं विस्तार का विकास करना।

तकनीकी प्रदर्शन घटक एक प्रक्षेत्र पर की जाने वाली योजनात्मक तकनीकी प्रदर्शन की प्रक्रिया है जिसमें कृषकों की सहभागिता सुनिश्चित की जाती है। यह 'निक्रा' का मुख्य उद्देश्य है। यह परियोजना देश के कुल 28 राज्यों एवं एक केंद्रशासित प्रदेश के 121 जलवायु अतिसंवेदनशील गांवों में संचालित हो रही है। इस परियोजना का मुख्य लक्ष्य परियोजना अवधि में संपूर्ण देश में लगभग एक लाख कृषक परिवारों को सम्मिलित करना है। इस परियोजना में निम्नलिखित बिंदुओं पर जोर दिया गया है:-

- संवेदनशील जिलो के कृषक प्रक्षेत्रों में क्षेत्र की जलवायु अनुरुप प्रदर्शनी आयोजित करना।
- कृषकों तथा अन्य सहभागियों में कृषि की सहनशील, समुत्थानशील क्षमता के प्रति रुझान पैदा करना तथा उसका विकास करना।
- संस्थान कार्य प्रणाली को ग्रामीण स्तर पर ले जाना जिससे ग्रामीण समाज जलवायु परिवर्तन समस्या के प्रति सजग हो सके।

इस परियोजना में कुल 121 जलवायु संवेदनशील जिलों को वैज्ञानिक समीक्षा के आधार पर, मौसमी समस्याओं, कृषकों के अनुभवों के आधार पर तथा निचले स्तर से ऊपरी स्तर तक सहभागिता बिंदुओं को ध्यान में रखकर चयनित किया गया हैं। चित्र-1 में चयनित जिलों तथा उनकी मौसमी चुनौतियों को प्रदर्शित किया गया है।

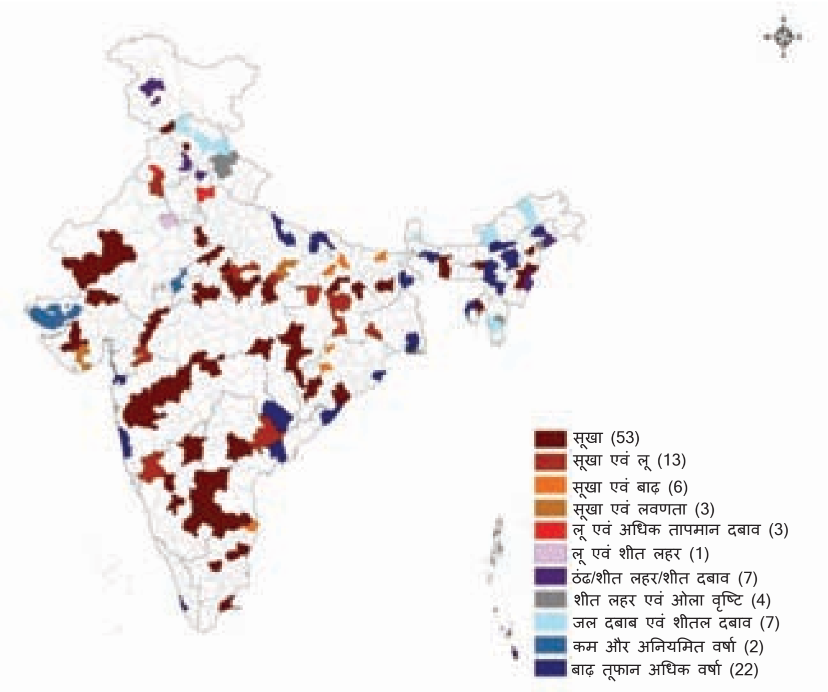

चित्र-1 : परियोजना के अंतर्गत 121 चयनित जिले तथा उनकी मौसमी चुनौतियां

कुल 121 चयनित जिलों में एक गांव या गांव के समूह को लिया जाता है जिनमें उन्नत कृषि तकनीकों का प्रदर्शन उनके संबंधित कृषि विज्ञान केंद्र के माध्यम से कृषकों की सहभागिता के साथ किया जाता है। इसका विवरण सारणी-1 में दर्शाया गया है।

सारणी-1: निक्रा के अंतर्गत कृषि विज्ञान केंद्रों की सूची

क्र.सं.	केंद्र का स्थान	राज्य	निक्रा कृषि विज्ञान केंद्रों की संख्या
01	लुधियाना	हरियाणा(2),हिमाचल प्रदेश(4), जम्मू व कश्मीर(3) पंजाब(4)	13
02	कोलकाता	अंडमान व निकोबार(1), बिहार(7), झारखंड(6), प.बंगाल (3)	17
03	बारापानी	अरुणाचल प्रदेश(3), असम(5), मणिपुर(3), मेघालय(3) नगालैंड(4), सिक्किम(1), त्रिपुरा(2), मिजोरम(2)	23
04	कानपुर	उत्तर प्रदेश(13), उत्तराखंड(2)	15
05	हैदराबाद	आंध्र प्रदेश(5), तेलंगाना(2), महाराष्ट्र(8)	15
06	जोधपुर	राजस्थान(5), गुजरात(5)	10
07	जबलपुर	छत्तीसगढ़(3), मध्य प्रदेश(9), उड़ीसा(5)	17
08	बेंगलुरू	तमिलनाडु(4), कर्नाटक(6), केरल(1)	11
कुल			121

जिला स्तर पर चयनित कृषि विज्ञान केंद्र, कृषकों की सहभागिता के साथ परियोजना का संचालन करते हैं। तकनीकी प्रदर्शनों द्वारा सूखा, बाढ़, चक्रवात, लू, अधिक तापमान, शीतलहर, पाला आदि मौसमी समस्याओं को इंगित किया जाता है। इन सभी जलवायु चुनौतियों से निपटने हेतु चयनित गांवों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप तकनीकों को चार प्रमुख प्रारुपों के आधार पर क्रियान्वित किया जाता है। विभिन्न तकनीकों का चयन कर उन्हें क्षेत्र विशेष की जलवायु के अनुरूप कृषकों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली स्थानीय तकनीकों के साथ प्रदर्शित किया जाता है। कुछ परिस्थितियों में संस्थागत उन्नत तकनीकों को ग्रामीण स्तर पर प्रदर्शित कर ग्रामीणों को जलवायु सहनशील/समुत्थानशील तकनीकों से अवगत कराया जाता है तथा उन्हें अपनाने के लिए प्रेरित किया जाता है।

तकनीकी प्रारूप एवं प्रदर्शन

निक्रा की तकनीकियों का प्रदर्शन 121 जिलों के चयनित गांवों में उनकी जलवायु संबंधित समस्याओं, कृषकों के अनुभवों तथा निचले स्तर से ऊपरी स्तर तक के वैज्ञानिकों की समीक्षा के उपरांत किया जाता है। इस परियोजना का मुख्य लक्ष्य केवल जलवायु सहनशील/ समुत्थानशील तकनीकों के प्रदर्शन तक ही नहीं है, बल्कि इसमें इन तकनीकों को समन्वित रूप से अपनाने हेतु कृषकों को प्रेरित भी किया जाता है। सामान्यतः परियोजना में प्रदर्शनों को चार प्रारूपों में विभक्त किया गया है। ये प्रदर्शन मौसमी/जलवायु चुनौतियों के अनुसार प्रत्येक गांवों में किए जाते हैं। ये चार प्रदर्शन प्रारूप निम्नलिखित है:-

प्रथम प्रारूप - प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

इसमें तकनीकी प्रदर्शन मुख्यतः स्व-स्थाने (इनसीटू) नमी संरक्षण, जैविक छादन (बॉयोमल्चिंग), फसल अवशेषों को जलाने के स्थान पर मृदा में मिलाना, हरी खाद का प्रयोग, पूरक सिंचाई हेतु जल संरक्षण एवं उसका पुनर्प्रयोग, बाढ़ ग्रसित क्षेत्रों में समुचित जल निकास, संरक्षित खेती, कृत्रिम भूजल वृद्धि एवं जल संरक्षण सिंचाई विधि का प्रयोग मुख्य बिंदुओं के रूप में सम्मिलित किया गया।

द्वितीय प्रारूप - फसल उत्पादन

इस प्रारूप में मुख्यतः सूखा एवं तापमान सहनशील प्रजातियों को समाविष्ट करना, क्षैतिज ताप वृद्धि से बचने हेतु रबी फसलों की बुआई की तिथि में परिवर्तन करना, जल संरक्षित धान की खेती श्री विधि, सीधी बुवाई इत्यादि, उद्यानिकी फसलों में धूमण द्वारा पाला प्रबंधन, मानसून में देरी के लिए रोपणी लगाना, कृषि क्रियाओं को समय पर करने हेतु कस्टम हायरिंग केंद्रों की स्थापना, क्षेत्रों के आधार पर अंतवर्तीय फसल प्रणाली को समन्वित उपज निर्देशिका के अनुसार उपयोग करने हेतु सम्मिलित किए गए हैं।

तृतीय प्रारूप - पशु पालन एवं मत्स्य पालन

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में इस प्रारूप में सूखा एवं बाढ़ की स्थिति में सामुदायिक भूमि का चारा उत्पादन हेतु प्रयोग, उन्नत पौध सामग्री द्वारा चारा उत्पादन, चारा एवं पशु खाद्य की उन्नत भंडारण विधि, चारे का पोषण बढ़ाना, तेज गर्मी से बचाने हेतु उन्नत छाया गृह,

मछली तालाबों का प्रबंधन एवं तनाव सहनशील प्रजातियों का प्रसार मुख्य रूप से समायोजित किए गए हैं।

चतुर्थ प्रारूप - संस्थागत प्रदर्शन

इस प्रारूप में मुख्यतः बीज भंडारण, चारा भंडारण, कृषि वस्तुओं हेतु सामाजिक समूह, कस्टम हायरिंग केंद्र, सामुदायिक वितरण समूह, मौसम आधारित फसल बीमा एवं ग्रामीण स्तर मौसम प्रयोगशाला द्वारा जलवायु आधारित ज्ञान आदि समन्वित रूप से प्रदर्शित किए जाते हैं।

चयनित निक्रा (NICRA) गांवों में जलवायु सहनशील/समुत्थानशील तकनीकों का प्रदर्शन

प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के अंतर्गत जलवायु सहनशील/समुत्थानशील प्रणाली का प्रभाव एवं अंगीकरण

भारत में एक बड़े भाग में काफी अच्छी वर्षा होती है परंतु यह एक छोटी अवधि में तूफानों के साथ होती है। क्षेत्रों की अस्थाई, स्थानीय विविधता तथा वर्षा के असामान्य वितरण के कारण फसलों को नमी की कमी का सामना करना पड़ता है जो अक्सर सूखे एवं लंबे वर्षा अंतराल के रूप में दिखाई पड़ती है। देश का लगभग 33 प्रतिशत क्षेत्र 750 मिलीमीटर से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में आता है जबकि 67 प्रतिशत क्षेत्र वर्षा आधारित क्षेत्रों के अंतर्गत आता है जहां वर्षा 750 मिलीमीटर से अधिक होती है।

वर्षा के जल का प्रबंधन वर्षा आधारित कृषि में एक महत्वपूर्ण घटक है। वर्षा आधारित कृषि में सफलता पूर्वक उत्पादन हेतु मृदा नमी संरक्षण के लिए स्व-स्थानिक (इनसीटू) नमी प्रबंधन एवं सतह जल प्रवाह का संचयन तथा सिंचाई जल का संचयन एवं पुनर्उपयोग विधियां अपनाना आवश्यक है। स्व-स्थानिक नमी प्रबंधन एवं सतह जल प्रवाह का संचयन तथा सिंचाई जल का संचयन एवं पुनर्उपयोग, कुओं का पुनर्भरण, शून्य कर्षण विधि, धान की सीधी बुआई, मेंढ़ बंधान, समुचित जल निकास प्रबंध, न्यूनतम कर्षण क्रियाएं, कृत्रिम भू-जल पुनर्भरण एवं कुशल जल प्रबंधन विधियों को कृषक प्रक्षेत्र में प्रदर्शित किया जाता है। इन सभी विधियों के द्वारा न केवल मृदा नमी की उपलब्धता बढ़ती है बल्कि उत्पादन में भी समुचित वृद्धि होती है। ग्रामीण जलवायु प्रबंधन समिति निक्रा गांवों में प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन की दिशा में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। निक्रा गांवों में उपरोक्त प्रदर्शनों का प्रभाव अग्रलिखित है।

विभिन्न वर्षा क्षेत्रों में स्व-स्थानीय (इनसीटू) नमी प्रबंधन हेतु उन्नत बुआई की विधियां

स्व-स्थानीय वर्षा जल संचयन अस्थाई रूप से वर्षा जल को रोकता है जिससे वर्षा जल को भूमि में प्रवेश करने हेतु अतिरिक्त समय मिलता है जिससे भूमि में नमी की मात्रा बढ़ती है तथा फसलों हेतु अतिरिक्त नमी अधिक समय तक उपलब्ध रहती है। मेड़ तथा नाली पद्धति, चौड़ी क्यारी पद्धति, संरक्षण नाली पद्धति, भूमि का समतलीकरण, क्यारियां बनाना, ढाल के विपरीत बुआई, कंटूर खेती आदि स्वस्थानीय जल संचयन की बुआई की विधियां हैं, जो मृदा में नमी के संचयन के साथ अति वर्षा की दशाओं में अतिरिक्त जल के निकास में भी सहायक होते हैं जिससे सूखे तथा बाढ़ के कुप्रभावों को कम किया जा सकता है। इन विधियों का चयन स्थानीय दशाओं, वर्षा के वितरण, भूमि की ढाल, मृदा के प्रकार, मृदा की गहराई, मृदा संरचना

विशेषकर चिकने कणों की मात्रा तथा फसल के प्रकार पर निर्भर होता है। संरक्षित नाली पद्धति द्वारा निर्धारित दूरी पर नालियां बनाकर सूखे क्षेत्रों में परंपरागत पद्धतियों की अपेक्षा 15 से 20 प्रतिशत तक अधिक उपज दर्ज की गई है। इसे सारणी-2 में दर्शाया गया है।

सारणी-2 : 2015-16 के दौरान जिलों में अपनाई गई मृदा नमी संरक्षणता का सारांश

राज्य	जिला	फसल	फसल किस्म	हस्तक्षेप	प्रदर्शन संख्या	क्षेत्रफल (हेक्टेयर)
मध्य प्रदेश	दतिया मुरैना सतना गूना झाबुआ टीकमगढ	सोयाबीन, मटर, गेहूँ, मूंग, काबुली चना	जेएस-95-60 पूसा 992 एमपी-4010 टीजेएम-3 सम्राट पीयू-35	मेड़ एवं नाली (रिज़ एवं फरो) व्यापक क्यारियां कुंड (बीबीएफ)	224	112
महाराष्ट्र	अहमदनगर अमरावती नंदुबार औरंगाबाद बारामती	सोयाबीन/ बाजरा-कपास मक्का-मटर ज्वार-चना बंगाली-चना	जेएस-9305, अजीत-155, जीएम-6, कपास बीटी, बीडीएन-711, फूले वसुधा	संरक्षण नालियां, मेड़ एवं नाली (रिज़ एवं फरो) ढलान के विपरीत बुवाई, व्यापक क्यारियां कुंड (बीबीएफ), गहरी नालियां बनाकर उपखंड बिजाई (ट्रेंच बंडिंग सह कंपार्टमेंट बंडिग)	338	284
उत्तर प्रदेश	गोंडा बागपत	मटर, सरसों	एनए-1, पूसा एम-27	मेड व नालियां, क्यारियों में रोपण	57	11
बिहार	बक्सर	गेहूं	एचडी 2824	एफआईआरबी	6	4
आंध्र प्रदेश	कुर्नुल, अनंतपुर, चित्तुर	मक्का मूंगफली टमाटर	आईसीपीएल - 87119, के 6	संरक्षण नालियां	40	10.5
तेलंगाना	नलगोंडा	कपास, अरहर	पीआरजी-176	संरक्षण नालियां	32	20
राजस्थान	कोटा	गेहूं	के-7410	एफआईआरबी	20	10
हिमाचल प्रदेश	हमीरपुर	करेला, खीरा, लौकी	अमन, मालव, शारदा, शंबु	मेड़ एवं नाली बिजाई (रिज़ एवं फरो)	16	2
पं.बंगाल	कोचबेहर	कुकुम्बर	बरसाती	मेड़ एवं नाली बिजाई (रिज़ एवं फरो)	5	1
ओडिशा	झारसुगुडा	लोबिया, कोलोकैसिया (आलुकी)	-	मेड़ एवं नाली बिजाई (रिज़ एवं फरो)	2	6

कोटा जिले के चोमाकोट गांव में गेहूं में मेड एवं नाली बुआई पद्धति द्वारा लगभग 25 से 30 प्रतिशत तक सिंचाई जल की बचत हुई तथा पौधों की वानस्पतिक वृद्धि एवं जड़ों का विकास परंपरागत विधि की तुलना में अच्छा पाया गया। इस विधि द्वारा गेहूं की औसत उपज

49.40 क्वि./हेक्टेयर पाई गई जबकि कृषकों की परंपरागत पद्धति में यह 47.20 क्वि./हेक्टेयर दर्ज की गई। साथ ही मेड़ एवं नाली बुआई पद्धति द्वारा लगाई गई गेहूं की फसल में ओला तथा बेमौसम वर्षा में परंपरागत विधि की तुलना में कम हानि हुई। पूणे के निक्रा अंगीकृत जलगांव केपी गांव में खरीफ की फसल मानसून की देरी तथा फसल के दौरान वर्षा अंतराल की अवधि अधिक होने से अनिश्चितता रहती है तथा ज्वार की फसल रबी में संचित मृदा नमी में उगाई जाती है। रबी ज्वार (फुले वसुधा) स्व-स्थानीक जल संरक्षण पद्धति में 10x10 वर्ग मीटर क्यारियां बनाकर 15 कृषकों के प्रक्षेत्र में प्रदर्शित की गई जिसमें परंपरागत पद्धति की तुलना में 53.1 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त हुई जहां रबी फसल में क्यारी पद्धति द्वारा 16.7 क्वि./हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई वही कृषकों की परंपरागत विधि से 11 क्वि./हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई। प्रदर्शन द्वारा 38166 रुपए प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ मिला वहीं परंपरागत विधि में 19930 रुपए प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ मिला।

नंदुरबार जिले के उपरानी गांव में जहां पर मुख्यतः कृषक फसलों की हल के पीछे ढाल के साथ बुआई करते हैं जिससे जल प्रवाह तथा मृदा क्षरण से फसलों में हानि होती हैं। मेड़ तथा नाली पद्धति का प्रदर्शन 4 हेक्टेयर भूमि पर 10 कृषकों को लेकर मक्का (जीएम-6) लगाने के लिए किया गया। इससे जहां उपज में 14 प्रतिशत (17.5 क्वि/हेक्टेयर) अधिक उपज प्राप्त हुई वहीं कृषकों की परंपरागत विधि से 15.2 क्वि./हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई। इसी प्रकार मेड़ एवं नाली प्रदर्शन के अंतर्गत कुल 50 कृषक एवं 27 हेक्टेयर भूमि पर किए गए। भारी वर्षा के समय मृदा की ऊपरी सतह बह कर खाइयों में सुरक्षित रूप से एकत्रित हो जाती है तथा अतिरिक्त जल उन्हीं नालियों से बाहर निकल जाता है। इस पद्धति द्वारा लगभग 4.6 से 8.5 घनमीटर मृदा प्रति हेक्टयर तक क्षरण में गिरावट देखी गई।

टीकमगढ़ के कांटी गांव जहां पर सोयाबीन छिटकवां विधि से बोई जाती है, में कम फसल घनत्वकता एक प्रमुख समस्या है। सोयाबीन का मेड़ एवं नाली बुआई पद्धति का प्रदर्शन 20 हेक्टेयर में 12 कृषकों के खेतों पर किया गया। इस विधि द्वारा सोयाबीन की उपज 14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा शुद्ध लाभ 22950 रुपए प्राप्त हुआ जो कृषकों की परंपरागत विधि से अधिक था। वर्तमान में सोयाबीन का मेड़ एवं नाली पद्धति से बुआई का क्षेत्रफल संतोषजनक रूप से बढ़ रहा है (चित्र-2)।

संरक्षण कूंड

क्यारी एवं कूंड

चित्र-2 : स्व-स्थाने नमी संरक्षण के उपाय

वर्षाजल संचयन

उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में छोटे कृषक कृषि उत्पादन में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करते हैं। इन क्षेत्रों में वर्षा अपर्याप्त तथा असमान रूप से होती है तथा फसलें मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर होती हैं। जलवायु की विविधता असमान रूप से छोटे कृषकों पर प्रभाव डालती है एवं उनकी आजीविका को ओर भी चुनौतिपूर्ण बना देती है। वर्षाजल का संचयन प्रक्षेत्र स्तर पर वृद्धि अवस्था की क्रांतिक दशाओं में या रबी फसलों हेतु बुआई के पूर्व सिंचाई के रूप में उपलब्ध कराया जा सकता है। निक्रा गांव में वर्षा जल के संचयन हेतु प्रक्षेत्र तालाबों का निर्माण, पुरानी संरचनाओं का गहरीकरण, निच्छालन तालाबों द्वारा कुओं का जलस्तर बढाना (भूजल भरण), कुओं के निर्माण द्वारा भूजल स्तर को बढाना आदि विधियां उपयोग में लाई जाती हैं(सारणी-3)।

सारणी-3 : 2015-16 में विभिन्न जिलों में वर्षाजल संरक्षण संरचना

संरचना	राज्य	जिला	फसल	लाभान्वित किसान संख्या	सिंचित क्षेत्र (हे.)
खेत तालाब	झारखंड	पूर्वी सिंहभूम	धान, गेहूं, सरसों, सब्जियां	42	11.5
	बिहार	औरंगाबाद	गेहूं,मसूर,चना	8	9.3
	झारखंड	गोड्डा	धान	25	35
	बिहार	जेहनाबाद	धान	84	26
	बिहार	नवादा	गेहूं, आलु		20
	अंडमान व निकोबार	पोर्ट ब्लेयर	पत्तेदार सब्जियां	2	2
	मणिपुर	पूर्वी इंफाल	तरबूज, गोभी वर्गीय फसलें एवं अन्य मौसमी सब्जियां	8	8
	उत्तर प्रदेश	सोनभद्र	गेहूं	2	5
	आंध्र प्रदेश	कुर्नूल	अरहर (तूवर), ज्वार	4	3.4
	महाराष्ट्र	अहमदनगर	अनार	15	6
	महाराष्ट्र	अमरावती	सोयाबीन	31	6.5
	महाराष्ट्र	औरंगाबाद	अरहर (तूवर), कपास	40	41
	गुजरात	वलसाद	धान	5	2.5
	राजस्थान	कोटा	सरसों	1	2
	छत्तीसगढ	दंतेवाडा	चावल, फील्ड मटर एवं सब्जियां	24	5
	मध्य प्रदेश	दतिया	सोयाबीन	4	7
	ओडिशा	गंजम	धान	7	3
	ओडिशा	कालाहांडी	सब्जियां	50	75
	मध्य प्रदेश	मुरैना	सोयाबीन	3	8
	कर्नाटक	चिकबल्लापुर	धान, मूंगफली, सब्जियां	8	2.5
	कर्नाटक	दंवगेरे	रागी	7	8
	कर्नाटक	तुमकुर	अरहर (तूवर),	6	6

संरचना	राज्य	जिला	फसल	लाभान्वित किसान संख्या	सिंचित क्षेत्र (हे.)
जलकुंड	त्रिपुरा	धलाई	बंदगोभी, फूलगोभी	18	3.6
	नगालैंड	दीमापुर	सब्जियां	1	5
	सिक्किम	पूर्वी सिक्किम	सब्जियां	15	1.25
	मणिपुर	पूर्वी इंफाल	सब्जियां	10	10
	मेघालय	जैनतिया हिल्स	सब्जियां	4	2
	मिजोरम	लुंगलेई	सब्जियां	2	4.5
	नगालैंड	मोन	ब्रोकोली, मटर	8	1.25
	मेघालय	री-भोई	सब्जियां	10	1
	अरुणाचल प्रदेश	तिरप	आलु, श्वेत सरसों, सेम की फली	49	7.5
	मणिपुर	उखरुल	मूंगफली	15	3
	मेघालय	पश्चिमी गारो हिल्स	सब्जियां	4	1.5
	उत्तराखंड	उत्तरकाशी	सेम की फली, भिंडी, सब्जियां, मटर	130	5
चैक डैम	झारखंड	पूर्वी सिंहभूम	धान, गेहूं सरसों, सब्जियां	110	132
	बिहार	बक्सर	धान	63	65
	बिहार	जेहनाबाद	धान, गेहूं	52	20
	उत्तर प्रदेश	चित्रकूट	अरहर (तूवर), धान, मक्का, सरसों, काबुली चना	23	65
	आंध्र प्रदेश	अनंतपुर	पत्तेदार सब्जियां	25	21
	महाराष्ट्र	अमरावती	सोयाबीन	218	131
	महाराष्ट्र	औरंगाबाद	कपास, अरहर (तूवर), रबी ज्वार, काबुली चना	20	8
	गुजरात	कुच्छ	कपास	97	153
	छत्तीसगढ	दंतेवाडा	चावल, मटर व सब्जियां	24	4.5
	मध्य प्रदेश	दतिया	सोयाबीन, मूंगफली	14	9
	ओडिशा	गंजम	धान, सब्जियां	32	14
	मध्य प्रदेश	झाबुआ	सब्जियां	43	9
	ओडिशा	सोनपुर	धान	3	4
	कर्नाटक	तुमकुर	लोबिया(राजमा)	4	2
रेत की बोरियां चैक डैम	झारखंड	गुमला	गेहूं, रागी एवं सब्जियां	155	70
	महाराष्ट्र	रत्नागिरी	लोबिया(राजमा)	28	3.2
	तेलंगाना	खम्मम	धान	14	20
	महाराष्ट्र	रत्नागिरी	लोबिया(राजमा)	28	3.2
	छत्तीसगढ	बालाघाट	धान	5	2
	मध्य प्रदेश	दतिया	उड़द, मूंगफली	98	60

संरचना	राज्य	जिला	फसल	लाभान्वित किसान संख्या	सिंचित क्षेत्र (हे.)
जलनिकास उपचार चैनल	जम्मू व कश्मीर	बंदीपोरा	धान	4	10
	झारखंड	छतरा	धान	15	5
	बिहार	नवादा	धान	122	110
	असम	ढुबरी	धान	56	310
	आंध्र प्रदेश	चित्तूर	धान	32	10.8
	आंध्र प्रदेश	श्रीकाकुलम	धान	40	20
	महाराष्ट्र	जालना	कपास, सोयाबीन	22	36
	महाराष्ट्र	अमरावती	सोयाबीन	24	45.5
	छत्तीसगढ	बालाघाट	धान	12	6.2
	छत्तीसगढ	बिलासपुर	गेहूं	37	50
	कर्नाटक	बेलगाम	अरहर (तूवर), मूंगफली	25	29
	तमिलनाडु	नमक्कल	प्याज व जैसमिन(चमेली)	230	60
	कर्नाटक	तुमकुर	धान	4	4
झिल्ली तालाब	झारखंड	छतरा	धान, गेहूं	152	580
	आंध्र प्रदेश	चित्तूर	धान	37	16.8
	ओडिशा	गंजम	धान	5	13
	मध्य प्रदेश	गूना	गेहूं	1	4
कुओं को पुनर्भरण करना	झारखंड	छतरा	गेहूं	12	15
	झारखंड	पूर्वी सिंहभूम	पत्तेदार सब्जियां, सरसों एवं टमाटर	11	1.5
	झारखंड	गुमला	गोभी	5	2
	बिहार	नवादा	गेहूं, आलू	12	6
	महाराष्ट्र	अमरावती	कपास, अरहर, काबुली चना	12	33
	महाराष्ट्र	औरंगाबाद	कपास, अरहर(तूवर)	20	20
	गुजरात	कुच्छ	गेहूं, जीरा	12	22
	राजस्थान	भरतपुर	गेहूं	60	54
	छत्तीसगढ़	देतेवाड़ा	सब्जियां	2	1
	मध्य प्रदेश	मरैना	गेहूं, मूंग	4	12
समुदाय तालाब	हिमाचल प्रदेश	कुल्लु	बंदगोभी और फूलगोभी	28	4.5
	हिमाचल प्रदेश	कुल्लु	टमाटर, लहसून मटर	69	8.12
	अरुणाचल प्रदेश	पश्चिमी कामेंग	फूलगोभी	7	5
	उत्तराखंड	टेहरी गढ़वाल	धान, प्याज	45	5
	राजस्थान	झुंझनु	क्लस्टर बीन, मूंग	2	1
	तमिलनाडु	नमक्कल	प्याज, मूंगफली, ज्वार और चमेली (जैसमिन)	12	73.6
	तमिलनाडु	रामंतपुरम	धान	88	35

कच्छ के भालोट गांव में 10 पुराने रोधी बांध तथा 4 तालाबों के पुनरुत्थान/गहरीकरण द्वारा 157 हेक्टेयर क्षेत्र तथा 97 कृषक लाभान्वित हुए। कुओं के जलस्तर में 10 से 15 फीट की वृद्धि देखी गई। बीटी कपास की फसल में टपक सिचाई के द्वारा संचित जल का प्रयोग पूरक सिंचाई के लिए किया गया जिससे कपास की फसल में 3 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की वृद्धि पाई गई तथा 12 हजार रुपए की अतिरिक्त आय प्राप्त हुई। अमरावती जिले के तकाली गांव में विभिन्न क्षमता वाले जल संग्रहण बांध बनाए गए जिनके द्वारा खरीफ 2015-16 में 62 कुओं का जलस्तर बढ़ा हुआ देखा गया। इन संरचनाओं की गाद निकालकर इनका गहरीकरण किया गया जिससे इन संरचनाओं की जल धारण क्षमता बढी। इस संचित जल का उपयोग पूरक सिंचाई के रूप में टपक विधि द्वारा 27 हेक्टेयर में तथा बौछार सिंचाई विधि द्वारा 63 हेक्टेयर में किया गया, जिसके द्वारा सोयाबीन तथा चने की फसल की उपज में वृद्धि देखी गई। विशेषकर सोयाबीन की फसल में 6.85 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की वृद्धि हुई। वर्ष 2014-15 में देवनागरी जिले के सिद्धानारू गांव में 6 प्रक्षेत्र तालाबों का निर्माण कराया गया, जो 05 सितंबर 2015 में हुई 211 मिलीमीटर वर्षा के दौरान पूरी तरह भर गए। इसके पश्चात अक्टूबर महीने में 20 दिनों का वर्षा अंतराल दर्ज किया गया। इस समय रागी की फसल दाना भरने की स्थिति में थी। इस क्रांतिक अवस्था में संचित जल का प्रयोग सिंचाई के रूप में किया गया तथा फसल की उपज में 53 प्रतिशत तक की वृद्धि पाई गई।

डी. नागनहल्ली जिले के तुमकुर में प्रक्षेत्र तालाबों को दोहरे उददेश्य से बनवाया गया। प्रथम उद्देश्य फसल में क्रांतिक अवस्थाओं के दौरान आवश्यकता के समय पूरक सिंचाई उपलब्ध कराना तथा द्वितीय उददेश्य निच्छालन के दौरान भूमि की नमी को बढाना है। पांच वर्षो (2010-11 से 2015-16) में विभिन्न क्षमता वाले कुल 72 तालाबों का निर्माण कराया गया। इन सभी तालाबों की कुल क्षमता 18,000 घनमीटर थी। इस प्रकार से जल संरक्षण के द्वारा कृषक 3 फसल प्रतिवर्ष लेने में सक्षम हो रहे है।

कृषकों द्वारा प्रक्षेत्र तालाबों में एकत्र किए गए जल का प्रयोग टमाटर एवं बैंगन आदि के उत्पादन के लिए किया गया जिससे कृषकों की आय में लगभग दोगुनी वृद्धि हुई। दतिया जिले के सनोरी एवं बरोदी गांवों में पॉलीबैग के रोधी बांधों का निर्माण कराया गया जिसकी जल संधारण क्षमता 7,500 घन मीटर बढ़ गई। इस जल का प्रयोग दो पूरक सिंचाइयों के रूप में मूंगफली में पैग बनने की अवस्था के समय तथा उडद की फसल में वानस्पतिक वृद्धि के समय किया गया। इस नवाचार को 60 हेक्टेयर क्षेत्र में लिया गया जिससे कुल 52 कृषक लाभान्वित हुए तथा उडद एवं मूंगफली की फसल में क्रमश: 60 से 70 प्रतिशत तक की वृद्धि देखी गई। इसके साथ ही इन संरचनाओं के कारण आसपास के 19 कुओं के जल स्तर में वृद्धि देखी गई। औसतन ये कुएं अक्टूबर एवं नवंबर में जल रहित हो जाया करते थे, परंतु रोधी बांधों के कारण ये जनवरी के अंत तक भरे हुए देखे गए जिसके कारण लगभग 60 हेक्टेयर कृषि भूमि पर रबी में सरसों, अलसी एवं सब्जियां उगाया जाना संभव हुआ।

दंतेवाड़ा जिले के हीरा नगर गांव में निक्रा परियोजना के अंतर्गत तीन रोधी बांधों का गहरीकरण कर पुनरुत्थान किया गया जिसमें लगभग 19113 घनमीटर जल का संरक्षण किया

गया जो फरवरी के अंत तक सिंचाई हेतु उपलब्ध था, जिसका उपयोग धान की फसल में पूरक सिंचाई के लिए किया गया। अतिरिक्त जल की उपलब्धता के कारण रबी में मटर एवं अन्य सब्जी उत्पादन के लिए 1.5 हेक्टेयर क्षेत्र में इसके प्रदर्शन द्वारा कुल 48 कृषक लाभान्वित हुए। साथ ही एक निच्छालन तालाब एवं एक प्रक्षेत्र तालाब सिंचाई एवं भूजल के पुनर्भरण हेतु बनाए गए इन तालाबों के निर्माण के पूर्व जल की उपलब्धता दिसंबर के अंत तक रहती थी तथा निर्माण के पश्चात यह बढ़कर फरवरी माह तक हो गई। जल की उपलब्धता के कारण गांव में 84 कृषकों ने 10.5 हेक्टेयर में धान, 2 हेक्टेयर में मक्का, 3 हेक्टेयर में लघु धान्य फसलें 5 हेक्टेयर में दालें तथा सब्जी की खेती के साथ ही तालाबों का प्रयोग मछली पालन के लिए किया गया।

भासरिया नदी पर झारखंड के गुगला जिले के निक्रा गांव में रेत की बोरियों से 150 मीटर लंबा तथा 3 मीटर चौड़ा जल रोधी बांध बनाया गया जिससे आसपास के क्षेत्रों के 21 कुओं के जलस्तर में वृद्धि देखी गई तथा 120 कृषक एवं 200 हेक्टेयर धान की फसल लाभान्वित हुई साथ ही सब्जियों एवं रबी फसलों जैसे गेहूं का क्षेत्रफल 50 हेक्टेयर तक बढ़ा। इस नवाचार द्वारा कृषकों की आजीविका में वृद्धि हुई तथा जिले से लगे हुए 6 अन्य जिलों में कुल 3,500 एकड़ अतिरिक्त क्षेत्र भी लाभान्वित हुआ।

'निक्रा' परियोजना के अंतर्गत जहानाबाद जिले के सकरोहा गांव में 5 तालाबों का गहरीकरण किया गया जिससे कुल 26.5 हेक्टेयर भूमि तथा 84 कृषक लाभान्वित हुए। वर्ष 2015 में 3 और नए रोधी बांध बनाए गए जिसका उद्देश्य पानी के बहाव को पाइन्स की ओर मोड़ना था, जिससे 20 हेक्टेयर धान का क्षेत्र तथा 52 कृषक लाभान्वित हुए। इसके अतिरिक्त कृषकों के खेत के 5 प्रतिशत भाग (लगभग 1.3 एकड़) में 5 छोटे तालाबों का निर्माण कराया गया जो सूखे की स्थिति में पूरक सिंचाई द्वारा फसलों की जल मांग को पूरा करने में सहायक हुए। इसके साथ ही साथ पाइन्स के गहरीकरण द्वारा जल संरक्षण किया गया जिसमें 10.5 कि.मी. लंबाई की पाइन्स का मनरेगा परियोजना की सहभागिता द्वारा गहरीकरण कराया गया जिससे 38.4 हेक्टेयर क्षेत्र में फसलों की क्रांतिक दशाओं के दौरान सिंचाई संभव हो सकी। इसके अलावा रबी फसलें, जैसे गेहूं तथा मसूर में संचयित जल का उपयोग सिंचाई हेतु बौछार सिंचाई विधि द्वारा किया गया। परिणामतः गेहूं तथा मसूर की औसत उपज क्रमशः 37 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा 14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुई।

मेघालय की पश्चिमी गारो पहाड़ियों के मारापारा गांव में निक्रा परियोजना के अंतर्गत वर्षा प्रधान दशाओं में सब्जियों की खेती का नवाचार किया गया। इस क्षेत्र में वार्षिक वर्षा 2500 मिलीमीटर होने के बाद भी कृषक सिंचाई के लिए जल की कमी के कारण सब्जी उत्पादन में समस्या का सामना करते थे। इस समस्या के समाधान हेतु खेतों में चार जलकुंड (5x4x1x5 घनमीटर) का निर्माण कर उनमें 300 जी.एस.एम. की पॉलीथीन शीट बिछाई गई जिससे लगभग 30,000 लीटर जल का संग्रहण किया जा सका। सब्जी फसलों में सिंचाई हेतु इस जल का प्रयोग कर कृषकों की आय में वृद्धि हुई। इस नवाचार द्वारा 0.24 हेक्टेयर में कुल 18269 रुपए का लाभ प्राप्त हुआ। चित्र-3 में कच्छ (गुजरात) एवं गुमला (झारखंड) में वर्षा जल सिंचाई एवं उपयोगिता दर्शायी गई है।

चित्र-3 : कच्छ (गुजरात) एवं गुमला (झारखंड) में वर्षा जल सिंचाई एवं उपयोगिता

जल के समुचित उपयोग हेतु सीधी बुआई विधि द्वारा धान लगाना

इस नवाचार द्वारा धान लगाने पर नर्सरी उगाने तथा रोपण में आने वाली मजदूरों की निर्भरता को कम किया जा सकता है। सीधी बुआई विधि द्वारा जल का उपयोग लगभग 15 से 18 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है क्योंकि इसमें पडलिंग की क्रिया की आवश्यकता नहीं होती जिसमें काफी पानी की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही साथ मजदूरों का उपयोग भी कम होता है तथा पैसे और ऊर्जा की बचत भी होती है। इसमें मीथेन गैस का उत्सर्जन भी कम होता है तथा उत्पादन का लाभ 10 से 15 प्रतिशत तक बढ़ जाता है और मृदा की संरचना भी नहीं बिगड़ती है। इस विधि से कम अवधि वाली धान की फसल लेने के पश्चात गेहूं की फसल को अन्त्य उष्णता दबाव (तापमान बढ़ने) से होने वाली हानि से भी बचाया जा सकता है। धान की सीधी बुआई का नवाचार फरीदकोट के पिंडीकला गांव में 50 हेक्टेयर धान की फसल में किया गया, जिससे 17 कृषक लाभान्वित हुए एवं परंपरागत विधि (44 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) की तुलना में अधिक उपज (47 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) प्राप्त हुई। इस नवाचार में 4 से 5 सिंचाइयों की बचत के साथ धान की फसल 7 से 8 दिन पहले पककर तैयार हुई एवं इसमें 2 क्विंटल प्रति हेक्टेयर अधिक उपज प्राप्त हुई। सदानंदपुर गांव में सीधी बुआई का प्रदर्शन 2 हेक्टेयर क्षेत्र में किया गया जिससे 12 कृषक लाभान्वित हुए तथा 4000 रुपए प्रति हेक्टेयर की बचत के साथ 18 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त हुई। एल्लीपे के मुरार गांव में पेडी ड्रम सीडर द्वारा 44 हेक्टेयर में धान की सीधी बुआई द्वारा 47 कृषक लाभान्वित हुए। सीड ड्रम द्वारा बुआई करने पर छिटकवां विधि की तुलना में कम बीज की आवश्यकता होती है। जहां सीधी बुआई में 100 से 120 किलो प्रति हेक्टेयर बीज लगता है वहीं पेडीसीड ड्रम द्वारा बुआई करने पर 30 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। सीधी बुआई से उपज 60 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुई वहीं पेडीसीड ड्रम विधि द्वारा बुआई करने पर 67 क्विंटल उपज प्राप्त हुई। चित्तुर जिले चितिचिराला में पेडीसीड ड्रम से धान की बुआई का नवाचार किया गया जिसमें रोपी गई धान की तुलना में 9 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त हुई तथा फसल 10 से 15 दिन पहले पक कर तैयार हुई साथ ही फसल की लागत में 9723 रुपए की कमी आई।

गेहूं को अधिक ताप से बचाने हेतु शुन्य जुताई का नवाचार

सामान्य रूप से धान के पश्चात गेहूं की फसल लेने हेतु बहुत अधिक कर्षण क्रियाओं

की आवश्यकता होती है। वहीं धान की फसल की कटाई में देरी या भूमि की तैयारी में लगने वाले समय के कारण गेहूं में दाने भरते समय अधिक तापमान (अन्त्य उष्णता दबाव) के कारण दाना छोटा रह जाता है तथा उपज में कमी होती है। शून्य जुताई विधि में धान के अवशेषों में गेहूं की बुआई की जाती है। इस नवाचार का प्रदर्शन मुख्यतः उन निक्रा गांवों में किया गया जहां धान के बाद गेहूं की फसल ली जाती है। फरीदकोट के पिंडी बलोलन गांव में सही समय पर बोई जाने वाली गेहूं की किस्म एचडी-2967 को 232 हेक्टेयर क्षेत्र में 59 कृषकों के यहां बोया गया, जिससे कृषक विधि से बोई गई फसल (34000 रुपए) की तुलना में अधिकतम कुल आय (37000 रुपए) प्राप्त हुई। इस विधि को अपनाने से धान के फसल अवशेषों का प्रबंधन आसान हो गया जिससे प्रति हेक्टेयर 2000 रुपए की बचत हुई तथा मृदा में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ी पाई गई। वर्ष 2016 में अधिक वर्षा के कारण सामान्य विधि से बोई गई फसल में सात दिन जल ठहराव से फसल गिरने के कारण काफी हानि हुई वहीं शून्य जुताई में हेप्पीसीडर से बोई गई फसल में बहुत ही कम जल ठहराव हुआ एवं फसल सामान्य विधि से बोई गई फसल की तुलना में जल्द ही सामान्य अवस्था में आ गई। फतेहगढ़ साहिब पंजाब के भदौचीकला निक्रा गांव में वर्ष 2015-16 में हेप्पीसीडर द्वारा कुल 20 हेक्टेयर क्षेत्र में गेहूं की फसल 50 कृषकों के प्रक्षेत्र में बोई गई। जहां एक ओर कृषकों द्वारा अपनाई गई विधि में 44.8 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई वहीं दूसरी ओर हेप्पीसीडर द्वारा बोई गई फसल से 50.6 क्विंटल उपज मिली, इस तरह नवाचार द्वारा कुल 5.8 क्विंटल अधिक उपज प्राप्त हुई। रोपड़ के रसीदपुर गांव में हेप्पीसीडर तकनीक द्वारा गेहूं की बुआई से धान की फसल के अवशेषों को जलाने की समस्या समाप्त हुई। आरंभ में इस प्रदर्शन में 5.8 हेक्टेयर क्षेत्र लिया गया जो 2015-16 में बढ़कर 20 हेक्टेयर तक पहुंच गया। परंपरागत विधि की तुलना में हेप्पीसीडर से बोई गई गेहूं की फसल की लागत में 4,735 रुपए तक की कमी देखी गई।

बाढ़ ग्रस्त क्षेत्रों में गेहूं के उत्पादन में क्षितिज ताप वृद्धि की समस्या से निपटने हेतु शून्य जुताई विधि एक महत्वपूर्ण रणनीति है। गोरखपुर जिले के झांझा गांव में बाढ़ की समस्या नियमित रूप से बनी रहती है। यहां गेहूं की किस्म एचडी-2967 का शून्य जुताई विधि द्वारा 6 हेक्टेयर क्षेत्र में प्रदर्शन किया गया जिससे 15 कृषक लाभान्वित हुए। कृषकों द्वारा अपनाई जाने वाली बुआई विधि (29.48 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) की तुलना में शून्य जुताई विधि से अधिक उपज 38.68 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुई (चित्र-4)।

चित्र-4 : पंजाब में उगाए जाने वाले गेहूं में शून्य कर्षण

फसल उत्पादन पर जलवायु सहनशील/समुत्थानशील तकनीकों का प्रभाव एवं अंगीकरण

वर्षा आधारित कृषि मौसम की अनिश्चितता एवं लगातार सूखे की स्थिति के कारण बहुत ही चुनौतिपूर्ण कार्य है। क्षेत्र की मौसमी एवं जल वायुवीय परिस्थितियों के अनुसार फसलों एवं फसलों की किस्मों का चुनाव एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू है। इसके लिए कई मानदंड लिए जाते हैं जिनमें छोटी अवधि की फसलें एवं उनकी किस्में, सूखा अवरोधी एवं कम मृदा नमी में उत्पादन देने वाली किस्में प्रमुख हैं। इन फसल एवं फसल किस्मों का चयन लंबी अवधि की जलवायु परिस्थितियों के आधार पर मानसून की स्थिति, वर्षा अंतराल की अवधि एवं मृदा की नमी धारण करने की क्षमता, अंतरवर्तीय फसलों का चयन इत्यादि को मानकर किया जाता है।

छोटी अवधि एवं सूखा प्रतिरोधी किस्मों का प्रदर्शन

देरी से बुआई एवं वर्षा के कम होने की स्थिति में छोटी/कम अवधि की फसल प्रजातियों का प्रदर्शन सूखा ग्रस्त इलाकों में सहनशील/समुत्थानशील तकनीकें उपयुक्त साबित हुई हैं। कृषकों द्वारा कम अवधि की फसल किस्मों को अपनाकर मानसून में देरी की समस्या से भी बचा जा सकता है। कम अवधि की सूखा प्रतिरोधी किस्मों की प्रदर्शन का प्रभाव एवं अंगीकरण अग्रलिखित है। कच्छ जिले के भालोट गांव में कम एवं देरी से मानसूनी वर्षा का आना एक समस्या है जहां मूंग की कम अवधि की किस्म जीएम-4 का प्रदर्शन 5.7 हेक्टेयर में किया गया जिससे 13 कृषक लाभान्वित हुए। इस किस्म की उपज कृषक प्रजातियों की तुलना में 23.8 प्रतिशत अधिक रही जिससे 8000 रुपए प्रति हेक्टेयर की अधिक आमदनी हुई।

अमरेली जिले के निक्रा गांव करबला में अवव्यस्थित वर्षा एवं मानसून के जल्दी जाने के कारण मूगंफली की लंबी अवधि की किस्में अच्छी तरह से उपज देने में असमर्थ रही। मूंगफली की कम अवधि की किस्म जीजेजी-9 का प्रदर्शन 5 कृषकों के दो खेतों पर किया गया जिससे लंबी अवधि की फसल की तुलना में लगभग 20.67 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त हुई। कृषक इन प्रदर्शनों से प्रभावित हुए तथा पुरानी प्रजातियों को छोड़कर कम अवधि तथा बड़े दाने वाली इस किस्म की ओर आकर्षित हो रहे हैं, जो सूखे मौसम में भी अच्छी उपज दे सकती है। औरंगाबाद जिले के सिखता गांव में उन्नत किस्म की सोयाबीन का प्रदर्शन 30 कृषकों के कुल 12 हेक्टेयर प्रक्षेत्र में वर्ष 2015 के दौरान किया गया, जिसमें यह पाया गया कि उन्नत किस्म एमएयूएस-71 9 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है जबकि पुरानी किस्म जेएस-335 सात क्विंटल प्रति हेक्टेयर की ही उपज दे पाई। एमएयूएस-71 किस्म से प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ 13100 रुपए तथा जेएस-335 किस्म से 7500 रुपए प्राप्त हुआ।

चिखबालपुर जिले के एस. रघुथाली गांव में जल्दी पकने वाली रागी की किस्म एमए-365 का प्रदर्शन कृषकों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली किस्म जीपीयू-28 के साथ कृषकों के प्रक्षेत्र में किया गया। जहां एमएल-365 किस्म ने कुल 21.78 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की उपज दी वहीं जीपीयू-28 से 15.65 प्रति हेक्टेयर की उपज हुई। अधिक उपज के साथ ही यह किस्म झूलसा बीमारी के प्रति प्रतिरोधी थी तथा वर्षा आधारित एवं सिंचित दोनों दशाओं के लिए उचित पाई गई (चित्र-5)।

चित्र-5 : कर्नाटक में रागी(एमएल 365 एवं जीपीयू 28) की लघु अवधि की किस्म

तेलंगाना के खम्मम जिले के नाचाराम गांव में वर्षा अवस्थित रूप से होती है तथा लंबे वर्षा अंतराल के कारण सूखे की स्थिति बनी रहती है। इसके कारण गांव के तालाबों में पानी एकत्र नहीं हो पाता एवं रबी में धान की फसल का उत्पादन प्रभावित होता है। रबी की फसल में पानी न मिलने से मुख्यतः कृषक अपनी जमीनों को खाली छोड़ देते है। लघु अवधि की मूंग किस्म एमजीजी-295 का प्रदर्शन खरीफ धान के पश्चात 8 हेक्टेयर भूमि में किया गया तथा इससे 9.5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई। गांव के 80 प्रतिशत से अधिक कृषकों ने इस तकनीक का अंगीकरण किया। वर्ष 2015 में सोनेपुर जिले के बंदमाल गांव में मानसून में देरी तथा वर्षा की अनिश्चितता देखी गई। इस परिस्थिति को देखकर कम अवधि की धान की किस्म जोगेश का प्रदर्शन 10 हेक्टेयर क्षेत्र में किया गया जिससे 25 कृषक लाभान्वित हुए। इस प्रदर्शन से कृषकों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं की अपेक्षा उपज में कुल 31 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई।

बाढ़ प्रतिरोधी किस्में

देश में धान के उत्पादन में बाढ़ एक बहुत बड़ी चुनौती है। ऊपरी क्षेत्रों में भारी बरसात के कारण असम, बिहार एवं उत्तर प्रदेश की कई नदियों में बाढ़ आती है जिससे आस-पास के क्षेत्रों की फसल खराब हो जाती है। इसके साथ ही आंध्र प्रदेश, ओड़िशा, पश्चिम बंगाल, केरल एवं दक्षिणी गुजरात में चक्रवातों से होने वाली भारी वर्षा के कारण बाढ़ आती है। अच्छी जल निकास प्रणाली एवं बचाव विधियों के साथ ही कृषकों को इन जोखिमों से बचने तथा चुनौतियों को कम करने हेतु वर्षा प्रतिरोधी किस्मों को अपनाना आवश्यक हो गया है ताकि वे बाढ़ की हानियों से बच सकें (सारणी-4)।

सारणी-4 : विभिन्न जिलों में बाढ सहिष्णु धान की किस्मों का प्रदर्शन (2015-16)

किस्म	किसान संख्या	क्षेत्रफल (हे.)	उपज (क्विंटल/हे.) उन्नत क्रियाएं	उपज (क्विंटल/हे.) किसान प्रथा	लाभ लागत अनुपात	जिला
गीतेश	10	4.0	40.0	28.2	1.8	ढुबरी
स्वर्णा सब-1	13	4.0	38.6	26.5	1.9	ढुबरी
सहयाद्री-3	26	4.	45.5	26.7	1.5	रत्नागिरी
कारजत-8	50	11.0	33.7	26.7	1.3	रत्नागिरी

किस्म	किसान संख्या	क्षेत्रफल (हे.)	उपज (क्विंटल/हे.) उन्नत क्रियाएं	उपज (क्विंटल/हे.) किसान प्रथा	लाभ लागत अनुपात	जिला
एमटीयू-1061	15	6.0	65.6	52.4	1.9	वेस्ट गोदावरी
एमटीयू-1064	15	6.0	59.0	52.4	2.4	वेस्ट गोदावरी
आरजीएल-2537	15	8.0	53.5	47.6	2.3	श्रीकाकुलम
एसएस-1	15	5.0	43	30	2.4	सुपौल
जलश्री	13	4.0	45.7	36.0	2.8	डिब्रुगढ
पनिन्द्रा	13	4.0	42.0	30.0	3.0	डिब्रुगढ
गीतेश	2	1.0	54.5	43.4	2.2	सोनितपुर
जलश्री	2	1.0	39.2	21.6	1.6	सोनितपुर
पदुमोनी	2	0.8	42.0	27.0	1.7	सोनितपुर
टाओथबड़ी	01	0.5	51.6	-	1.8	पूर्वी इंफाल
स्वर्णा सब-1	22	4.0	42.0	31.0	1.5	धलाई
स्वर्णा सब-1	75	30	33.0	28.0	1.6	महाराजगंज
स्वर्णा सब-1	16	4.0	39.1	42.3	2.4	गंजम
स्वर्णा सब-1	20	10	44.0	40.2	2.1	केंद्रापार

श्रीकाकूलम जिले के श्रीसुवाड़ा गांव में कृषक मुख्यतः बीपीटी-5204, स्वर्णा एवं एमटीयू-1001 जैसी उन्नत किस्में लेना पसंद करते हैं, जो कि अधिक उपज देने वाली हैं तथा बाजार में इनकी मांग अधिक है। हालांकि, ये बाढ़ के प्रति अति संवेदनशील किस्में हैं। हाल ही के वर्षो में चक्रवाती तूफान से बाढ़ के कारण धान की फसल अत्यधिक प्रभावित हुई है। कृषि विज्ञान केंद्र, श्रीकाकूलम ने कृषकों को बाढ़ प्रतिरोधी प्रजातियों के अंगीकरण के प्रति प्रोत्साहित किया है, ताकि बाढ़ के कारण होने वाली फसल हानि से बचा जा सके। इंदिरा (एमटीयू-1061) की बीज सुसुप्ता 2 से 3 सप्ताह की होती है जिससे यह बाढ़ की दशा में आसानी से पैदा की जा सकती है (चित्र-6)।

चित्र-6 : आंध्र प्रदेश के तूफान ग्रस्त क्षेत्रों में बाढ़ के प्रति अति संवेदनशील किस्में

स्वर्णा-सब-1 को वर्षा ग्रसित पश्चिम बंगाल के निक्रा गांव निम्पिथ तथा कूचबिहार, बिहार के सूपल एवं जहानाबाद, महाराष्ट्र के गोदिंया, यूपी के कुशीनगर, महाराजगंज एवं बहराइच में प्रदर्शित किया गया एवं स्वर्णा-सब की उपज 44 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पाई गई जो अन्य प्रजातियों की तुलना में 40.7 प्रतिशत अधिक थी। इसका लाभ व लागत अनुपात 1.75 था। इसी प्रकार बाढ़ प्रतिरोधी किस्में जलश्री एवं जलकुवारी, जो 12 से 15 दिन का पानी का ठहराव सह सकती हैं, को असम के धूबारी जिले के उदमारी गांव में परंपरागत धान प्रजातियों के साथ प्रदर्शित किया गया तथा इनकी उपज 53 प्रतिशत अधिक पाई गई।

अंतवर्तीय फसल प्रणाली सहनशील/समुत्थानशील तकनीकों का प्रदर्शन

भारत के कम वर्षा वाले क्षेत्रों में एकल फसल प्रणाली अत्यधिक जोखिमपूर्ण एवं ज्यादातर कम उपज वाली है या कभी-कभी वर्षा की अनिश्चितता एवं असमान वितरण से फसल पूरी तरह खराब हो सकती है। इन क्षेत्रों में अंतर्वतीय फसल एक अच्छा विकल्प है जिसके द्वारा फसल उत्पादन के जोखिम को कम किया जा सकता है। कृषक की आय को सुनिश्चित किया जा सकता है एवं दलहनी फसलों द्वारा मृदा की उर्वरता बढ़ाई जा सकती है। कपास, सोयाबीन, अरहर एवं लघु धान्य कम वर्षा वाले क्षेत्रों की मुख्य फसलें हैं। इन फसलों में अधिक लाभ कमाने हेतु अंतरवर्तीय फसलों की सूची सारणी-5 में दी जा रही है।

सारणी 5: विभिन्न जिलों में अंतर फसल प्रणाली का निष्पादन (2015-16)

फसल	किसान संख्या	क्षेत्रफल	उपज (क्विंटल/हे.) उन्नत क्रियाएं	उपज (क्विंटल/हे.) किसान प्रथा	लाभ लागत अनुपात	जिला
मक्का + अरहर (6:2)	2	2.0	73.8	62.4	2.0	देवनागरे
सोयाबीन + अरहर (6:2)	50	20	21.1	12.5	2.0	अमरावती
फाक्सटेल मिलेट + बाजरा (4:4)	07	1.7	12.2	7.5	2.9	बेलगांव
अरहर + बाजरा (1:2)	16	2.6	7.0	4.5	3.0	बेलगांव
अरहर + फाक्सटेल मिलेट (1:2)	30	4.2	8.1	5.7	3.4	बेलगांव
मूंगफली +फाक्सटेल मिलेट (4:2)	10	2.0	8.1	6.8	2.7	बेलगांव
सोयाबीन + अरहर (4:2)	10	4.0	8.82	7.1	1.6	औरंगाबाद
कपास + मूंग (1:1)	10	4.0	15.9	13.8	2.2	औरंगाबाद
कपास + उड़द (1:1)	10	4.0	16.0	13.3	2.2	औरंगाबाद
रबी ज्वार + कुसुम (6:3)	30	12.0	20.0	14.0	2.5	औरंगाबाद
मूंगफली + अरहर (4:1)	1	0.4	16.5	15.4	2.1	गुमला
मक्का + अरहर (6:2)	3	1.2	35.6	22.2	1.9	गुमला
मक्का + अरहर (1:1)	3	1.2	35.6	22.2	1.9	छतरा
अरहर + उड़द	10	1.0	16.9	8.6	3.3	कोडेरमा

फसल	किसान संख्या	क्षेत्रफल	उपज (क्विंटल/हे.) उन्नत क्रियाएं	उपज (क्विंटल/हे.) किसान प्रथा	लाभ लागत अनुपात	जिला
गेहूं + सरसों	15	8.0	43.1	31.9	2.0	कोडेरमा
अरहर + मूंगफली	20	1.0	15.0	9.9	3.6	विल्लुपुरम
काबुली चना + धनिया बीज	5	2.0	16.7	-	4.2	बालाघाट

कपास+मूंग (1:1) की अंतरासस्ययन फसल प्रणाली के जोखिम को कम करने हेतु महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले के सेखता गांव में 20 कृषकों की 8 हेक्टेयर भूमि में खरीफ में वर्ष 2015 में प्रदर्शन किए गए। अंतरासस्यन फसल से शुद्ध लाभ 41464 रुपए प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुआ जबकि कपास की अकेली फसल से 33580 रुपए प्रति हेक्टेयर लाभ प्राप्त हुआ। साथ ही अंतरासस्ययन फसल में कपास तथा मूंग की कुल उपज 16 क्विंटल प्रति हेक्टेयर पाई गई जबकि कपास की अकेली फसल से 13.3 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त हुई। इसी प्रकार सोयाबीन+अरहर (4:2) खरीफ 2015 में 4 हेक्टेयर क्षेत्र में 10 कृषकों के यहां प्रदर्शित की गई। अंतरासस्यन फसल प्रणाली से अकेले सोयाबीन की फसल की तुलना में 6030 रुपए प्रति हेक्टेयर अधिक आय हुई। कुर्नूल जिले के यज्ञनातीपाली गांव में फसल अवधि में मानसून में देरी तथा लंबे वर्षा अंतराल बहुत ही सामान्य हैं, जिससे एकल फसल प्रणाली से आर्थिक हानि या पूरी फसल समाप्त होने की संभावना बढ़ती है। अरहर+सतरिया (1:5) अंतरासस्यन फसल प्रणाली द्वारा कुल आय 57417 रुपए प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुआ जो सतरिया की अकेली फसल से प्राप्त आय 28942 रुपए प्रति हेक्टेयर से अधिक था (चित्र-7)।

चित्र-7 : महाराष्ट्र में समुत्थान अंतरासस्ययन फसल प्रणालियां

देवनगरी के सिद्धानारु गांव में खरीफ मौसम में मक्का की फसल को लगभग 70 प्रतिशत भाग में बोया जाता है। मानसून के देर से आने के कारण मक्का की बुआई 15 दिन देरी से की गई। सूखा अवरोधी अरहर की किस्म बीआरजी-2 को अंतर्वर्तीय फसल के रूप में मक्का के साथ 6:1 के अनुपात में 21.2 हेक्टेयर में 53 कृषकों के यहां लगाया गया। जिन कृषकों के यहां मक्का+अरहर, अंतर्वतीय फसल के रूप में ली गई, वहां कुल उपज 62.37 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हुई, परंतु जहां पर मक्का की अकेली फसल की बुवाई की गई वहां पर इसकी 46.5 हेक्टेयर उपज मिली।

पशु, कुक्कुट एवं मछली पालन की सहनशील/समुत्थानशील तकनीकों का प्रभाव एवं अंगीकरण

भारत के सूखा ग्रस्त इलाकों में पशुपालन युक्त कृषि प्रणाली कृषकों की आजीविका में एक महत्वपूर्ण योगदान देती है। वैसे तो सूखा ग्रस्त इलाके फसल उत्पादन के लिए कम स्रोतों के कारण कम उपयुक्त माने गए हैं परंतु कुछ घासों एवं पेड़ों की प्रजातियों की पोषण क्षमता अच्छी होने के कारण ये चारे के रूप में उपयोग की जा सकती हैं। नवाचार जैसे कम वर्षा वाले क्षेत्रों में चारे की उपलब्धता एवं गुणवत्ता बढ़ाने, पशुओं को अधिक ताप से बचाने हेतु छायागृह बनाना, छोटे चरने वाले पशुओं की उन्नत नस्लें एवं पशुओं के स्वास्थ्य को अच्छा बनाने आदि पर प्रदर्शन किए जाते हैं ताकि विपरीत जलवायु परिस्थितियों में भी वे अच्छा उत्पादन दे सके।

कृषकों की आय बढ़ाने हेतु यह आवश्यक है कि क्षेत्र विशेष की आवश्यकतानुसार सहनशील/समुत्थानशील नस्लों को वहां समाविष्ट किया जाए। ठंड से प्रतिरोधक नस्ल वनराजा को घर के पीछे मुर्गी पालन हेतु 50 कृषकों के यहां बकरवान, कुलवामा में 500 चूजे देकर प्रदर्शित किया गया। स्थानीय कुक्कुट पक्षियों की अपेक्षा 4 सप्ताह के वनराजा की वृद्धि 345 से 370 ग्राम देखी गई जबकि स्थानीय प्रजातियों में 118 से 155 ग्राम वृद्धि देखी गई। साथ ही वनराजा नस्ल के कुक्कुटों की पहली बार अंडा देने की आयु 182 दिन पाई गई जबकि स्थानीय पक्षियों में यह 217 दिन थी। अतः अंडा देने की क्षमता (क्रमशः 64 एवं 21) में भी वनराजा स्थानीय प्रजातियों से उत्तम पाया गया।

सिक्किम में कृषक महिलाओं की आय का मुख्य साधन घर के पीछे मुर्गी पालन है। पूर्वी सिक्किम के नानडूक निक्रा गांव में द्विकाजी पक्षियों की नस्ल के 250 चूजों को 10 महिला कृषकों में वितरित किया गया, जो विभिन्न मानकों पर स्थानीय प्रजातियों की अपेक्षा बेहतर सिद्ध हुए। उदाहरण के तौर पर तीन महीने में नर पक्षी का औसतन वजन 1.89 किलोग्राम, मादा का 1.57 किलोग्राम बढ़ा हुआ दिखाई दिया। इसके साथ ही साथ पहली बार अंडा देने की उम्र 150 से 155 दिन एवं उत्पादन की दर 170 अंडा प्रतिवर्ष पाई गई। इसी प्रकार बतख पालन में सोनीतपुर जिले के पुननीओनी गांव में परंपरागत व्यवसाय बतख पालन है जो स्थानीय प्रजातियों के साथ ही किया जाता है। इसी क्रम में कृषकों की आय बढ़ाने हेतु काला कैम्पबैल नस्ल को बतख पालन में सम्मलित किया गया जो अधिक अंडा उत्पादन के साथ ही समन्वित कृषि प्रणाली - धान, मछली एवं बतख पालन के साथ आसानी से समाविष्ट हो सकती है तथा धान के जैविक कीट नियंत्रण में भी सहायक है। इसके कारण अंडा उत्पादन 152 से 200 अंडा प्रतिवर्ष हो गया एवं शुद्ध आय में 7050 रुपए का लाभ हुआ एवं लाभ लागत अनुपात 1:2.56 पाई गई। इसी प्रकार हंथीमाल एवं लूंगालई गांवों में जहां ग्रीष्म ऋतु गर्म एवं नम होती है तथा शीत ऋतु ठंडी एवं सूखी होती है। इन परिस्थितियों में खाकी कैम्पबैल बतख को पालकर अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है।

भेड़ की चिकबल्लापुर नरीसुवर्णा प्रजाति को निक्रा गांव एस. रघुटहल्ली गांव में स्थानीय प्रजातियों को उन्नत बनाने के लिए समाविष्ट किया गया। इस प्रजाति की भेड़ें अच्छी तृण खाने

वाली तथा उच्च तापमान को झेलने वाली होती हैं। इस प्रजाति को समाविष्ट करने से कृषकों की आय में 52 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई।

उन्नत किस्मों द्वारा चारा उत्पादन

छोटी एवं मध्यम अवधि की चारा फसलों की किस्मों, जो वर्षा आधारित क्षेत्रों में सूखे की स्थिति को 2 से 3 सप्ताह तक सहन कर सकती हैं, को निक्रा गांवों में प्रदर्शित किया गया (सारणी-6)।

सारणी-6 : निक्रा गांवों में बेहतर चारा संवर्धन प्रदर्शन

राज्य	जिला	चारा फसलें एवं किस्म
महाराष्ट्र	अहमदनगर, अमरावती, औरंगाबाद, जालना, नंदुरबार, बारामती, रत्नागिरी	बहु कटाई चारा (बाजरा, ज्वार), मक्का (यशवंत घास, एमपी चारी, अफ्रिकन टाल), हाइब्रिड नेपियर (बीएनएच-10, सीओ-3), ल्यूसर्न (आरएल-88)
बिहार	सुपौल, जहानाबाद, औरंगाबाद, नवादाह	जई (ओट) (कैंट, जेएचओ-822), सूडान ग्रास, बरसीम (वरदान), ज्वार (एमपी चारी), मकई चारा (अफ्रिकन टॉल), ज्वार (एसएक्स-17)
उत्तर प्रदेश	गोंडा, हमीरपुर, झांसी, मुजफ्परनगर, प्रतापगढ	जई (ओट) (कैंट, जेएचओ-822), हाईब्रिड नेपियर (एनबी-21), ज्वार (सीएसवी-15, सीएसएच-24), बरसीम (जेएचबी-146), ज्वार (एमपी चारी), बरसीम (वरदान)
आंध्र प्रदेश	अनंतपुर चित्तूर, कुर्नूल	बहु कटाई चारा (सीओएफएस-29), हाइब्रिड नेपियर (सीओ-4), चारा ज्वार (सीएसएच-24), मक्का (अफ्रिकन टाल), ल्यूसर्न
तेलंगाना	खम्मम, नलगोंडा	मीठी ज्वार (सुगर ग्रेज), मक्का (एपीबीएन-1, एमपी-चारी)
गुजरात	कुच्छ, वलसाद, अमरेली,	ल्यूसर्न, चारा ज्वार (गुंदरी), बारहमासी घास (बीएनएच-10), ल्यूसर्न (आनंद-3)
राजस्थान	झुंझनु, बाड़मेर, कोटा	जई(ओट) ल्यूसर्न, बाजरा, ज्वार (एमपी चारी), ल्यूकैना (टी-9), बरसीम (बीएल-1)
मध्य प्रदेश	बालाघाट, दतिया, झाबुआ, मुरैना	बरसीम (बीएल-1), मक्का (जे-1006, एमपी-चारी), हाईब्रिड नेपियर (आईडीएफआरआई-6), ल्यूसर्न (एलएल-3), ज्वार (एमपी चारी), बरसीम (बी बी-3), जौ (बारले) (बीएच-959) जई(ओट) (जेएचओ-822)
कर्नाटक	चिक्कबल्लापुर दानवगेरे, गदग, तुमकुर	गूयैना ग्रास, हाइब्रिड नेपियर (सीओ 3, सीओ 4), संपूर्णा (डीएचएन-6), चारा मक्का (अफ्रिकन टाल), गुयैना ग्रास, आरहोड्स ग्रास एवं सिग्नल ग्रास
तमिलनाडु	विल्लुपुरम	अंजन घास, स्टाइलोसंथेसिस, ल्यूसर्न
झारखंड	गुमला	जई (ओट) (जेएचओ-822)
पं.बंगाल	मालदा	सूडान ग्रास
ओडिशा	कालाहांडी, सोनेपुर	मक्का, हाइब्रिड नेपियर
उत्तराखंड	उत्तरकाशी	हाइब्रिड नेपियर (सीओ-3), ज्वार (एमपी चारी), ओट (जेएचओ-342)

राज्य	जिला	चारा फसलें एवं किस्म
पंजाब	भटींडा, रोपड, फरीदकोट	मक्का (जे-1006), बरसीम (एचबी-2),
हिमाचल प्रदेश	चांबा, कुल्लु	जई(ओट) ओट (जेएचओ-99, पीएलपी-1), मक्का (अफ्रिकन टाल),
जम्मू व कश्मीर	पुलवामा, बांदीपोरा	जई (ओट) (पीएलपी-1), चारा मक्का (अफ्रिकन टाल), ज्वार (एमपी चारी), लोबिया (राजमा) (यूपीसी-9202) जई (ओट) (सबजार)
अंडमान व निकोबार	पोर्ट ब्लेयर	हाइब्रिड नेपियर (सीओ-3)
असम	धूबरी	नेपियर (एनबी-21)
नगालैंड	फेक	जई (ओट) (केंट)
अरुणाचल प्रदेश	तिरप	जई (ओट) (एचजे-114), बेरसीम (मेसावी)
असम	सोनितपुर	हाइब्रिड नेपियर (सीओ-3)

इन सभी प्रजातियों को वर्षा आधारित क्षेत्रों में खरीफ ऋतु में वर्षा के तुरंत बाद लगाया गया, जो 50 से 60 दिन में कटाई के लिए तैयार हुई। इसी प्रकार रबी चारा फसलों, जैसे बरसीम (वरदान, यूपीबी-110) एवं ल्यूसर्न (सीओ-1, एलएलसी-3 एवं आरएल-88) को उपलब्ध नमी में दूसरी फसल के साथ निक्रा गांव में प्रदर्शित किया गया। बहुवर्षीय चारा प्रजातियों, जैसे एपीबीएन-1, सीओ-3 और सीओ-4 को सीमित सिंचाई परिस्थितियों में लगाया गया (चित्र-8)।

चित्र-8 : उन्नत यंत्रों के प्रयोग द्वारा चारा उत्पादन

कुक्कुट पालन के लिए उन्नत आवास प्रणाली

पश्चिमी बंगाल के दक्षिण 24 परगना के बोघरी गांव में मुर्गी पालन आजीविका का एक प्रमुख साधन है। हालांकि, बार-बार आने वाले तूफानों एवं चक्रवातों के कारण परांपरागत मुर्गीघर तहस-नहस हो जाते है एवं पक्षियों की मृत्यु दर भी बढ़ जाती है। लोहे के ढांचों एवं जालियों के

साथ द्विस्तरीय गृह प्रणाली का प्रदर्शन 40 पक्षियों के लिए किया गया जिसमें 20 मुर्गियों को निचले स्तर में तथा 20 सजावटी पक्षियों को ऊपरी स्तर पर रखा गया। इस प्रणाली से मुर्गियों में एक दूसरे को मारने का प्रतिशत कम हुआ तथा अंडा उत्पादन की दर में वृद्धि हुई। इसी के साथ सजावटी पक्षियों के कारण अतिरिक्त आय भी प्राप्त हुई। इस साल में 5 कृषकों ने इस तकनीक को अपनाने में रुचि दिखाई।

एल्लीपे जिले के मुटार गांव में मानसून के दौरान कृषक बाढ़ की समस्या का सामना करते है जिससे मुर्गियों में बहुत तेजी से बीमारियां फैलती हैं। इस कारण यहां पिंजरे वाली उन्नत गृह प्रणाली का प्रदर्शन किया गया जिसका आकार 120 सेंटीमीटरx90 सेंटीमीटरx75 सेंटीमीटर था। ये चारों तरफ से जाली से बंद थी। इसमें नीचे लकड़ी का एक तख्ता लगा होता है तथा ऊपर टिन सीट लगी होती है। वर्ष 2015-16 में 22 पक्षी इन आवासों में रखे गए तथा कुल 70 पिंजरे विभिन्न निक्रा गांवों में प्रदर्शित किए गए।

जलवायु सहनशीलता व समुत्थानशीलता बढ़ाने हेतु समन्वित कृषि प्रणाली

समन्वित कृषि प्रणाली के विभिन्न घटकों (फसल उत्पादन, पशु पालन, मुर्गी पालन, सूअर पालन, मछली पालन एवं बतख पालन आदि) को कृषकों के यहां प्रदर्शित किया गया। झारखंड के सिंघभूमि के लोक्रेशा गांव में सूअर - मुर्गी पालन - मछली पालन की समन्वित कृषि प्रणाली का प्रदर्शन किया गया जहां कृषक पहले धान की फसल पर ही निर्भर रहते थे। यहां पर एक कृषक को प्रोत्साहित किया गया कि वह तालाब को साफ करें एवं उसके किनारे सूअरों का बाड़ा बनाए। इसके पश्चात तालाब में 4 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से चूना तथा 10 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर डाला गया। इसके पश्चात तालाब में मछली की 5 अलग-अलग किस्में तथा 15 खाकी कैंपबैल बतख के चूजे एवं 6 सूअर (दो नर) समाविष्ट किए गए। सूअर तथा बतखों का अवषिष्ट तालाब में मछलियों के खाने के काम आता है तथा तालाब का पानी रबी फसलों की क्रांतिक अवस्थाओं में पानी देने के काम आता है। इसी प्रकार सब्जियों के अवशेष पक्षियों एवं सूअरों के खाने के काम आते हैं। इस प्रकार की समन्वित कृषि प्रणाली से वर्ष 2013 के दौरान पहले साल में कुल 1.71 लाख रुपए आय प्राप्त हुई। इस प्रकार का लाभ देखकर गांव के 50 प्रतिशत तालाब वाले कृषकों ने यह प्रणाली अपना ली।

दतिया जिले के प्रगतिशील किसान श्री पटेरिया जी ने संरक्षित जल का उपयोग कर फसल - सब्जी उत्पादन - दुग्ध उत्पादन - मछली पालन आदि का एक समन्वित कृषि प्रणाली माडल बनाया जिसमें मछलियों की कतला, रोहू, मृगल, ग्रासकार्प प्रजातियां तालाब में छोड़ी गई। साथ ही फसल के अवशेषों, गोबर आदि का उपयोग खाद एवं वायु गैस बनाने के लिए किया गया। इसकी स्लरी का उपयोग खेतों में फसल उत्पादन हेतु किया गया तथा संरक्षित जल का प्रयोग फसलों में सिंचाई के लिए उपयोग में लाया गया। इस समन्वित प्रणाली से कुल 52000 रुपए का लाभ अर्जित किया गया। यहां तक कि तालाब खोदने की लगभग 50 प्रतिशत लागत प्रथम वर्ष में ही उन्हें वापस भी मिल गई (चित्र-9)।

चित्र-9 : दतिया (मध्य प्रदेश) में समेकित कृषि प्रणाली

सारांश

वर्षा आधारित कृषि जिसका योगदान कृषि में लगभग 60 प्रतिशत है तथा ये जलवायु परिवर्तन एवं असमानता से अत्यधिक प्रभावित होती है। इसी कारण जलवायु समुत्थनशील कृषि का योजनाबद्ध तरीके से अंगीकरण बहुत महत्वपूर्ण है। निक्रा परियोजना के अंतर्गत विभिन्न समुत्थनशील तकनीकों का प्रदर्शन देश के कुल 121 जलवायु संवेदनशील जिलों में किया जा रहा है। इन तकनीकों के द्वारा प्रभावी ढंग से जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कम हुआ तथा कृषि उत्पादकता में वृद्धि पाई गई। इसके साथ ही साथ समाज में इन तकनीकों के अंगीकरण की क्षमता भी बढ़ी है। इन तकनीकों द्वारा कृषकों की आजीविका में सुधार हुआ है। यह पाया गया कि अंगीकृत ग्राम जलवायु समुत्थानशील ग्रामों के रूप में विकसित हो रहे हैं। इन तकनीकों का मानकीकरण करनोपरांत उन्हें राज्य एवं केंद्र सरकार की योजनाओं से जोड़कर अधिक से अधिक गांवों तक पहुंचाया जा सकता है।

संदर्भ

बिरथल, पीएस; दिग्विजय, एसएन; शिवकुमार; अग्रवाल, एस; सुरेश ए एवं ताजुद्दीन खान, एमडी (2014). हाउ सेंसिटिव इज इंडियन एग्रीकल्चर टू क्लाइमेट चेंज; इंडियन जर्नल आफ एग्रीकल्चर इकनॉमिक्स 69(4) : 474-497.

जस्ना, वीके; सोम सुकन्या; रॉय बर्मन,आर; पदरिआ, आर एन एंड शर्मा,जेपी (2014). सोसिओ इकनोमिक इम्पैक्ट आफ क्लाइमेट रेसिलिएंट टेक्नोलॉजीज. इंटरनेशनल जर्नल आफ एग्रीकल्चर एंड फ़ूड साइंस टेक्नोलॉजी. वॉल्यूम 5, नंबर 3 (2014), पृष्ठ 185-190

वेंक्टेश्वर्लु, बी; महेश्वरी, एम; श्रीनिवास राव,एम; राव, वीयूएम; श्रीनिवास राव, सीएच; रेड्डी, केएस; रमणा, डीबीवी; रामाराव, सीए; विजय कुमार, पी; दीक्षित, एस एंड सिक्का, एके (2013). नेशनल इनिशिएटिव आन क्लाइमेट रेसिलिएंट एग्रीकल्चर (निक्रा), रिसर्च हाइलाइट्स. (2012-13). सेंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार ड्राईलैंड एग्रीकल्चर, हैदराबाद.

★★★

20

वर्षा आधारित टिकाऊ कृषि हेतु कार्यक्रम एवं नीतियां

- एम उस्मान, सी ए रामाराव, बी कृष्णा राव, बी एम के राजू, जोसले सैम्यूल, अशोक कुमार इंदोरिया एवं संतराम यादव

परिचय

वर्षा आधारित कृषि मुख्यत: देश के शुष्क, अर्धशुष्क एवं उपार्द्र क्षेत्रों में फैली है। इन क्षेत्रों में देश की लगभग 80 प्रतिशत ग्रामीण आबादी निवास करती है। इन क्षेत्रों में देश के कुल बुवाई क्षेत्रफल का 35 प्रतिशत हिस्सा तथा कुल खाद्यान्नों का 40 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त होता है। मानसून में विच्छेपण, मृदा क्षरण, मृदा में विभिन्न पौषक तत्वों की कमी, मृदा की जल धारण क्षमता में कमी, निरंतर भूजल स्तर में गिरावट एवं किसानों के पास आवश्यक संसाधनों की कमी मुख्यत: इन क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। इसके अलावा जलवायु परिवर्तनशीलता के कारण विपरीत व तीव्र मौसमी घटनाएं इन क्षेत्रों की कृषि के लिए एक गंभीर चुनौती बनकर उभर रही है। विपरीत मौसमी परिस्थितियों की वजह से अकसर फसल का नष्ट होना, सिंचाई सुविधाओं का अभाव, कम फसल गहनता, कम कृषि आय, कुपोषण, पीने के पानी की खराब गुणवत्ता, साक्षरता का कम स्तर, छोटे जोत आकार, बढ़ती जनसंख्या का दबाव, बेरोजगारी, गरीबी, वित्तीय तंत्र एवं संस्थानात्मक ढांचे का कमजोर होना इत्यादि समस्याओं से ये क्षेत्र गंभीर रूप से ग्रसित हैं। कमजोर मृदाएं एवं कम मानसून अवधि (जून से सितंबर) फसलावधि को लगभग 120 दिनों तक सीमित कर देते हैं। दूसरे शब्दों में लंबी अवधि की फसलें इन क्षेत्रों में लेने से विफलता का खतरा बढ़ जाता है। इन क्षेत्रों में व्याप्त विपरीत जलवायुवीय परिस्थितियां न केवल किसानों को फसल चुनने के अवसर घटाती है अपितु किसान उन फसलों को उगाने में भी असक्षम होता है जिनकी बाजार मांग अधिक है और जिनसे धन लाभ कमाया जा सकता है। मानसून की अनिश्चितता एवं कमजोर मृदाओं की वजह से किसान ज्यादा कृषि निवेश से बचते हैं अर्थात्, इन क्षेत्रों के किसान फसल उत्पादन से पैदावार एवं आय को बढ़ाने के बजाए जौखिम को कम करने के लिए तैयार रहते हैं। इन क्षेत्रों की कृषि में उच्च जोखिम होने से सामान्यत: वित्तीय संस्थान भी किसानों को उधार देने से बचते हैं।

आजादी के बाद देश में पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई सुविधाएं विकसित करने पर जोर दिया गया। यद्यपि, देश में संपूर्ण सिंचाई योजनाएं लागू करने के बाद भी कृषि का लगभग आधा भाग वर्षा आधारित रहेगा। वहीं दूसरी तरफ हरित क्रांति का ज्यादा प्रभाव सिंचित क्षेत्रों

में देखा गया। यद्यपि, ये प्रभाव पुन: कम होने लगा है तथा स्थिरता की तरफ बढ़ रहा है, जो निश्चय ही खाद्य सुरक्षा के लिए एक गंभीर चिंता का विषय है।

अक्सर देखा गया है कि कृषि से होने वाले सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि, गैर कृषि सकल घरेलू उत्पाद के मुकाबले गरीबी को कम करने में अधिक सक्षम है। यह भी देखा गया है कि सिंचित क्षेत्रों के मुकाबले, वर्षा आधारित क्षेत्रों में कृषि पर अतिरिक्त निवेश करने से अधिक संख्या में गरीब लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाया जा सकता है। हरित क्रांति के अवलोकन दर्शाते हैं कि अतीत में वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों को ज्यादातर नजर अंदाज किया गया है। जबकि, देश की काफी आबादी इन क्षेत्रों में अपना जीवन यापन करती है जो पूर्ण रूप से वर्षा जल पर आश्रित हैं। अत: अब समय आ गया है कि कृषि के दायरे को बढ़ाकर इन क्षेत्रों पर विशेष ध्यान दिया जाए। इन क्षेत्रों की कृषि में स्थिरता एवं सततता बढ़ाने के लिए उपयुक्त कार्यक्रम एवं नीतियों की अति आवश्यकता है। इसके अलावा वर्तमान में जारी आर्थिक विकास नीतियों में समग्रता पर जोर देने के लिए वर्षा आधारित कृषि में संबंधित विकास पर भी ध्यान दिया जाए।

कार्यक्रम एवं नीतियां

आजादी के बाद वर्षा आधारित क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं इनके प्रबंधन के लिए कई कार्यक्रम प्रारंभ हुए। इस दिशा में प्रयास करते हुए तीव्र सूखे से ग्रसित नाजुक क्षेत्रों की समस्याओं से निपटने के लिए "क्षेत्र विकास कार्यक्रम" के तहत सर्वप्रथम 1973-74 में भारत सरकार द्वारा यह कार्यक्रम शुरू किया गया। इसके बाद 1977-78 में रेगिस्तान विकास कार्यक्रम (डीडीपी) को राजस्थान, गुजरात एवं हरियाणा के गर्म रेगिस्तानी तथा जम्मू और कश्मीर के तीव्र ठंड वाले रेगिस्तानी क्षेत्रों के लिए शुरू किया गया। राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड के तत्वाधान में 1989 में एकीकृत वाटरशेड (जलागम) विकास कार्यक्रम (आईडब्ल्यूडीपी), बंजर भूमि के विकास के लिए चालू किया गया। इसी संदर्भ में डीपीएपी/डीडीपी के प्रभावों का आकलन करने और सुधार उपाय सुझाने के लिए 1994 में प्रोफेसर सी एच हनुमंथा राव की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। समिति ने ग्रामीण विकास मंत्रालय के अधीन कार्यक्रमों के परिचालन और व्यय मानकों से संबंधित साझा दिशा-निर्देश जारी किए।

वाटरशेड विकास के लिए जारी कार्यक्रम के लिए दिशा-निर्देश 1 अप्रैल, 1995 में लागू किए गए। ये दिशा-निर्देश पुन: 2001 और 2003 में फिर संशोधित किए गए तथा इन संशोधित दिशा-निर्देशों को "हरियाली दिशा-निर्देश" के नाम से जारी किया गया। इन क्षेत्रों के विकास की दिशा में ओर कदम बढ़ाते हुए ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में राज्य सरकारों के साथ परामर्श से ठोस कार्रवाई योजनाओं को विकसित करने पर जोर दिया गया। अंत में वाटरशेड विकास, 2008 में सामान्य दिशा-निर्देश जारी किए गए और इन्हें 1 अप्रैल, 2008 से प्रभावी माना गया।

भूमि संसाधन विभाग द्वारा जारी तीन कार्यक्रमों अर्थात् डीपीएपी, डीडीपी और आईडब्ल्यूडीपी को वर्ष 2009 में एकीकृत वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम (आईडब्ल्यूएमपी) नामक एक व्यापक कार्यक्रम के रूप में समेकित करनोपरांत इसे राष्ट्रीय वर्षा आधारित क्षेत्र प्राधिकरण द्वारा किए गए साझा दिशा-निर्देशों के तहत लागू किया गया। हालांकि, अब यह कार्यक्रम हाल ही में जारी "प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना" का हिस्सा बन चुका है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)

सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम लागू किया था, जिसे बाद में महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) का नाम प्रदान किया गया। यह योजना ग्रामीणों के काम करने के अधिकार के रूप में सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करती है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में एक वित्तीय वर्ष में कम से कम 100 दिनों के लिए रोजगार की सुरक्षा करके प्रत्येक परिवार के एक सदस्य को अकुशल श्रमिक के रूप में काम करने का अवसर पैदा करना है। मनरेगा का एक अन्य उद्देश्य यह भी है कि इसके द्वारा टिकाऊ सपंतियां जैसे सड़क, नहर, तालाब, कुओं इत्यादि का निर्माण करना या बनाना है। इस योजना के तहत प्रत्येक आवेदक को उसके निवास स्थान से 5 किलोमीटर के अंदर रोजगार उपलब्ध कराया जाता है तथा नियमानुसार निश्चित समय के अंतराल पर न्यूनतम मजदूरी का भुगतान किया जाता है। अगर आवेदक के अनुरोध के बाद 15 दिनों के अंदर काम नहीं दिया गया तो आवेदक बेरोजगारी भत्ते के लिए हकदार होगा। मनरेगा योजना को ग्राम पंचायतों के माध्यम से चलाया जा रहा है तथा इसमें ठेकेदारी प्रथा को प्रतिबंधित किया गया है। इस योजना में श्रमिक आश्रित कार्य जैसे वर्षा जल संचयन के लिए तालाब बनाना, पुराने तालाबों को गहरा करना, सूखा राहत कार्य, बाढ़ नियंत्रण के लिए बुनियादी ढांचे का निर्माण करना आदि के रूप में कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाता है। ये योजना ग्रामीण आर्थिक सुरक्षा, ग्रामीण संपत्ति निर्माण, पर्यावरण सुरक्षा, ग्रामीण महिला सशक्तिकरण, सामाजिक समरसता तथा ग्रामीण आबादी के शहरी प्रवासन को कम करने में योगदान दे रही है।

राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन (नेशनल मिशन फार सस्टेनेबल एग्रीकल्चर)

वर्षा आधारित क्षेत्रों में कृषि के विकास के साथ साथ प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण निश्चय ही देश की बढ़ती खाद्यान्न मांग को पूरा करने की क्षमता रखता है। इसी दिशा में कार्य करते हुए सरकार द्वारा राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन चालू किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य वर्षा आधारित क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता को बढ़ाना है। इसमें प्रमुख रूप से जल उपयोग दक्षता बढ़ाना, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन तथा अन्य संसाधन संरक्षण प्रमुख हैं। एन एम एस ए के रूप में मुख्य उद्देश्य “सतत कृषि मिशन” से लिए गए हैं, जो जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना (एनएपीसीसी) के अंतर्गत उल्लेखित आठ मिशनों में से एक है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य कृषि के दस आयामों पर ध्यान केंद्रित करते हुए कृषि में अनुकूलन उपायों के माध्यम से सततता बढ़ाना है। ये दस आयाम क्रमश: संवर्धित फसल बीज, पशुपालन एवं मत्स्य पालन, जल उपयोग दक्षता, कीट नियंत्रण, उन्नत कृषि क्रियाएं, पौषक तत्व प्रबंधन, कृषि क्षेत्र में बीमा सुविधा, विपणन सूचनाओं का आदान-प्रदान एवं आजीविका विविधीकरण है। एन एम एस ए का एक उद्देश्य यह भी है कि इसमें स्थान विशेष संवर्धित कृषि क्रियाओं को बढ़ावा देना है। इन क्रियाओं में मुख्य रूप से उचित मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, बेहतर जल उपयोग दक्षता, रासायनिक खादों का उचित प्रयोग, फसल में विविधता, उन्नत कृषि प्रणालियां, फसल रेशम उत्पादन, कृषि वानिकी, मत्स्य पालन इत्यादि हैं। इस कार्यक्रम का एक उपभाग मुख्यत: मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, जैविक खेती, लघु सिंचाई तथा वर्षा आधारित क्षेत्र विकास के लिए बनाया गया है।

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य फसल उत्पादकता बढ़ाने के लिए वांछित सीमा में पौषक तत्व का प्रबंधन करके फसल पौषक तत्व उपलब्धता में सुधार करना है, अर्थात् फसल पौषक तत्व प्रबंधन, फसल उत्पादकता को बढ़ाने, खाद्यान्न एवं कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित करने के साथ ही साथ मृदा एवं जल संसाधनों की गुणवत्ता के लिए भी अति महत्वपूर्ण है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना

भारत सरकार ने 19 फरवरी, 2015 को मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना की शुरुआत की थी। इस योजना के तहत तीन साल के भीतर सभी भूमिधारी किसानों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड उपलब्ध कराने का लक्ष्य है।

बारानी क्षेत्र विकास (रेनफेड एरिया डवलपमेंट)

इन क्षेत्रों की कृषि सततता के लिए यह अति आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में संसाधनों का समुचित उपयोग करते हुए कृषि आधारित आय अर्जित करने के अवसर प्रदान किए जाएं। इसी संदर्भ में आरएडी के उपघटक एकीकृत कृषि प्रणाली एवं स्वस्थान नमी एवं मृदा संरक्षण विधियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। आरएडी में सूखा प्रबंधन पर भी विशेष ध्यान दिया गया है।

जैविक खेती

वर्तमान में जारी आरकेवीवाई एवं एनएमएसए द्वारा जैविक खेती को वर्ष 2013-14 से बढ़ावा दिया जा रहा है। जैविक खेती को निम्नलिखित तीन घटकों के माध्यम से बढ़ावा दिया जा रहा है:-

- प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं प्रभ्रमण यात्राओं द्वारा क्षमता निर्माण करना।
- जैव उर्वरक उत्पादन इकाइयों की स्थापना करना।
- प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए नई योजनाओं का समावेश करना, आदि।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई)

भारत सरकार ने 11वीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय कृषि विकास योजना की शुरुआत की थी। इस योजना में राज्यों द्वारा कृषि एवं इससे संबंधित क्षेत्रों में निवेश बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन राशि दी जाती है। आरकेवीवाई योजना में निम्नलिखित गतिविधियां सम्मिलित की गई हैं:-

- प्रमुख खाद्यान्न फसलों में समग्र विकास (जैसे आनुवांशिक बीजों का उत्पादन, बीज उपचार, किसान खेत पाठशाला, किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम)।
- मृदा स्वास्थ्य से संबंधित गतिविधियां (मृदा स्वास्थ्य कार्ड, सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रदर्शन)।
- समग्र कीट एवं रोग प्रबंधन।

- कृषि विस्तार संबंधित गतिविधियों को बढ़ावा देना।
- बागवानी उत्पादन को बढ़ावा देने वाली गतिविधियां।
- पशुपालन एवं मत्स्य पालन से संबंधित गतिविधियां।
- किसानों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना।
- जैविक उत्पादों एवं जैव उर्वरकों का उत्पादन एवं विपणन करना।
- रेशम उत्पादन, आदि।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (नेशनल फूड सिक्यूरिटी मिशन, एनएफएसएम)

भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान शुरू किया गया था। इस मिशन को बारहवीं पंचवर्षीय योजना में कुछ विशेष उद्देश्यों को जोड़ते हुए जारी रखा गया था। वर्ष 2011-15 में मोटे अनाज एवं वाणिज्यिक फसलें इस मिशन का हिस्सा थीं। वर्ष 2015-16 के लिए चावल, दालें, मोटे अनाज एवं वाणिज्यिक फसलों के लिए वित्तीय आबंटन किया गया। राष्ट्रीय तिलहन (लघु मिशन-1) एवं आयलपाम मिशन (लघु मिशन-2) को भी एक अप्रैल, 2014 से इस मिशन में शामिल कर लिया गया।

राष्ट्रीय बागवानी मिशन (नेशनल हार्टिकल्चर मिशन, एनएचएम)

बागवानी क्षेत्रों के समग्र विकास के लिए केंद्र सरकार ने 2005-06 में राष्ट्रीय बागवानी मिशन योजना की शुरुआत की। बाद में इस योजना को ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में संशोधन के साथ जारी किया गया जिसमें 85 प्रतिशत योगदान केंद्र सरकार का था एवं 15 प्रतिशत योगदान राज्य सरकारों का था। इस योजना में बागवानी विस्तार क्षेत्र, बागानो का पुनरोत्थान, प्रसंस्करण, विपणन इत्यादि के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई)

भारत सरकार ने 2015 में प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) आरंभ की। इसका मुख्य उद्देश्य जल संरक्षण एवं इसका प्रबंधन है। इस योजना को यह सोचकर बनाया गया है कि हर खेत के लिए सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो। अर्थात् "हर खेत को पानी" और जल उपयोग दक्षता को बढ़ाकर "अधिक फसल-प्रति बूंद" (मोर क्राप-पर ड्राप) के सिद्धांत को अपनाना है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में इस योजना के तहत निम्नलिखित गतिविधियों को बढ़ावा दिया जा रहा है:-

- जल संरक्षण संरचनाओं का विकास करना।
- लघु एवं सीमांत किसानों में क्षमता निर्माण करना।
- जल निकास, मृदा एवं नमी संरक्षण, नर्सरी स्थापना, वनीकरण, बागवानी, चारा विकास, साधन विहीन किसानों के लिए आजीविका के स्त्रोत पैदा करने वाली गतिविधियां, उत्पादन एवं व्यापार के अवसर पैदा करना।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना

कृषि समुदाय के विकास के लिए केंद्र सरकार ने प्रभावी कदम उठाते हुए, खरीफ 2014 में प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना कार्यक्रम शुरू किया। इस कार्यक्रम के दो मुख्य घटक हैं। राष्ट्रीय समेकित कृषि बीमा एवं मौसम आधारित फसल बीमा योजना। इस योजना को पुन: आकार दिया गया और अब ये योजना प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के नाम से जानी जाती है। इस योजना को जनवरी 2016 से लागू किया गया था। इस योजना में किसान की बीमा राशि के प्रीमियम (किश्त) का भार आसान किया गया है। खरीफ फसलों के लिए बीमा राशि का प्रीमियम 2 प्रतिशत, रबी के लिए 1.5 प्रतिशत, वाणिज्यिक और बागवानी फसलों के लिए 5 प्रतिशत निर्धारित किया गया है। इस योजना में यह भी सुनिश्चित किया गया है कि किसान को समय पर बीमा राशि का भुगतान किया जा सके। यह योजना सूखे एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं से जुड़े जोखिम से निपटने हेतु किसानों के लिए एक विकल्प है।

राष्ट्रीय जलवायु समुत्थान कृषि में नवप्रवर्तन (नेशनल इन्नोवेटिव आफ क्लाइमेट रिजिलियंट एग्रीकल्चर - निक्रा)

वर्ष 2011 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) द्वारा एक बड़ी परियोजना “निक्रा” को चार आयामों, अर्थात् (1) रणनीतिक अनुसंधान (2) प्रौद्योगिकी प्रदर्शन (3) ज्ञान प्रबंधन, एवं (4) क्षमता निर्माण, के साथ लागू किया गया। बदलते हुए जलवायु परिवर्तन के तहत किसानों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रौद्योगिकी प्रदर्शन को किसानों की सहभागिता के साथ उनके खेतों पर किया जाता है। ये जलवायु लोचदार गांव जिले के अन्य गांवों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत कर रहे हैं तथा स्थान विशेष की जलवायु लोचदार प्रौद्योगिकियों, जो प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, फसल उत्पादन, पशुपालन एवं मत्स्य पालन इत्यादि से संबंधित हैं, का प्रदर्शन किया जा रहा है। निक्रा के प्रौद्योगिकी प्रदर्शन घटक के तहत देश के 121 जलवायु सहिष्णु जिलों में संबंधित कृषि विज्ञान केंद्रों के माध्यम से किया जा रहा है। ये जिले देश के 28 राज्यों एवं एक केंद्र शासित प्रदेश में फैले हैं।

वर्षा आधारित फसल उत्पादन में वृद्धि - अनुरेखन

राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली द्वारा वर्षा आधारित क्षेत्रों से जुड़ी संस्थाओं ने इन क्षेत्रों की कृषि के लिए आवश्यक अनुसंधान करके विभिन्न प्रौद्योगिकियों का विकास किया है। इन प्रौद्योगिकियों में मोटे तौर पर : बेहत्तर फसल किस्म (ताप एवं सूखा सहनशील, उच्च पैदावार, कीट एवं रोग प्रतिरोध), फसल प्रबंधन (बिजाई समय में अनुकूलन, निराई गुड़ाई क्रियाएं), संसाधन प्रबंधन (फसल मौसम के बाद या पहले जुताई क्रियाएं, स्वस्थान नमी संरक्षण, वर्षा जल संचयन) तथा पौषक तत्व एवं कीट व रोग प्रबंधन इत्यादि हैं।

उपरोक्त प्रौद्योगिकियों का अकेले एवं संयोजन के साथ प्रयोग करने पर फसलोत्पादन में बढ़ोतरी देखी गई है। साल दल साल फसलोत्पादन में बढ़ोतरी इन्हीं प्रौद्योगिकियों के योगदान को दर्शाती है। पिछले कुछ दशकों में ज्वार एवं बाजरा के कुल बिजाई क्षेत्र में गिरावट दर्ज की

गई है। उसके बावजूद भी इनके उत्पादन में ज्यादा गिरावट देखने को नहीं मिल रही है। इसकी मुख्य वजह इनके क्षेत्र में गिरावट की तुलना में उपज में वृद्धि अधिक थी (सारणी-1)।

सारणी-1 : विभिन्न दशकों के उत्पादन में क्षेत्र एवं उपज का योगदान (लाख टन)

दशक	क्षेत्र का योगदान	उपज का योगदान	मिश्रित योगदान	कुल योगदान
ज्वार				
1980-1970	-1.17	3.44	-0.41	1.87
1990-1980	-0.88	0.99	-0.07	0.04
2000-1990	-3.78	0.38	-0.12	-3.52
2008-2000	-1.54	1.03	-0.19	-0.70
2008-1970	-5.42	6.91	-3.80	-2.32
बाजरा				
1980-1970	-0.54	0.59	-0.07	-0.02
1990-1980	-0.20	1.27	-0.05	1.01
2000-1990	-0.69	1.95	-0.23	1.03
2008-2000	0.18	1.64	0.04	1.86
2008-1970	-1.12	6.52	-1.53	3.88
मक्का				
1980-1970	0	0.03	0	0.03
1990-1980	0.08	1.81	0.02	1.91
2000-1990	0.70	2.40	0.22	3.32
2008-2000	2.83	1.87	0.47	5.17
2008-1970	2.26	5.91	2.27	10.43

स्त्रोत : लेखक गणना

वर्ष 1977 से 2008 तक तिलहन के उत्पादन में बढ़ोतरी दर्ज की गई। इस बढ़े हुए उत्पादन में 38 प्रतिशत की वजह से क्षेत्र विस्तार तथा 38 प्रतिशत की वजह से अधिक उत्पादन पाया गया है (सारणी-2)।

सारणी 2: विभिन्न दशकों के उत्पादन में क्षेत्र एवं उपज का योगदान (लाख टन)

दशक	क्षेत्र का योगदान	उपज का योगदान	मिश्रित योगदान	कुल योगदान
तिलहन				
1980-1970	1.16	0.62	0.09	1.88
1990-1980	2.38	3.14	0.79	6.32
2000-1990	2.88	3.01	0.55	6.44
2008-2000	1.24	3.35	0.19	4.78

दशक	क्षेत्र का योगदान	उपज का योगदान	मिश्रित योगदान	कुल योगदान
2008-1970	6.09	7.40	5.92	19.41
दलहन				
1980-1970	0.60	-1.06	-0.06	-0.52
1990-1980	-0.25	1.94	-0.04	1.65
2000-1990	-0.06	1.31	-0.01	1.24
2008-2000	0.40	0.09	0.00	0.49
2008-1970	0.61	2.15	0.11	2.87

स्रोत : लेखक गणना

इसी प्रकार दालों के उत्पादन में 75 प्रतिशत तक बढ़ोतरी देखी गई है। यह सब उन्नत प्रौद्योगिकी के विकास एवं प्रसार से ही संभव हो सका है क्योंकि ये सत्य है कि 1972 से 2005 के मध्य बहुत ही कम सिंचित क्षेत्र में बढ़ोतरी हुई है।

हालांकि, कई प्रौद्योगिकियों का विकास किया गया है, फिर भी इनको अपनाने की दर आशा के अनुरूप नहीं देखी गई है। इन प्रौद्योगिकियों को धीमी गति से अपनाने की वजह से जहां एक ओर वर्षा आधारित क्षेत्रों के किसान उचित लाभ नहीं उठा पाए, वहीं दूसरी तरफ इन क्षेत्रों के अनुसंधान में भी गिरावट दर्ज की गई है। ऐसा देखा गया है कि किसानों द्वारा प्राप्त उपज एवं प्रौद्योगिकियों द्वारा संभावित उपज में एक बड़ा अंतर है (चित्र-1)।

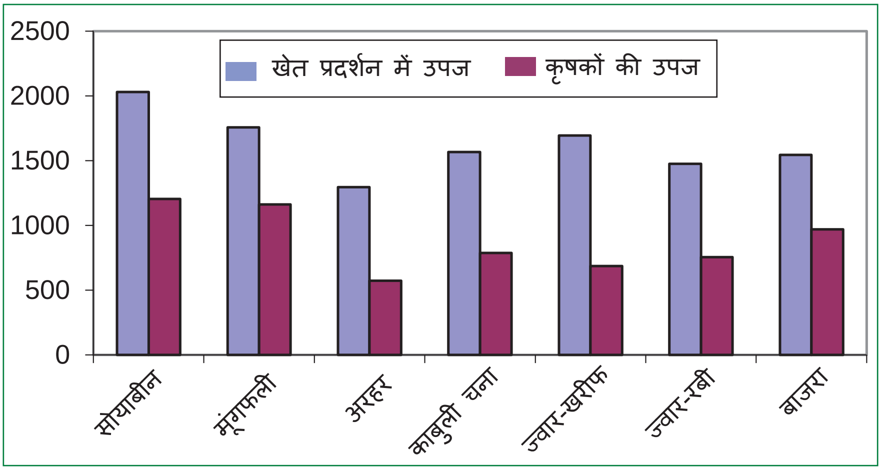

चित्र-1 : अर्ध-शुष्क क्षेत्रों की प्रमुख फसलों में प्राप्त कर सकने वाली और वास्तविक पैदावार (किग्रा/हेक्टेयर) में अंतर (भाटिया एवं अन्य (2006), मूर्ति एवं अन्य (2007) से गणना) की गई।

इन क्षेत्रों के फसलोत्पादन को बढ़ाने के लिए उपयुक्त एवं प्रोत्साहन वाली दशाओं का निर्माण करना अति आवश्यक है, जिसमें उपयुक्त नीतियां, सुदृष्ठ प्रशासनिक ढांचे, निवेश व निर्गम बाजार, अनुसंधान एवं विस्तार तंत्र के बीच तालमेल द्वारा निश्चित ही प्रौद्योगिकी अनुकूलन को बढ़ाया जा सकता है।

पूर्व नीतियां एवं वर्षा आधारित कृषि

देश में स्वतंत्रता के बाद कुल खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ोतरी करना अति आवश्यक था क्योंकि उस समय देश खाद्यान्नों की कमी से जूझ रहा था। शुरुआती समय में खाद्यान्न उत्पादन में बढ़ोतरी कुल कृषि क्षेत्रफल विस्तार की वजह से देखी गई। खाद्यान्न उत्पादन में वास्तविक बढ़ोतरी "हरित क्रांति" के बाद देखने को मिली जो वास्तव में राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली के प्रयासों की देन थी। खाद्यान्न उत्पादन में ये बढ़ोतरी मुख्यत: अधिक उपज देने वाली फसलों की किस्में, अत्याधिक मात्रा में रासायनिक खादों का प्रयोग, सिंचाई सुविधाएं, पादप कीट एवं रोग संरक्षण, रसायनों इत्यादि प्रौद्योगिकियों द्वारा प्राप्त की जा सकी। यद्यपि ये तकनीकी पैमाने तटस्थ होने के लिए बनाए गए थे परंतु ये प्रौद्योगिकियां संसाधनों की उपलब्धता के लिए तटस्थ नहीं थे। अत: ये प्रौद्योगिकियां अनेक क्षेत्रों एवं किसानों की पहुंच से दूर होती चली गई। खासकर उन क्षेत्रों में जहां सीमित सिंचाई एवं कमजोर स्तर की मृदाएं थीं। साथ ही साथ वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए अधिक उपज देने वाली किस्मों का विकास करना मुश्किल था तथा विकसित की गई नई किस्मों का प्रयोग करना भी सीमित था क्योंकि इन क्षेत्रों की जलवायुवीय परिस्थितियां तथा बिजाई दशाओं में विभिन्नता होती हैं। ज्यादातर कृषि विकास के आदर्श, रणनीतियां, निवेश तथा कृषि से संबंधित संस्थाएं अधिक आगत वाले सिंचित क्षेत्रों की गहन कृषि को ध्यान में रखकर बनाए गए।

इसके परिणामस्वरूप सरकार द्वारा दी जाने वाली ज्यादातर छूट (सब्सिडी) रासायनिक खादों पर, सिंचाई जल पर, संस्थागत ऋण, समर्थन मूल्य इत्यादि पर होती हैं तथा ये बड़े पैमाने पर सिंचित क्षेत्र के किसानों के पास ही पहुंच पाई जिसके परिणामस्वरूप वर्षा आधारित कृषि के किसान इस छूट से कम लाभान्वित हो पाए। खरीद एवं वितरण प्रणाली में भी मुख्यत: दो अनाज अर्थात गेहूं और चावल का अधिक समर्थन किया गया। इसका परिणाम यह निकला कि इससे कुछ राज्य (राष्ट्रीय खाद्यान में योगदान करने वाले राज्य) ही इन नीतियों की वजह से अधिक लाभान्वित हुए। वाटरशेड (जलागम) विकास से संबंधित कार्यक्रमों को छोड़कर अब तक कोई अन्य बड़ा कार्यक्रम नहीं है जो वर्षा आधारित कृषि की विशिष्ट जरूरतों को पूरा करता हो। यद्यपि वाटरशेड विकास पर वर्तमान निवेश लगभग 12,000 रूपए प्रति हेक्टेयर है जो औपचारिक सिंचाई सुविधाओं के निर्माण पर किए जा रहे खर्च की तुलना में काफी कम है।

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि वर्षा आधारित कृषि में विभिन्नता पाई जाती है और ये सिंचित कृषि से भिन्न है। अत: वर्तमान में कृषि विस्तार प्रणाली के आदर्श इस कृषि की आवश्यकताओं से पूरी तरह मेल नहीं खाते हैं। अतः कृषि विस्तार प्रणाली में किसानों

को प्राकृतिक संसाधनों के उचित उपयोग के बारे में जानकारी देने की आवश्यकता है न कि केवल कुछ आगतों के उपयोग की जानकारी तक ही इसे सीमित रखा जाए। अनुसंधान एवं विस्तार प्रणाली को निकट संपर्क में काम करना चाहिए ताकि प्रौद्योगिकी को स्थानीय जरूरत के अनुकूलित बनाया जा सके। विस्तार प्रणाली को अलग-अलग किसानों की अपेक्षा, किसान समूह के साथ काम करना चाहिए। प्राकृतिक संसाधनों का इष्टतम उपयोग करने के लिए जारी प्रौद्योगिकियां केवल कुछ किसानों के लिए ही सीमित नहीं हैं।

वर्षा आधारित कृषि की विशिष्ठ आवश्यकताओं के मद्देनजर इन क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ाने के लिए विभिन्न संस्थाओं, जिसमें सरकारी, नागरिक समुदाय तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रदान दाता शामिल हैं, ने अनेक प्रयास किए हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन संस्थाओं के एकजुट होने से उत्पादकता, आय और प्राकृतिक संसाधनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। वर्षा आधारित कृषि में निरंतर उत्पादकता बनाए रखने के लिए कई प्रौद्योगिकी हस्तक्षेप जारी हैं, जिनके केंद्र बिंदु में मृदा एवं जल संरक्षण, समग्र पौषक तत्व प्रबंधन, समय पर आदानों की उपलब्धता, समय पर कृषि क्रियाएं इत्यादि हैं। ये सभी तकनीकी हस्तक्षेप ज्ञान एवं श्रम गहन होते हैं इसलिए यह आवश्यक है कि किसानों की समस्याओं को संबोधित करने के लिए कृषक समुदाय में एकजुटता रहना जरूरी है। देश में वाटरशेड एवं आजीविका परियोजनाओं के सफल कार्यान्वयन के पीछे समुदाय की एकजुटता का प्रमुख योगदान रहा है।

अनुसंधान एवं नीतियों की आवश्यकता

वर्षा आधारित कृषि में उत्पादकता एवं सतता के लिए निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान देने की नितांत आवश्यकता है:-

- देश में जारी मनरेगा एवं पीएमकेएसवाई परियोजनाओं में नवीनतम प्रावधान करके किसानों को मृदा स्वास्थ्य बेहतर बनाने और पानी बचाने के उपाय को अपनाने हेतु जागरूक करना चाहिए।
- इन क्षेत्रों में जोखिम से निपटने के लिए फसलों में लचीलापन, मृदा अनुसार फसलों का चयन, कीट एवं रोग प्रबंधन, स्थान विशेष पर मृदा एवं जल संरक्षण करना अति आवश्यक है। पौषक तत्व तथा कीट एवं रोग प्रबंधन के लिए जैविक दृष्टिकोण पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए।
- बीज एवं चारा बैंक, बीमा, भुगदान, सामुदायिक उपयोग केंद्र (कस्टम हायरिंग सेंटर) इत्यादि पहलुओं पर नीतियों एवं अनुसंधान की जरूरत है।
- वर्षा आधारित कृषि को लाभदायक बनाने के लिए एक बहुपक्षीय नीति बनाने की आवश्यकता है। चूंकि इन क्षेत्रों में मोटे अनाज एवं दालों को अधिक बोया जाता है, जिनकी खरीद सुनिश्चित (न्यूनतम समर्थन मूल्य द्वारा) करने के साथ ही साथ प्रोत्साहन राशि देकर भी इनके क्षेत्रफल में विस्तार किया जा सकता है। चूंकि मौटे अनाज वाली फसलों को बोने पर पानी की बचत होती है। अत: जो किसान इस फसलों की बुवाई करते हैं, उन्हें प्रोत्साहन राशि दी जानी चाहिए।

- हाल ही में जारी प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना बीमा क्षेत्र में व्यापक प्रभाव छोड़ रही है। ये बीमा योजनाएं किसानों को तकनीकियां अपनाने में मदद करती हैं। इस योजना को ओर प्रभावी बनाने की जरूरत है।
- वर्षा आधारित क्षेत्रों में बोई जाने वाली कुछ फसलों की मांग में गिरावट भी चिंता का विषय है। अत: जहां एक तरफ कुछ फसलें बाजार में मांग अधिक होने से अच्छी कीमत प्रदान कर रही हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ फसलों की बाजार में मांग कम होने से कम कीमत मिल पा रही है। अत: इन क्षेत्रों में ऐसी तकनीकियां विकसित करने की आवश्यकता है जिससे अधिक बाजार मांग वाली फसलें भी इन क्षेत्रों में बोई जा सके। इसके साथ ही साथ कम बाजार मांग वाली फसलों के लिए उपयुक्त नीति बनाने की आवश्यकता है। हाल ही में जारी राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम द्वारा मोटे अनाजों को भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली में शामिल करके इन अनाजों को बढ़ावा दिया जा सकता है। वास्तव में अगर एक छोटे क्षेत्र को भी मोटे अनाजों की बुवाई क्षेत्र की तरफ ढकेला जाए तो नि:संदेह ही खाद, पानी, बिजली पर दी जाने वाली छूट में भी भारी कमी लाई जा सकती है। क्योंकि, ये फसलें पौष्टिक एवं जलवायु अनुकूलित हैं।
- खेत प्रणाली में पशुधन को भी शामिल करने की आवश्यकता है, जिससे किसानों की आय में वृद्धि की जा सके। इस दिशा में प्रभावी नीति बनाए जाने की अत्यंत आवश्यकता है।
- मौसम विचलन के प्रभावों को कम करने, प्रभावी मौसम निगरानी एवं सटीक पूर्व चेतावनी प्रणाली को विकसित करने की आवश्यकता है। इस दिशा में सटीक कार्य योजना बनाने की आवश्यकता है। इसके अलावा किसान, सरकार, कृषि से संबंधित विभागों के पास समय और सटीक मौसम भविष्यवाणियां पहुंचाने के लिए सक्षम प्रणाली की भी आवश्यकता है।
- ऐसी नीतियां एवं कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है जिनमें ग्रामीण आबादी के लिए कृषि के अतिरिक्त अन्य आय स्त्रोतों पर ध्यान दिया जाए। अर्थात् आय स्त्रोतों में विविधता लाने की जरूरत है जिससे कुछ हद तक ही सही किसानों की केवल कृषि पर निर्भरता को कम किया जा सके।
- कीमतों में उतार चढ़ाव और प्राकृतिक आपदाएं इन क्षेत्र के किसानों की स्थिति में अस्थिरता के प्रमुख कारण हैं। हालांकि, एनएपी द्वारा सुझाई गई कृषि बीमा योजना में सभी किसानों एवं सभी फसलों को वित्तीय संकट द्वारा सुरक्षित करने पर जोर दिया गया है।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य यह सुनिश्चित नहीं करता है कि किसान इस मूल्य से ज्यादा राशि प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि, ये सुनिश्चित करने की जरूरत है कि किसान को इस मूल्य से कम कीमत ना मिले। अगर कीमतें न्यूनतम समर्थन मूल्य से नीचे आती हैं तो इस दिशा में निश्चित ही कुछ उपाय करने की जरूरत है जिससे किसानों के उत्पाद को खरीदा जा सके। हैं। यद्यपि कुछ राज्यों में कुछ फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य बनाए जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप कुछ राज्य ज्यादा लाभकारी स्थिति में हैं तथा कुछ राज्यों के किसानों को इसका लाभ नहीं मिल पाता है।
- वर्षा आधारित क्षेत्रों में अकसर असामान्य मौसमी घटनाएं अधिक होती हैं। अत: इनसे निपटने के लिए वास्तविक समय आकस्मिक उपायों के लिए वर्तमान में कार्य कर रहे विभागों को

ओर मजबूत करने की आवश्यकता है। यदि ऐसा करना संभव न हो पाए तो फिर अलग से एक समग्र प्रणाली को विकसित किया जा सकता है।

- बुनियादी ढांचे, बाजार और निवेश को बढ़ावा देने के लिए सार्वजनिक एवं निजी साझेदारी की स्थापना की जानी चाहिए।
- उन नीतियों एवं वित्तीय मापदंड़ों पर जोर देने की आवश्यकता है जो इन क्षेत्रों के विकास में अहम भूमिका निभा सकते हैं क्योंकि ये क्षेत्र विविधतापूर्ण हैं। अत: विभेदित विकेंद्रित दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

सारांश

सतत कृषि नीति का उद्देश्य तकनीकी रूप से सक्षम, आर्थिक रूप से व्यवहार्य, पर्यावरण के अनुकूल, स्थाई, सामाजिक स्वीकार्य तथा देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का इष्टतम उपयोग करने वाला होना चाहिए। तकनीकी विकास एवं इसका स्थानांतरण आदानों एवं सेवा वितरण को अधिक सक्रिय, सशक्त एवं लचीला बनाकर वर्षा आधारित कृषि को व्यवहार्य और टिकाऊ बनाया जा सकता है। वर्षा आधारित फसलों द्वारा प्रदान की जाने वाली पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के लिए भी नीतियां एवं कार्यक्रम बनाने की जरूरत है। साथ ही साथ इन क्षेत्रों में ओर अधिक निवेश बढ़ाया जाना चाहिए।

संदर्भ

बंटीलान एम सी एस, आनंदबाबू, पी, अनुपमा, जी वी, दीप्ति, एच एंड पद्मजा, आर. 2006. ड्राइलैंड एग्रीकल्चर: डायनामिक्स, चैलेंजेज एंड प्रिआरिटीज़. रिसर्च बुलेटिन नंबर 20, इंटरनेशनल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार द सेमीएरिड ट्रॉपिक्स, पटानचेरु, पीपी. 32

भाटिया वी एस, सिंह प्यारा, वाणी एस पी, केशव राव ए वी आर एंड श्रीनिवास के. 2006. यील्ड गैप एनालिसिस आफ सोयाबीन,ग्राउंडनट,पिजनपी एंड चिकपी इन इंडिया यूजिंग सिमुलेशन मॉडलिंग. ग्लोबल थीम आन एग्रोएसोसिस्टम्स रिपोर्ट नंबर.3, इंटरनेशनल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार दा सेमीएरिड ट्रॉपिक्स, पटानचेरु, पीपी. 156

फैन एस एंड पी हज़ेल. 2000. शुड डेवलपिंग कंट्रीज इन्वेस्ट मोर इन लेस्स - फवोरेड एरियाज: एन एम्पिरिकल एनालिसिस आफ रूरल इंडिया. इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली 35 (17): 1455-1464.

मूर्ती एम वी आर, सिंह प्यारा, वाणी एस पी, खैरवाल आय एस एंड श्रीनिवास के. 2007. यील्ड गैप एनालिसिस आफ सोरघम एंड पर्ल मिलेट इन इंडिया यूजिंग सिमुलेशन मॉडलिंग. ग्लोबल थीम ओन एग्रो एसोसिस्टम्स रिपोर्ट नंबर. 3, इंटरनेशनल रिसर्च इंस्टिट्यूट फार द सेमीएरिड ट्रॉपिक्स, पटानचेरु, 82 पीपी

रामाराव सी ए एंड वेंकटेश्वर्लु बी. 2012. ड्ज ड्राइलैंड एग्रीकल्चर मीन दा एंड फार ए फार्मर? दा हिन्दू सर्वे आफ इंडियन एग्रीकल्चर 2012. पीपी. 57-58

फैन एस एंड छान-कंग सी. 2004. रिटर्न्स टू इंवेस्टमेंट इन लेस्स फेवर्ड एरियाज इन डेवलपिंग कंट्रीज: ए सिंथेसिस आफ एविडेंस एंड इंप्लिकेशन्स फार अफ्रीका. फ़ूड पालिसी, वाल्यूम 29, इशू 4, 431-444

★★★

21

भविष्य का दिशा मार्ग

- सीएच श्रीनिवास राव, अशोक कुमार इंदोरिया एवं के एल शर्मा

देश के विशाल भूभाग में फैले वर्षा आधारित क्षेत्रों की कृषि में आमूलचूल परिवर्तन कर इन्हें देश के सर्वांगीण विकास का हिस्सा बनाना अति आवश्यक है। इन क्षेत्रों में विद्‍यमान असीम संसाधन क्षमता का समुचित उपयोग कर न केवल इन क्षेत्रों के किसानों का कायाकल्प किया जा सकता है अपितु देश को भी प्रगति के पथ पर ओर तेजी के साथ आगे बढाया जा सकता है। इस दिशा में अग्रसर होने के लिए हमे सार्थक, समयबद्ध तथा सटीक प्रयासों की आवश्यकता है। हमें वर्षा आधारित कृषि के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखकर इन क्षेत्रों के ओर अधिक विकास के लिए भविष्य का मार्ग क्या होना चाहिए जिससे कि इन्हें अपनाकर और उन पर विशेष ध्यान देकर वर्षा आधारित कृषि प्रणाली को मजबूत एवं विकसित किया जा सके। इस संबंध में हमें तत्काल ही निम्नलिखित दिशा-निर्देशों पर ध्यान देने की नितांत आवश्यकता है:-

1. मृदा स्वास्थ्य को इसके उच्चतम स्तर पर बनाए रखने में जैविक खादों का विशेष महत्व है, लेकिन दुर्भाग्य से इन क्षेत्रों में जैविक खादों की कमी तथा इनके अन्य उपयोगों के कारण मृदा में इनका प्रयोग उचित दर से नहीं हो रहा है। अधिकतर किसान फसल पोषक तत्वों की मांग को केवल रासायनिक खादों के माध्यम से ही पूरी कर रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी ऐसी स्थितियां कायम है कि वहां गोबर का उपयोग उपले या गौसे बनाकर खाना बनाने के लिए ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप गोबर की उपलब्धता मृदा उपयोग के लिए कम ही बचती है। अत: सुझाव दिया जाता है कि इस दिशा में किसानों को इन खादों का प्रयोग ईंधन के रूप में करने से रोकने के लिए संबंधित संस्थाओं द्‍वारा किसानों को रियायती दरों पर एल पी जी गैस कनैक्शन उपलब्ध करवाने की तत्काल आवश्यकता है। इसके साथ ही साथ किसानों को यह भी समझाना होगा कि यदि जैविक खादों को मृदा में डाला जाए तो उससे मृदा स्वास्थ्य में सुधार आएगा जिसका सीधा प्रभाव उनके फसलोत्पादन पर दिखाई देगा। यदि हम उन्हें इसके लाभों से समय-समय पर अवगत कराते रहेंगे तो वो गोबर की खाद का उपयोग करना आरंभ कर देंगे क्योंकि जैविक पदार्थ ही मृदा की जीवन रेखा है। कालांतर में जैविक खादों को केवल, फसल पोषक तत्वों के एक स्रोत के रूप में प्रचलित किया गया था, जो सत्य नहीं है क्योंकि यह खादें केवल फसल पोषक तत्वों की आपूर्ति ही नहीं करती बल्कि इसके अतिरिक्त मृदा को सुधारने में भी मुख्य भूमिका निभाती हैं। मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैव स्वास्थ्य में अप्रत्याशित सुधार करके मृदा में विद्‍यमान

नैसर्गिक पोषक तत्वों को भी फसलों के लिए उपलब्ध कराने में अहम भूमिका निभाती है। इसके अलावा जैविक खादों के अन्य स्रोतों जैसे उपचारित गटर की खाद, बायोचर, वर्मीकंपोस्ट एवं कंपोस्ट को भी बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

2. समग्र पोषक तत्व प्रबंधन में जीवाणु खादों का विशेष महत्व है। अकसर ऐसा देखा गया है कि इस क्षेत्र के किसानों द्वारा समुचित मात्रा में जीवाणु खादों का प्रयोग नहीं किया जा रहा है। इसकी मुख्य वजह यह है कि इन खादों के प्रति जानकारी की कमी तथा इनकी समय पर उपलब्धता न हो पाना है। इसके साथ ही साथ जीवाणु खाद में जीवित जीवाणु होते हैं जो एक निश्चित तापमान एवं नमी पर ही जिंदा रहते हैं। अत: इनका भंडारण करना एवं उचित समय पर इसे किसानों को उपलब्ध करना एक बड़ी चुनौती है, क्योंकि किसानों के पास इतनी सुविधा नहीं होती है कि वे इनका भंडारण उपयुक्त परिस्थितियों में कर सकें। अत: एक ऐसी प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है, जिससे किसानों को यह खाद सुगमता से मिल सके। इस दिशा में सार्थक उपलब्धता प्राप्त करने के लिए सामुदायिक स्तर पर एवं ग्राम स्तर पर 'जीवाणु खाद भंडार' का निर्माण करना अति आवश्यक है, जिससे कि किसानों को उचित समय पर सही जीवाणु खाद मिल सके। इस दिशा में अनुसंधान के मोर्चे पर भी कार्य करने की जरूरत है क्योंकि इन क्षेत्रों में अत्यधिक तापमान एवं मृदा नमी की कमी की वजह से यह जीवाणु खादें ज्यादा कारगर साबित नही हो रही हैं। अत: जीवाणुओं की ऐसी प्रजातियों की खोज की आवश्यकता है जो इन क्षेत्रों में जारी जलवायुवीय परिस्थितियों में भी असरदार साबित हों।

3. वर्षा आधारित क्षेत्रों की मृदाओं में संतुलित रासायनिक खादों का प्रयोग अति आवश्यक है क्योंकि इन मृदाओं में नैसर्गिक रूप से फसल पोषक तत्वों की कमी व्याप्त है। लेकिन इन क्षेत्रों के किसानों द्वारा साल दर साल एक ही मात्रा में केवल कुछ रासायनिक खादों (नत्रजन एवं फासफोरस) का प्रयोग अधिक करने से मृदा में विद्यमान अन्य पोषक तत्वों की उपलब्धता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इससे स्पष्ट होता है कि इन क्षेत्रों के किसानों को मृदा परीक्षण के लाभ तथा इसके आधार पर संतुलित रासायनिक खादों के प्रयोग के बारे में जागरूकता लाने की अति आवश्यकता है। इस दिशा में सार्थक प्रयासों द्वारा संबंधित संस्थाओं को किसानों की सहभागिता के साथ मृदा परीक्षण कार्यक्रमो में तीव्रता लाने की आवश्यकता है। साथ ही साथ यह भी सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि किसान सिफारिश की गई दर से ही फसल विशेष के अनुसार रासायनिक खादों का प्रयोग कर रहे हैं। किसानों को मृदा परीक्षण के आधार पर रासायनिक खादों के प्रयोग को बढ़ावा देने की भी आवश्यकता है। इसके साथ ही साथ इस दिशा में कृषि विस्तार प्रणाली को प्रभावी बनाना भी जरूरी है।

4. आमतौर पर वर्षा आधारित क्षेत्रों में किसानों द्वारा सूक्ष्म फसल पोषक तत्वों पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है। यह भी सर्वविदित है कि ये सूक्ष्म फसल पोषक तत्व फसलोत्पादन में महत्वपूर्ण भमिका निभाते हैं। किसानों द्वारा इनके प्रति कम रुझान की वजह सीमित जानकारी तथा उपलब्धता के साथ उनकी कीमत का अधिक होना प्रमुख

है। अत: इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए पहले किसानों की सामान्य जानकारी बढ़ाकर तथा इन सूक्ष्म पोषक तत्वों के मूल्यों पर रियायत कर इनके प्रयोग को बढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा ग्राम स्तर पर उनकी सुगम उपलब्धता के लिए समन्वयन करने वाली किसी संस्था की पहचान किया जाना अत्यावश्यक है।

5. जल प्रकृति द्वारा प्रद्धत एक अमूल्य उपहार है। पानी की बर्बादी और उसके दुरुपयोग को तुरंत रोका जाना चाहिए। इन क्षेत्रों के फसलोत्पादन में जल का मुख्य स्रोत वर्षा है। अत: इसका विवेकपूर्ण भंडारण तथा भंड़ारित जल का विवेकपूर्ण उपयोग नि:संदेह इन क्षेत्रों में कृषि से जुड़ी विभिन्न समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है। इन क्षेत्रों की कृषि में सबसे महत्वपूर्ण आयामों में से एक जल की उपयोग दक्षता बढ़ाना है। इस दिशा में योजना बनाते समय जल संचयन एवं इसका पुनर्चक्रण के साथ जमीनी एवं सतह के पानी के संयोजन उपयोग को परस्पर नजरिए से देखा जाए। यह भी ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि सभी के लिए पानी की न्याय संगत पहुंच हो। वर्षा आधारित क्षेत्रों की कृषि में सुरक्षात्मक सिंचाई पर ध्यान देने की आवश्यकता है, न कि इन क्षेत्रों में सिंचित फसलों की बुवाई करना। इन क्षेत्रों में वर्षा जल उपलब्धता बढ़ाने के लिए खेत तालाबों का निर्माण करना परमावश्यक है। लेखकगण 'प्रति खेत एक तालाब' की अवधारणा में विश्वास रखते हैं। यद्यपि खेतों के छोटे आकार तथा भूमि विन्यास के सुचारु न होने से ये प्रत्येक खेत में संभव नही हो तो सरकारी बंजर भूमि पर 'सामुदायिक तालाब' बनाकर नि:संदेह ही इन क्षेत्रों के किसानो का कायाकल्प किया जा सकता है। इस दिशा में सार्थक तथा सटीक प्रयासों की जरूरत है और किसानों में इनके प्रति जागरूकता तथा जारी कार्यक्रमों में तेजी लाने की आवश्यकता है। इस दिशा में ओर सार्थक परिणाम प्राप्त करने के लिए अनुसंधान के मोर्चे पर भी कार्य करना चाहिए। विशेषरूप से वर्तमान में जारी यथास्थान मृदा नमी संरक्षण तकनीकियों को बढ़ावा देना तथा फसल विशेष तथा क्षेत्र में जारी जलवायुवीय परिस्थितियों के अनुकूल नई तकनीकियों की खोज करना जैसी बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

6. शुष्क बागवानी को सफल बनाने के लिए ऐसे फलदार वृक्षों की नई किस्म पर अनुसंधान करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है जो अधिक सूखा सहन करने की क्षमता रखती हो। अनुसंधान के मोर्चे के अलावा शुष्क बागवानी की विभिन्न तकनीकियों को किसानों के खेतों पर सफल प्रदर्शन करना भी जरूरी है। उदाहरण के लिए हैदराबाद में बेर के बगीचो में वृक्षों के मध्य खाली स्थान में लोबिया, मूंग, चना तथा नींबू के बगीचे में करेला, टमाटर तथा भिंडी का सफल प्रदर्शन किया जा चुका है। इन बगीचों के मध्य खाली स्थान पर खेत की प्राथमिकता के अनुसार, फसलें, घास तथा औषधीय पौधे एक विकल्प हो सकते हैं। इस दिशा में ओर अधिक अनुसंधानों की आवश्यकता है। इसके अलावा किसानों को विभिन्न फलदार वृक्षों की उचित किस्म उचित समय पर रियायती दरों पर उपलब्ध कराई जानी चाहिए। इसको सुनिश्चित करने की दिशा में सार्थक प्रयासों की जरूरत है।

7. इन क्षेत्रों में एकीकृत कृषि प्रणाली के सभी घटकों अर्थात् फसल, पशुधन, मूर्गीपालन, बागवानी, कृषिवानिकी, मछलीपालन, चारा उत्पादन, आदि को शामिल कर ऐसे प्रतिरूप आदर्श स्थापित करना है, जिससे एक घटक का उत्पादन दूसरे घटक के लिए उत्पादक सामग्री के रूप में इस्तेमाल हो सके अर्थात इन क्षेत्र के किसानों के कायाकल्प के लिए ऐसी खेत प्रणालियां विकसित करने की जरूरत है जो उपलब्ध संसाधनों के उपयोग एवं बाह्य खरीदी गई आगतों पर कम निर्भर हो। इस दिशा में कारगर नीति बनाए जाने की सख्त जरूरत है। तथा अनुसंधानों द्वारा सफल एकीकृत कृषि प्रणालियों का किसानों के खेतों पर प्रदर्शन करना संभव हो सके।

8. इन क्षेत्रों में फसलों एवं चारे की उच्च गुणवत्ता वाले बीजों की अकसर कमी देखी गई है तथा आवश्यक जानकारी के अभाव में किसान बिना समझ के स्वविवेक से मन चाही किस्में लगाते हैं जो भविष्य में फसल उपज में गिरावट का प्रमुख कारण बनती है। इन क्षेत्रों की मृदा एवं जलवायु की स्थिति के अनुसार नई किस्में विकसित करने की जरूरत है। साथ ही साथ इस दिशा में सार्थक परिणाम प्राप्त करने के लिए नि:संदेह किसानों की जानकारी को बढ़ाने की आवश्यकता है तथा किसानों को समय पर फसलों की सही किस्में उपलब्ध करवाने की भी जरूरत है। इस दिशा में कार्य करने के लिए गांव स्तर पर सामुदायिक बीज केंद्रों की स्थापना करना अति आवश्यक है। संबंधित संस्थाओं को इस क्षेत्र में कार्य करने की अहम जरूरत है।

9. नई वैज्ञानिक खोजों एवं तकनीकियों के बारे में कृषक समुदाय में जागरूकता और निर्णय क्षमता बढ़ाने के लिए समय-समय पर कृषि प्रसार से जुड़ी विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रमों, कृषि दौरों तथा प्रदर्शनों का आयोजन इन क्षेत्रों के लिए अति आवश्यक है। इन क्षेत्रों के किसानों के सामाजिक-आर्थिक स्तर को ध्यान में रखकर कृषि प्रसार शिक्षा क्षेत्र में अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है जिससे कि इन किसानों की वास्तविक समस्याओं को केंद्रित करके उचित समाधान प्रदान किया जा सके। परंपरागत कृषि प्रसार के विभिन्न तरीकों को इन किसानों की आवश्यकता के अनुसार पुन: परिभाषित करने की जरूरत महसूस की जा रही है। इसके साथ ही साथ बदलते सामाजिक परिवेश में बढ़ती सूचना प्रौद्योगिकी के साधन, जैसे ईमेल, कृषि से जुड़ी विभिन्न संस्थानों की वेबसाइट की जानकारी, एस.एम.एस. द्वारा स्थानीय भाषा में संदेश पहुंचाना, वॉट्सएप ग्रुप बनाना इत्यादि, को अवश्य ही कृषि विस्तार में अति आवश्यक समझकर शामिल करने की जरूरत है। इन माध्यमों के प्रयोग से किसानों को आवश्यक सूचना उचित समय पर प्राप्त हो सकेगी।

10. पशुधन का वर्षा आधारित क्षेत्रों में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। हालांकि वर्षा आधारित क्षेत्रों में व्याप्त निरक्षरता एवं गरीबी की वजह से किसान संवर्धित नस्ल के पशु खरीदने में सक्षम नही है। फिर भी, यदि संभव हो तो इन क्षेत्रों में संबंधित नस्लों के पशु रियायती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए संबंधित संस्थाओं द्वारा एक ठोस योजना बनाने की आवश्यकता है। पशुधन नस्ल सुधार के लिए गांव स्तर पर वीर्य भंडारण केंद्र बनाकर

किसानों को आसानी से रियायती दरों पर इसे उपलब्ध कराकर आशातीत सफलता पाई जा सकती है। पशुधन से प्राप्त दूध, मांस, बालों, चमड़ा, खादों इत्यादि के विक्रय के लिए एक व्यवस्थित प्रणाली स्थापित करनी चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में एक विकसित सरकारी प्रणाली के अभाव में किसानों को उचित लाभ नहीं मिल पा रहा है। इन क्षेत्रों में दुग्ध व्यवसाय को प्रभावी बनाने के लिए गांव स्तर पर इसके भंडारण की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे कि किसानों को दूध का उचित मूल्य प्राप्त हो सके। उपलब्ध संस्थानों की कमी से पशुओं के रोग एवं टीकाकरण में भी अपेक्षित परिणाम देखने को नहीं मिल रहे हैं। फिर भी, पशुधन तंत्र के नस्ल सुधार, रोग, दुग्ध, चारा उत्पादन इत्यादि विभिन्न घटकों में सुधार करते हुए इन क्षेत्रों के किसानों के जीविकोपार्जन में वृद्धि की जा सकती है। इन क्षेत्रों से जुड़ी विभिन्न संस्थाओं को मिलाकर एक एकीकृत योजना बनाने पर भी बल दिया जाना चाहिए।

11. वर्तमान में बदलती हुई मौसमी घटनाएं (तीव्र सूखा, ओलावृष्टि, तीव्र वर्षा, शीत लहर, पाला इत्यादि) नि:संदेह ही वर्षा आधारित कृषि पर विपरीत एवं विनाशकारी प्रभाव डालती है। इनसे बचने के लिए कृषि मौसम सलाह सेवाओं की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो गई है। हालांकि इन कृषि मौसम सलाहों को उचित समय पर पहुंचाना एक चुनौतिपूर्ण कार्य है। अत: इस दिशा में सबसे ज्यादा कार्य करने की जरूरत है। इस दिशा में आंकड़ों का सटीक विश्लेषण करनोपरांत उन्हें उचित समय पर किसानों तक पहुंचाने के लिए कार्य करना जरूरी है। देश में स्वचालित मौसम केंद्रों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। आंकड़ों का सटीक विश्लेषण करनोपरांत समय पर कृषि मौसम सलाहें किसानों तक पहुंचाने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न तरीकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस क्षेत्र में शोध एवं प्रसार क्षेत्र में और अनुसंधानों की आवश्यकता है।

12. किसी भी प्रकार की कृषि की सफलता में विभिन्न कृषि यंत्रों का विशेष महत्व होता है। इसका मूल कारण इन क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की मृदाओं का पाया जाना है। अत: मृदा विशेष की आवश्यकतानुसार कृषि यंत्रों में सुधार करना जरूरी है। ऐसे कृषि यंत्रों को विकसित करने की जरूरत है जिनमें कम वजन तथा मरम्मत की कम आवश्यकता हो, जिससे ईंधन की बचत की जा सके और किसानों का लाभ बढ़ाया जा सके। इस दिशा में नैनो मेटल युक्त कृषि यंत्रों पर अनुसंधान की आवश्यकता है। प्राय: यह देखा गया है कि कमजोर आर्थिक स्थिति होने से सभी किसान ट्रैक्टर एवं कृषि यंत्र खरीदने में असमर्थ होते हैं। अत: संबंधित संस्थाओं द्वारा सामुदायिक स्तर पर इन यंत्रों को रियायती दरों पर उपलब्ध कराने के बारे में नीतियां बनाई जानी चाहिए। इन क्षेत्रों में अकसर छोटी प्रसंस्करण मशीनों का अभाव देखा गया है। लेकिन खेत स्तर पर या गांव स्तर पर प्रसंस्करण मशीनों की आवश्यकता है जिससे कि किसान अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पाद को प्रसंस्करण करके उचित लाभ पर बेच सकता है। इस दिशा में कारगर कदम उठाने की जरूरत है।

13. वर्षा आधारित क्षेत्रों में कृषि वानिकी किसानों के जीविकोपार्जन का एक प्रमुख स्रोत बन सकती है लेकिन अनेकानेक कारणों की वजह से इस क्षेत्र में आशातीत सफलता नहीं मिल पा रही है। इन क्षेत्रों की परंपरागत कृषिवानिकी की विभिन्न विधाओं में उन्नयन करने की आवश्यकता है तथा इन क्षेत्रों की जलवायु एवं मृदा के अनुसार एक सुदृढ़ कृषि वानिकी प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है। इसी दिशा में तीव्र बढ़वार के साथ सूखा सहन करने वाले वानिकी के विभिन्न वृक्षों में अनुसंधान कर नई वानिकी किस्में तैयार करने की जरूरत है। इसके साथ ही साथ वानिकी वृक्ष आसानी से रियायत दरों पर उपलब्ध कराने की भी नितांत आवश्यकता महसूस की जा रही है। कृषि वानिकी के विभिन्न उत्पादों की खरीद के लिए एक सक्षम बाजार बनाया जाना चाहिए जिससे किसानों को आशातीत मुनाफा मिल सके। इनके अलावा अनुसंधानों द्वारा खोजी गई विभिन्न कृषि वानिकी विधाओं का किसानों के खेतों पर सफल प्रदर्शन करने की अत्यंत आवश्यकता है, जिससे कि किसानों में इसके प्रति रुझान पैदा हो सके। स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो इन क्षेत्रों में कृषि वानिकी के सर्वांगीण विकास के लिए इससे जुडी विभिन्न संस्थाओं को एक मंच पर लाकर कारगर एवं सार्थक योजनाएं बनाने की आवश्यकता है।

14. वर्षा आधारित कृषि ज्यादातर सूखे से ग्रसित रहती है। इसलिए यथा समय कृषि सूखा प्रबंधन की विधियों/तकनीकियों पर बल देने की आवश्यकता है। इस दिशा में केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (क्रीडा), हैदराबाद ने राष्ट्रीय जलवायु समुत्थान कृषि में नवप्रवर्तन अर्थात् निक्रा नामक परियोजना के तहत देश के लगभग 623 जिलों के लिए जिला कृषि आकस्मिक योजनाएं बनाई हैं। इन योजनाओं में विस्तार से बताया गया है कि विपरीत मौसम परिस्थितियों में कृषक वर्ग समुचित तकनीकियां अपनाकर, विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं द्वारा कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव से कैसे बच सकते हैं अथवा इनके असर को कम कर सकते हैं। इन जिला कृषि आकस्मिक योजनाओं को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए इससे जुडी सभी संस्थाओं को एक इकाई के रूप में कार्य करने की जरूरत है। आगामी वर्षों में इस दिशा में ओर अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। इसके अलावा केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान (क्रीडा), हैदराबाद ने बदलते हुए जलवायु परिदृश्य के अनुसार कृषि की लचीली/प्रभावी प्रौद्योगिकियां तैयार की हैं, जिनके अपनाने से जलवायु परिवर्तनों के विपरीत असर को कम किया जा सकता है। वर्तमान में ये प्रौद्योगिकियां देश के लगभग 100 गांवों में सफलतापूर्वक प्रदर्शित की जा चुकी है, जिसके परिणामस्वरूप किसानों को लाभ भी मिल रहा है, अत: इन लचीली/प्रभावी प्रौद्योगिकियों का देश के अन्य गांवों में भी प्रसार किया जा सकता है।

15. कीट एवं रोग प्रबंधन की दिशा में ओर अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। यद्यपि कीट एवं रोग प्रबंधन की विभिन्न विधाएं (रासायनिक, जैविक, परंपरागत इत्यादि) विद्यमान हैं परंतु बदलते हुए जलवायु परिवर्तन में ये कार्य कठिन हो गया है तथा अनेक कीट रासायनिक दवाइयों के प्रति प्रतिरोधिता विकसित कर चुके हैं। अत: इन क्षेत्रों में कीट एवं रोग नियंत्रण संबंधी मज़बूत अनुसंधान ढांचे की आवश्यकता है जो बदलते जलवायु परिवर्तनों के अनुसार इन पर नियंत्रण कर सके। इस दिशा में एक ओर प्रयास

की आवश्यकता है, जिसके तहत ज्यादा से ज्यादा कीट एवं रोग प्रतिरोधक फसलों की किस्में तैयार की जाए, जिससे कीटनाशकों एवं रोगनाशकों पर होने वाले खर्च को बचाने के साथ ही साथ पर्यावरण को सुरक्षित रखा जा सके। ज्यादातर किसान व्यापारियों, बिचौलियों एवं स्वविवेक से कीटनाशकों एवं रोगनाशकों का प्रयोग करते हैं जिसकी मुख्य वजह समुचित जानकारी का अभाव होना है। इस दिशा में कृषि विस्तार प्रणाली से जुड़ी विभिन्न संस्थाओं द्वारा कृषक समुदाय को उचित समय पर आवश्यक जानकारी प्रदान करने की दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही साथ मौसम आधारित कीट एवं रोग प्रबंधन की सलाहें किसानों तक पहुंचाने हेतु वर्तमान में जारी प्रयासों में तेजी लाने की भी आवश्यकता है।

16. किसी भी प्रकार के उद्यम में एक सटीक आर्थिक विश्लेषण अति महत्वपूर्ण होता है। आर्थिक विश्लेषण से पता चलता है कि जारी उद्यम लाभकारी है या हानिकारक। इसी प्रकार कृषि में भी खेत स्तर पर सटीक आर्थिक विश्लेषण की अति आवश्यकता है। अर्थात आर्थिक विश्लेषण करने से कृषक समुदाय में जारी पारिस्थितिकी प्रणाली में उपलब्ध विभिन्न विकल्पों का उपयोग कर मुनाफा कमा सकते हैं। इन विश्लेषणों द्वारा ज्ञात परिणाम विभिन्न उत्पादों की भविष्य की मांग तथा आपूर्ति के बारे में किसानों को अवगत कराकर, उनके सामने अनेक विकल्प खोलते हैं। इन विश्लेषणों द्वारा ही किसी भी प्रौद्योगिकी की सफलता तथा प्रभावीपन का आकलन किया जा सकता है। दुर्भाग्य से इस क्षेत्र में उतनी प्रगति नही हुई जितनी होनी चाहिए। इस दिशा में कारगर एवं सार्थक प्रयास करने की जरूरत है, जिससे कि किसान आर्थिक आधार पर फसलों का सही चुनाव कर सकें तथा आज की प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र में कदम से कदम बढ़ा सकें।

17. नि:संदेह देश की वर्षा आधारित फसलें अजैविक तनावों (मृदा एवं जलवायु) संबंधी समस्याओं से ग्रस्त हैं। इस दिशा में सार्थक प्रयासों की जरूरत है तथा पौधों की ऐसी किस्में विकसित करने की आवश्यकता है जिनमें अधिक अजैविक तनावों को सहन/लड़ने की शक्ति हो। अजैविक तनावों के प्रभावों को कम करने के लिए नए जनन द्रव्यों की खोज करके उनसे नई किस्में तैयार करने की आवश्यकता भी महसूस की जा रही है।

18. इन क्षेत्रों में वैकल्पिक भूमि उपयोग तथा प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग सहभागिता के आधार पर करना सुनिश्चित करना होगा।

19. वर्षा आधारित क्षेत्रों की विभिन्न फसलों की उत्पादकता अनुसंधान केंद्रों पर प्राप्त उत्पादकता से बहुत कम होती है। इसके संभावित कारणों को तलाशकर इस दिशा में उचित कार्य करके फसलों की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी करनी चाहिए। किसानों को नई तकनीकियों को अपनाने हेतु प्रेरित व प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस दिशा में सार्थक प्रयासों की जरूरत है। इसके साथ ही साथ यह भी सुनिश्चित करना होगा कि कोई भी नई तकनीक किसानों तक टुकड़ों मे न पहुंचाकर एक पूर्व निर्धारित पैकेज तथा प्रक्रियाओं के साथ पहुंचानी चाहिए। ऐसा करने पर ही उन्नत तकनीक सार्थक सिद्ध होंगी तथा इसके आशातीत परिणाम भी प्राप्त होंगे।

20. ज्यादातर वर्षा आधारित क्षेत्रों की कृषि वर्षा तथा भूमि जल पर आश्रित होती है। अत: भूमि जल पुनर्भरण पर आवश्यक ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके साथ ही साथ इसके समुचित एवं संतुलित उपयोग करने के बारे में भी किसानों को अवगत कराया जाना चाहिए।

21. वर्तमान कृषि ज्ञान आधारित होती जा रही है। अत: शिक्षित युवा वर्ग को इस तरफ आकर्षित किया जाना चाहिए। वर्तमान में ज्यादातर शिक्षित वर्ग गैर कृषि व्यवसाय में संलग्न है।

22. आगे के दिशा मार्ग में पर्यावरणीय पहलुओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है तथा अनुसंधानों का एक मुख्य ध्येय यह भी होना चाहिए कि इनसे किसी भी प्रकार का पर्यावरणीय नुकसान न हो।

23. छदम या काल्पनिक परिस्थितियों को मानकर मृदा, फसल तथा जलवायु अनुकरण आदर्श स्थापित करने की जरूरत है जिससे ये छद्म परिस्थितियां अगर भविष्य में उत्पन्न होती भी हैं तो इनसे लड़ने के लिए पूर्व ही तैयारी करके रखी जा सके। इस दिशा में अनुसंधान के मोर्चे पर कार्य करने की जरूरत है।

अंत में हम कह सकते हैं कि अब समय आ गया है कि वर्षा आधारित क्षेत्रों की कृषि के विकास के लिए कृषि समस्याओं पर विशेष अनुसंधान करने की जरूरत है। उन्नत तकनीकों को प्रेरणा व प्रोत्साहन के माध्यम से उचित समय पर किसानों तक पहुंचाना परमावश्यक है। इस दिशा में तकनीकी दक्षता हासिल करने के लिए वैज्ञानिकों के बहुआयामी दल तैयार कर तथा बहु संस्थानों को शामिल कर अनुसंधानों का दायरा बढ़ाने की आज नितांत आवश्यकता बनी हुई है। यदि समय पर इन बातों पर अनुगामी कार्रवाई की जाती है तो इससे कृषि प्रणाली के तंत्र में स्थिरता, प्रतिस्पर्धा, विपरीत जलवायु से लड़ने की क्षमता के साथ ही साथ उपलब्ध संसाधनों का संरक्षण एवं समुचित उपयोग भी किया जा सकेगा।

★ ★ ★

भाकृअनुप-केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान

संतोषनगर, हैदराबाद – 500 059